

प्राचीन भारत का इतिहास
* *
राजपूत राजवंश

—:(०):—

डा० अवध बिहारी लाल अवस्थी

बी० ए० (आनर्स), एम० ए०, पीएच० डी०

रीडर

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक

कैलाश बिहारी अवस्थी

कैलाश प्रकाशन

७६, खुशेदबाग, लखनऊ—४.

मुद्रक

हरि मोहन साहू

रचना आर्ट प्रिंटर्स

६१, चौपटियाँ रोड, लखनऊ—३

प्राचीन भारत का इतिहास—भाग २ (६०० ई०-१२०० ई०)

राजपूत राजवंश

विषय-सूची

प्रस्तावना—आर्यावर्त (६०० ई०-१२०० ई०)	राजपूत युग	क—च
अध्याय १—सातवीं शताब्दी में भारत		१—१६
अध्याय २—पुष्यभूति वंश-महोदय		१७—७८
शशांक		७९—८५
अध्याय ३—प्रशोवर्मन और उत्तका युग		८६—९६
अध्याय ४—आयुध वंश और त्रिकोणात्मक संघर्ष		९७—१०२
अध्याय ५—प्रतिहार वंश		१०३—१७६
अध्याय ६—पालवंश		१७७—१८६
अध्याय ७—चन्देलों का इतिहास		१७७—२३७
अध्याय ८—हैहय (कलचुरि) राजवंश		२३९—२५२
अध्याय ९—परमार वंश		२५३—२८४
अध्याय १०—गहडवाल वंश		२८५—३११
अध्याय ११—सेन वंश		३१२—३१८
अध्याय १२—गुजरात का चालुक्य (सोलंकी) वंश		३१९—३३३
अध्याय १३—चाहमान वंश		३३४—३५०
अध्याय १४—ताजिक-तुरुष्क विजय		३५१—३७३
अध्याय १५—राजपूत और उनका जीवन दर्शन		३७४—३८३

संकेत-सूची

अ०	=	अध्याय
अ० चौ० डा०	=	अली चौहान डायनेस्टीज (शर्मा)
अ० हि० इ०	=	अली हिस्ट्री ऑफ इंडिया (स्मिथ)
इण्डि० ऐन्टी	=	इण्डियन ऐन्टीकरी (=I.A.)
इं० हि० क्वा	=	इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली (I.H.Q.)
ए० इ० क	=	एज ऑफ इम्पीरियल कनौज
एपि० इण्डिका]	=	एपिग्रेफिया इंडिका
एपि ग्रे० इ०		
उ०	=	उच्छ्वास
का० मी०	=	काव्य मीमांसा
गु० प्र०]	=	हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहाराज (पुरी)
हि० गु० प्र०		
ग्लो० गु०	=	ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश
ग्वा० प्र०	=	भोज की ग्वालियर प्रशस्ति
पु०	=	पुराण
मं० मू० क०	=	मंजु श्री मूलकल्प
मे० था०	=	मेन ऐण्ड थाट इन एन्शेंट इंडिया
वृ० सं०	=	वृहत् संहिता
स्ट० स्क०	=	स्टडीज इन स्कन्द पुराण पार्ट वन
ह० च०	=	हर्ष चरित
हि० क०	=	हिस्ट्री ऑफ कनौज
हि० गु० प्र०	=	हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहाराज
हि० ग० डा०	=	हिस्ट्री ऑफ गहडवाल डाइनेस्टी (रोमा नियोगी)
हि० इ०	=	हिस्ट्री ऑफ इंडिया (ईलियट ऐन्ड डाउसन)
A. S. I. R.	=	Archaeological Survey of India Reports
J. R. A. S.	=	Journal of the Royal Asiatic Society
S. I. H. C.	=	Some Contributions of South India to Indian Culture by Krishna Swamy Aiyangar.

प्रस्तावना

हिन्दी में उत्तरी भारत का यह इतिहास हमारे प्राचीन भारतीय इतिहास का दूसरा भाग (उत्तरार्ध) है। पहले भाग में बिम्बिसार युग से लेकर उत्तर-गुप्त-वंश तक का इतिहास दिया गया है। यहां हम राजपूत युग का इतिहास दे रहे हैं। १९५६ ई० में आगरा विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर (यम० ए०) कक्षाओं को राजपूत युग के इतिहास को पढ़ाने का अवसर मिला था। शोध कार्य में भी स्कन्द पुराण का अध्ययन करते हुए इस युग की आत्मा को पहचानने का सौभाग्य हुआ। संयोग से सोमदेव सूरी कृत यशस्तिलक के अध्ययन से आंखें खुलीं। उसी प्रेरणा से इस युग के साहित्य—उदयसुन्दरी कथा, गौडवाहो, रामचरित, नवसाहसांक-चरित, विक्रमांकदेव-चरित, प्रबन्ध संग्रह, कथाकोश, कथासरितसागर, बृहत्कथामंजरी, अनर्धराघव, जानकीहरण, जैन हरिवंश, कर्णसुन्दरी आदि-ग्रन्थों और पृथ्वीराजविजय तथा पृथ्वीराज-रासो का अध्ययन किया। प्रबोधचन्द्रोदय और रूपकषट्क के मनन से दृष्टि में दृढ़ता आयी। उसी दृष्टि से पुराणों का मन्थन करते हुए विश्वास बन गया कि आज जो इतिहास हमारे सामने है उसका स्वरूप 'अन्धेन नीयमानो यथान्धः' ही है। कृष्णमिश्रकृत "चन्देल और उनका राजत्व काल" की गोरखपुर के वाङ्मय में समीक्षा की। इसके पूर्व १६५०-५१ में बनाये गये प्रबोध चन्द्रोदय और रूपकषट्क के नोट्स मिलाये तो ऐसा लगा कि मिश्र जी ने रूपकषट्क का नाम ही नहीं सुना था। आश्चर्य यह है कि डा० यच० सी० रे (डाइ-नेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया, भाग २) ने भी इस ग्रन्थ की चर्चा नहीं की। डा० मित्रा (अर्ली रूलर्स ऑफ़ खजुराहो) और बोस (हिस्ट्री ऑफ़ दि चन्देलाज) तथा पांडे (बुन्देलखण्ड का चन्देल कालीन इतिहास) ने इसका प्रयोग अपने ग्रन्थों में नहीं किया। इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस (इलाहाबाद १६६४ ई०) में रूपकषट्क के ऐतिहासिक महत्व पर एक लेख पढ़ा था।

कई पुराणों में प्रमिति नामक महाप्रतापी धर्मरक्षक सम्राट की म्लेच्छ-विजय और उसकी उपलब्धियों का वर्णन मिलता है। स्कन्दपुराण में विशेषतः इसके युग का चित्रण काल-क्रम से किया गया है। डा० अग्रवाल जी ने 'मत्स्य पुराण-ए स्टडी' में प्रमिति की पहचान चन्द्रगुप्त द्वितीय से की। संभवतः उनके मस्तिष्क से स्कन्द की याद जल्दी में खिसक गई। मैंने प्रमिति की पहचान

धंग से की है और इस पर भी मैसूर इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस में एक लेख विद्वानों के समक्ष पढ़ा था ।

स्कन्द पुराण में प्रतिहार शासक भोज और आम (नागभट द्वितीय), गहरवार शासक चन्द्रदेव तथा पाल शासक विक्रमशील-धर्मपाल के उल्लेख मिलते हैं । विक्रमशील (धर्मपाल) पर एक लेख भारतीय इतिहास परिषद (दिल्ली) में पढ़ा था । इसी परिषद में शशांक पर भी एक लेख पढ़ा था । शशांक को पुराणों में सोम राजा कहा गया है और इसी नाम से उसका उल्लेख मंजुश्री मूलकल्प में हुआ है । मंजुश्री मूलकल्प उसे ब्राह्मणों का उन्नायक बताता है । परन्तु शोधकर्ताओं की दृष्टि इस पर न गई ।

कर्णमुन्दरी एक बहुत ही छोटा नाटक है जिसमें गज्जण नगर (गजनी) पर राजपूत सेना की विजय का वर्णन है । इस पर भी एक लेख पुना इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस (१९६३) ई० में पढ़ा था ।

राजशेखरकृत बालरामायण, बालभारत और काव्यमीमांसा के अध्ययन से प्रतिहार वंश का इतिहास मेरे लिये कुछ नया रूप और कार्य (मिशन) करने के लिये इतिहास में उतरा था । इसी 'मिशन' से प्रेरित प्रायः सभी राजपूतवंशों का उदय हुआ कि शत्रु का प्रतिहरण किया जाय । चिन्तकों ने राष्ट्र रक्षकों को सचेत किया तथा तामसी भावना को मिटाने के लिये प्रबोध चन्द्रोदय हुए । परन्तु विलास में ही यह कौमुदी महोत्सव विलीन हो गया । इस रजनी-पराभव का प्रारम्भ पृथ्वीराज के सूर्यास्त से होता है ।

राजपूत पराभव और इसके कारणों का विवेचन हमने कई स्थानों पर और विभिन्न ग्रन्थों में किया है । अस्तु हमने इस युग की अध्ययन सामग्री—साहित्य, अभिलेख और आधुनिक शोध ग्रन्थों—का मन्थन कर इस युग के आत्मस्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है ।

आज राष्ट्र में विघटन और स्वार्थ से परमार्थ पर पर्दा पड़ा है । कांग्रेस—इंडियन नेशनल कांग्रेस—दो वर्गों में बंट गई है । परस्पर संघर्ष है । यदि राजपूतों में संघर्ष था तो आश्चर्य ही क्या ! राजपूतों को बताया गया था—

क्षत्रियाश्चापि भूपालमेकं कृत्वा सुभक्तितः ।

तदादेशात् प्रभुञ्जन्ति महीं न संशयः ॥

क्षत्रिय एक राष्ट्र-पाल को बनायें और उसे बनाकर उसके आदेश को भक्ति के साथ मानें । तभी वे राष्ट्र की शक्तियों का सुख से भोग कर सकते थे ।

परन्तु ऐसा न हुआ और पृथिवी कलि-मारुत (कलह और म्लेच्छ) से पीड़ित रसातल में घुस गयी । क्षत्रियों ने आदिवराह की भांति इस समुद्र में डूबी हुई पृथिवी का उद्धार किया । परन्तु रोग न मिटा और जर्जरित बूढ़ा भारत आततायी के आतंक से कांप गया । उसने अपने को संभाला और आज भी अपने स्वरूप को अक्षुण्ण बनाये रख सका है; यद्यपि दक्षिण योरप, उत्तरी अफ्रीका, पश्चिमी और मध्यएशिया के लोग आँधी आने पर अपने को संभाल न पाये । ६३६ ई० से ११६२ ई० तक का इतिहास उत्तरी भारत का संघर्षमय इतिहास है । आर्यावर्त की मर्यादाएं एक अति उग्र तूफान के सामने खड़ी थीं । वे लड़खड़ाई, संभली और गिरीं । परन्तु आर्यता की रक्षा का प्रयत्न चलता रहा ।

युग परिचय

आर्यावर्त—६०० ई०—१२०० ई० (राजपूत युग)

गुप्त साम्राज्य के ध्वस्त होने पर देश में पुनः विकेन्द्रीकरण प्रारम्भ हो गया और गुप्त साम्राज्य के प्रान्तों पर ही स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये थे । परन्तु इस अराजक दृश्य को मिटा कर प्रभाकरवर्धन और उसके पुत्र हर्षवर्धन ने देश में व्यवस्था और शान्ति की स्थापना की । हर्ष ने अपने प्रभुत्व और प्रताप से उत्तरी भारत में राजनैतिक एकता स्थापित की । परन्तु हर्षवर्धन के व्यक्तित्व और प्रताप के मिटते ही उत्तरी भारत में फिर अराजक शक्तियों का जन्म हो गया । गंगा की घाटी में वस्तुतः कोई ऐसी शक्ति नहीं रह गयी थी जो सभी विच्छेदक शक्तियों का अन्त कर राजनैतिक एकता की स्थापना करने का प्रयत्न करती । हर्षवर्धन के उपरान्त भारत में विभिन्न छोटे-छोटे खण्ड-राज्य हो गये । जितमें कन्नौज, दिल्ली, अजमेर, अन्हिलवाड़ा आदि प्रसिद्ध राज्य केन्द्र थे । इस प्रकार हम देखते हैं कि हर्षवर्धन के बाद देश से साम्राज्य भावना अन्तर्हित हो गई थी और खण्ड-खण्ड होकर प्रतिहार, चन्देल, गहरवार, चाहमान (चौहान), परमार आदि राजपूत राज्य हो गये थे । ये आपस में अपने प्रभाव की वृद्धि के लिए परस्पर लड़ते थे । लड़ाई किसी विशेष आवश्यकतावश न होकर केवल शौर्य-प्रदर्शन मात्र ही मोल ली जाती थी । जब भारत की रक्षिका शक्ति इस प्रकार आपस में ही लड़कर वैमनस्य और विद्वेष की भट्टी में भुन रही थी, देश पर इस्लामी आक्रमण होने लगे थे । सिन्ध में अरब के मुसलमानों का अधिपत्य भी स्थापित हो गया ।

परन्तु भारत की राजनैतिक दशा में परिवर्तन न हुआ। यद्यपि अरब निवासी देश के अन्दर सिन्धु प्रान्त के आगे न बढ़ सके, परन्तु देश के रक्षक राजपूतों ने अपनी गलतियों को न सुधारा और न ही उन्होंने देश के बाहर समीप ही होने वाली राजनैतिक घटनाओं को ही पढ़ने का प्रयत्न किया। देश में शक्ति थी और था साहस भी। राजपूतों में वीरता अपूर्व थी और त्याग था अनुपम। परन्तु वे देश के कल्याण के लिये पारस्परिक कटुता और कलह को न भुला सके। फलतः सिन्धु पर नास्तिक म्लेच्छों (गरुण पुराण) के आक्रमण होने लगे।

७१२ ई० के बाद भारतीय इतिहास में एक नई शक्ति का उदय हुआ। इस्लामी शासन की स्थापना हुई। देश के एक सिरे पर विदेशी और विधर्मी सत्ता का जन्म हुआ। यह सिन्धु में अरबों की प्रभुता ही थी जिसने देश के मन, मस्तिष्क और शरीर में एक हलचल और हुरारत पैदा कर दी। परन्तु राष्ट्र-चिकित्सकों ने देश के व्याधि-मूलक दोषों का निराकरण कर उसे स्वस्थ-सशक्त बनाना अपना पुनीत कर्तव्य समझा। इसीलिये अरब-सत्ता स्थायी न बन सकी। विजेता क्षत्रियों की धर्म-भीरुता और देव-भक्ति के कारण ही वे बच गये। आगे चलकर राख में छिपी हुई चिनगारी के समान ही यह आग संपूर्ण देश के लिये घातक सिद्ध हुई।

अभिलेखों में इसे ताजिकानल (ताजिक + अनल) अर्थात् अरबी आक्रमण की आग कहा गया है, जो सम्पूर्ण देश को पीड़ा पहुँचा रही थी।^१ ताजिकों (अरब-वासियों) ने सिन्धु से अपनी शक्ति और प्रभुता का प्रसार राजपूताना, मालवा और गुजरात-काठियावाड़ तथा वहीं से दक्षिण भारत में भी करने का उग्र प्रयत्न किया। पुनर्केशि राज के नवसारी लेख से ज्ञात होता है कि—
“तातारों की तरल तर वार ने ताम्रपत्र सिन्धु, कच्छेल्ल (कच्छ), सौराष्ट्र, चावोटक (चाप राज्य काठियावाड़ गुजरात), मौर्य (मेवाड़ का मोरी राज्य) तथा गुर्जर आदि राजाओं को जीतकर दक्षिण भारत को भी जीतने की इच्छा से आक्रमण किया।”^२

१—अशेषलोकसंतापकलापदस्ताज्जिकानलः—जयभट चतुर्थ का कवि लेख—
वर्ष ४८६ (कार्पस इन्सक्रिप्शानम इंडेकेरम, vol. IV, पृ० ६६)। यही कथन कई लेखों में दुहराया गया है—कार्पस इ० इ०, IV पृ० १०६, पंक्ति ३१-३२

२—तरलतरतरतरवारिदारितोदितसैन्धवकच्छेल्लसौराष्ट्रचावोटक मौर्यगुर्जरा-
दिराजे निःशेषदक्षिणात्यक्षितिपविजिगीषया दक्षिणापथप्रवेशाभिलाषिणि।
कार्पस इ० इ०, IV, पृ० १४०—१४१

परन्तु उस तातारी तलवार को दक्षिण भारत के द्वार पर ही पुलकेशिन-अवनि जनाश्रय ने रोक कर पीछे खदेड़ दिया। पुराणों में इस घटना को तारकासुर का प्रकोप कह कर राष्ट्र-पीड़ा का वर्णन किया गया है।

उपर्युक्त लेख के उद्धरण से ही सिद्ध होता है कि पश्चिमी भारत, राज-स्थान और मालवा में यह 'अशेषलोकसंतापकलापदः' आग फैल चुकी थी तथा मध्यदेश की ओर, जो अरक्षित सा था, बढ़ रही थी। इसी आपत्ति आंधी से राष्ट्र को बचाने के लिये इतिहास में प्रतिहारों का अवतरण हुआ जैसा कि महाराज भोज के ग्वालियर लेख से स्पष्टतः सिद्ध होता है। इस लेख में प्रतिहार शब्द की इसी अर्थ में व्याख्या की गई है। बताया गया है कि 'निवारण करने वाला अर्थात् पीछे हटाने वाला ही प्रतीहार' (द्वारपाल) राष्ट्र प्रहरी ही था। 'स्वयं' इतिहास साक्षी है कि प्रतिहार वंशीय शासक इन विदेशी आक्रमकों से देश-रक्षा करते रहे। उनकी ही जागरूकता और देश भक्ति के कारण अरब-शासन सफल और स्थायी न बन सका।

परन्तु उसी प्रथित प्रतिहार कुल का शासक अपने ही राज्य और राज-नगर को महमूद गजनवी के भय से अरक्षित छोड़ कर भाग गया। भगोड़ा क्षत्रिय ही क्षुद्रक्षत्रिय या क्षत्रवन्धु और वृषल कहलाया। प्रतिहारों की अवनति होने से चन्देलों की शक्ति बढ़ रही थी। ऐसे पतित प्रतिहार राजा को जो शत्रु का प्रतिहरण न कर सका जीने का अधिकार ही क्या था ! अस्तु चन्देल शासक ने उस भगोड़े राजा का बध करवा दिया।

यह राष्ट्र-रक्षण की भावना ही चन्देल-राजत्व के उत्कर्ष का चन्द्रोदय है। परन्तु कन्नौज तक पहुँचने के पूर्व मुस्लिम आक्रमणों की उग्रता बढ़ती गयी और राष्ट्र-रक्षण शक्ति आपसी युद्धों में क्षीण होती गयी।

अग्नि देव के उदर से ही क्षत्रिय प्रवीर 'परमार' (शत्रुओं, पर, को मारने वाला) उपेन्द्र (देव) आदि अवतरित हुए। मल-बाहुल्य के कारण मालवा उनकी कृपाण और सरस्वती सेवा से पवित्र बन गया। परन्तु वे भी पड़ोसी राजपूत राज्यों से लड़ते रहे।

'चाहमान' भी धनुष लेकर ही अग्नि-वेदी से शत्रुओं—मातंगम्लेच्छों—को नष्ट करने के लिये ही उठा। अर्णोराज और पृथ्वीराज (भारतेश्वर) ने अदम्य उत्साह का परिचय दिया। परन्तु भारतेश्वर विलासिता के फन्दों में

फंस कर गिर पड़ा। उसका पतन ही आर्यावर्त का पराभव और तुरुष्क राज्य की स्थापना थी।

यही आर्यावर्त के उतार-चढ़ाव की कर्ण कथा थी जिसमें एक ओर राजपूत युद्ध भूमि में प्राणों का उत्सर्ग कर स्वर्ग लक्ष्मी का आलिङ्गन कर रहा था, तो दूसरी ओर राजपूत रमणियाँ धधकती आग की लपटों में तप कर अपने खरे होने की—आर्यता—की साक्षी देकर पतियों से स्वर्ग में भेंट करती थीं।

यह रोम हर्षण इतिहास है जिसका आदर्श था—

कि जीवितेन धनमान—विवाजितेन राजपूत इतिहास की यह शौर्य-कथा सतत चलती रही और स्वातन्त्र्य-सूर्य पराधीनता के युग में भी मेघों में छिपी चपला की भांति चमकता रहा। क्या इस शौर्य-कथा का युग निर्माता राजपूत विदेशी था ?

सोचिये ! क्या विदेशी इतनी जल्दी भूमि और इसकी मर्यादाओं से ममत्व जमाकर अपने प्राणों की आहुति दे सकता है ? यह विदेशी-वाद साम्राज्यवाद की दास्यपरंपरा तथा इतिहास की विडंबना है।

इस युग-पथ के महापथिकों—डा० राधाकुमुद मुकर्जी (हर्ष), डा० त्रिपाठी (हिस्ट्री ऑफ कन्नौज), डा० सिनहा (दि डिकलाइन ऑफ मगध), डा० आर० सी० मजूमदार (हिस्ट्री ऑफ बंगाल), डा० मुंशी (ग्लोरी दैट वाज़ गुर्जर देश) डा० बी० यन० पुरी (हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहाराज), डा० आर० के० दीक्षित, डा० यस० के० मित्र, डा० बोस और डा० पांडे (चंदेल इतिहास), डा० गांगुली (परमारवंश) डा० दशरथशर्मा व डा० आर० बी० सिंह (चौहान वंश) डा० ए० के० मजूमदार (चालुक्यों का इतिहास) का अनुसरण करते हुए डा० मजूमदार और पुसल्कर (क्लासिकल एज, एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज और दि स्ट्रगल फॉर इम्पायर), सी० वी० वैद्य (हिन्दू मेडेवेल इंडिया, भाग १-२) और डा० यच० सी० रे (डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, भाग १-२) तथा महामहोपाध्याय मीराशी (कलचुरि वंश) और महामहोपाध्याय ओझा (राजपूताना का इतिहास) प्रभृति पूर्वाचार्यों का आभारी हूँ कि उनके सुधारस से निवृत्ति पा सका।

‘नमो अरहन्तानं नमो सबसिधानं !’

सहयोगियों का भी साथ प्रेरणा का स्रोत रहा है।

अवधविहारी लाल अवस्थी

जनवरी १९७०

प्रथम अध्याय

सातवी शताब्दी में भारत

वलभी

गुप्त वंश की गोधूलि वेला में आदित्य (विक्रमादित्य आदि) अस्ताचल की ओर चलने लगा; अंधेरा भी बढ़ने लगे और फलतः अव्यवस्था की आँधी भी उठने लगी। पुरानी प्रचलित राज्य-व्यवस्था बिगड़ गयी। साम्राज्य की माला भी टूट गयी। मोती बिखर गये। पुराने प्रान्त या प्रदेश ही राज्य बन गये। ऐसा ही एक राज्य पश्चिम में वलभी राज्य (काठियावाड़-सौराष्ट्र) था जहाँ मैत्रकों ने स्वतन्त्र साम्राज्य बनाया। युअनच्वांग नामक चीनी यात्री भी यहां आया था (लगभग, ६२०—४० ई०)। सम्राट ध्रुवसेन हर्षवर्धन का दामाद था। वलभी पर अरबों के आक्रमण हुए थे। कालान्तर में यह राज्य भी मिट गया। परन्तु इस युग में जनता सुखी और राष्ट्र समृद्ध था। वलभी विद्या केन्द्र भी था।

भिनमाल के गुर्जर

अर्बुदारण्य (आबू) में श्रीमाल (भिनमाल) के केन्द्र से गुर्जर देश में क्षत्रिय शासन करते थे। इनकी दूसरी शाखा खम्भात की खाड़ी (भरुकच्छ, भड़ोच) में मही नदी की घाटी (माहेय) में राज्य करती थी। इनके वंशज ही आगे चलकर कन्नौज में जाकर आर्यावर्त के स्वामी बन गये।

कान्यकुब्ज के मौखरी

मौखरी वंश का संस्थापक मुखर ही था, जो मुख नामक जाति का आदि पुरुष था (देखिये, मेरा प्राचीन भारत का इतिहास)। “हरहा लेख के अनुसार राजा अश्वपति ने वैवस्वत यम से जो एक सौ पुत्र पाये थे उन्हीं से मौखरियों की उत्पत्ति हुई” :—

सुतशतं लेभे नृपोऽश्वपतिर्वैवस्वताद्यद्गुणोदितम् ।

तत्प्रसूता दुरितवृत्तरुध्रोमुखराः क्षितीशा क्षतारयः ॥

ईशानवर्मा का हरहा लेख, श्लोक ३

परन्तु कुछ लोग अब भी वैवस्वत का अर्थ वैवस्वत मनु लेते हैं। परन्तु जैसा डा० रायचौधरी ने बताया था^१ और डा० दशरथ शर्मा ने पुनः बताया कि हरहा लेख की ऊपर की पंक्तियों में उल्लिखित वैवस्वत यम को ही

बताता है, न कि मनु वैवस्वत को। शर्मा जी ने डा० रायचौधरी के विचार को ही पुनः उद्धृत करते हुए कहा है^१ कि “यहां उन सौ पुत्रों का उल्लेख है जिनको अश्वपति ने यम से सावित्री को दिये गये वरदान से प्राप्त किया था। यह आश्चर्य है कि अब भी कुछ लोग मौखरी अभिलेख के वैवस्वत की पहचान मनु^२ से करते हैं।” यहां मतभेद के लिये कोई गुंजायश नहीं है। यह सत्य है कि मनु का नाम वैवस्वत भी था परन्तु उनका अश्वपति अथवा उसके १०० पुत्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है इसलिये हरहा लेख के आधार पर “मौखरियों के आदि पुरुष अश्वपति को वैवस्वत मनु से सम्बन्धित करना^३ ठीक नहीं है।

हरहा लेख के लेखक ने इसी श्लोक में मौखरियों के मूल वंशोत्पत्ति का इतिहास बताया है जो निर्विवाद सत्य है। मत्स्य पुराण के सावित्री उपाख्यान में बताया गया है कि सत्यवान् वन में मृत्यु को प्राप्त हो गये। पतिव्रता सावित्री यम के पीछे-पीछे चल दी, जो सत्यवान् के प्राण को लिये जा रहे थे। यमराज ने उससे लौट जाने को कहा, सती सावित्री वापस न लौटी। यमराज ने उसको निम्नलिखित वरदान दिये—

१—सावित्री के श्वसुर आँखें तथा राज्य प्राप्त करें।^४

२—सावित्री ने यमराज से कहा—“हे प्रभो ! मैं अपने सहोदर भाई होने की इच्छा करती हूँ। बिना किसी पुत्र के दुखी मेरे पिता (अश्वपति) शत-पुत्र-लाभ से प्रसन्न हों” :—

सहोदराणां भ्रातृणां कामयामि शतं विभो।

अनपत्यः पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे ॥

मत्स्य पु०, २१०/१३

यम राज ने कहा—कृतेन कामेन निवर्तं भद्रे। भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्। भद्रे ! लौट जा; तेरी सभी प्रार्थनाएं सफल होंगी। मत्स्य, पु० २१०/२८

३—सावित्री ने यमराज से कहा—“विवस्वान भगवान् सूर्य के तुम प्रथम पुत्र, हो अतः सभी लोकों में लोग तुम्हें वैवस्वत नाम से पुकारते हैं।”

१—जर्नल नुमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इण्डिया, जिल्द २७, १६६५, पृ० १०३

२—वही, जिल्द २६, १६६४, पृ० ४४—४५

३—डा० विमल चन्द्र पाण्डेय, प्राचीन भारत का इतिहास, (द्वितीय खण्ड) पृ० १३

४—मत्स्य पु०, (जीवानंद संस्करण) २०६/२३—२४

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रथमं परिकीर्तितः ।

तस्माद् वैवस्वतो नाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यते ॥

मत्स्य पु०, २१२/७

अतः निस्संदेह हरहा लेख की इस पंक्ति—सुतशतं लेभे नृपोऽवपति-
वैवस्वताद् यद्गुणोदितम्—में वैवस्वत, यमराज का ही बोधक है । सावित्री ने
अपने लिये भी सौ पुत्रों का वरदान मांगा । (मत्स्य पु०, २११/२७)

सावित्री से प्रसन्न होकर वैवस्वत ने कहाः—“तुम्हारी इस स्तुति से मैं
प्रसन्न होकर तुम्हारे पति सत्यवान को छोड़ देता हूँ ।…………तुम्हारे संयोग
से सत्यवान को सौ पुत्र उत्पन्न होंगे । वे सब के सब देवताओं के समान तेजस्वी
क्षत्रिय राजा होंगे । चिर काल तक जीवित रहने वाले तुम्हारे ही नाम से
प्रसिद्ध होकर मुख्या कहलायेंगे । तुम्हारे पिता को भी तुम्हारी माता के संयोग
से सौ पुत्र उत्पन्न होंगे और वे भी मालवी में उत्पन्न होने के कारण मालव
लोग कहलायेंगे जो चिरकाल तक क्षत्रियोचित गुणों से युक्त ऐश्वर्य और सुख
का भोग करेंगे—

त्वयि पुत्रशतञ्चापि सत्यवान् जनयिष्यति ।

ते चापि सर्वे राजानः क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ॥

मुख्यास्त्वनाम पुत्राख्या भविष्यन्ति हि शाश्वताः ।

पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ॥

मालव्यां मालवा नाम शाश्वताः पुत्रपौत्रिणः ।

भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ॥

मत्स्य पु०, २१२/१३-१५

ऊपर, यहां, दो बातें बतायी गयी हैंः—

१—सावित्री के सौ पुत्र जन्म लेकर माता के नाम पर मुख्या (मुखरा)
कहलायेंगे; और

२—सावित्री के सौ भाई भी माता के (मालवी) नाम पर मालवा
कहलायेंगे ।^१

अतः स्पष्ट है कि हरहा लेख की निम्नांकित पंक्तियों में भी ये ही दो
बातें बतायी गयी हैं—

१—यही वृत्तान्त महाभारत (गीताप्रेस) वनपर्व (अ० २६७) में मिलता है ।

(१) सुतशतं लेभे नृपोश्चपतिर्वैवस्वताद्यद्गुणोदितम् ।

(२) तत्प्रसूता दुरितवृत्तिरुधो मुखराः क्षितीशाः क्षतारयः ॥

एपिग्रेफिका इण्डिका, १४, पृ० ११५ श्लोक ३

(१) पहली पंक्ति में बताया गया है कि मद्रराज अश्वपति ने (मालवी में मालव नामक) १०० गुण युक्त पुत्रों को उत्पन्न किया—

भ्रातृणां सोदराणां च तथैवास्याभवच्छतम् ।

मद्राधिपस्याश्वपतेर्मालव्यां सुमहद् बलम् ॥^१

इस प्रकार मद्राधिपति अश्वपति की संतानें ही मालव (मालवाः) कहलाई न कि मुखर (या मौखरी), जैसा आज सभी विद्वान मानते हैं। मत्स्य पुराण और महाभारत पढ़ने के बावजूद पायर्स ने ऐसा मत चलाया।^२

२—दूसरी पंक्ति में बताया गया है कि उसने उत्पन्न मुखर लोग (तत्प्रसूता मुखराः) क्षत्रिय राजा थे (क्षितीशाः क्षतारयः) । 'तत्प्रसूता'—उससे उत्पन्न—को अश्वपति या उनके सौपुत्रों से उत्पन्न नहीं माना जा सकता जैसा महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने अभिलेख के अनुवाद में बताया और अन्य विद्वानों ने भी ऐसा ही मान लिया। जैसा ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है कि अश्वपति के वंशज मालव थे न कि मौखरि। 'तत्प्रसूता' का अर्थ है 'सावित्रीप्रसूता मुखराः क्षितीशाः' सावित्री से उत्पन्न मुखर सम्राट। महाभारत बताता है कि—

ततः कालेन महता सावित्र्याः कीर्तिवर्धनम् ।

तद् वै पुत्रशतं जज्ञे शूराणामनिर्वर्तिनम् ॥

भ्रातृणां सोदराणां च तथैवास्याभवच्छतम् ।

मद्राधिपस्याश्वपतेर्मालव्यां सुमहद् बलम् ॥^३

इस प्रकार हरहा लेख के श्लोक ३ (ऊपर उद्धृत) में मालवों और मौखरियों का उदय बताया गया है जो मत्स्य पुराण पर आधारित है। मत्स्य पु० के 'मुखरा' 'पाठ' को ही उसकी नकल करने वाले पंडित ने मुख्या (मुखरा) समझकर ग्रहण किया। वह मुखर या 'मुखा' का यहां पर महत्व न समझ सका। मत्स्य पुराण की जनपद तालिका में 'मुखाः' (मूका, ११३/३६) का उल्लेख किया गया है।

१—वन पर्व, २६८/१३

२—पायर्स, दि मौखरीज, पृ० १३

३—वनपर्व, २६६/१२-१३

इस प्रकार मालवों और मुखरों में घनिष्ठ सम्बन्ध था और इन सम्बन्धों को जोड़ने वाली सावित्री थी जिसने अपने मातृपक्ष और पतिपक्ष को इतिहास में अमर बना दिया। मालव माता के पक्ष से उसके सहोदर भाई थे और मुखर पति-पक्ष से उसकी संतान थी। मद्र (पंजाब) में अश्वपति राजा था और शाल्व (अलवर प्रान्त) में सावित्री का पति सत्यवान शासक था।

“काशिका में उद्धृत एक प्राचीन श्लोक के अनुसार साल्वावयव राजतंत्र के अंतर्गत छः रजवाड़े थे—(१) उदुंबर, (२) तिलखल, (३) मद्रकार, (४) युगंधर, (६) शरदंड ।.....१” डा० अग्रवाल कहते हैं कि “सावित्री-पुत्र नामका छोटा संघ सावित्री-सत्यवान के पुत्रशतों से अपना उद्गम मानता था। महाभारत में इसका परिचय आया है। (आरण्यक पर्व २६७/५८; कर्णपर्व ५/४६)। इसकी भौगोलिक स्थिति पंजाब में उशीनरों के पड़ोस में झंग मधियाना प्रदेश में रही।”^२ मालव, मद्रक, यौधेय, उशीनर और सावित्री-पुत्रक प्रसिद्ध गण राज्य थे।^३ सावित्रीपुत्रका ही मौखरी थे। प्रभाकरवर्धन और हर्षवर्धन के समय ये कन्नौज में राज्य कर रहे थे।^४ अवन्तिवर्मन एक प्रतापी राजा था जिसके पुत्र ग्रहवर्मन को हर्ष की बहन राज्यश्री व्याही गयी। अतः मौखरी और पुष्यभूति वंशों में मित्रता हो गयी।^५

मालवा

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में मालवों, आर्जुनायनों, यौधेयों और माद्रकों का उल्लेख मिलता है। गुप्त वंश के पूर्व प्रचलित मालवों, आर्जुनायनों और यौधेयों के सिक्के जय घोष करते हैं—मालवानां जयः, यौधेयानां जयः, आर्जुनायनानां जयः। ये जातियाँ समुद्रगुप्त के साम्राज्य की सीमा पर स्थित थीं। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने मालवा को जीत कर गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। बुधगुप्त के बाद मालवा हूणों के अधिकार में चला गया। यशोधर्मन् ने हूणों को पराजित किया। वह मालवा का प्रतापी शासक था। बाण के हर्ष चरित में ‘मालवराजसूनों (उच्छ्वास २, पृ० १२३) और फिर आगे (३०४, पृ० १७४) प्रभाकरवर्धन को ‘मालवलक्ष्मीलतापरशुः’ (मालव-शक्ति को नष्ट

१—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७२

२—वही, पृ० ४६०

३—कर्णपर्व ५/४७-४८

४—देखिये, अवस्थी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ३०७-३१५.

५—वही, पृ० ३१५

करने वाला) कहा गया है । इससे मालव राजवंश के अस्तित्व का पता चलता है ।

मालवराज के पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के साथी थे (मालवराजपुत्री भ्रातरौ भुजाविव मे शरीरादव्यतिरिक्तौ कुमार-गुप्तमाधवगुप्तनामानौ अस्माभिर्भवतोरनुचरत्वार्थमिमौ निर्दिष्टौ)^१ । इसी माधवगुप्त को अफसड़ लेख में हर्ष की मित्रता का इच्छुक (श्रीहर्षदेवनिज-संगमवांछया च) कहा गया है । यह माधव गुप्त महासेनगुप्त का पुत्र था । अतः स्पष्ट है कि महासेनगुप्त को ही हर्षचरित में मालवराज भी कहा गया है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि मालवा में उत्तर कालीन गुप्त वंश का राज्य था और यह प्रसिद्ध राज्य था जिसने तत्कालीन राजनीति में प्रमुख भाग लिया । मालवराज द्वारा ग्रहवर्मन् की हत्या की गई थी ।^२ संभवतः यह मालवराज देवगुप्त था । राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद ही गुप्त नामक राजा ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया (देव भूयंगते देवे राज्यवर्धने गुप्तनाम्ना च गृहीते कुशस्थले) ।^३

गुप्तचक्रवाग ने भी मालवा (मो-ला-पो) का उल्लेख एक प्रसिद्ध राज्य के रूप में किया है । यह निवासियों की शिष्टता, विद्वानों और विद्या तथा भाषा के दृष्टिकोण से मगध के साथ होड़ करता था ।

सिन्ध राज्य

यह मानना उचित नहीं है कि सिंध भारतीय इतिहास के प्रमुख प्रवाह से पृथक था । सिंध के निचले भाग में शूद्र (सोड्ई) और आभीर बसे थे । आभीरों का उल्लेख समुद्रगुप्त के प्रयाग लेख में सीमान्त राज्य के रूप में हुआ है । रुद्रदामन प्रथम के साम्राज्य में 'मरु-कच्छ-सिन्धु-सौवीर' सम्मिलित थे । पश्चिमी भारत का यह क्षेत्र राजनीति का मुख्य केन्द्र रहा है । इस क्षेत्र में विदेशियों—शक-यवन-पल्हव—की बस्तियाँ बढ़ती गयी । रघुवंश भी पाश्चात्य देश में यवनों और पारसीकों को रखता है (रघुवंश ४/६०—६१) । यशोवर्मन ने भी इसी क्षेत्र में स्थित पारसीकों को पराजित किया था । योग वसिष्ठ में भी पारसीकों और ताजिकों का उल्लेख मिलता है । पुराणों में पश्चिम देश

१—हर्षचरित, उ० ४, पृ० १६६

२—वही, उ० ६, पृ० २५०

३—वही, उ० ७, पृ० ३०२

४—ह्वेन सांग इन इण्डिया, पृ० २६

में यवन (पश्चिमे यवनास्तथा) ^१ स्थित बताये गये हैं। कूर्मपुराण में तारक को यवनों का नेता बताया गया है (यवनाद्यैश्च तारकाद्यैश्च) ^२। कालिदास ने तारकासुर के बध के लिये ही कुमार (स्कन्द) जन्म की पुण्य-कथा का वर्णन किया है। मत्स्य, पद्म और स्कन्द पुराणों में तारकासुर के उत्पातों का वर्णन है। स्कन्द पुराण खम्भात (स्तम्भ तीर्थ) के निकट कच्छ, गुजरात और काठियावाड़ में म्लेच्छ-यवनों का उल्लेख करता है जो सिन्ध में जम गये थे (सैन्धवाम्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा) ^३।

प्रभाकरवर्धन (सिन्धुराज-ज्वरः) ने सिन्ध को जीता था। परन्तु यहाँ का कौन राजा था, ज्ञात नहीं है। युअनच्वांग के समय सिन्ध का राजा शूद्र था। देश सम्पन्न था। वहाँ का राजा (शूद्र) बौद्ध धर्मावलम्बी था। चच नामा (सिन्ध का इतिहास) ^४ के अनुसार बौद्ध राजा चच का भाई चन्द्र था। चच ने बलपूर्वक लगभग ५६७ ई० में गद्दी पर अधिकार कर लिया।

स्मिथ के अनुसार शूद्र जाति का बौद्ध राजा निश्चयतः दीवजी का पुत्र सिहरस राय रहा होगा (स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ३६६)। सिहरस राय के पश्चात् उसका पुत्र साहसी उत्तराधिकारी हुआ। साहसी की मृत्यु के बाद लगभग ६४६ ई० में उसके ब्राह्मण मंत्री चच ने सिंहासन पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। उसके बाद ही दाहिर राजा हुआ जिसे हरा कर ७१२ ई० में मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध में अरब सत्ता जमायी। इस प्रकार चचनामा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जब सिन्ध में बौद्धों और ब्राह्मणों में विरोध और शत्रुता चल रही थी, राजा चच ब्राह्मण था। “जिस समय मुसलमान लोग सिन्ध की सीमा पर थे, उस समय देश में इन दोनों धर्मों में भारी लड़ाई हो रही थी और बौद्ध लोग ब्राह्मणों का सामना करने में अपने आपको को असमर्थ देखकर मुसलमानों की ओर मेल और प्रेम का हाथ बढ़ा रहे थे।” ^५ नास्तिक म्लेच्छ यवनों की सिन्ध विजय देवल

१—मार्कण्डेय पुराण, ५७/८ (१)

२—कूर्म पुराण, १/४३/२१

३—गरुड़ पुराण, १/५५/१५ (१)

४—चचनामा छठी शताब्दी में लिखा गया अरबी भाषा का प्रसिद्ध ग्रंथ है जो सिन्ध के इतिहास का महत्व पूर्ण साधन है।

५—अरब और भारत के सम्बन्ध, पृ० १६

स्मृति में भी ध्वनित होती है, जहाँ स्त्री-अपहरण और बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन का प्राबल्य था :—

सिन्धुतीरे सुखासीनं देवलं मुनिसत्तमम् ।
 समेत्य मुनयः सर्वे इदं वचनमब्रुवन् ॥
 भगवन्म्लेच्छनीता हि कथं शुद्धिमवाप्नुयुः ।
 बलाद्दासीकृता ये च म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः ।
 स्त्रीणां म्लेच्छैश्च नीतानां बलात्संवेशने क्वचित् ।

सिन्धु-सागर-संगम पवित्र तीर्थ था जहाँ देवल का आश्रम ही देवलनगर से प्रसिद्ध हुआ ।

काश्मीर

गुप्त साम्राज्य के अवतति काल में बालादित्य से पराजित होकर मिहिर-कुल नामक हूण ने काश्मीर में आश्रय लिया था । वहाँ के राजा को मारकर हूण नेता ने काश्मीर पर अपना अधिकार जमाया । युअनच्चांग के समय यहाँ शाही राजा राज्य करता था । संभवतः ये कुषाण ही थे जो इस समय हिन्दू बन गये थे ।

चीनी यात्री ने काश्मीर के राजा का वर्णन नहीं किया है । इस समय यहाँ करकोटक वंश का राजा दुर्लभवर्धन राज्य करता था जिसकी पहचान सिक्कों के दुर्लभदेव से की गयी है । युअनच्चांग के अनुसार काश्मीर का विस्तृत राज्य था जिसमें पड़ोस के पहाड़ी प्रान्त और मैदान भी सम्मिलित थे । इसमें सिंहपुर, उरस (हजारा), पूँछ और राजपुरी (रजौरी) सम्मिलित थे ।

नैपाल

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में इसे प्रत्यन्त राज्य कहा गया है । डा० बसाक के अनुसार ईसा की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में नैपाल दो भागों में विभक्त था जिनमें क्रमशः लिच्छवि और ठाकुरी वंश का शासन था और सातवीं शताब्दी के मध्य तक उनका राज्य रहा । युअनच्चांग के अनुसार नेपाली लिच्छवि विद्वान और बौद्ध थे ।^१ ६३७-३८ ई० के एक अभिलेख में शिवदेव (गुप्त) का उल्लेख मिलता है जिनको भट्टारक महाराज लिच्छवि-कुलकेतु कहा गया है ।^२

१—बसाक, हिस्ट्री आफ नार्थ ईस्टर्न इण्डिया, पृ० २४०

२—वही पृ० २४०

कामरूप

समुद्रगुप्त के प्रयाग अभिलेख में कामरूप का प्रत्यन्त राज्य के रूप में उल्लेख हुआ है। रघुवंश में भी कामरूप और प्राग्ज्योतिष (गौहाटी) का उल्लेख मिलता है जिसे रघु ने अपनी दिग्विजय में जीता था^१। हर्षवर्धन के समय यहां का राजा भास्करवर्मन था। वह कुशल शासक और दक्ष राजा था जिसने गौडशासक शशांक की बढ़ती हुई शक्ति को देख कर हर्ष से मित्रता कर ली थी।

गौड राज्य

गुप्त साम्राज्य में पूर्वी बंगाल (बंग), समतट, डवाक और उत्तरी बंगाल (पुण्ड्रवर्धन भुक्ति) सम्मिलित थे। परन्तु गुप्त साम्राज्य के टूटते ही इस क्षेत्र की दशा बिगड़ गई। यशोधर्मन् ने भी दिग्विजय में इसे जीता। परन्तु यशोधर्मन् के साम्राज्य के पतन होने पर मौखरियों, गुप्तों, और पुष्यभूति वंश की भांति ही गौड राज्य की भी स्थापना हुई। शशांक अपना राज्य स्थापित कर 'एकवीर' (महा पराक्रमी) रूप में प्रसिद्ध हो गया जिसका साम्राज्य गंगा की घाटी में वाराणसी तक फैला था:—

सोमाख्योऽपि ततो राजा एकवीरो भविष्यति ।

गंगातीरपर्यन्तं वाराणस्यामतः परम् ॥^२

इस लिये मध्यदेश की शक्तिशाली मौखरियों और उनके मित्र-वर्धनों से शशांक को संघर्ष करना पड़ा।

श्रीकण्ठ-राज्य

श्रीकण्ठदेशं विख्यातं

सम्भवतः बृहत्संहिता में उल्लिखित सारस्वत देश, (जो मध्यदेश में स्थित था, बृ० सं० १४/२, १६/२२) और श्रीकण्ठ देश एक ही थे। सम्पूर्ण सम्पदा युक्त श्रीकण्ठ देश प्रसिद्ध और पुण्यतम देश था जहां सरस्वती नदी बहती थी। यहां से बहकर वह नदी कुरुक्षेत्र पहुंचती थी (स्कन्द पुराण, ७/१/३५/३१-३२)। मंजुश्री मूलकल्प के अनुसार स्थानीश्वर (थानेश्वर, कर्नाल प्रान्त) के निवासी आदित्य नामधारी वैश्यों ने एक राज्य स्थापित किया था जिस वंश का अन्तिम

१—रघुवंश, ४/८१-८३

२—मंजुश्री मूलकल्प, तृतीय भाग, प्र० ६३४/६-७

राजा हर्ष सार्वभौम सम्राट् हुआ:—

सप्तमष्टशता त्रीणि श्रीकण्ठावासिनस्तदा ।
आदित्यनामा वैश्यास्तु स्थानमीश्वरवासिनः ॥
भविष्यति न सन्देहो अन्ते सर्वत्रभूपतिः ।
हकाराख्यो नामतः प्रोक्तो सार्वभूमिनराधिपः ॥^१

इस प्रकार सुशासित श्रीकण्ठ देश सभी आशाओं को पूर्ण करने वाला था (पूरिताशः श्रीकण्ठो नाम जनपदः)^२ । यह पूर्वी पंजाब का राज्य था ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि “छठीं शती के प्रारम्भ में, जब कि हूण आक्रमण से गुप्त-साम्राज्य का पश्चिमी भाग छिन्न-भिन्न हो रहा था, पूर्वी पंजाब में पुष्यभूतिवंश का उदय हुआ । उत्तरी भारत में जितने राजवंश स्थापित हुए उनमें यही वंश कुछ समय के लिये विकेन्द्रीकरण की शक्तियों को रोक कर उत्तर-भारत में एक साम्राज्य बनाने में समर्थ हुआ ।”^३ परन्तु इस साम्राज्य की स्थापना के पूर्व उत्तरी भारत में पक्ष-नीति (दलबन्दी) का प्राबल्य था और इसी कारण इन दलों में नीति के दांव-पेंच और युद्ध हो रहे थे ।

“छठी शताब्दी के पूर्वार्ध में गुप्त-साम्राज्य की दुर्बलता के कारण कामरूप के राजा स्वतन्त्र हो गये जैसा कि उनके अश्वमेधयज्ञ करने से सिद्ध होता है । इन तथ्यों से सिद्ध होता है कि कामरूप के राजाओं और गुप्त वंश के अन्तिम राजाओं में संघर्ष हुए । ये संघर्ष आगे भी बंगाल में गुप्त साम्राज्य के उत्तराधिकारी गौड़ों और कामरूप के शासकों के बीच चलते रहे । इनके अतिरिक्त, छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में तीन अन्य शक्तिशाली राज्य थे जो गुप्त साम्राज्य के भग्नावशेषों पर स्थापित हुए । ये राज्य थे—

१—गौड़ राज्य जिसमें बंगाल और बिहार सम्मिलित थे,

२—मौखरी राज्य जिसमें बिहार और उत्तर प्रदेश सम्मिलित था, और

३—मालवा (पूर्वमालवा) के उत्तर गुप्त राजा । ऐसे प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि गौड़ शासक अपने राज्य की पश्चिमी सीमा पर स्थित मौखरियों के शत्रु थे और मौखरी राज्य के उस ओर (पश्चिमी सीमा पर) स्थित मालवा के उत्तर गुप्तों के मित्र थे^४ । इस प्रकार सातवीं शताब्दी के

१—मंजुश्रीमूल कल्प, तृतीय भाग, पृ० ६२६/१७-२०

२—हर्षचरित, उ० ३, पृ० १४५

३—डा० राजबली पांडे, प्राचीन भारत, पृ० ३०४

४—इंडियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली, सितम्बर १९५०, जिल्द २६, संख्या ३, पृ० २४१

प्रारम्भ में ये चार प्रमुख राज्य—उत्तर गुप्त, मौखरि, पुष्यभूति वंश और शशांक दो दलों में बंट गये—गौड और उत्तर-गुप्त तथा मौखरि और पुष्यभूति वंश ।

मौखरि राजा ग्रहवर्मन् गौडों और उत्तर-गुप्तों के सम्मिलित आक्रमण से मार दिया गया । पुष्यभूति वंश का राज्यवर्धन भी उत्तर गुप्त शासक देवगुप्त द्वारा मार डाला गया । फलतः मौखरियों और पुष्यभूति वंश की रक्षा का भार केवल हर्ष के कन्धों पर आ पड़ा । बढ़ती हुई गौड शक्ति से घबड़ा कर कामरूप ने भी हर्ष से मित्रता करली और हर्ष को भी मित्र-शक्ति की आवश्यकता थी ।

कलिंग (उत्कल-ओड्रा=उड़ीसा)

कलिंग, उत्कल या ओड्रा (=उड़ीसा) अत्यन्त प्राचीन राज्य है । रामायण, महाभारत और पुराणों में इसकी महत्वपूर्ण स्थिति का वर्णन मिलता है । अशोक द्वारा कलिंग विजय से ज्ञात होता है कि इसकी सैनिक शक्ति कितनी महान् थी । खारवेल की दिग्विजय से भी कलिंग-शक्ति का परिचय मिलता है । समुद्रगुप्त ने भी दक्षिणापथ विजय में इस क्षेत्र की विजय की थी । ईसा की छठी शताब्दी के अन्त में यहाँ शैलोद्भव वंश का राज्य था जिस वंश में सैन्य-भीत उपनाम माधवराज प्रथम, अयशोभीत प्रथम तथा सैन्यभीत उपनाम माधवराज द्वितीय शासक थे । गंजाम लेख, (गुप्त संवत् ३००=६१६-२०ई०) में अयशोभीत—माधवराज द्वितीय का उल्लेख मिलता है । वह महाराजाधिराज शशांक का एक सामन्त था जो कोंगद देश पर राज्य करता था । शशांक के बाद कलिंग देश पर हर्ष का अधिकार हो गया ।

कलचुरि वंश

जबलपुर (मध्य प्रदेश) के निकट कलचुरि वंश के राजा राज्य करते थे, जिनको हैहयवंशी भी कहा गया है । छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में ये लोग शक्तिशाली हो गये थे । “सन् ५५० से ६२० तक अर्थात् करीब पौन सौ वर्षों की अवधि में कलचुरि नरेश गुजरात, कोंकण और विदर्भ सहित महाराष्ट्र प्रदेश के स्वामी रहे । पर इसके उपरान्त यह प्रदेश उनके अधिकार में कभी नहीं रहा ।”^१

“ईसा पश्चात सातवीं शताब्दी के अन्त में कलचुरि वंशी वामराज देव नामक एक महत्वाकांक्षी राजा का प्रादुर्भाव हुआ । २...वामराजदेव का राज्य उत्तर में गोमती नदी से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक फैला था ।” वह कलचुरि राज्य का संस्थापक था ।

माहिष्मती के कलचुरियों में कृष्णराज (ई० स० ५५०-५७५), शंकरगण (ई० स० ५७५-६००) और बुद्धराज (ई० स० ६००-६२०) इस युग के शासक थे।

दक्षिण भारत

भारतवर्ष के दो प्रमुख विभाग रहे हैं—उत्तरापथ या आर्यावर्त और दक्षिणापथ इन दोनों भूखंडों के इतिहास में इसकी क्षेत्रीय विशिष्टताएं परिलक्षित होती हैं। समुद्रगुप्त ने इन दोनों भागों में विजय प्राप्त की थी। उसके बाद किसी भी गुप्त सम्राट को दक्षिण की ओर ध्यान देने का अवकाश नहीं मिला। हर्ष ने दक्षिण को जीतने का प्रयत्न किया; परन्तु वह पुलकेशिन द्वितीय से पराजित हुआ। पुलकेशिन द्वितीय ने सकल उत्तरापथ-पथेश्वर हर्ष को पराजित कर 'अपर परमेश्वर' (दक्षिण का परमेश्वर) बनने का प्रयास किया। इसीलिये उसे पल्लवों के साथ संघर्ष करना पड़ा।

जिस समय हर्ष गद्दी पर बैठा दक्षिण में नर्मदा के उस पार चालुक्य वंश उठ रहा था और उठती हुई इस राजशक्ति से हर्ष की टक्कर हुई। वस्तुतः ईसा की छठी शताब्दी से आगे तीन सौ वर्ष तक दक्षिण भारत का इतिहास तीन राजशक्तियों के परस्पर संघर्ष का इतिहास है जो अपने पड़ोसियों को दबा कर राज्य विस्तार करना चाहती थीं। ये तीन शक्तियाँ बादामी के चालुक्य, काञ्ची के पल्लव और मदुरा के पाण्ड्य थीं। ये सभी राज-सत्ताएं ईसा की छठी शताब्दी में ही ऊपर उठीं। परन्तु चालुक्य अन्य शक्तियों के लगभग १०० वर्ष पहले ही मैदान छोड़कर अलग हट गये और उनके स्थान पर आठवीं शती के मध्य में राष्ट्रकूटों का उदय हुआ, जिनकी राजधानी मान्यखेट (मालखेड) थी।^१ इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में भी परस्पर चालुक्यों, पल्लवों और पाण्ड्यों में प्रभुता के लिये संघर्ष हो रहे थे। इसी समय अरब आक्रमण कारियों ने ६३६ ई० में थाना (महाराष्ट्र) पर आक्रमण किया। परन्तु अरब-आक्रान्ता सफल न हुए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत में कलि प्रवृत्ति (कलह) की वृद्धि हुई जिससे देश में कलियुग—आपत्ति और अंधकार—छा गया। मौखरियों ने मध्यदेश में इसे मिटा कर श्रुति-पथ स्थापित करने का प्रयत्न किया। वे अन्त में असफल हुए और उनके स्थान पर हर्ष का साम्राज्य स्थापित हुआ। हर्ष के राज्य काल में बौद्धों को प्रधानता मिली और ब्राह्मणों को राज-कोप। इससे असन्तोष बढ़ा। कान्यकुब्ज ब्राह्मण संस्कृति

का मुख्य केन्द्र था^१ जिसे बौद्ध केन्द्र बनाने के प्रयत्न में हर्ष का प्रबल विरोध हुआ और जिसके कारण ५०० ब्राह्मण निर्वासित कर दिये गये थे ।^२

कलि-तिमिर

कलह और दलबन्दी

जब तक महाराज स्कन्दगुप्त शासन करते रहे सारी प्रजा धर्मिष्ठ बनी रही । सम्पूर्ण प्रजा में कोई भी ऐसा व्यक्ति न था जो धर्म से रहित था । (इसीलिये) प्रजा में न तो दुःख ही था, न दारिद्र्य ही, न कोई व्यसनी था, न कोई कदर्य, न कोई दण्डित ही था और न कोई पीडित ही :

तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चित् धर्मादपेतो मनुजः प्रजासु ।

आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्ड न वा यो भृश पीडितः स्यात् ॥^३

ऊपर दो बातें कही गई हैं :—

१—प्रजा का धार्मिक होना; और इसी कारण

२—प्रजा का दुःख से हीन होकर सुखी होना ।

इससे ज्ञात होता है कि प्रजा के सुख का कारण उसका धर्माचरण और इसका उत्तरदायित्व राजा^४ पर था । राजा ही युग निर्माता था; चाहे वह अपने युग को सतयुग (धर्म और सुख का युग) बना दे, चाहे वह उसे कलियुग (अधर्म और आपत्ति का युग) बना दे^५ । धर्म-वृत्तान्त कृत-युग का लक्षण है^६ । रामायण, महाभारत और पुराणों में इसीलिये राज धर्म का गुण गान गाया गया है ।

परन्तु स्कन्दगुप्त की मृत्यु के बाद ही कलियुग भी प्रारम्भ हो गया, जिसकी विशिष्टता कलि (परस्पर संघर्ष, वैर) और कलि (स्लेच्छ) का भारतीय जीवन में अवतरण ही है । हूण, जिन्हें स्लेच्छ कहा गया है, प्रबल होते गये । साथ ही राष्ट्र विघटन और पक्षनीति (दलबन्दी) का प्राबल्य भी होता गया । इससे देश की एकता टूटती गई ।

१—डा० मुकर्जी, हर्ष, पृ० १२०-१२१

२—वही, पृ० ७६

देखिये, अवस्थी, राजपूत पालिटी, सेक्शन १, राजपूत इण्डिया, पृ० १-१४

३—स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ शिलालेख, श्लोक ६

४—राजतरंगिणी, ४/५५-५६, ३०६

५—शान्ति पर्व, ६६/६५-१०३

६—राजतरंगिणी ४/१०६

भ्रम से आधुनिक विद्वान ऐसा मानते हैं कि पुराणों में गुप्त-युग के बाद किसी राजा या राजवंश का उल्लेख नहीं मिलता है।^१ यह उनका प्रमाद है। गरुड़ पुराण से ज्ञात होता है कि सतयुग के बाद ही क्षत्रियों और ब्राह्मणों में संघर्ष छिड़ गया जिसमें ब्राह्मणों की पराजय हुई। राजा शूर ने, जो विष्णु का अवतार था, उन राक्षस (क्षत्रियों) का बध कर डाला। आगे चल कर राजा भीमरथ ने भी उन क्षत्रियों का दमन किया।^२ परन्तु विष्णुधर्मोत्तर में कुछ और भी बातें मिलती हैं। इससे ज्ञात होता है कि पराजित ब्राह्मण द्विजेश शशाङ्क के पास गये। शशाङ्क या सोम राजा ने उन्हें शूर के पास भेज दिया।^३ यह धर्मात्मा और द्विजेश राजा सोम शशाङ्क ही था, जो हर्ष का प्रबल प्रतिद्वन्दी था। अस्तु इन विवरणों से ज्ञात होता है कि जिस समय हर्ष और शशाङ्क शासन कर रहे थे, उस समय देश में परस्पर कलह फैला हुआ था।

भारतीय इतिहास के अध्ययन में चीनी यात्रियों के वृत्तान्तों से बहुत सहायता मिलती है। इनमें युअनच्वांग का भारत वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अनेक कठिनाइयों को सहने के बाद इस जिज्ञासु भिक्षु ने ६३६-६४५ ई० तक भारत के भिन्न-भिन्न भागों का भ्रमण किया। जो कुछ भी उसने देखा, सुना या, पढ़ा उसने वर्णन किया। मुस्लिम आक्रमणों के पूर्व, जब युअनच्वांग ने भारत-भ्रमण किया था, अभी तक मुख्यतः ब्राह्मण और बौद्ध धर्म की प्रधानता थी। यह बहुत ही धुंधला (अन्धकारमय) युग था, जिस पर युअनच्वांग के प्रत्यक्ष-विवरण अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।^४

उसके विवरण से ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय (ईसा की सातवीं शताब्दी में) ऐसे संस्कृत ग्रन्थ थे, जिनमें देश के इतिहास का भी वर्णन किया गया था। वे ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं होते हैं। जिन ग्रन्थों का युअनच्वांग उल्लेख करते हैं, उनमें पुराण (एन्शेन्ट डिस्क्रिप्शन्स) अवश्य सम्मिलित होंगे। युअनच्वांग कहता है कि प्रत्येक दरबार में कुछ ऐसे राजपुरुष भी रहते थे जिनका तत्कालीन घटनाओं का लिखना भी मुख्य कर्तव्य था। महाभारत

१—डा० आर० सी० हज़रा, स्टडीज़ इन उपपुराणाज, भाग १, पृ० २६, नोट ६६।

२—गरुड़ पु०, १/२१५/७-६

३—विष्णुधर्मोत्तर १/अ० ७४

४—सेंट हिलेरी, ह्वेन सांग इन इण्डिया, पृ० ४६-५०

से ज्ञात होता है कि राजा अपने मन्त्रिमंडल में एक पौराणिक सूत की भी नियुक्ति करता था, जो राजा को विभिन्न राजकार्यों पर मन्त्रणा देता रहता था। यह सूत ही राजवंश के इतिहासकार थे।^१ विष्णुधर्मोत्तर से इस परम्परा के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। इससे यह अवश्य ही सिद्ध होता है कि युअनच्वांग के समय में ऐतिहासिक ग्रन्थ विद्यमान थे, परन्तु वे कालान्तर में लुप्त हो गये।

विष्णुधर्मोत्तर का वर्तमान संस्करण अवश्य ही शशांक के दरबार में पौराणिक सूत द्वारा रचा गया था।

इसी प्रकार संस्कृत बौद्ध ग्रन्थ, आर्यमंजुश्री मूलकल्प, विशेषकर इसका 'पटल ५३' प्राचीन भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि है जिसमें बुद्धोत्तर काल के ऐतिहासिक रत्न सुरक्षित हैं। इस ग्रन्थ से भी हर्ष कालीन राजनैतिक अवस्था का ज्ञान होता है।

यशोधर्मन्, हर्ष, शशांक, मौखरियों और उत्तर-गुप्त-सम्राटों के अभिलेख भी इस युग की प्रवृत्तियों और परम्पराओं का उल्लेख करते हैं। ईशानवर्मन् के हड़हा अभिलेख से भी तत्कालीन देश स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। इससे ज्ञात होता है कि मौखरी राजाओं का जन्म दुराचार को नष्ट कर आचार-विवेक-मार्ग (सदाचार) अथवा कलि के दोषों को नष्ट कर श्रुति पथ (वेद-धर्म) और सतयुग की स्थापना करने के लिये ही हुआ था। इस समय (ई० ५५४ के आसपास) लोक में अन्धकार फैला था (हड़हा, लेख, श्लोक १४)। कलि की प्रबल शंशा (तूफान) से पीड़ित होकर पृथ्वी समुद्र के समुद्रतल में जा पड़ी। पृथ्वी मानों एक टूटी हुई नाव के समान थी, चारों ओर से बांध कर जिसका पुनः उद्धार किया गया (हड़हा लेख, श्लोक १५)। इस प्रकार श्री ईशानवर्मन् ने कलियुग को नष्ट कर सतयुग के अनुरूप सत्पथ की प्रतिष्ठा की (हड़हा लेख, श्लोक १३)। पुराणों में भी इसी कलियुग और उससे पीड़ित देश तथा रक्षक राजाओं का उल्लेख मिलता है। महाराज बुधगुप्त ने हूणों का दमन कर कलि के दोषों को मिटाया था, (देखिये, स्टडीज इन स्कन्द-पुराण, पार्ट वन, पृ० १८३-१८४)। परन्तु न तो हूणों का ही पूर्ण रूप से दमन हो सका न कलि-प्रवृत्ति का ही। सर्ववर्मन की असीर गढ़ की मुहर^२ में चक्रधर

१—बाण के हर्ष चरित से ऐसा ज्ञात होता है कि हर्ष के दरबार में ऐसे लोग थे जिन्होंने हर्ष की प्रज्ञा को जगाने के लिये प्राचीन इतिहास के कुछ राजाओं का विवरण दिया (हर्ष चरित, उ० ६, पृ० २६८-२७१)।

२—का० इ० ६०, जिल्द ३, पृ० २१६-२२०, प्लेट ३०

(सम्राट) वृष (धर्म) का संरक्षण करते हुए दिखाए गए हैं। यहां बीच में वृषेश्वर हैं और उनको आगे चक्रधर विष्णु तथा पीछे शिव जा रहे हैं; कितना अपूर्व चित्रण है—सत्यं शिवं सुन्दरम् ।

प्रभाकर वर्धन को हूणों से भी युद्ध करना पड़ा था और उन्होंने भी अपने प्रताप से अन्य राजाओं को पराजित कर वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना के लिये राज्य-चक्र चलाया जिससे वे प्रजा के दुःखों को दूर करने में समर्थ हुए :—

प्रतापानुरागोपनतान्यराजो वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथ
इव प्रजानामात्तिहर परमादित्यभक्त महाराजाधिराजश्री प्रभाकरवर्द्धनः
(हर्षवर्धन का बांसखेड़ा लेख, पं० २-३) ।

श्री हर्ष देव को भी युद्ध में शत्रु-हाथियों के मस्तक को चीर कर मुक्ता निकालना पड़ा (आदित्य सेन का अफसड़ लेख, श्लोक १८) ।

इस युद्ध और कलह में मुख्य राष्ट्र निर्माण की शक्तियाँ—ब्राह्मण और क्षत्रिय—एक साथ न रहीं। उनमें सहयोग और सौहार्द न रहा। अस्तु क्षीण-युग का प्रारम्भ भी इसी कलि-वृत्ति से हुआ। महाभारत स्पष्ट करता है—

ब्रह्मक्षत्रं हि सर्वेषां वर्णानां मूलमुच्यते ॥

शान्ति पर्व, ७३/५

उभावेतौ नित्यमभिप्रपन्नौ

सम्प्रापतुर्महतीं सम्प्रतिष्ठा

तयोः संधिभिद्यते चेत् पुराण—

स्ततः सर्वं भवति हि सम्प्रभूढम् ॥

वही, ७३/१२

मिथोभेदाद् ब्राह्मणक्षत्रियाणां

प्रजा दुःखं दुःसहं चाविशन्ति ॥

वही, ७३/२८

ब्राह्मण क्षत्रिय को बढ़ाता है और क्षत्रिय से ब्राह्मण की उन्नति होती है। दोनों के सहयोग से राष्ट्र बढ़ता है।

द्वितीय अध्याय

पुण्यभूतिवंश—महोदय

परममाहेश्वर पुण्यभूति

अति प्रसिद्ध श्रीकण्ठ अथवा स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) देश में राज-तेज-पुंज पुण्यभूति नामक पराक्रमी और दक्ष-शासक राजा हुए ।

उनमें लड़कपन से ही बिना किसी के उपदेश द्वारा ही सहज प्राप्त शिवभक्ति थी । सारा संसार ही उनके लिये पशुपति (शिव) मय था । प्रजा भी उनके मनोनुकूल तथा उनसे अनुरक्त थी । मन्त्रीगण उनके पाद सेवक थे तथा महासामन्त उनके पराक्रम से पराभूत होकर उन्हें कर देते और उनकी सेवा करते थे ।^१

वह परममाहेश्वर सम्राट दक्षिण के रहने वाले भैरवाचार्यका शिष्य हो गया । एक दिन वे कई राजपुत्रों के साथ उनसे मिलने सरस्वती-तटवर्ती बन गये । आचार्य ने उन्हें एक सिद्धकृपाण दी । स्वभाव से ही वह वीर-रस प्रेमी था । उसने इस कृपाण से पृथ्वी पर अपना अधिकार स्थापित किया ।^२

इसके बाद पुनः शैवगुरु ने राजा को वैताल सिद्धि का आदेश दिया । राजा भी रात में अकेला तलवार लेकर नगर से बाहर उसी उद्देश्य से साधन-भूमि को गया । यहीं पर पृथ्वी के फटने से श्रीकण्ठ नामक एक नाग, जिसके नाम पर ही वह भूखण्ड श्रीकण्ठ देश कहलाता था, निकल पड़ा और राजा से युद्ध करता हुआ पराभूत हुआ । इसके बाद ही श्री लक्ष्मी जी प्रगट हुई और उन्होंने राजा के पराक्रम से प्रसन्न होकर उसे आर्शीवाद तथा वर दिया, “कि इस वीरकार्य और शिव-भक्ति से ही वे एक महान राजवंश के प्रस्थापक होंगे । तथा इस वंश में पवित्रता, सौन्दर्य, सत्य, त्याग, धैर्य और पराक्रम इसके

१—हर्ष चरित, उच्छवास ३, पृ० १५१

२—नृपञ्च प्रकृत्या वीररसानुरागी तेन कृपाणेनामन्यत् करतलवर्तिनीं मेदिनीम् । ह० च०, ३ उच्छवास, पृ० १६१

मूलाधार थे। इसी वंश में सभी द्वीपों के स्वामी हरिश्चन्द्र के समान हर्ष नामक चक्रवर्ती सम्राट त्रिलोक-विजयी मांधाता का ही अवतार होगा।”^१

बाण के इस कथन से ज्ञात होता है कि श्रीकण्ठ देश में नागों का अधिपत्य था जिसका ही अन्त कर पुण्यभूति ने एक नयी वंश-सत्ता स्थापित की। समुद्र-गुप्त की प्रयाग प्रशस्ति के आधार पर उस क्षेत्र में नागों का राज्य होना असम्भव नहीं कहा जा सकता है। इस कार्य-सिद्धि में पुण्यभूति को उसकी वीरता और शिव-भक्ति ने सहायता दी। स्वयं श्रीकण्ठनाग ने भी उसकी आधीनता स्वीकार कर ली।^२ अस्तु पुण्यभूति का पराक्रम नाग-युद्ध^३ में ही सफल-सिद्ध हुआ।

बाण के अनुसार, इस प्रकार पुण्यभूति से इस नये राजवंश का उदय हुआ^४ जिसमें, क्रम से आगे चलकर हूण-हरिण-केसरी (हूण रूपी हिरणों के घातक सिंह के समान), सिन्धु-राज-ज्वरो (सिन्धु-देश के राजा को ज्वर के समान संतप्त करने वाले), गुर्जर-प्रजागरो (गुर्जर देश के राजा की नींद भग्न करने वाला), गान्धाराधिपगन्धद्विप-कूट-पाकलो (गान्धार देश के राजा को हाथी के समान कूट हस्ति ज्वर), लाट-पाटव-पाटच्चरो (लाट देश की पटुता का अपहरण करने वाला और मालवलक्ष्मीलतापरशुः (मालव-समृद्धि का विनाश करने वाला) तथा प्रतापशील राजा राजाधिराज-प्रभाकर वर्धन उत्पन्न

१—“अनेन सत्त्वोत्कर्षेण भगवच्छिवभट्टारकभक्त्या चासाधारणया भवान्भुवि सूर्याचन्द्रमसोस्तृतीय इवाविच्छिन्नस्य प्रतिदिनमुपचीयमानवृद्धेः शुचि-सुभगसत्यत्यागार्धैर्यशौण्डपुरुषप्रकाण्डप्रायस्य महतो राजवंशस्य कर्ता भविष्यति । यस्मिन्नुत्पत्स्यते सर्वद्वीपानां भोक्ता हरिश्चन्द्र इव हर्ष नामा चक्रवर्ती त्रिभुवनविजिगीषुद्वितीयो मांधातेव यस्यायं करः स्वयमेव कमलमपहाय ग्रहीष्यति चामरम् ॥” तृतीय उ०, हर्षचरित, पृ० १६६

२—श्रीकण्ठोऽपि-राजन् ! पराक्रमक्रीतः कर्तव्येषु नियोगेनानुग्राह्योग्राहित-विनयोऽयं जनः इत्यभिधाय राज्ञानुमोदितस्तदेवभूयोभूविवरं विवेश । हर्षचरित, उ० ३, पृ० १७१

३—ह० च०, उ० ३, पृ० १७२ : नागयुद्ध व्यतिकर मलीमसानि.....

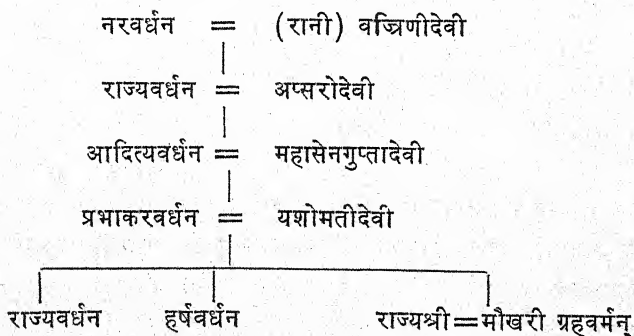
४—अथ तस्मात्पुण्यभूतेद्विज... दुर्जय बलसनाथो हरिवंश इव शूरान्निर्जंगम राजवंशः ॥ ह० च, उ० ४, पृ० १७३-१७४

हुआ । वह राज्यांगों (अमात्यादि) से अभिषिक्त होकर सम्राट हुआ ।^१

परन्तु अभिलेखों में हर्ष के अन्य पूर्वजों का उल्लेख किया गया है जिसे हम हर्ष चरित में नहीं पाते हैं । यह वंशावली इस प्रकार है :—

महाराज श्री नरवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यात श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्नः
परमादित्यभक्तो महाराज श्री राज्यवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्रीमद्प्सरो-
देव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराज श्री आदित्यवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानु-
ध्यातश्री महासेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नः चतुस्समुद्रातिक्रान्तकीर्तिः प्रतापानुरागो-
पनतान्यराजो.....एकचक्ररथमिव.....परमादित्यभक्तः
परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्धनस्तस्यपुत्रस्तत्पादानुध्यात.....
.....देव्याममलयशोमत्याम् श्री यशोमत्यामुत्पन्नः परमसौगत.....
परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्धनः ।.....तस्यानुजस्तत्पादा-
नुध्यातः परममाहेश्वरो.....परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्री हर्षः^२

अर्थात्



इस प्रकार स्पष्ट है कि बाण ने प्रभाकरवर्धन के नरवर्धन, राज्यवर्धन और आदित्यवर्धन नामक पूर्वजों का उल्लेख इसलिये नहीं किया कि वे अभी तक केवल साधारण कोटि के शासक थे । प्रभाकरवर्धन ही ऐसा प्रतापशील शासक था जो इस वंश का प्रथम महाराजाधिराज था और जिसकी कीर्ति दूर

१—तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु क्रमेणोदपादि हूणहरिणकेसरी सिन्धुराजज्वरो गुर्जरप्रजागरो गान्धाराधिपगन्धद्विपकूटपाकलो लाटपाटवपाटच्चरो मालवलक्ष्मीलतापरशुः प्रतापशील इति प्रथितापरनामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः । यो राज्याङ्गसङ्गीन्यभिषिच्यमान एव मलानीव मुमोच धनानि ॥ ६०८०, चतुर्थ उल्लास, पृ० १७४

२—बांसखेड़ा ताम्रपत्र लेख—पंक्ति १-७; मधुबन ताम्रपत्र लेख, पं० १—८

तक फैल गई थी। उसका यह उत्कर्ष बाण द्वारा दी गई उपाधियों से स्पष्टतः सिद्ध हो जाता है। इनसे यही ज्ञात होता है कि उसने अपने प्रताप और पराक्रम से सिन्ध प्रदेश, गुर्जर (पश्चिमी राजस्थान), मालवा और पंजाब व काश्मीर के हूणों को परास्त किया था। इसका इतना तो अवश्य परिणाम निकला कि वह उत्तरी भारत के राजचक्र को दबाये रहा। गुप्त साम्राज्य के ध्वस्त होने के बाद उत्तरी भारत में भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र राज्यों के उदय से भूमि के समतल में जो राजनैतिक वैषम्य (ऊबड़-खाबड़ रूप) आगया था प्रभाकर वर्धन ने अपनी सेना से सभी दिशाओं में उसे दूर कर पृथिवी को बहुत हद तक समतल बनाया और शत्रुओं का दमन किया। वे राजा युद्ध में उससे पराजित होकर मुंह में तिनका दबाये खड़े रहते थे।^१ इस प्रकार प्रभाकरवर्धन ने तलवार की धार के पानी से सींचकर राष्ट्र वृद्धि की।^२ इससे तत्कालीन राजनीति का स्पष्ट परिचय मिलता है कि परस्पर प्रभुत्व के लिये संघर्ष हो रहा था।

तत्कालीन राजचक्र

गुप्त साम्राज्य की गोधूली में ही उत्तरी भारत में अंधकार और अव्यवस्था बढ़ने लगी। कामरूप जो गुप्तों का प्रत्यन्त राज्य था स्वतन्त्र हो गया था। वहां के सम्राट अश्वमेधयज्ञ कर रहे थे।^३ इसी प्रकार बिहार-बंगाल में गौड राज्य भी स्वतन्त्र हो गया। मगध और मध्य देश (यू० पी०) में मौखरी बढ़ रहे थे। मालवा में उत्तर गुप्त शासक प्रबल थे। पश्चिमी भारत में सौराष्ट्र-काठियावाड़ में बलभी के मौर्य वंश का उत्थान होने लगा था। गुर्जर देश के प्रतिहार भी अवसर की ताक में थे। सिन्धु भी तो स्वतन्त्र ही था तथा

१—यः परकीयेनापि कातरवल्लभेन रणमुखे तृणेनेव धृतेनालज्जतजीवितेन ।

यः करधृत धौतासि प्रतिबिम्बितेनात्मनाप्यद्वयत समितिषु सहायेन रिपूणां पुरः प्रधनेषु धनुषापि नमता । यो मानी मानसेनाखिद्यत । यश्चार्न्तगता-परिमितरिपुशल्यशकुंकीलितामिव निश्चलामुवाह राजलक्ष्मीम् । यश्च सर्वासु दिक्षु समीकृततटावटविटपाटवी तरुतृणगुल्मवल्मीक गिरि गहनैर्दण्ड-यात्रापथैः पृथुभिर्भृत्योपयोगाय व्यभजतेव वसुधां बहुधा । हर्षं चरित, उ० ४, पृ० १७४—७५

२—तथा च यस्य प्रतापाग्निना भूतिः शौर्योष्मणा सिद्धिरसिधारा जलेन वंशवृद्धिः शस्त्रव्रणमुखैः पुरुषकारोक्तिर्धनुगुणकिरणेन करगृहीतिरभवत् ।

ह० च०, उ० ४, पृ० १७५

३—I. H. Q., Vol. XXI, pp. 143-145.

पंजाब और काश्मीर भी स्वतन्त्र थे । इसी भांति दक्षिण भारत भी चालुक्य-पल्लव-पांड्य संघर्ष के रोग से ग्रस्त था । अस्तु स्पष्टतः प्रभाकरवर्धन के समय राष्ट्र परस्पर संघर्ष और बहुशासन के दोष से दुर्बल था ।

गौड़ नृप और मौखरि शासकों में परस्पर शत्रुता थी ।^१ इसी कारण गौड़ और उत्तर गुप्तों में मेल भी था । थानेश्वर के पुष्यभूति वंशज राजाओं और उत्तर गुप्तों में भी मित्रता थी । परन्तु महासेन गुप्त के बाद उनमें भी शत्रुता हो गयी । तभी पुष्यभूतियों और मौखरियों में भी मित्रता (संतान संधि)^२ हो गयी । इसी मालवा में देवगुप्त शासक था । कान्यकुब्ज में अवन्तिवर्मन और ग्रहवर्मन राज्य कर रहे थे । गौड़ देश में शशांक राजा था । कामरूप में सुस्थितवर्मन और भास्करवर्मन शासक थे । भास्करवर्मन के दूबी ताम्रपत्र लेख से स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईसा की छठी शती के अन्त और सातवी शती के प्रारम्भ में कामरूप और गौड़ राज्यों में उग्र विरोध तथा बैर था ।^३ इस प्रकार बाण ने अपनी कवि शक्ति से इस विषम-राजनीति का परिचय दिया है ।

प्रभाकरवर्धन और हर्ष का जन्म

प्रभाकरवर्धन सहज स्वभाव से ही सूर्य-भक्त थे । प्रतिदिन सूर्योदय के समय सूर्यपूजा करते थे और संतान के लिये उनसे प्रार्थना भी करते थे । अन्ततः सूर्य की कृपा से उनके दो तेजवान पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ । ज्येष्ठ राज्यवर्धन अत्यन्त पराक्रमी और यशस्वी कुमार थे (ह० च०, उ० ४, पृ० १८०) पुनः कुछ काल बाद हर्ष का जन्म हुआ । हर्ष बाल्यकाल से ही तेजस्वी शूर थे जिन्हें खेल में भी अपनी आज्ञा-भंग सहा नहीं थी । वे चारों समुद्रों के मिले हुए पानी में स्नान करना तथा समुद्र तटीय वनों में

१—I. H. Q., Vol. XXI, pp. 143-145.

२—राजनीति में न कोई किसी का मित्र होता है और न शत्रु । स्वार्थ से प्रेरित होकर ही मित्र शत्रु बनते-बदलते रहते हैं । प्राचीन नीति-विदों के अनुसार दो निकटस्थ शक्तिशाली राज्य प्रकृत्यमित्र (सहज शत्रु) माने गये हैं । कौटिल्य-मंडल-विचार ।

३—Doobi Copperplates of Bhaskaravarman—the Journal of the Assam Research Society, Vol XII, Nos. 1 & 2, pp 16-23, I. H. Q. Vol. XVI, Sept. 1950 No. 3 pp 241-246.

धूमना चाहते थे । कितना महत्वाकांक्षी बालक हर्ष था !! वह विनीत भक्त भी था ।^१ ज्योतिषियों ने जन्म के समय ही उसके ग्रहों में चक्रवर्ती सम्राट और सभी महारत्नों (सात चक्रवर्ती रत्नों) का सुयोग पाया ।^२

मौखरी-वर्धन संबंध

धीरे-धीरे विद्या-विनय और वीर्य-विक्रम में वे तेजमूर्ति दोनों राजकुमार बढ़ने लगे और बढ़ने लगी चन्द्रकला के समान राज्य श्री भी । उसकी वयस्का अवस्था देखकर सम्राट और सम्राज्ञी को विवाह की चिन्ता होने लगी । देश के राजकुल उस कन्यारत्न की याचना कर रहे थे । परन्तु प्रभाकरवर्धन ने मौखरी वंश के राजा ग्रहवर्मा को ही कन्या दान देना निश्चित किया ;^३ क्योंकि ग्रहवर्मा अभिजातकुलज और प्रख्यात प्रवीर था । इस प्रकार पुण्यभूति और मुखर वंशों का सम्बन्ध चन्द्र-सूर्य के समान ही उपयुक्त था ।^४ रानी यशोमति और भाइयों ने भी इस सम्बन्ध का अनुमोदन ही किया । अन्त में दोनों वंश घनिष्ठता से मैत्री सम्बन्ध में बंध गये ।

प्रभाकरवर्धन की मृत्यु

प्रभाकरवर्धन ने राज्यवर्धन को हूणों का अन्त करने के लिये (हूणान्हन्तुं) सेना, मन्त्रियों तथा महासामन्तों के साथ भेजा । हर्ष भी अश्वारोहियों के साथ उनके पीछे-पीछे गये । वह हिमालय की उपत्यकाओं में मृगया करते रहे । यह प्रभाकरवर्धन की रणदक्षता का ही परिचय देता है, क्योंकि उस कुचक्र में

३—ह० च०, उ० ४, पृ० १८३

४—वही, उ० ४, पृ० १८४ : “सप्तानांचक्रवर्तिनामग्रणीश्चक्रवर्तिचिन्हानां महारत्नानां च भाजनं सप्तानां सागराणां पालयिता सप्ततन्तूनां सर्वेषां प्रवर्तयिता सप्तसप्ततिसमः सुतोऽयं देवस्य जातः इति ।”

१—“प्रायेण च सत्स्वप्यन्येषुवरगुणेष्वभिजनमेवानुरुध्यन्ते धीमन्तः । धरणी-धराणां च मूर्ध्नि स्थितो माहेश्वरः पादन्यास इव सकल भुवननमस्कृतो मौखरीवंशः तत्रापि तिलकभूतस्यावन्तिवर्मणः सूनुग्रजो ग्रहवर्मा नाम ग्रहपतिरिव.....।” हर्ष चरित, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २००

२—“तात, त्वां प्राप्य चिरात्तरबलु राजश्रिया घटितौ तेजोमयौ सकलजगद्-गीयमान बुधकर्णानन्दकारि गुणगणौ सोमसूर्यवंशाविव पुण्यभूतिमुखरवंशौ । हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २०६

राज्यवर्धन का पार्श्ववर्ती प्रदेश भी सुरक्षित रहना आवश्यक ही था और आवश्यक था कि राज्यवर्धन का मार्ग भी अकंटक बना रहे ।

जिस समय कुशकाओं और दुस्स्वप्नों में हर्ष का मन दुखी हो रहा था उसी समय कुरङ्गक नामक दूत लेख-समाचार लेकर आया जिसे पढ़कर हर्ष का हृदय अति संतप्त हो गया । हर्ष ने पूछा: “तात को क्या हुआ है ?”

आँसू भरी हुई आँखों से सिसक कर कुरङ्गक ने उत्तर दिया—“देव । दाहज्वर ।”

हर्ष ने राजधानी में आकर देखा कि महल में चारों ओर उदासी छाई हुई है तथा वैद्यगण औषधियों के बनाने में व्यस्त थे । हर्ष ने भाई राज्यवर्धन को भी पिता की बीमारी का समाचार भेज दिया । परन्तु दुर्भाग्य ने दारुण दुख का वज्रपात किया ही । उनकी माता पहले ही इस लोक से चली गयीं थी और महाराज प्रभाकरवर्धन भी इस लोक को जीत कर उस लोक को भी जीतने के लिये (उभयलोकविजिगीषो) चल पड़े । परन्तु अन्तिम यात्रा के पहले उन्होंने हर्ष को परिपालन-उपदेश भी दिया^१—

“आत्मीक्रियतां राजकम्, उह्यताम् राज्यभाराः, प्रजा परिरक्ष्यन्ताम् परिजनः परिपाल्यताम्, शस्त्राभ्यास कार्यः, निग्राह्यतां चापलम्, निरवशेषतां शत्रवो नेयाः” ।^१

अर्थात् “राज्य को स्ववश करो, राज्यभार (शासन) को चलाओ, प्रजा की रक्षा करो, परिजनों का पालन करो, शस्त्राभ्यास करते रहना, चंचलता को नष्टकर शत्रुओं का पूर्ण नाश कर दो ।” ऐसा आदेश करते हुए राजसिंह प्रभाकरवर्धन ने आँखें बन्द कर लीं ।”^२

प्रजा में विषाद छा गया । राज्य अनाथ हो गया । महाराज की प्रभा भी सरस्वती के प्रवाह पर ही प्रशान्त हो गयी । अग्निदेव की लपटों पर चढ़कर स्वर्ग को जीतने के लिये प्रभाकर वर्धन इस लोक से चले गये ।

पितृशोक के कारण हर्ष के लिये राज्य रोग बन गया । वे ‘भाई की दशा क्या होगी’ सोचने लगे । पिता की मृत्यु सुनकर वे कहीं सन्यासी न हो जाय और वन-पर्वत पर तप करने चले जाय । अनाथ हो गई यह पृथ्वी ।” ऐसा सोचते वे भाई राज्यवर्धन के आने की राह देखने लगे ।^३

१—ह० च०, पंचम उच्छ्वास, पृ० २१०-२३३

२—वही, पृ० २३३

३—वही, पृ० २४०

ग्रहवर्धन की हत्या

हर्ष ने हूणों की विजय करने के बाद युद्ध में लगे घावों पर सफेद पट्टियों बांधे हुए^१ शोकग्रस्त आये हुए भाई राज्यवर्धन को देखा। मन्त्रियों और वृद्ध जनों ने संसार की अनित्यता बताते हुए, शोक दूरकर अपने कर्तव्य अर्थात् राज्यभार को ग्रहण करने की प्रार्थना की। परन्तु राज्यवर्धन अपनी तलवार पृथ्वी पर छोड़ कर विरत-विरागी बन गये।

हर्ष को भय और शंका हुई—“क्या भाई मेरे प्रति किसी कारण से क्रुद्ध हो गये हैं।राज्य त्याग कर यदि ये बन चले गये तो यहां राज्य भोग करने के लिये कौन रुका रहेगा? क्या लक्ष्मण और भीमादिकों का चरित्र ये भूल गये हैं। व्यर्थ की यह कल्पना जल्पना क्या, चुपचाप ज्येष्ठ भाई के पीछे-पीछे चल दूंगा।”^२

स्पष्ट है कि, रामानुज लक्ष्मण और युधिष्ठिर के भाइयों भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव की आदर्श भ्रातृ-भक्ति और कर्तव्य परायणता हर्ष के हृदय में भी दृढ़ता के साथ जमी हुई थी। यह आदर्श स्पृहणीय था। इसकी उपेक्षा ही गुप्त साम्राज्य को ध्वस्त कर चुका था। अस्तु बाण ने इस आदर्श नीति की प्रतिष्ठा करना परम आवश्यक समझा।

परन्तु जब ये दोनों भाई अपने उमड़ते हुए आंसुओं के प्रवाह को रोकने और पोंछने की चेष्टाएं कर रहे थे, उसी समय बहन राज्यश्री का संवादक नामक सेवक सभा में रोता हुआ आ पड़ा। अत्यंत विक्षुब्ध होकर राज्यवर्धन के पूछने पर किसी तरह उसने बताया—“जिस दिन सम्राट का निधन हुआ उसी दिन दुष्ट मालव राज नेदेव ग्रहवर्मा की हत्या कर दी और राज्यश्री के पैरों में लोहे की बेड़ियाँ डाल कर उसे चोर की स्त्री के समान कान्यकुब्ज की जेल में बन्द कर दिया। यह भी कहा जाता है कि वह शीघ्र ही इस देश

१—हूणनिर्जय समर शर व्रण बद्ध पट्टकै दीर्घवलैः समासत्र राज्यलक्ष्मी कटाक्षपातैरिव.....शोकेन कवलीकृतं ज्येष्ठं भ्रातर मपश्यत्। ह० च०, छठा उच्छवास, पृ० १७७

२—बही, उ० ६, पृ० २४३-२५०

किंवा ममानेन वृथा बहुधा विकल्पितेन तूष्णीमेवार्थमनुगमिष्यामि..... ह० च०, उ० ६, पृ० २५०

को भी अनाथ समझ कर आक्रान्त कर जीतना चाहता है ।”^१

मालवोन्मूलन ?

कुराज-चक्र और दुर्नय का परिणाम स्पष्ट था । जैसा कि ऊपर कहा गया है कि तत्कालीन राजनीति दल बन्दी के चक्कर काटती थी । गौड-गुप्त दल ने जब पुण्यभूति-मुखर संघ के अनुभवी-वृद्ध प्रभाकरवर्धन की मृत्यु का समाचार सुना, उसने इस दल के दूसरे नेता ग्रहवर्मा पर सामूहिक आक्रमण कर उसे मार दिया और अब श्रीकण्ठ देश में भी इन बालक-राजाओं को अनाथ समझ कर, उन्हें मार कर उनकी शक्ति मिटा देना चाहते थे । स्वयं प्रभाकर-वर्धन को शत्रुओं की ओर से आशंका थी । तभी तो उसने मरने के कुछ पहले ही हर्ष से शत्रुओं को नष्ट करने के लिये कहा था । मालव राजकुमार—कुमारगुप्त और माधव गुप्त—तो प्रभाकरवर्धन के पास ही हर्ष-राज्यवर्धन के पार्श्ववर्ती थे ।^२ परन्तु मालवराज जिसने ग्रहवर्मा की हत्या की थी वह स्पष्टतः पुण्यभूति वंश का शत्रु ही था । हर्षचरित में इस राजा का नाम नहीं दिया गया है । केवल इतना ही कहा गया है कि राज्यवर्धन भी संवादक के समाचार को सुनकर मालव-विनाश के लिये खड़े हुए ।^३ भीषण कृपाण को हाथ में लेकर मालवराजकुल को मिटा देने के लिए राज्यवर्धन का पराक्रम जाग पड़ा “भला अंधकार सूर्य का तिरस्कार कर सके, क्या संभव है । इसी प्रकार, मालव राज पुण्यभूति वंश का पराभव करें, क्या यह कभी संभव है ?”^३ स्वयं हर्ष ने इस कर्तव्य-कार्य को करने के लिये बहुत ही आग्रह-अनुनय की ।

१—“यतो यस्मिन्नह्यवनिपतिरुपरत इत्यभूद्वार्ता तस्मिन्नेव देवो ग्रहवर्मा दुरात्मना मालवराजेन जीवलोकमात्मनः सुकृतेन सह त्याजितः । भर्तृदारिका राज्यश्रीः कालायसनिगड युगलचुम्बितचरणा चौरांगनेव संयता कान्यकुब्जे कारायां निक्षिप्ता । किंवदन्ती च यथा किलानायकं साधनं मत्वा जिघृक्षुः सुतुर्मतिरेतामपि भुवमाजिगमिषति ।” ह० च०, उ० ६, पृ० २५१

२—ततश्च तादृशमनुप्रेक्षणीयमसंभावितमाकस्मिकमुपरि व्यतिकरमाकर्ण्य-श्रुतपूर्वत्वात्परिभवस्य.....विवेश च सहसा.....हृदयं भयंकरः कोपवेगः ।.....निमूर्लं मालवोन्मूलनाय.....भीषणंकृपाणं पाणिरपरः । हर्ष च०, उ० ६, पृ० २५१-२५२ गतोऽहंकचैव मालवराजकुल प्रलयाय

३—.....तिमिरैस्तिरस्कारो रवेर्यो मालवैः परिभवः पुण्यभूतिवंशस्य । हर्ष च०, पृ० २५२

परन्तु राज्यवर्धन की गुरुता (बड़प्पन) के सामने उसे नतमस्तक ही होना पड़ा—“तत्प्रसीदत्वार्यो नयतु मामपि इत्यभिधाय क्षितितलविनिहितमौलिः पादयोरपतत् ॥”^१

हर्ष की मंगल कामना के साथ ही राज्यवर्धन उसे अठारह द्वीप वाली पृथ्वी पर आधिपत्य जमाने का आर्शीवाद देकर और उसे राजधानी में ही सजग रहने का आदेश देते हुए उसी दिन मालव-राज को नष्ट करने के लिए चल पड़े।^२

हर्षचरित से हमें राज्यवर्धन और मालवों के बीच युद्ध का वृत्तान्त नहीं प्राप्त होता है। बाण केवल यही कहते हैं कि राज्यवर्धन ने मालवा पर विजय प्राप्त की।^३ बांसखेरा के ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि “परमभट्टारक महाराजाधिराज राज्यवर्धन.....ने देवगुप्त आदि अनेक शत्रु राजाओं को एक साथ ही युद्ध में उसी तरह पीड़ित कर दबाया जिस प्रकार दुष्ट घोड़ों का चाबुक द्वारा दमन किया जाता है। इस प्रकार उन्होंने अपने विरोधियों को पराजित कर देश को प्रजाहित करते हुए सुरक्षित बना दिया। परन्तु इस प्रजा-हित-कार्य को करते हुए ही उन्हें शत्रु-भवन में अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।”^४ यही बात मधुबन ताम्रलेख में भी दुहराई गई है। यहां लेखों में देव गुप्त का परिचय नहीं दिया गया है। हर्ष चरित में स्पष्ट कहा गया है कि दुरात्मा मालवराज ने ग्रहवर्मा की हत्या की और वह कान्यकुब्ज पर भी आक्रमण करने वाला था।^५ पुष्यभूति-मौखरि विरोधी अन्य राजाओं, विशेष कर गौड शासक, के साथ ही वह मालवराज भी कान्यकुब्ज को घेरे हुए था। अस्तु राज्यवर्धन वहीं शीघ्र ही सेना लेकर जा पहुँचे। अभिलेख जिन दुष्ट राजाओं की पराजय का उल्लेख करते हैं उनमें मालवा और गौड के शासक अवश्य ही सम्मिलित थे। राज्यवर्धन के जाने के बाद ही हर्ष

१—हर्ष च०, पृ० २५३

२—वही, पृ० २५३—२५४

३—वही, पृ० २५५

४—परमभट्टारकमहाराजाधिराज श्री राज्यवर्द्धनः राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः कृत्वा येन कशाप्रहार विमुखास्सर्वे समं संयताः।

उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधाङ्कृत्वा प्रजानां प्रियं प्राणानुज्झितवानराति-
भवने सत्यानुरोधेन यः ॥ बांसखेड़ा लेख, हर्ष सं० २२, पंक्तियाँ ५, ६, ७.

५—ह० च०, उ० ६, पृ० २५१, पीछे देखिये

को समाचार मिला कि “राज्यवर्धन ने मालव सेना को सहज ही पराजित कर दिया; परन्तु वह गौड़ राजा के कपट-व्यवहार और झूठे शिष्टाचार के धोखे में पड़ कर विश्वास करते हुए अकेले तथा निहत्थे होने की अवस्था में गौड़ाधिप के भवन (शिविर) में ही मार डाला गया।”^१ यदि हम इस कथन को बांसखेड़ा तथा मधुवन लेखों से मिला कर पढ़ें तो एक ही परिणाम पर पहुँचते हैं कि मालव राज देवगुप्त और गौड़ाधिप शशाङ्क ने षडयन्त्र कर राज्यवर्धन के साथ विश्वास घात कर उनकी हत्या कर दी। इस कार्य से उनके उद्देश्य—यानेश्वर पर अधिकार लिप्सा—में लाभ ही हुआ, क्योंकि अब केवल वहाँ का रक्षक हर्ष ही बचा था जिसकी आयु अधिक न थी।

हर्ष-विजय-प्रयोजन

हर्ष की दुर्धर्ष प्रतिज्ञा

इस प्रकार हम देखते हैं कि दुर्दैव हर्ष के लौह शरीर और वज्र-हृदय की परीक्षा ले रहा था, तभी तो उस पर दारुण दुःखों की बाढ़ आ रही थी। माता, पिता, बहनोई और भाई, सबकी अत्यल्प समय में तड़-पड़, एक के बाद दूसरी, मृत्यु होना वज्रपात नहीं तो और क्या था? परन्तु हर्ष का पौरुष पराक्रम दैव को दाब कर क्षात्र-व्रत-धर्म का स्मरण करता हुआ दुष्ट दुराक्रमी गौड़ाधिप की भत्सना करने लगा—

“गौड़ के राजा को छोड़ कर समस्त राजाओं के विजेता उस महापुरुष के साथ विश्वास घात कर शस्त्र रहित होते हुए कृष्ण मार्ग (पापमार्ग अथवा छलनीति जिसमें कृष्ण अतिपटु थे) का अनुसरण करते हुए व्रण वध के समान हत्या कौन करेगा? क्योंकि ऐसा कर्म सभी द्वारा निन्दित माना गया है। यह अनार्य कार्य था कि आर्य राज्यवर्धन का इतनी उग्रता और धूर्तता के साथ प्राण-वध किया गया।...नाम भी लेना पाप है। उस अधम गौड़ राज ने केवल अपयश ही कमाया है। देखना है, वह दुर्बुद्धि अब कहाँ भाग कर

१—हेला निर्जितमालवानीकमपि गौड़ाधिपेन मिथ्योपचारोपचित विश्वासं मुक्तशस्त्रमेकानिर्गन्तं विश्वब्धं स्वभवने भ्रातरं व्यापादितमश्रुषीत् ।”

हर्ष च०, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० २५५

२—हर्ष च०, उ० ६, पृ० २५४ : अथ तथागते भ्रातरि.....निपातयति ।

जायगा ।”^१ इतने भीषण क्षात्र रूप का निखार हुआ, उस समय जब उसके वंशज और मित्र सम्बन्धी, मार डाले गये थे । ‘क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपपद्ये अर्थात् महापुरुषों की कार्य-सिद्धि सत्त्व (पुंसत्व-पौरुष-पराक्रम) में निहित होती है न कि साधनों और सहायकों में । हर्ष सभी सत्त्वधारियों में प्रधान, प्रज्ञावान् और समर्थ था तथा इसी से अपकार सहने में असमर्थ भी था ।^२

परन्तु मंत्री सिंहनाद ने बताया कि “एक अधम गौड राजा का ही बध करने से कोई लाभ न होगा । ऐसा करो कि फिर अन्य कोई राजा इस प्रकार का दुस्साहस न करे । सम्पूर्ण पृथ्वी विजय की मर्यादा का पालन करो । लोलुप-लुब्ध गृध्रों को नष्ट कर डालो । राज-लक्ष्मी को स्थिर कर एकाधिपत्य प्राप्त करो । कुत्तों का बध करो । राज्य के कंटकों को उखाड़ फेंको । अपने पिता, पितामह और प्रपितामह के मार्ग का अनुसरण करो । देव ! प्रभाकर-वर्धन की मृत्यु और राज्यवर्धन का दुष्ट गौड राजा द्वारा बध हो चुका है, अब तुम ही इस पृथ्वी की रक्षा करने के लिये बचे हो । अनाथ प्रजा को समझाओ और राजाओं के शिर पर अपने पैरों को रखो । स्मरण करो कि परशुराम ने २१ बार पृथ्वी पर क्षत्रियों का संहार किया । अस्तु आज ही (अद्यैव) गौडराजा को मार डालने की प्रतिज्ञा कर सैनिक अभियान (चढ़ाई) का चिन्ह धनुष ग्रहण करो ।” (ग्रहाण गौडाधमजीवितध्वस्तये.....दण्डयात्रा-चिन्हध्वजं धनुः) ।^३

अस्तु स्पष्ट है कि वृद्ध-अनुभवी मंत्री ने हर्ष को दिग्विजय के लिये प्रोत्साहित किया । हर्ष ने भी इसका करना आवश्यक (करणीयमेवेदम्)

१—अवादीच्च गौडाधिपाधमपहाय कस्तादृशं महापुरुषं तत्क्षण एव निर्व्याज-भुजवीर्यनिर्जितसमस्तराजकं मुक्तशस्त्रं कलशयोनिमिव कृष्णवर्त्म प्रसूतिरीदृशेन सर्वलोकगहितेन मृत्युना शमयेदेवार्यम् । अनार्यं च तं मुक्त्वा भागीरथीफेनपटलपाण्डुराः केषां मनःसु सरःसु राजहंसा इव.....नामापि गृह्णतोऽस्य पापकारिणः पापमलेन लिप्यत इव में जिह्वा ।.....केवलमयशः संचितं गौडाधमेन ।.....क्व इदानीं यास्यति दुर्बुद्धिः ।” हर्ष च०, षष्ठ उ०, पृ० २५६-२५७

२—“स त्वं सत्त्ववतामग्रणीः प्राग्रहरः प्राज्ञानां प्रथमः समर्थानां.....

असहिष्णूनाम् । हर्ष च०, पृ० २६१, षष्ठ उच्छ्वास ।

३—हर्षं चरित, पृ० २६१-२६२, षष्ठ उच्छ्वास ।

समझा । उस पापी गौडाधिप का जीवित रहना भी असह्य होने लगा और आंखें भी उस को चिता पर जलते हुए देखने के लिये अधीर थीं । वह उसने प्रतिज्ञा की कि “यदि मैं कुछ ही दिनों में उस दुष्ट राजा का बध कर पृथ्वी को निगौडा न कर सका तो स्वयं चिता में जल कर प्राण दे दूँगा । यह मैं आप की शपथ लेकर कहता हूँ ।”^१

अतः उन्होंने निकट ही बैठे हुए महासंधि-विग्रहिक (युद्ध-मंत्री) अवन्ति को आदेश दिया कि लेख लिखो । पूर्व में उदयाचल से लेकर दक्षिण में त्रिकूट स्थित लंका और सुवेल पर्वत तक, पश्चिम में अस्त गिरि तक तथा उत्तर में गंध-मादन (हिमालय की बद्रीनाथ पहाड़ी) तक सभी राजा लोग अपने हाथों को शस्त्र ग्रहण करने अथवा कर देने के लिये तय्यार रखें, या तो वे चामर ग्रहण करें या शिर अथवा धनुष को झुकायें, तो………इस प्रकार यह विजय-चक्र उस समय तक चलता रहे जब तक सभी द्वीपों में भ्रमण करने वाले (सर्व-द्वीपान्तरसंचारी) मेरे पैरों में सभी राजाओं की मुकुट मणियों का पाद-लेप न लग जाये ।”^२ हर्ष का इस निश्चय से उसका ‘सर्व पृथ्वी विजय’ द्वारा चक्र-वर्ती-पद पर-प्रतिष्ठित होने तथा देश में एक सार्वभौम सत्ता की स्थापना का उद्देश्य ही परिलक्षित होता है । द्वीपान्तर-विजय का उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है । समुद्रगुप्त ने भी ‘सर्वद्वीपों की विजय की थी जिससे वहां के लोगों ने

१—“श्रूयतां में प्रतिज्ञा । शपाम्यार्यस्यैव पादपांसुस्पर्शेन यदि परिगणितै-
रेव वासरैः सकलचापलदुर्ललितनरपतिचरणरणरायमाननिगडां
निगौडा न करोमि मेदिनीं ततस्तनूनपातिपीतसर्पिषि पतङ्ग इव
पातकी पातयाम्यात्मानम् ।” ह० च०, उ० ६, पृ० २६३

२—इत्युक्त्वा च महासंधिविग्रहाधिकृतमवन्तिमन्तिकस्थमादिदेश । लिख्य-
ताम् । आ रविरथ चक्र चीत्कार चकित……सानोरुदयाचलात्, आ
त्रिकूट……लंका लुंठन व्यतिकरात्सुवेलात् आ……अस्तगिरेः, आ
……गन्धमादनात् सर्वेषां राज्ञां सज्जीक्रियन्तां करा : करदानाय
शस्त्रग्रहणाय वा गृह्यन्तां दिशश्चामराणि वा नमन्तु शिरांसि धनूंषि
वा, कर्णपूरीक्रियन्तामाज्ञा मौर्व्यो वा, शेखरी भवन्तु पादरजांसि
शिरस्त्राणि वा……पङ्गोरिव मे कुतो निवृत्तिस्तावद्यावन्न कृतः
सर्वद्वीपान्तरसंचारी सकलनरपतिमुकुटमणिशिलालोकमयः पाद-
लेपः” । इति कृतनिश्चयश्च……” हर्ष च०, पृ० २६३-२६४, पृष्ठ
उच्छवास ।

गुप्त शासक के स्वामित्व को स्वीकार कर उसे भेंटें दीं थीं।^१ इस प्रकार से हर्ष के क्षत्रिय रूप ने भी अपने समक्ष 'पृथ्वी-राज्य' के पुरातन आदर्श को रखा और जब तक वह इस आदर्श की प्राप्ति न कर ले उसे सन्तोष नहीं होगा।

परन्तु अभी उसके अनुभव हीन तथा युवक-हृदय को कुछ व्यावहारिक रूप से नीति का ज्ञान होना भी आवश्यक था, क्योंकि इसके ही अभाव के कारण राज्यवर्धन को धोखा खाना पड़ा। अत्यन्त अनुभवी तथा नीति-निष्णात स्कन्द-गुप्त नामक गज-सेनापति ने स्वामि-भक्ति के वशीभूत होकर व्यावहारिक शिक्षा दी। उसने हर्ष को समझाते हुए बताया—

“आप में पुष्यभूति-वंश का सहज तेज है और साथ ही स्नेह भी विद्यमान है। परन्तु केवल श्री राज्यवर्धन महाराज के समाचार से ही आपको दुर्जनों की दुष्टता का कुछ तो परिचय हो ही गया होगा। इस प्रकार के ही लोक-स्वभाव हर गांव, नगर, देश, द्वीप और दिशा में पाये जाते हैं; प्रत्येक जनपद का वेश, स्वरूप, भोजन और व्यवहार अलग-अलग होता है। इस कारण आप अपने इस देश की सिध्दाई और सच्चाई की आदत को छोड़ दें कि जिसके कारण आप शीघ्र ही सब पर विश्वास कर लेते हैं। श्रीमान तो नित्य ही प्रमाद-दोष के कारण होने वाले बहुत से कथानक सुनते ही हैं। जैसे पद्मावती में मैना द्वारा मन्त्रभेद खुल जाने से नागसेन का नाश हुआ; इत्यादि इत्यादि।”^२

इस प्रकार हर्ष अपने राज्य की सुप्रबन्ध-व्यवस्था कर विजय यात्रा की भी तैयारी करने लगा क्योंकि जो क्षत्रिय सैनिक तैयारी के बाद ही शत्रु पर आक्रमण करता है, वह राजा विजयी होता है और उसका राज्य भी बढ़ता है :—

सनह्य प्रथमं याति यः सैन्यं शत्रुभूमिषु ॥

स क्षत्रियो विजयते तस्य राज्यं च वर्धते ॥^३

१—सर्वं द्वीपवासिभिरात्मनिवेदनकन्योपायनगरुत्मदकं स्वविषय-भुक्ति-शासनयाचनात्.....। ससुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति।

२—हर्ष च०, उ० ६, पृ० २६७-२७०,

३—स्कन्द पु०, उ० ४. १७. ५१

हर्ष-विजय-यात्रा

प्रथम प्रयाण (प्रस्थान)

अठारह द्वीपों^१ तथा चतुर्दिक-विजय^२ के हेतु हर्ष की भुजाएं फड़कने लगीं। सैनिक-प्रस्थान के लिये शुभ लगन पर शंकर की पूजा और अन्य बहुत से मांगलिक कार्य भी किये गये। सरस्वती नदी के सन्निकट घास के बने हुए घर में ही हर्ष को मंगल कामनाओं के साथ आशीर्वाद दिये गये कि “आप के आधिपत्य में पृथ्वी एक शासन से मुद्रांकित हो (एकशासनमुद्राङ्का भूभवंतो भविष्यति)^३। ब्राह्मणों के साथ सम्पूर्ण राजलोक (राजसभा और उसके सभ्यों) से सम्मानित होकर हर्ष ने वहीं राजधानी के बाहर और महलों के सुखविलास से दूर विजय-यात्रा के पहले की रात बिताई।^४ यह विजय-अभियान के पूर्व संयम-नियम और व्रतचर्या ही थी जिसे हिन्दू विचारधारा के अनुसार प्रत्येक पवित्र कर्म करने के पहले करना आवश्यक माना गया है। इससे सम्राट महल और उनसे दूर स्थायी स्कन्धावार-जीवन (कैम्प जीवन) का भी कुछ अभ्यास करता था और संघर्ष के काठिन्य का अभ्यस्त हो जाता था।

दूसरे दिन इन्द्र के समान तेजस्वी हर्ष, जिसका हृदय भ्रातृ-वध के कलङ्क को धोने लिये अत्यन्त व्याकुल (अग्रजवधकलङ्कप्रक्षालनाकुलः) था, पृथु के समान संपूर्ण पृथ्वी की विषमता दूर कर उसे समतल बनाने तथा द्वीपान्तर तक शक्ति का प्रसार करने के लिये विशाल सेना के साथ दिग्विजय के लिये चल पड़ा।^५

१—अष्टादशद्वीपजैतव्याधिकारे दक्षिणं भुजस्तम्भमहमिकया.....

हर्ष च०, उ० ७, पृ० २७४

२—चतसृणामपि दिशां विजययोग्ये दण्डयात्रालगने... ह० च०, उ० ७, पृ० २७३

३—ह० च०, उ० ७, पृ० २७५

४—हर्ष च०, ७ उच्छवास, पृ० २७५

५—उदिते च भगवति दिनकृति राज्ञः समायोगग्रहणसमयशंसीसस्वान संज्ञाशंखो मुहुर्मुहुः। अथ नचिरादिव प्रथम प्रयाण एव दिग्विजयाय.....
.....बाल एव पारिजातपादपइवाखण्डलभूमिमारूढः.....सकल-
भुवनवशीकरणचूर्णेनैव दिशश्छुरयन् ।.....उदयमानं सवितारमपि
पिबन्निव तेजसा बहलताम्बूलसिन्दूरच्छुरितया विलभमान इव द्वीपान्त-
राण्योष्ठमुद्रयानुरागस्य.....अमरपतिरिवाग्रजवधकलङ्कप्रक्षाल-
नाकुलः पृथुरिव पृथिवी परिशोधनावधानसंकलितसकलमहीभूत्समु-
त्सारणः.....पुरःसरैरालोककारकैः सहस्रसंख्यकैरर्क इव किरणै-
रधिकारचातुर्यचञ्चलचरणैर्व्यस्थास्थापननिष्ठुरैः भयपलायमानलोको-
त्पीडान्तरिता दशापि दिशो ग्राह्यदिभरिव.....दिनमपि दूरी
कुर्वदिभरिव दण्डिभरितस्ततः समुत्सार्यमान जनसमूहो निर्जंगाम
नरपतिः। हर्ष च. ७वां उच्छवास, पृ., २८०-२८१

विजयोद्देश्य

बाण के मतानुसार हर्ष की दिग्विजय का उद्देश्य सार्वभौम सत्ता की स्थापना कर राष्ट्रसुधार (पृथिवीपरिशोधनावधान) और एक सुदृढ़ शासन (व्यवस्थास्थापन) द्वारा प्रजा के हृदयों से अराजकता का भय और तज्जनित पीड़ा दूर करना (भयपलायमानलोकोत्पीडान्तरिता) अत्यावश्यक था । उसके रचे हुए नाटकों, रत्नावली और प्रियदर्शिका, से भी ज्ञात होता है कि उस समय छोटे-छोटे राज्य थे जो आपस में लड़ रहे थे । अस्तु स्पष्ट है कि उस समय एक सार्वभौम शक्ति के अभाव में अराजकता और अव्यवस्था तथा इसी कारण प्रजा-पीड़न और भय भी फैला हुआ था । इस दुरवस्था का अन्त सुदृढ़ शासन व्यवस्था द्वारा ही हो सकता था । इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्र-वृद्धि और प्रजासुख ही हर्ष की दिग्विजय का मूल उद्देश्य था । यद्यपि वह अपने इस परम उद्देश्य में पूर्णतः सफल नहीं हो सका । परन्तु फिर भी डा० राधा कुमुद मुकर्जी के शब्दों में “हर्ष हमारे इतिहास के कुछ वीर-राज वृत्तों में एक ऐसा उदाहरण है जिसने अपनी विजयों के द्वारा अपने आप को राजाधिराज के पद पर प्रतिष्ठित किया और भारतवर्ष के अधिकांश भाग पर सार्वभौम सत्ता स्थापित कर इसे एक शासन-सूत्र में बांध दिया ।”^१

दण्ड-यात्रा

इस प्रकार वीरातिवीर (प्रवीराणां वीरो)^२ हर्ष ने शत्रु-शौर्य को नष्ट करने के लिये ही (अरिप्रतापानलनिर्मूलनायेव)^३ बड़ा सैनिक-अभियान (द्राघीयसी दण्ड-यात्रा)^४ प्रारम्भ किया । इस दण्ड-यात्रा का सुस्पष्ट वर्णन बाण ने दिया है कि सेनायें विभिन्न प्रकार के मार्गों और स्थलों से जा रही थीं । घोड़ों के लिये यदि घास लेने की चिन्ता थी तो यह भी चिन्ता थी कि ‘वाहीक रक्षित क्षेत्र’^५ सेना से नष्ट-भ्रष्ट न हो । यदि ‘वाहीक’ शब्द को हम

१—हर्ष, पृ० ६

२—हर्ष च०, ७वां उच्छवास, पृ० २८२,

३—वही, ७वां उच्छवास, पृ० २८२

४—वही, उ० ७, पृ० २८३

५—वाहीकरक्षित क्षेत्रमिदम् । हर्ष च०, पृ० २८४ टीकाकार ने वाहीक का अर्थ गोरक्षक दिया है:—वाहीकः काष्ठकः परिपालकः.....गोरक्षक इति चान्ये ।

बाण का 'छेकालाप' ^१ (श्लेषोक्ति) समझे तो यही ज्ञात होता है कि स्थाण्वेश्वर से हर्ष वाहीक (पंजाब) की ओर चले थे । मार्ग में प्रजा राजा को देखने के लिये उमड़ पड़ती थी । जनता उस धर्मावतार नृप का विविध भेंटोपहार से सम्मान भी करती थी । इससे हर्ष के प्रति प्रजानुराग ही परिलक्षित होता है ।

कामरूप-सन्धि

प्रथम दिवस की यात्रा के बाद महाराज हर्ष के शिविर में प्राग्ज्योतिषपुर (कामरूप के सम्राट कुमार भास्करवर्मन) के पास से हंसवेग नाम का दूत बहुमूल्य भेंटों के साथ सन्धि-प्रस्ताव को लेकर आया ।

कामरूप (प्राग्ज्योतिष) और स्थाण्वेश्वर के राजाओं में सन्धि-सम्बन्ध का विशेष महत्व है । गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद कामरूप, जो इसका प्रत्यन्तराज्य था, स्वतन्त्र हो गया ।^२ इसी प्रकार बंगाल-बिहार में गौड राज्य भी स्वतन्त्र होकर शक्ति का विस्तार करने लगा । कामरूप और गौड नामक दो पड़ोसी महत्वाकांक्षी शक्तियों में संघर्ष होना स्वाभाविक ही था । इसी प्रकार मौखरी वंश से भी, जिसका आधिपत्य मगध (दक्षिणी बिहार) के आस पास था, गौड़ों से विरोध-वैर बढ़ना सहज ही था ।^३ परन्तु उत्तर-गुप्त राजाओं और गौड़ों में मित्रता थी । उत्तर गुप्त राजाओं और मौखरियों में उग्र वैर था । महाराज महासेन गुप्त के समय तक उत्तर गुप्त राजाओं और पुण्यभूति वंश में मित्रता तथा वैवाहिक सम्बन्ध रहे थे । परन्तु महासेन गुप्त के बाद से ही उत्तर गुप्त राजाओं और पुण्यभूति वंश के साथ सम्बन्ध बिगड़ गये । आदित्यसेन के अफसड़ लेख से ज्ञात होता है कि महासेनगुप्त ने लौहित्य (ब्रह्मपुत्र नदी) के तट पर सुस्थितवर्मन नामक राजा को पराजित कर यशलाभ किया था । यह सुस्थितवर्मन, जिसका सम्बन्ध लौहित्य-तट देश से है, अवश्य ही आसाम (कामरूप-प्राग्ज्योतिष) का राजा और भास्करवर्मन का पिता (हर्षचरित, पृ० २२०) ही था । इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्तर-गुप्त राजा प्राग्ज्योतिष के शत्रु ही थे और महासेनगुप्त के बाद हर्ष के भी शत्रु हो गये जैसा कि मालवराज-देवगुप्त द्वारा राज्यवर्धन के बध से ज्ञात

१—हर्ष च०, सप्तम उच्छ्वास पृ० २८२: नेत्रविभागैश्च कटाक्षैश्च.....

परिहासैश्चछेकालापैश्च कुशलप्रश्नैश्च.....

२—बसाक, हि० ना० ई० ६०, पृ० २१५,

३—बही, पृ० २१६

होता है। इस दुरभिसन्धि से किये गये राज्यवर्धन के बध में गौड राजा भी सम्मिलित था और इसी कारण गौड राजा भी हर्ष का महान शत्रु था जिसके बध के लिये ही इतनी तैयारी और भीषण प्रतिज्ञा की गई थी। अतः स्पष्ट है, कि गुप्त-गौड दोनों ही हर्ष और भास्करवर्मन के महान शत्रु थे। अस्तु भास्करवर्मन और हर्ष में मित्र-सन्धि होना अति आवश्यक थी।^१ हर्ष चरित में बाण महोदय ने भी सन्धि के महत्व को स्पष्ट स्वीकार किया है। जिस समय हर्ष को आसाम के दूत का आगमन मालूम हुआ, उसी समय हर्ष ने कहा कि “उसे शीघ्र ले आओ (राजा तु ‘तमाशु प्रवेश्य’ इति सादरमादिदेश)।”^२ जिस सम्मान, आदर और अभिनन्दन से वह दूत दरबार में लाया गया, वह भी इसी महत्व का परिचायक है कि हर्ष स्वयं आसाम के साथ मैत्री करने के लिये उत्सुक था।

आसाम के राजा कुमार ने भी हर्ष की सार्वभौम सत्ता (चतुर्णामर्णवानामधिपतिः)^३ को स्वीकार कर लिया था। दूत हंसवेग ने भी हर्ष को ‘परमेश्वर’^४ पद पर ही प्रतिष्ठित देखा। अतः भास्करवर्मन और लोक वीर हर्ष की मित्रता सर्वथा उपयुक्त ही थी।^५ बाण पुनः इस सन्धि के औचित्य का प्रतिपादन करते हुए दूत मुखसे बताते हैं कि “प्रायः राजाओं की मित्रता कार्य की महत्ता के कारण ही अपेक्षित होती है।”^६ पुनः “यह कार्य कैसा है कि जिसके प्रस्ताव से आप (हर्ष से दूत कह रहा है) इस मित्रता को स्वीकार करें।” इस कार्यपेक्षा के कारण ही आसाम के शासक ने हर्ष के साथ कभी भी शिथिल न होने वाले सन्धि सम्बन्ध (अजर्य संगतमिच्छति) की प्रार्थना की।^७ महाराज हर्ष ने भी इस प्रस्ताव की सराहना (श्रेयांश्च संकल्पः कुमारस्य)^८

१—हि० ना० ई० ६०, पृष्ठ २२०

२—ह० च०, उ० ७, पृ० २८८

३—हर्ष चरित, सप्तं उच्छ्वास, पृ० २८८

४—हर्ष च०, उ० ७, पृ० २८८

५—भद्र सकलरत्नधाम्नः परमेश्वरशिरोधारणार्हस्य महातपत्रस्य.....। हर्ष च०, पृ० २८३; यही दूत हर्ष को कहता—जगत्येकवीरेण देवोपमेन मित्रेण।

हर्ष च०, पृ० २८५,

६—मैत्री च प्रायः कार्यव्यपेक्षिणी क्षोणीभूताम्। हर्ष च., पृ० २८५

७—हर्ष च., पृ० २८६

८—वही, पृ० २८६

करते हुए दूत को बताया कि “कुमार स्वयं पराक्रमी हैं और मेरे साथ मैत्री होने पर शंकर के अतिरिक्त और कौन ऐसा व्यक्ति है जिसके सामने उसे सिर झुकाना पड़े ।”^१

इन शब्दों से कार्य—गौड-भय और उससे सुरक्षा—की आवश्यकता, जिसके कारण उत्तारी भारत की इन दो शक्तियों में प्रीति-सन्धि हुई, स्पष्ट है । अस्तु डा० आर० यस० त्रिपाठी का भी संभावित मत उपर्युक्त साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि “उसे (भास्कर वर्मन को) अपने पड़ोसी शक्तिशाली शत्रु से अधिक भय था, और संभवतः यही कारण था कि उसने विजय यात्रा के प्रारम्भ में ही हर्ष के सामने मित्रतापूर्ण हाथ फैलाया ।”^२ यह संभावना नहीं एक ऐतिहासिक सत्य था । सत्य ही, हर्ष को भी भास्करवर्मन की मित्रता की आवश्यकता थी इसीलिये उसने भी आसाम के शासक को दूत द्वारा भेटें भेज कर चिरस्थायी मित्रता की । यही वशीकरण मन्त्र था :—

आत्मार्पणं हि महताममूलमन्त्रमयं वशीकरणं ।^३

डा० आर० जी बसाक ने भी इस सन्धि का उचित मूल्यांकन करते हुए कहा है कि “हर्ष स्वयं भास्करवर्मन की सहायता अपने भाई के हत्यारे शशांक की शक्ति नष्ट करने के लिये चाहता था । इसके अतिरिक्त वह अन्य प्रदेशों को भी जीतना चाहता था; इसलिये हर्ष को भी भास्करवर्मन की सहायता की आवश्यकता थी ।”^४

भण्डि-भेंट-समाचार

हंसवेग के जाने के बाद ही राज्यवर्धन के साथ गये हुए भण्डि ने आकर कान्यकुब्ज में होने वाली घटनाओं का समाचार और मालवा के राजा की बची हुई विजित सेना को लेकर हर्ष के सामने निवेदन किया । इससे यह भी सिद्ध होता है कि राज्यवर्धन के बध होने के बाद उसकी सेना ने पुनः गौड-मालव सेना का दमन किया । गौड राजा तो वहां से भाग निकला । परन्तु मालवा की बची हुई और विजित सेना बन्दी रूप में भण्डि अपने साथ लाया था । साथ ही मालव-पराभव द्वारा ही भण्डि ने कान्यकुब्ज का भी उद्धार किया

१—“स्वयं बाहुशाली मयि च समलम्बितशरासने सुहृदि हराव्रते कमन्यं नमस्यति ।” ह०च०, उ०७, पृ० २६६

२—त्रिपाठी, हि० क०, पृ० ७२

३—हर्ष च. उ०७, पृ. ३०१

४—हि०ना०ई०ई०, पृ० २२३-२२४

जिस पर मालवी सेना का अधिकार हो चुका था । यह ऐतिहासिक तथ्य स्वयं भण्डि के वक्तव्य से प्रमाणित हो जाता है जब हर्ष ने उससे राज्यश्री की विपत्ति के बारे में पूछा, तो उसने बताया कि “महाराज जिस समय राज्य-वर्धन देवलोक चले गये और (देव) गुप्त नामक राजा ने कन्नौज (कुशस्थल) पर अधिकार कर लिया, तभी देवी राज्यश्री बन्दी बन्धन को तोड़ कर विन्ध्याटवी (विन्ध्य-वन) की ओर चली गई । हमें यह समाचार लोगों ने बताया था । उसकी खोज में भेजे गये लोग अभी तक वापस नहीं आये हैं ।”^१ अतः अब हर्ष के लिये राज्यश्री की खोज से बढ़कर दूसरा अधिक महत्वपूर्ण कोई काम ही नहीं था । हर्ष ने कहा कि ‘अब अन्य खोज करने वालों से क्या प्रयोजन ? मैं स्वयं वहीं जा रहा हूँ जहाँ वह होगी । आप सेना लेकर गौड देश की ओर चलें (भवानपि कटकमादाय प्रवर्ततां गौडाभिमुखम्) ।’^२

राज्यश्री-खोज

उसके बाद हर्ष भण्डि द्वारा मालव-राज की पराजय से प्राप्त विविध सामग्री को अध्यक्षों को सौंप कर स्वयं विन्ध्य-प्रदेश की ओर चल पड़ा ।

वह घने वन प्रदेश में बहुत दिनों तक इधर-उधर घूमता रहा । अन्त में भूकम्प नामक शबर सेनापति से भिक्षु दिवाकरमित्र के आश्रम का पता चला ।^३

वहीं एक भिक्षु ने राज्यश्री के चितारोहण की बात बतायी । हर्ष, दिवाकर मित्र और अन्य शिष्य तथा सामन्त शीघ्र ही वहाँ पहुँचे जहाँ राज्यश्री माता-पिता, भाई-भर्ता के वियोग से संतप्त चिता पर चढ़ने ही वाली थी । हर्ष ने बहुत समझाने बुझाने से किसी तरह राज्यश्री को चिता में जलने से रोका ।^४ हर्ष ने गिरिनदी में स्नान कर बहन द्वारा पति को पिण्डदान करवाया और फिर बहन को भोजन करा कर भी स्वयं भोजन किया । पिण्डदान तत्पश्चात् राज्य श्री ने “अपने बन्दी बनाये जाने की घटना से लेकर कन्नौज से गौड

१—“देव, देवभूयं गते देवे राज्यवर्धने गुप्त नाम्ना च गृहीते कुशस्थले देवी राज्यश्रीः परिभ्रश्य बन्धनाद्विन्ध्याटवीं सपरिवारा प्रविष्टेति लोकतो वार्तामिश्रणवम् । अन्वेष्टारस्तु तां प्रति प्रभूताः प्रहिता जना नाद्यापि निर्वर्तन्ते ” इति । हर्ष च०, पृ० ३०२-३०३, ७वां उच्छ्वास ।

२—हर्ष च०, पृ० ३०३,

३—वही, पृ० ३११-३१२

४—वही, अष्टम उच्छ्वास, पृ० ३२६-३३०

राजा के चले जाने और 'गुप्त' के बन्धन से स्वयं गुप्ति नामक कुलपुत्र द्वारा मुक्त होने तथा राज्यवर्धन की मृत्यु सुनकर बिना भोजन किये हुए विन्ध्यटवी में अति दुःख से चिता-प्रवेश तक सम्पूर्ण वृत्तांत विस्तार के साथ सुनाया ।^१

पति-पुत्र-विहीना और अबला-विधवा के लिये संसार में अवलम्ब ही क्या है? या तो एक सत्यव्रता सती की भांति चिता में जल मरे, अथवा काषाय वस्त्र ही ग्रहण (सन्यास) करे । राज्यश्री को चिता से बचायी जाने पर केवल दूसरा ही मार्ग शेष बचा था । परन्तु भाई का प्रेम-युक्त अनुरोध था कि भाई के अपकारियों और हत्यारों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा पूर्ण होने के बाद ही दोनों भिक्षु जीवन अपनायेंगे ।^२ कुछ काल बाद हर्ष बहन को लेकर वापस चल पड़ा और कुछ पड़वों के बाद उसकी सेना जान्हवी (गंगा) के तट पर आ गई (कटकमनुजान्हवि निविष्टं प्रत्याजगाम्) ।^३ सूर्य भगवान भी अस्त हो गये और इसके साथ ही हर्ष-चरित और उनके 'सम्पूर्ण द्वीपों पर विजय प्राप्त करने की'^४ कथा का वक्ता बाण भी । अस्तु नरेन्द्र-विजय भी निशा के अन्ध-कार में विलीन हो गई ।

परन्तु ऊपर के विवरण से ऐसा ज्ञात होता है कि मालव-राज देव गुप्त को भण्डि पूर्णरूपेण पराजित कर चुका था । गौड़-शासक भी कन्नौज से शीघ्र चला गया था (कान्यकुब्जगौडसंभ्रमं)^५, जैसा कि राज्यश्री ने हर्ष को बताया था । अस्तु कान्यकुब्ज शत्रुओं से मुक्त था क्योंकि राज्यश्री की प्राप्ति

१—“भुक्तवांश्च बन्धनात्प्रभृति विस्तरतः स्वसुः कान्यकुब्जाद्गौडसंभ्रमं गुप्ततो गुप्तनाम्ना कुलपुत्रेण निष्कासनं निर्गतायाश्च राज्यवर्धनमरणश्रवणं श्रुत्वा चाहारनिराकरणमनाहारपराहतायाश्च विन्ध्याटवीपर्यटनखेदं जातनिर्वेदायाः पावकप्रवेशोपक्रमणं यावत्सर्वमशृणोद्व्यतिकरं परिजनतः ।”
हर्ष च०, ८वां उच्छ्वास, पृ० ३३१

२—“अस्माभिश्च भ्रातृवधापकारिरिपुकुलप्रलयकरणोद्यतस्य बाहोविधेयैभूत्वा सकललोकप्रत्यक्षं प्रतिज्ञा कृता ।” इयं तु ग्रहीष्यति मयैव समं समाप्तकृत्येन काषायाणि । हर्ष च०, ७०, ८, पृ० ३३६

३—वही, ७०, पृ० ३४०

४—वही, ७०, पृ० ३४२ : “सकलद्वीपजिगीषाचलिताय श्वेतद्वीपदूत इव चायत्या, श्वेतभानुरुपानीयत निशया नरेन्द्रायेति ।”

५—वही, ७०, पृ० ३३१

के बाद हर्ष वहीं जाकर राजा हो गया। हर्ष ने भण्डि को भी केवल गौड पर ही आक्रमण करने का आदेश दिया था। इसलिये यही सिद्ध होता है कि थानेश्वर से लेकर कन्नौज तक हर्ष का प्रतिद्वन्द्वी नहीं बचा था। केवल उसका प्रबल रिपु गौड शासक शशांक ही अपने राज्य में शासन कर रहा था। राज्यश्री की प्राप्ति और हर्ष को उसके साथ कन्नौज वापस आना इतिहास की एक महत्व पूर्ण घटना है। यहीं से कान्यकुब्ज का उत्कर्ष प्रारम्भ होता है। इसका प्रारम्भ वहाँ हर्ष का आधिपत्य और कन्नौज का उसकी राजधानी होना ही है।

महोदय

बाण हमको 'अनुजान्हव' (अनुगंग) देश में पहुँचा कर छोड़ देते हैं। परन्तु उनकी काव्य-कथा में उल्लिखित संकेत अवश्य मिलता है। बाण कहते हैं कि सम्पूर्ण पृथ्वी की विजयेच्छा से चले हुए हर्ष राज्यश्री के साथ (कान्य-कुब्ज) में श्वेतद्वीप के दूत के समान लक्ष्मी के साथ युग के दोषों (कलिदोषों) को दूर कर उसे सतयुग बनाने के लिये उद्यत राज्य-मुद्रा के सहित शासन पर आदि राज के समान प्रतिष्ठित हुए।^१ यही कान्यकुब्ज का महोदय (उत्कर्ष) था और इसीलिये महोदय स्वयं कन्नौज का नाम पड़ गया।

राजशेखर काव्यमीमांसा में हर्ष की कीर्ति को बढ़ाने वाली कान्यकुब्ज की ऊँचे ऊँचे शिखरों वाली प्रासाद-पंक्तियों की ओर संकेत करते हैं जिनके शिखरों पर पताकएँ फहरा रहीं थी :—

हर्षस्य सप्तभुवनप्रथितोत्कीर्तः ।

प्रासादपङ्क्तिरियमुच्छिखरा विभाति ॥

काव्यमीमांसा, अ० १७, पृ० ६०/१०-१३

इसीलिये कान्यकुब्ज महागृहोदय (वराह पु०, १६२-२) कहलाया और आगे चल कर इसे ही लोग महोदय कहने लगे (देखिये, अवस्थी, स्टडीज इन वराह पुराण, पृ० १७)।

चीनी यात्री युअनच्चांग भी कान्यकुब्ज का ही गुण गान करता है। वह बताता है कि "उस समय कन्नौज में वैश्य राजा राज्य करता था जिसका नाम हर्षवर्धन था।.....दो पीढ़ियों में तीन राजा हुए—राजा का पिता

१—ह०च०, उ०८, पृ० ३४२ :—

निजकुल कीर्त्या कृतयुगकरणोद्यतायादिराजराजतशासनमुद्रानिवेश इव राज्यश्रिया, सकलद्वीपजिगीषाचलिताय श्वेतद्वीपदूत इव चायत्या, श्वेतभानु-रूपानीयत निशया नरेन्द्रायेति ॥

प्रभाकरवर्धन और राजा का बड़ा भाई राज्यवर्धन । राज्यवर्धन ज्येष्ठ होने के कारण राजा हुआ । इसी समय कर्णसुवर्ण, (प्राच्य भारत) के राजा शशांकने ही एक सभा में (राज्यवर्धन) को मार डाला । इसी समय अनाथ प्रजा और पीड़ित देश की दशा देखकर सुयोग्य मंत्री भण्डी और अन्य मन्त्रियों ने मिलकर हर्ष से राज्य पद पर शासन करने और सभी शत्रुओं से इसकी रक्षा करने के लिये कहा । हर्ष भी लोकमत की अवहेलना न कर सका तथा बोधि सत्त्व से भी प्रेरणा प्राप्त करने पर वह कान्यकुब्ज का शासन अपने हाथों में लेने के लिये तैयार हो गया । बोधिसत्त्व ने यह भी आदेश दिया कि कर्णसुवर्ण के राजा शशांक ने बौद्ध धर्म को बहुत ही क्षति पहुँचाई थी । अतः हर्ष का यह कर्तव्य ही था कि वह इस धर्म के उन्नयन का प्रयत्न-प्रचार करे । ऐसा करने से वह शीघ्र ही 'पंच भारत' का अधिपति हो जायगा ।^१ इस प्रकार का युअनच्चांग स्थाण्वेश्वर के स्थान पर कान्यकुब्ज का ही महत्त्व बतलाता है ।

तत्कालीन राजनीति और शासकीय आवश्यकताओं ने ही थानेश्वर के बजाय कान्यकुब्ज को राजधानी के अधिक उपयुक्त बनाया । कान्यकुब्ज महादेश की पूर्वी सीमाएँ गौड़ की पश्चिमी सीमा के सन्निकट थीं । अस्तु शत्रु-पराभव के लिये आवश्यक ही था की उत्तरी भारत की राजधानी कन्नौज ही बने । इसीलिये ऐसा हुआ भी ।

दिग्विजय

अभिलेख, हर्षचरित और चीनी यात्री के विवरण एक मत से हर्ष के सार्वभौम स्वरूप का विशेष रूप से उल्लेख करते हैं । परन्तु वह इस पद पर किस तरह पहुँचा हर्षचरित के अभाव में किसी भी साक्ष्य से स्पष्ट ज्ञात नहीं होता है । इसीलिये हर्ष की दिग्विजय के विषय में हमें अंधकार और विवाद में फँसना पड़ता है ।

गौडाधिप शशांक

हर्षचरित से भी नहीं ज्ञात होता है कि भण्डि ने गौड़ जाकर क्या किया । युअनच्चांग भी मौन है कि कर्णसुवर्ण के अत्याचारी शासक शशांक को हर्ष ने किस प्रकार दंड दिया जैसा कि उसे बोधिसत्त्व ने आदेश दिया था । युअनच्चांग से ज्ञात होता है कि हर्ष पूर्व की ओर बढ़ा और उसने लगातार युद्ध करते हुए ६ वर्षों में 'पंच भारत' पर आधिपत्य स्थापित कर लिया । हर्षचरित की भांति मंजुश्री मूलकल्प भी बताता है कि हर्ष एक विशाल सेना

लेकर पूर्व देश की ओर बढ़ा। परन्तु हर्षचरित शशांक विजय पर मौन है। संभवतः बाण अपने ग्रन्थ को आठवें उच्छ्वास तक ही लिख सका।

परन्तु मंजुश्रीमूल कल्प से ज्ञात होता है कि राज्यवर्धन (रकाराद्य) का भाई हर्ष, जो अत्यन्त पराक्रमी वीर था, महान् सेना को लेकर पूर्व देश की ओर सोम नामक प्रसिद्ध राजा को पराजित करने चला। वह पुण्ड्रनगर तक गया और क्षात्र धर्म का आश्रय लेते हुए उसने घोर युद्ध किया।^१ इस युद्ध में हर्ष ने दुष्ट सोम नाम के राजा को पराजित कर उसे अपने ही प्रदेश में प्रतिष्ठित कर दिया और उसको अपने राज्य की सीमा के बाहर जाने को मना कर अपनी विजय से संतुष्ट होकर वापस लौट आया।^२ इससे सिद्ध होता है कि जिस भीषणता और तैयारी के साथ हर्ष ने अधम गौड नरेश को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी, वह उतनी सफल न हो सकी। इसमें अवश्य ही कोई कारण है जिसके फलस्वरूप शशांक (सोम) नामक राजा केवल अपने देश तक ही सीमित रखकर छोड़ दिया गया। डा० स्मिथ का विचार है कि शशांक ६१६-६२० ई० तक शासन करता रहा।^३ डा० बसाक भी इसका

१—मं०मू०क०, भाग, ३, पृ० ६३४/१८-२५ :—

तस्याप्यनुजो हकाराख्य एकवीरो भविष्यति ।
महासैन्य समायुक्तः शूरः क्रान्त विक्रमः ॥
निर्धारये हकाराख्यो नृपति सोमविश्रुतम् ।
वैश्यवृत्तिस्ततो राजा महासैन्यो महाबलः ॥
पूर्वदेशं तदा जग्मुः पुण्ड्राख्यं पुरमुत्तमम् ।
क्षत्रधर्मं समाश्रुत्य मानरोषमशीलिनः ॥
घृणी धर्मार्थको विद्वां कुर्यात् प्राणिबधं बहून् ।
सत्त्वानुपीडनपरो निग्रहायैव सो रतः ।

२—वही, पृ० ६३४/२६-२७, पृ० ६३५/१-२ :

पराजयामास सोमाख्यं दुष्टाकर्मानुचारिणम् ।
ततो निषिद्धः सोमाख्यो स्वदेशेनावतिष्ठतः ॥
निवर्तयामास हकाराख्यः स्लेच्छराज्ये मपूजितः ।
तुष्टकर्मा हकाराख्यो नृपः श्रेयसा चार्थधर्मिणः ॥
स्वदेशेनैव प्रयातः यथेष्टगतिनापि वा ।”

३—स्मिथ, अ०हि० इ०, पृ० ३५२

अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि मंजुश्री मूलकल्प में उल्लिखित गौड आक्रमण हर्ष के ६०६ ई० में राज्यारोहण, कुछ ही बाद हुआ होगा ।^१

पुनः भास्करवर्मन की निधनपुर-लिपि से ज्ञात होता है कि इस लेख के समय गौड राजधानी कर्णसुवर्ण, जहाँ से यह आज्ञापत्र घोषित किया गया था, भास्करवर्मन के अधिकार में था । “प्रश्न होता है कि कैसे और कब भास्करवर्मन का कर्णसुवर्ण पर अधिकार हुआ ।…………महामहोपाध्याय पी० यन भट्टाचार्य का विचार है कि ताम्रपत्र के दानोल्लेख के समय हर्ष और भास्करवर्मन दोनों ही मित्र कर्णसुवर्ण में वहाँ से गौड नरेश को निकाल देने के बाद विजयोत्सव मना रहे थे ।^२ परन्तु डा० बसाक इतना अवश्य मानते हैं, जैसा कि भट्टाचार्य ने प्रतिपादित किया, कि दोनों मित्र-राजाओं का कर्णसुवर्ण पर अधिकार स्थायी नहीं सिद्ध हुआ और शशांक ने अपनी राजधानी पर पुनः अधिकार कर लिया और उसकी मृत्यु के बाद ही वहाँ हर्ष का अधिकार हुआ हो ।”^३

डा० बसाक का कहना है कि “संभवतः पहले आक्रमण में भास्करवर्मन हर्ष का साथ नहीं दे सका । कुछ समय बाद दोनों ही मित्रों ने या तो स्वयं शशांक अथवा उसके उत्तराधिकारी को पराजित कर गौड पर अधिकार कर लिया ।…………सभी संभावित तथ्यों पर विचार करने के बाद यही विचार उचित जान पड़ता है कि शशांक की मृत्यु के बाद ही द्वितीय आक्रमण में हर्ष ने उसके राज्य को जीत कर मित्र भास्करवर्मन को दे दिया जिसको (गौड-कर्णसुवर्ण) उसने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया ।”^४ डा० मजुमदार का मत है कि हर्ष की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी पर चीन-आक्रमण में भास्करवर्मन ने चीनियों की सहायता की और इस घटना के बाद ही वह पूर्वी भारत का सम्राट बन बैठा तथा गौड की राजधानी का अधिकारी हो गया ।^५ डा० मुकर्जी^६ और डा० त्रिपाठी^७ भी यही मानते हैं । परन्तु डा०

१—बसाक, हि० ना० ई० ६०, पृ० २२५

२—वही, पृ० २२६

३—वही, पृ० २२६

४—वही, पृ० २२६-२२७

५—डा० आर० सी० मजुमदार, ‘ऐन्शेन्ट इन्डिया’, बनारस १९५२, पृ० २७१

६—डा० राधाकुमुद मकर्जी, हर्ष, पृ० ७३ ।

७—हिस्ट्री आफ कनौज, पृ० १०३ ।

बसाक इसे न मानते हुए कहते हैं कि “क्या हमारे पास कोई ऐसा प्रमाण है जो हर्ष और भास्करवर्मन की अमित्रता और सन्धि-विच्छेद का प्रमाण हो। ६४३ ई० तक भास्करवर्मन हर्ष का मित्र ही बना रहा।^१ विवादास्पद दशा में निश्चित रूप से सत्य क्या है नहीं कहा जा सकता। सभी कुछ संभव है, परन्तु निश्चित निष्कर्ष निकालना अटकल मात्र है।

इतना निश्चित है कि ६१६ ई० तक जबकि गंजाम लेख में वह महान उपाधियों से विभूषित (महाराजाधिराज) बताया गया है, एक महान शासक बना रहा। परन्तु रोहतासगढ़ की मुद्रा में ही उसे महासामन्त भी कहा गया है। इससे ऐसा ही ज्ञात होता है कि आरम्भ में, जैसा मंजुश्री मूलकल्प और इसके आधार पर डा० बसाक मानते हैं, शशांक एक सामन्त के रूप में ही शेष रह गया था। परन्तु संभव है कि पुनः हर्ष को दूसरी ओर व्यस्त देखकर उसने स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया हो। तभी हर्ष को दूसरा अभियान करना पड़ा। युअनच्वांग की वहाँ यात्रा के समय शशांक का अस्तित्व मिट चुका था। अस्तु यही मत अधिक समीचीन लगता है।

‘युवनच्वांग के जीवन चरित’ से ही ज्ञात होता है कि कोंगद देश (गंजाम, उड़ीसा प्रदेश) पर भी हर्ष ने ६४३ ई० के आस-पास आक्रमण किया था। पहले यह भी गौड़शासक का ही प्रभाव-क्षेत्र था।

हर्ष ने गौड़ राज्य से निबट कर (पहले आक्रमण के बाद) पश्चिमी भारत की राजनीति में भी हस्तक्षेप किया। मालवा पहले ही उसके अधिकार में आ चुका था। इसके ही समीप सटा हुआ गुर्जर देश था जो (गुर्जरप्रजागरः) प्रभाकरवर्धन की शक्ति का भी अनुभव कर चुका था। गुर्जर भूमि से सटा हुआ वलभी राज्य था।

युअनच्वांग से ज्ञात होता है कि पश्चिमी मालवा (मोलापो) में चीनी यात्री के आने के पूर्व शिलादित्य नामक कुशल राजा राज्य करता था। इस शिलादित्य की पहचान वलभी राजवंश के शिलादित्य धर्मादित्य से की गई है। युअनच्वांग के समय वलभी पर ध्रुवभट्ट या ध्रुवसेन राज्य कर रहा था। इसने पश्चिमी मालवा पर भी अधिकार कर लिया था। इसे भी हर्ष का आक्रमण सहना पड़ा और ध्रुव भट्ट ने गुर्जर के शासक दद् से सहायता ली। वलभी शासक की भौगोलिक स्थिति और सैनिक शक्ति के कारण हर्ष ने उसके

साथ अपनी कन्या का विवाह कर उसे अपना मित्र बना लिया ।^१ इस प्रकार इस क्षेत्र में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद उसने दक्षिणी भारत पर भी आक्रमण किया । दक्षिणापथ के द्वार-खंड में चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय शासन कर रहा था । इसी दक्षिणापथ-शक्ति के साथ युद्ध करने के लिये हर्ष को वलभी-गुर्जर शक्तियों के साथ कूटनीति से काम लेना पड़ा । पुलकेशिन शक्तिशाली शासक था, अतः गुर्जर और वलभी के शासक उसके प्रभाव में थे । हर्ष अच्छी तरह जानता था कि दक्षिण पर आक्रमण करने के पूर्व गुर्जर और विशेष कर वलभी शक्ति के साथ अवश्य युद्ध करना पड़ेगा । पुलकेशिन भी गुजरात को अपने ही प्रभाव अधिकार में रखना चाहता था । गुर्जर का राजा दद के नवसारी लेख में बताया गया है कि “श्री हर्ष देव से पराजित वलभी राजा को गुर्जर शासक ने बचाया था ।”^२ इससे स्पष्ट ज्ञात होता है वलभी नरेश हर्ष से पराजित हुआ और उसने गुर्जर-राजा दद से सहायता ली थी । परन्तु यह संकेत किया जा चुका है कि वलभी की भौगोलिक और सैनिक स्थिति इस प्रकार थी कि उसकी शत्रुता और मित्रता दक्षिण पर आक्रमण करने वाले राजा को सहायता अथवा बाधा पहुँचा सकती थी । इसीलिये हर्ष ने वलभी नरेश को वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा अपना मित्र बना लिया । संभवतः ये घटनाएँ ६३३ ई० के आस-पास घटित हुई ।

पुलकेशिन द्वितीय

पुलकेशिन द्वितीय चालुक्य वंश का प्रतापी-प्रवीर था जिसका पिता कीर्तिवर्मन उसे छोटी उमर में ही छोड़कर मर गया था । इस लिये वह चचा मंगलेश के संरक्षण में राजा हुआ । इस समय मंगलेश ने मालवा, गुजरात और खानदेश पर आक्रमण किये थे । इससे चालुक्यों का उस भूखंड से घनिष्ठ राजनैतिक संबन्ध परिलक्षित होता है । हर्ष भी उधर बढ़ा था । अतः दोनों साम्राज्यवादी शक्तियों में संघर्ष होना भी स्वाभाविक ही था ।

१—विशेष विवरण के लिये देखिये स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, चतुर्थ संस्करण

मुकर्जी : हर्ष

त्रिपाठी : हिस्ट्री ऑफ कनौज

मजूम दार : ‘क्लासिकल एज’ (भारतीय विद्याभवन)

२—“श्रीहर्षदेवाभिभूतो श्री वलभीपति परित्ताणोपजातः भ्रमददभ्रविभ्रम-यशोवितानः श्री ददः ।”

जब पुलकेशिन द्वितीय बड़ा हुआ तब उसके चचा ने उसे राज्य से वंचित करना चाहा; क्योंकि मंगलेश पुलकेशिन द्वितीय के बजाय अपने पुत्र को राजा बनाना चाहता था। पुलकेशिन चचा के चंगुल से निकल कर स्वयं अपनी बुद्धि और शक्ति से मंगलेश को युद्ध में मार कर सम्राट बन बैठा। चारों ओर राज्य में फैले हुए विद्रोहों को दबा कर उसने शत्रुओं का दमन किया। शीघ्र ही उसने अपनी शक्ति और प्रभाव को दक्षिणी भारत पर जमा लिया। हर्ष की बढ़ती हुई शक्ति 'दिग्विजय घोषणा' से भयभीत होकर, लाट, मालव और गुर्जर देश के राजाओं को पुलकेशिन की सहायता लेने के लिये बाध्य किया। इससे सिद्ध होता है कि पुलकेशिन एक पराक्रमी, और बुद्धिमान तथा रणदक्ष शासक था।

जब हर्ष ने पुलकेशिन द्वितीय पर आक्रमण किया तब चालुक्य सम्राट ने हर्ष को नर्मदा के तट पर बुरी तरह पराजित किया। उसकी सेना के बहुत से हाथी पुलकेशिन द्वितीय द्वारा बन्दी बनाये गये। युअनच्वांग के जीवन-वृत्तांत से ज्ञात होता है कि शिलादित्य राजा (हर्ष) अत्यंत सैनिक शक्ति और सैनिकों के कौशल पर फूलता हुआ इस राजा (पुलकेशिन) के विरुद्ध जालड़ा। परन्तु न तो उसे हरा ही सका और न उसे बन्दी ही बना सका।" पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल लेख में बताया गया है कि "हर्ष के पाद-पद्म सामन्त-चूड़ामणि मुक्ताओं से सुशोभित थे और स्वयं उन्होंने अदम्य शक्ति से पुलकेशिन द्वितीय पर आक्रमण किया। परन्तु उसके भीषण हाथी युद्धभूमि में पराजित हुए।" दूसरे स्थल पर यही अभिलेख बताता है कि यह युद्ध विन्ध्य पर्वत और नर्मदा के निकट ही हुआ था। कई अभिलेखों में हम पुलकेशिन को 'सकलोत्तरापथेश्वर' श्री हर्षवर्धन को पराजित करने के कारण 'परमेश्वर' की उपाधि ग्रहण करते हुए पाते हैं।^१ पुलकेशिनद्वितीय की यह विजय भी उसकी शूरता और बुद्धि तथा सैनिकों और सामन्तों की स्वामिभक्ति पर आधारित थी। डा० मुकर्जी का विचार है कि प्रजा का चरित्र और शासन ही, जिसका हमें परिचय युअन-च्वांग से मिलता है, इस विजय का मूल कारण था।

इस प्रकार हर्ष की दिग्विजयी सेना यहां पर पराजित हुई और इसी समय संभवतः सुअवसर जानकर शशांक फिर स्वतन्त्र हो गया जिससे हर्ष को पुनः उधर जाना पड़ा। इस समय दोनों ही मित्र शक्तियाँ—हर्ष और भास्कर

वर्मन—ने गौड़ राज्य को ध्वस्त कर दिया। इस गौड़ विजय के बाद ही सम्राट, संभवतः, कोंगद भी गया था। कूछ भी हो यहीं से उसकी विजय-क्रीड़ा समाप्त होती है।

यद्यपि हर्ष-चरित से उसकी विजयों का पूर्ण वर्णन नहीं प्राप्त होता है परन्तु बाण हर्ष की सार्वभौम सत्ता (सर्वद्वीपभुजो हर्षात्) का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि “उसके (राज्य और चरित्र) सम्बन्धी बहुत सी आश्चर्यजनक घटनाएं सुनी जाती हैं। उसने घूमती हुई राजाओं की शक्ति को सेना से जीतकर स्थिर बना दिया। प्रजापति (मनु) के समान सम्पूर्ण पृथ्वी पर कृपा की अथवा शेष राजाओं को अपना वशवर्ती बनाया। उसने सिन्धुराज अर्थात् वरुण को जीतकर राजलक्ष्मी को अपना वशवर्ती बनाया। उसने बलि के समान राजद्वेषी महानाग का भी उद्धार किया। कुमार का राज्याभिषेक-कर उसे सिंहासन पर बिठलाया। हर्ष ने यहां (अत्र) अर्थात् अपने राज्य में कुमार को अभिषिक्त किया। उसने एक ही प्रहार से शत्रुओं का दमन कर अपनी शक्ति को प्रसारित किया, मानों नरसिंह ने ही अपने हाथों से शत्रुओं का विदारण कर अपने विक्रम का परिचय दिया। हर्ष ने ही दुर्गम तुषार-शैल (हिमालय) में स्थित देश को करदीकृत राज्य बनाया। उसने सम्पूर्ण दिशाओं में देश-विभाग कर उनके रक्षक लोकपाल नियुक्त किये। सम्पूर्ण पृथ्वी के ब्राह्मणों को भूमि बांट दी। इस प्रकार हर्ष ने ऐसे महान कार्यों को किया जिनसे तत्कालीन देश और हर्ष-कालीन-युग प्रारम्भिक सतयुग—सुख-समृद्धि और शान्ति का युग—ही मालुम पड़ने लगा।^१

उपर्युक्त उद्धरण महाराज हर्ष के शासन-काल की विचित्र और विलक्षण बातें हैं जिन पर आधुनिक इतिहासकारों ने कम ही ध्यान दिया है। श्री गौरीशंकर चटर्जी का विचार है कि महाराज हर्ष के संबन्ध में सुनी हुई अलौकिक बातों का वर्णन करते हैं। उस पद में कुल ६ वाक्य हैं और प्रत्येक में श्लेष है। उनमें से प्रत्येक वाक्य हर्ष की किसी विजय-विशेष की ओर संकेत करता है।^२ वे वाक्य इस प्रकार हैं:—

१—“अत्र बलजिता निश्चलीकृताश्चलन्तः कृतपक्षाः क्षितिभृतः।

२—“अत्र प्रजापतिना शेषभोगिमंडलस्योपरिक्षमाकृता।”

३—“अत्र पुरुषोत्तमेन सिन्धुराजम् प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीया कृता।”

४—अत्र बलिना मोचितभूभृद्वैष्टनो मुक्तो महानागः।”

१—हर्ष च०, पृ० १३८-१३९

२—हर्ष वर्धन-गौरीशंकर चटर्जी, (प्रयाग १९५०) पृ० ६६

५—“अत्र देवेनाभिषिक्तः कुमारः” ।

६—“अत्र स्वामिनैकप्रहार प्रपातितारातिना प्रख्यापिता शक्तिः” ।

७—“अत्र नरसिंहेन स्वहस्तविशसितारिणा प्रकटीकृतो विक्रमः” ।

८—“अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गया गृहीतो करः ।”

९—“अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः”

सकल भुवनकोशश्चाग्र्यजन्मनां विभक्त इति ।”^१

चटर्जी महोदय कहते हैं कि “ऊपर के ये सभी वाक्य द्वयर्थक हैं । एक अर्थ हर्ष के पराक्रम से संबंध में रखता है और दूसरा किसी पौराणिक घटना से । हर्ष के पराक्रम के सम्बन्ध में इन वाक्यों का अर्थ इस प्रकार होगा :—

१—“शत्रु सेनाओं के विजेता (हर्ष) ने अनेक राजाओं को उनके मित्रों अथवा सहायकों को छिन्न-भिन्न करके उनके राज्यों में अचल बना दिया ।”

२—“उस प्रजापति ने सब राजाओं और सरदारों को क्षमा कर दिया (और उन्हें शासन करने की अनुमति प्रदान की) ।”

३—“पुरुषों में श्रेष्ठ उन्होंने (हर्ष ने) सिंधु के राजा को पराजित करके उसकी धन संपत्ति को अपने अधिकार में कर लिया ।”

४—उस बली ने उसके (गजके) वेष्टन (सूँड़ की लपेट) से राजा (कुमार) को मुक्त करके महागज को वन में छोड़ दिया ।”

५—“प्रभु ने कुमार (एक राजा) को अभिषिक्त किया ।”

६—“स्वामी ने एक ही प्रहार में शत्रु को गिराकर अपनी शक्ति का परिचय दिया ।”

७—“उन्होंने (अर्थात् हर्ष ने) जो पुरुषों में सिंह की भांति थे अपने ही हाथों से शत्रुओं को काट कर अपने पराक्रम को प्रकट किया ।”

८—“उस ‘परमेश्वर’ ने हिमाच्छादित दुर्गम पर्वतीय प्रदेश से कर ग्रहण किया ।”

९—“सब लोगों के रक्षक (हर्ष) ने दिशाओं के ‘मुख’ अर्थात् (सीमा स्थान) में लोकपाल नियुक्त किया ।”^२

इन वाक्यों के अनुवाद में नवें वाक्य का आधा हिस्सा बिना अर्थ दिये हुए ही छोड़ दिया ऐसा क्यों ? संभवतः इस प्रमाद का कारण उनके विचार से इन पदों कोई विशेष प्रयोजन नहीं था । वे कहते हैं कि हर्ष के सुदूर विस्तृत आधिपत्य के समर्थकों ने इस पद का बहुत अधिक आश्रय लिया है । किंतु

१—हर्ष चरित, उ० ३, पृ० १३८-१३९

२—गौरीशंकर चटर्जी, हर्षवर्धन, पृ० १००

वास्तव में उपरोक्त वाक्य आलंकारिक उद्गारमात्र हैं; उनके सहारे हम किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सकते ।” इस प्रकार कुछ अन्य अटकल करते हुए बाण की ऐतिहासिक शक्ति पर भी सन्देह करते हैं । अपनी अज्ञाता को छिपाने के लिये और साधन ही क्या हो सकता है ? यहाँ पर इतना ही कहना आवश्यक है कि इन वाक्यों की समास शैली में बाण ने हर्ष के ‘आश्चर्य युक्त, विचित्र और अमर राजत्व’ (चित्रमिदम् अत्यमरं राजत्वं)^१ का स्पष्ट वर्णन कविशक्ति द्वारा किया है । इन्हीं पदों के पूर्व भी बाण प्रसिद्ध प्राचीन राजाओं—पुरुषवा, नहुष, ययाति, सुद्युम्न, सोमक, मान्धाता, पुरुकुत्स, कुवल्याश्व पृथु, नृग, सौदास, नल, दशरथ, कार्तवीर्य, शांतनु, पांडु, युधिष्ठिर आदि—के शासन-कालों का कोई न कोई दोष, जिससे उनका अन्त हुआ, बताने के बाद कहते हैं :—

‘इत्थं नास्ति राजत्वमपकलङ्कमृते देवदेवादमुतः सर्वद्वीपभुजो हर्षात् ।’^२ अर्थात् सतयुग से लेकर कलियुग तक राजाओंका (हर्ष के समान) कलङ्क रहित राजत्व नहीं था । यह ही नहीं इसमें और भी बहुत सी विचित्र बातें थी (अस्य हि बहून्याश्चर्याणि श्रूयन्ते) । उपर्युक्त ‘६ पदों, में ही ये आश्चर्यमय कार्य बताये गये हैं जिनका भावार्थ भी पहले ही दे दिया गया है । इन वाक्यों से हर्ष के पराक्रम और उससे विजित सामन्त वर्ग तथा शासन व्यवस्था और धार्मिक नीति पर प्रकाश पड़ता है । पहले ही बताया गया है कि तत्कालीन राजनैतिक अवस्था दलबन्दी से दूषित थी । स्वार्थों से प्रेरित होकर ही मित्रता होती है और दल बनते हैं । गोसाँई तुलसीदास जी ने भी सनातन नीति के सिद्धांत का उल्लेख किया है । :—

जेहि तैं कछु निज स्थारथ होई ।

तेहि पर ममता कर सब कोई ॥

पन्नगारि असि नीति श्रुतिसम्मत सज्जन कहहि ।

अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ॥^३

इसी कारण मौखरियों और पुण्यभूतियों, गौड़ और गुप्तों तथा हर्ष और भास्करवर्मन की मित्रता हुई थी । अस्तु पहले वाक्य में यही बताया गया है कि हर्ष ने इस दलबन्दी की नीति (कृतपक्षः क्षितिभृतः) का अन्त उन राजाओं को पंगु बनाकर किया । ऊपर कहा गया है कि मंजुश्री मूलकल्प के आधार पर

१—हर्ष चरित, उ०३, पृ० १३८

२—हर्ष चरित, उ०३, पृ० १३८

३—रामायण, उत्तर कांड दो० ६५ (क)

हर्ष ने शशांक को पराजित कर उसे अपने ही देश में सीमित कर उसे अपनी सीमा से बाहर न जाने का आदेश दिया था। इसी को स्पष्ट करते हुए दूसरे वाक्यों में बताया गया है कि उसने स्पष्टतः ऐसे दुर्धर्ष शत्रु और गौड के समान दुष्ट राजाओं को भी क्षमा कर दिया। क्षमा ही बौद्ध धर्म का भूषण है और यही, क्षमा, धर्म पृथ्वी का भी है जो स्वयं शेष मंडल पर सधी हुई है। तीसरे वाक्य से हर्ष की सिंधु विजय मानी गयी है। परंतु इससे बाण का तात्पर्य सिन्धुराज वरुण को पराजित कर राज-लक्ष्मी पर अधिकार करना है। भास्करवर्मन ने हर्ष को वारुण छत्र (वरुण का छत्र अथवा वरुण देश से लाया गया छत्र) की भेंट दी थी। वारुण (बोर्नियो) भी अठारह द्वीपों (द्वीपान्तर) का एक अंग है। इसी विजय से उसकी सर्व-द्वीपों का भोक्ता (सर्वद्वीपभुजः) संज्ञा सिद्ध होती है। समुद्रगुप्त का भी पराक्रम 'सर्वद्वीपों' से कर लेने पर भी सिद्ध हुआ था। हर्ष को भी अठारह द्वीपों का स्वामी कहा गया है, यद्यपि इसमें अतिशयोक्ति है। चौथे वाक्य में नाग-मोचन की कथा विष्णुद्वारा गजोद्धार का स्मरण कराकर हर्ष के पराक्रम को विष्णु-तुल्य बताया गया है। भाष्यकार एक कहानी बताता है कि पागल हाथी से सूड़ में लपटे एक राजा (श्री कुमारो नाम राजा दर्पशतेनोपजातिमदेन हस्तिना वेष्टितः) को हर्ष ने बचाया था। राजकुमारों और राजाओं का यह वीर-कार्य इतिहास का प्रिय कथानक है। अकबर ने भी ऐसा किया था। परन्तु यहाँ 'बलि' 'अमृत' और 'नाग' के कई माने होने के कारण इस पद का स्पष्ट अर्थ कुछ कठिन है।

पाँचवें वाक्य में कुमार के अभिषेक की बात बताई गई है। यहाँ पर यह कुमार न तो आसाम के राजाभास्कर वर्मन से ही, जो कुमार कहलाता था, तात्पर्य है और न कार्तिकेय से ही जो शक्ति और शौर्य के अधिष्ठाता देवता है। यहाँ पर कुमार-अभिषेक बोधिसत्त्व मंजुश्री के ही लिये कुमार का प्रयोग किया गया है, जिन्हें भी कुमार की प्रथित संज्ञा और स्वरूप मिला था। आर्य मंजुश्री मूलकल्प स्वयं कहता है—

अत एव हि जिनेन्द्रैस्तु कुमार परिकल्पितः ।

मंजुघोषो महाप्राज्ञः बालदारकरूपिणः ॥^१

हर्ष कुमारमंजुश्री नामक बोधिसत्त्व का उपासक अवश्य था। टीकाकार ने कुमार को कुमारगुप्त (कुमारः कुमारगुप्ताख्यः) बताया है। सम्भवतः हर्ष ने

मालवा में कुमारगुप्त का अभिषेक किया था । छठे पद में स्वामी कुमार कार्तिकेय का ही परिचायक है जैसा कि उनके आयुध शक्ति से भी सिद्ध होता है । यहाँ शत्रु-दमन करने में हर्ष की तुलना स्वामी कार्तिकेय से की गई है । इसी प्रकार अगले पद में नरसिंह से तुलना की गई है जिन्होंने अपने ही हाथों से किसी आयुधादि की सहायता लिये बिना ही शत्रु का संहार कर दिया । आठवीं बात में कहा गया है कि परमेश्वर (शिव) ने हिमालय-पुत्री दुर्गा (पार्वती) का कर ग्रहण किया अर्थात् उनसे विवाह किया । परमेश्वर हर्ष की भी उपाधि थी । अतः यही परिलक्षित होता है कि हर्ष ने किसी हिमालय में स्थित देश की राजकन्या से विवाह किया । अन्य विद्वानों ने इससे काश्मीर अथवा नैपाल-विजय की चर्चा अतिविस्तार से की है ।

नवां वाक्य अति महत्वपूर्ण है । इस वाक्य में दो बातें बतायी गयीं हैं—

१—अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः;

२—सकल भुवन कोशश्चाग्र्यजन्मनां विभक्त इति ।

दूसरा वाक्य स्पष्टतः हर्ष द्वारा ब्राह्मणों को भूमिदान का उल्लेख करता है । पहले वाक्य में यदि दिशाओं में अथवा उनके मुख (सीमा स्थान) में लोकपालों की नियुक्ति का ही उल्लेख होता तो वह 'मुखेषु' शब्द का व्यर्थ प्रयोग न करता । यह अर्थ तो केवल दिशाओं के ही उल्लेख से सिद्ध होता । परन्तु बाण ने 'मुखेषु' द्वारा महान ऐतिहासिक घटना का प्रतिपादन किया है । यह वाक्य इस प्रकार रखा जा सकता है :—

अत्र दिशां लोकनाथेन मुखेषु लोकपालाः परिकल्पिताः ।

इस प्रकार लोकनाथ हर्ष और लोकपाल (गोप्ताओं, गर्वनरों) का भेद भी स्पष्टतः ज्ञात होता है जिन्हें उसने (हर्ष ने) मुख जनपद में नियुक्त किया था । परन्तु क्या कोई इस नाम का देश अथवा राज्य था ? यह मौखरि (मुखर) राज्य ही था जहाँ ग्रहवर्मन की मृत्यु के बाद हर्ष को लोकपाल नियुक्त करने पड़े थे । यह बहन का राज्य था इसीलिये वह इसको अपने अधिकार में लेने से झिझकता था; परन्तु देश काल की परिस्थितियों ने उसे विवश कर दिया था । विष्णुधर्मोत्तरम् से ही ज्ञात होता है कि मध्य देश में मुखों का एक जनपद था । इसी देश के नायक मुखर ने मुखर वंश को उसी प्रकार प्रतिष्ठित किया जिस प्रकार पुण्यभूति ने पुण्यभूति-वंश की स्थापना की । इस प्रकार इन सभी पदों में एक कौतूहल था जिनसे हर्ष का राजत्व अपूर्व और अमर बन गया ।

साम्राज्य विस्तार

इस प्रकार हर्ष चरित के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि हर्ष का राज्य एक विशिष्ट युग था जिसे 'कृत युग' (अर्थात् स्वर्ण युग) कहा गया है। बाण के अनुसार ही हर्ष अर्जुन आदि पाण्डवों, रघु और मान्धाता के समान महान विजेता था। उसकी दिग्विजय—चारों दिशाओं की विजय—विशाल शक्ति और महान सैन्य बल पर आधारित थी। हर्ष चरित के अतिरिक्त मञ्जुश्री मूलकल्प भी हर्ष के पराक्रम और सैन्य बल की उन्नता को स्वीकार करता है। उसके सोने के सिक्कों पर उसे "परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री महाराज हर्ष देवो"^१ कहा गया है हर्ष चरित के अनुसार भी वह 'परमेश्वर' था और उसके विजेता शत्रु ने भी उसको 'परमेश्वर' मानते हुए अपने को 'अपर परमेश्वर' माना। दूसरे स्थान पर भी बाण कहता है कि हर्ष मान्धाता-प्रवर्तित दिग्विजय-पथ का अनुसरण करते हुए रघु के समान अप्रतिहत-रथ सम्राट बन गया, जिसने अपने धनुष के सहारे चारों दिशाओं को जीत कर सम्पूर्ण राजचक्र को अपना 'करद सामन्त' बना लिया।^२ अस्तु हर्ष को उत्तरी भारत का प्रभु न मानने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता।

बाण ने हर्ष की विजयों की तुलना पाण्डवों की विजयों से करते हुए बताया है कि उत्तर में चीन-विषय, गन्धर्वों का राज्य (गन्धार), हेमकूट (कैलास), हिमालय, आसाम (जहाँ का राजा भगदत्त था), सिन्धुनाथ, आदि राजाओं को जीतकर राजसूय यज्ञ की गई थी। बाण पुनः कहते हैं कि किम्पुरुष-राज्य, स्त्री-राज्य, तुषारगिरि-प्रदेश (हिमवन्त प्रदेश) किष्कु-तुरुष्क विषय (काश्मीर—जहाँ कनिष्क वंशीय तुरुष्क कुषाण शाही राज्य करते थे), पारसीक-देश, पारियात्रप्रदेश (जहाँ प्रतिहारों का शासन था) और दक्षिणापथ में मलय, महेन्द्र तथा समुद्र तट तक विजय प्राप्त की गयी थी।^३

महाभारत से हमें ज्ञात होता है कि युधिष्ठिर ने अपने भाइयों द्वारा जीते गए सम्पूर्ण भारतवर्ष पर सार्वभौम राज्य स्थापित किया और पराजित

१—प्रो० के० डी० वाजपेयी, जर्नल नुमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, जिल्द २८, १९६६, भाग १, पृ० ६८

२—ह० च०, उ० ७, पृ० २८७

३—वही, पृ० २८८

राजा राजसूय यज्ञ में भेंटें (उपायन) लेकर राजधानी में आये थे ।^१ इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि पराजित राजाओं का अस्तित्व करद राजाओं की भांति बना रहा । ये राजा उनके सामन्त ही थे । “प्रत्येक राजा सम्राट पद प्राप्त करने का इच्छुक था । राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञ भी इसी अभिप्राय से किए जाते थे । परन्तु इस साम्राज्यवाद का ध्येय अन्य राज्यों के अस्तित्व को समाप्त करना न था । विजयी सम्राट की प्रभुता-मात्र स्वीकार कर लेना पर्याप्त था ।

अधीनस्थ राजा सामन्त रूप से अपने-अपने राज्यों में पूर्ववत् शासन करते रहते थे । सामन्त शासकों की उपाधि राजन् थी और उनके स्वामी की उपाधि सम्राट । सभा पर्व के निम्नोक्त वाक्य का यही अभिप्राय है :—

गृहे गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियंकराः ।

न च साम्राज्यमाप्तास्ते सम्राट् शब्दोहि कृत्स्नभाक् ॥

सामन्त शासकों को अपने राज्य के आन्तरिक शासन में पूर्ण स्वतन्त्रता थी, परन्तु उन्हें सम्राट् को निर्धारित कर तथा विशिष्ट अवसरों पर उपहार और भेंट देना पड़ता था ।^२

दिग्विजय यात्रा के पूर्व ही हर्ष ने भी हिमालय से लंका तक और उदयाचल से अस्ताचल तक यह घोषणा करवा दी थी कि सभी राजा हर्ष के प्रभुत्व को मानकर उसे कर प्रदान करें और जो उसकी (हर्ष की) प्रभुता स्वीकार करने से इनकार करें, वे उससे युद्ध के लिए तैयार रहें । इसी घोषणा के परिणाम स्वरूप कामरूप के राजा भास्करवर्मन ने हर्ष के साथ सन्धि करते हुए उनके प्रभुत्व को स्वीकार किया था ।^३ हर्ष चरित से स्पष्ट ज्ञात होता है कि चक्रवर्ती हर्ष के बहुत से सामन्त^४ राजा थे जो उसकी सेना में उसके साथ चल रहे थे । निस्सन्देह हर्ष उत्तरी भारत का सार्वभौम सम्राट् था । स्मिथ महोदय का कथन सत्य ही है कि “उनके शासन काल के पिछले वर्षों में मालवा, गुजरात और सौराष्ट्र के अतिरिक्त हिमालय से लेकर नर्मदा तक गंगा की सम्पूर्ण घाटी में जिसमें नैपाल भी शामिल था, हर्ष का आधिपत्य निर्विवाद रूप से स्थापित था ।”^५ पन्निकर महोदय भी मानते हैं

१—सभापर्व, अ० ५१-५२

२—महाभारत में राज्य-व्यवस्था, पृ० २४७-४८

३—ह० च०, उ० ७, पृ० २८६-२८७

४—वही, उ० ७, पृ० २७१, २८०, २८१, २८२, २८५

५—अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३५४

कि “हर्ष के साम्राज्य में सम्पूर्ण उत्तरी भारत और नैपाल भी सम्मिलित था।”^१ डा० राधाकुमुद मुकर्जी का मत है कि “हर्ष के साम्राज्य में कुछ प्रदेश तो ऐसे थे जिनपर कान्यकुब्ज नरेश हर्ष स्वयं प्रभु रूप में शासन करते थे और कुछ प्रदेश ऐसे थे जिनपर उनका प्रभाव था और वहाँ के शासक उनके प्रभुत्व को मानते थे।”^२

परन्तु डा० आर० सी० मजूमदार इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि “जब प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन शैशवास्था में था, तब विद्वानों ने ह्वेनसांग और बाण भट्ट के विवरणों को मानकर हर्ष को एक महान सम्राट तथा हिन्दू भारत का अन्तिम साम्राज्य-निर्माता मान लिया था। परन्तु मैंने इस मत की सत्यता पर सन्देह किया और अन्य विद्वानों ने भी मेरे विचारों को मानना शुरू किया।”^३ डा० रमाशंकर त्रिपाठी ने डा० मजूमदार के मत को अक्षरशः स्वीकार करते हुए बताया कि “सकलोत्तरापथनाथ” पद से साधारणतया हर्ष का सम्पूर्ण उत्तरी भारत का राजा होना माना जाता है। परन्तु उत्तरापथ की यह व्याख्या समुचित नहीं है। क्योंकि इसका प्रयोग प्रायः अस्पष्ट रेखाओं को व्यक्त करता है तथा इसका तात्पर्य हिमालय और विन्ध्य पर्वतों के बीच की भूमि से ही सर्वथा नहीं है। युअनच्चांग के वृत्तान्त का सतर्क विश्लेषण भी यही सिद्ध करता है कि हर्ष का राज्य-विस्तार इस परिमाण से कहीं अधिक सीमित था। युअनच्चांग ने अपने समकालीन स्वतन्त्र राष्ट्रों का उनके आधीनस्थ राज्यों के सहित वर्णन किया है। ये निम्नलिखित थे :—

कपिश, काश्मीर, जालन्धर, वैराट, मथुरा, मातीपुर, (विजनौर जिले में मण्डावर), सुवर्णगोत्र का देश, कपिलवस्तु, नैपाल, कामरूप (आसाम), महाराष्ट्र, भड़ौच, वलभी, गुर्जर देश, उज्जैन, बुन्देलखण्ड, महेश्वरपुर (ग्वालियर प्रदेश) और सिन्ध। प्रमाणतः ये स्थान हर्ष के शासनाधिकार से बाहर थे। इसके विरुद्ध युअनच्चांग उत्तर भारत के निम्नलिखित प्रदेशों के शासन के सम्बन्ध में सूक हैं :—

कुल्लु, शतद्रुदेश, (सरहिन्द), थानेश्वर, श्रुघ्न (सुघ), ब्रह्मपुर (गढ़वाल और कुमायूँ), गोविशान (काशीपुर, रामपुर तथा पीलीभीत के वर्तमान जिले),

१—श्री हर्ष ऑफ कन्नौज, पृ० २२

२—हर्ष, पृ० ३७

३—क्लासिकल एज, पृ० ११०

अहिछत्र (पूर्वी रूहेलखण्ड), विल्सड (एटाजिला), कपित्थ (संकिसा), अयुते (अयोध्या), ह्यमुख (रायवरेली, प्रतापगढ़), प्रयाग, कोशाम्बी, विशोक, श्रावस्ती, रामग्राम, कुशीनगर, वाराणसी, गाजीपुर जिला, वैशाली, ब्रज्जिदेश, मगध, मुंगेर, भागलपुर, राजमहल, पुण्ड्रवर्धन, समतट, ताम्रलिप्ति, कर्णसुवर्ण, वर्तमान गंजाम के साथ उड़ीसा ।

इन प्रदेशों की राजनीतिक स्थिति के सम्बन्ध में युअनच्वांग की चुप्पी सिद्ध करती है कि ये सम्भवतः हर्ष के राज्य में सम्मिलित थे ।”^१

उपर्युक्त मत की असत्यता इसी से सिद्ध होती है कि मंजुश्री मूलकल्प के अनुसार वाराणसी^२ और पुण्ड्रवर्धन^३ शशांक के राज्य में सम्मिलित थे । पुण्ड्रवर्धन उसकी राजधानी थी, जिस पर हर्ष ने आक्रमण किया था और शशांक को अपने देश पर शासन करने के लिए आदेश दिया ।^४

डा० त्रिपाठी ने डा० मजूमदार का अनुसरण करते हुए समसामयिक साक्ष्य हर्षचरित और मंजुश्री मूलकल्प की उपेक्षा तो की ही, उन्होंने युअनच्वांग के विवरणों पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया । चीनी यात्री के विवरणों का विवेचन करते हुए कनिंघम कहते हैं कि “सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग की यात्रा के समय भारत ८० राज्यों में विभक्त था, जो स्वतन्त्र शासकों द्वारा शासित थे । उनमें से अधिकांश बड़े-बड़े राज्यों के करद राज्य थे । इस प्रकार उत्तरी भारत में काबुल, जलालाबाद, पेशावर, गजनी, और बन्नू, कपिश के शासक के आधीन थे । पंजाब में तक्षशिला, सिंहपुर, उरस, पूंछ और रजौरी के पहाड़ी प्रान्त कश्मीर के राजा के आधीन थे; जब कि संपूर्ण मैदानी भाग जिसमें मुलतान और शोरकोट भी शामिल थे तकी, या सांगल.....के आधीन था । पश्चिम भारत में विभिन्न प्रान्त सिन्ध, वलभी और गुर्जर के राजाओं में बंटे हुए थे । मध्य और पूर्व देश में वे सभी राज्य जो स्थानेश्वर नगर से लेकर गंगा के मुहाने तक और हिमालय से नर्मदा तथा महानदी की घाटी तक बसे थे कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के आधीन थे । पंजाब का सबसे पूर्वी प्रान्त जालन्धर भी उसी के आधीन था । बहुत संभव है कि तकी या पंजाब का मैदानी भाग भी कन्नौज के ही आधिपत्य में था ; क्योंकि चीनी यात्री

१. त्रिपाठी, प्राचीनभारत का इतिहास, पृ० २२५

२. मं०मू०कल्प, भाग ३, पृ० ६३४/७

३. वही, ६३४/२२

४. वही, ६३५/४-५

बताता है कि हर्षवर्धन अपने राज्य से काश्मीर की पहाड़ियों तक वहां के राजा को बुद्ध का दांत उसे देने के लिये दंडित करने गया था। दक्षिण भारत में महाराष्ट्र का राजपूत राजा ही एक ऐसा शासक था जिसने सफलता पूर्वक हर्ष की प्रभुता का विरोध किया। कई चालुक्य अभिलेखों से भी यही सिद्ध होता है। यह शक्तिशाली राजा भिन्न-भिन्न ३६ राज्यों का सार्वभौम प्रभु था जिनको मिलाकर लगभग आधा भारतवर्ष जिसमें सबसे उपजाऊ और सम्पन्न प्रान्त सम्मिलित थे। उसके स्वामित्व का स्वरूप इसी बात से स्पष्ट है कि कम से कम अठारह करद राजा हर्ष के धार्मिक-उत्सव के समय ६४३ई० में उसकी सेवा में संलग्न थे। काश्मीर, महाराष्ट्र और गंजाम प्रदेशों में भी उसके अभियान हुए। ईसा के सातवीं सदी के पूर्वार्ध में इन सीमाओं से घिरे क्षेत्र में वह सार्वभौम सम्राट था।^१

मंजुश्री मूल कल्प स्पष्ट बताता है कि राज्यवर्धन मध्यदेश का श्रेष्ठ नृप था जिसका भाई हर्ष शूर और एक वीर पराक्रमी था। उसने महासैन्य बल से पुण्ड्रवर्धन पुर (उत्तरी बंगाल) तक पूर्व देश को जीतकर अपना कर्तव्य करने के बाद प्रसन्न होकर (तुष्टकर्मा) स्वदेश में लौट आया। उसका मुख्य कर्म शशांक का पराभव था जिसमें वह सफल हुआ।^२ शशांक, जो कभी महाराजाधिराज था, वह अब केवल महासामन्त ही रह गया था। यह कर्म करके ही हर्ष कृतार्थ हो गया। इस प्रकार हर्ष उत्तरी भारत का परमेश्वर-शासक था। बाण भी विभिन्न दृष्टांतों से यही बताते हैं। कई बार हर्ष की समता मान्धाता से की गयी है जो एक महान् विजेता और चक्रवर्ती सम्राट था। अतः स्पष्ट है कि हर्ष एक चक्रवर्ती सम्राट था (चक्रवर्तिनं हर्षं)^३ जिसका अधिकार चारों समुद्रों से घिरी पृथिवी पर था—

सोज्यं सुजन्मा सुगृहीतनामा तेजसां राशिश्चतुस्रदधिकेदारकुटुम्बी भोक्ता ब्रह्मस्तम्भफलस्य सकलादिराजचरितज्येष्ठमल्लोः देवः परमेश्वरो हर्षः।^४

यद्यपि इस प्रशस्ति में अतिशयोक्ति है। परन्तु राष्ट्र में एक ऐसी परम्परा ही बन गयी थी जिसे हम समुद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि की प्रशस्तियों में देख सकते हैं।

१—ऐ० ज्या०, पृ० ११-१२

२—मं० सू० क०, भाग ३, ६३४/१४-२७, ६३५/१-५

३—ह०च०, पृ० १२०

४—वही, पृ० १२०-१२१

डा० त्रिपाठी उत्तरापथ को आर्यावर्त का परिचायक नहीं मानते हैं। परन्तु उनके इस बिचार में कोई तर्क नहीं है। भारतवर्ष के दो मुख्य भाग हैं—दक्षिण और उत्तर^१। इन दोनों ही भागों में दो परमेश्वर हर्ष और पुलकेशन द्वितीय सम्राट थे। डा० त्रिपाठी के अनुसार “हर्ष के पैतृक राज्य में थानेश्वर, सरस्वती की घाटी, और पूर्वी राजपूताना के कुछ भाग थे जिसमें कन्नौज के मौखरि प्रदेश जुड़ जाने से उत्तर प्रदेश तथा मगध के भी कुछ भाग शामिल हो गये। मगध के ऊपर उसका अधिकार उसके विरुद्ध ‘मगध का राजा’ से भी प्रमाणित है……। बांसखेड़ा और मधुबन के दानपत्रों से प्रमाणित है कि अहिच्छत्र और श्रावस्ती उसके साम्राज्य की भुक्तियाँ थीं। उड़ीसा के ऊपर उसका स्वत्व जीवन-वृत्तान्त (हुइली) से सिद्ध है। पूर्व में हर्ष ने कर्जंगल (राजमहल) में दरबार किया था जिससे उस प्रदेश का भी उसके शासन में होना जाहिर है। अतः युअनच्वांग के वृत्तान्त, अभिलेखों तथा साहित्यिक सामग्री के आधार पर हम कह सकते हैं कि हर्ष के राज्य में आधुनिक उत्तर प्रदेश (मथुरा और मातीपुर को छोड़) कर बिहार, बंगाल तथा कोंगोंद अथवा गंजाम प्रदेश के साथ उड़ीसा शामिल थे।”^२

परन्तु उसके साम्राज्य में सम्पूर्ण मध्यदेश सम्मिलित था जिसका विस्तार सरस्वती नदी के तट से लेकर पूर्व में पुण्ड्रवर्धन^३ तक माना गया है। युअनच्वांग के समय भारत ७० प्रदेशों में विभक्त था और स्कन्द पुराण के अनुसार भारत ७५ प्रदेशों में बंटा था। युअनच्वांग के समय कान्यकुब्ज देश प्रायः मध्यदेश या आर्यावर्त का परिचायक हो गया था।^४ इसमें ३६ लाख ग्राम सम्मिलित थे।^५ इससे सिद्ध होता है कि कान्यकुब्ज एक विस्तृत साम्राज्य था।^६ सातवीं शताब्दी में कान्यकुब्ज देश का विस्तार ४००० ली या ६६७

१—विष्णु ध०, १/७/३० (२) : वर्षे द्वे चाथ गंस्थाने विज्ञेये दक्षिणोत्तरे ॥

विष्णु पुराण भी (४/२/१३-१४) उत्तरापथ और दक्षिणापथ का उल्लेख करता है।

२—प्राचीन भारत, पृ० २२५-२२६

३—बी०सी०ला, ज्याग्रेफिकल एसेज, पृ० १०—११

४—वाटर्स, युअनच्वांग, I, पृ० १५६

५—अवस्थी, स्टडीज इन स्कन्दपुराण पार्ट वन, पृ० २६,

६—वही, पृ० ३१

मील था ।^१ हर्ष की प्रभुता राजशेखर के समय में भी अति प्रसिद्ध थी । उसके अभिलेख और सिक्के भी उसके प्रभुत्व के साक्षी हैं । वाटर्स उसे हिन्दू युग का अकबर मानते हैं ।^२

हर्ष का शासन प्रबन्ध

ऊपर विजयों के सम्बन्ध में बताया गया है कि हर्ष कृत-युग (सतयुग) बनाना चाहता था । सत्य तो यही है कि राजा ही युग निर्माता होता है; चाहें वह अपने युग को सतयुग बना दे और चाहें वह उसे कलियुग बना दे । हर्ष चरित स्पष्ट कहता है कि राजा ही स्वर्ण-युग का निर्माता होता है (कारणमिव कृतयुगस्य)^३ । हर्ष-पूर्व भारत कलियुग था । अतः उसे सतयुग में बदलने का उसका संकल्प महान आदर्श था । उसके शासन प्रबन्ध पर हर्ष चरित, युअनच्वांग के विवरण, अभिलेख और मंजुश्री मूलकल्प महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं । सभी साक्ष्यों से यही सिद्ध होता है हर्ष-राज्य अकलंक था ।

राजधर्म

राजत्व पुण्यगुणों का फल माना जाता था । हर्ष के चरित, व्यक्तित्व और शुभ कर्मों की सराहना करते हुए बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ने कहा था कि उसके सत्कर्म ही उसे राजा बनाने के लिये प्रमाण थे और वह इसीलिये राजत्व को स्वीकार करे ।^४ हर्ष चरित के अनुसार तो वह साक्षात् धर्म का ही अवतार था (धर्मः प्रत्यक्षो देव) ।^५ वह दुःखी लोगों के दुखों को दूर करने वाला (दुःखितजनातिहराय)^६ और प्रजा के कष्ट को दूर कर उनका भली भाँति पालन करने वाला तथा इसके लिये जनप्रिय अधिकारियों की भी नियुक्ति की; क्योंकि प्रजा ने प्रजा-पीड़क अधिकारियों की भी निन्दा की थी ।^७ इस प्रकार स्पष्ट है कि हर्ष का युग नीतिशास्त्र की प्रथित शासनपद्धति पर आधारित था ।

१—वाटर्स, I, पृ० ३४०; कनिंघम, ऐ० ज्या०, पृ० ३१७

२—वाटर्स, I, पृ० ३५१

३—ह०च०, पृ० ११६

४—वाटर्स, युअनच्वांग, I, पृ० ३४३

५—ह०च०, उ० ७, पृ० २८६

६—वही, पृ० ३२७

७—वही, पृ० २८६

राज्यांग^१

प्राचीन हिन्दू विचार धारा के अनुसार राज्य एक मर्यादा है। इसके सात अंग होते थे और हर्ष चरित में भी अमात्य आदि राज्यांगों का उल्लेख मिलता है (राज्यांगान्यमात्याद्य)।^२ मंत्र (मंत्री), कोश और सेना राजधर्म के प्रमुख सहायक अंग थे (मंत्रकोशसाधनप्रवृत्तस्परराजधर्मस्य)^३।

मृत्युशय्या पर पड़े प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को राजधर्म का जो उपदेश दिया वह प्राचीन भारतीय राजधर्म का सार है। दुःखी पुत्र को स्वस्थ होने के लिये प्रभाकरवर्धन ने परिपालनोपदेश दिया—

महासत्त्व

“पुत्र दुःखी न हो। तुम्हारे समान महासत्त्व वाले पुरुषों के योग्य यह शोक करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। महासत्त्व-धारियों में तुम प्रमुख हो; और तुम्हीं लोक-अवलम्ब हो। राजवंशोचित सत्त्वधारी लोकनाथ के लिये व्याकुल होना ठीक नहीं है।

कुलप्रदीप पुरुषसिंह

सूर्य के समान तेजस्वी तुम कुल-प्रदीप हो। शौर्य, पटुता और प्रज्ञा से युक्त पराक्रम वाले (शौर्यपटुप्रज्ञोपबृंहितपराक्रमस्य) पुरुष-सिंह हो। यह पृथिवी तुम्हारी ही है और लक्षणों से भी तुम चक्रवर्तीपद के योग्य हो। इसलिये श्री द्वारा बरे गये तुम श्री को अपनाओ (गृह्यतां श्रीरिति स्वमेय श्रिया परिगृहीतस्य)। उभयलोक विजेता इस लोक के अध्यक्ष बनो। हमारे कोश पर अधिकार करो और चन्द्र के समान निर्मल यश फैलाओ राजचक्र को स्ववश करो (आत्मीक्रियतां राजचक्रम्) और तुमने अपने गुणों से ही जगत को अपना लिया है (अर्थात् जगत ने ही तुम्हारे गुणों के कारण तुम्हें लोकनाथ मान लिया है)। राज्य-भार का वहन करो। प्रजा की रक्षा करो (प्रजा परिरक्ष्यन्तामिति) परिजनों का पालन करो। यह लोकपाल का कर्तव्य ही है। सतत शस्त्राभ्यास करना चाहिये। चपलता को रोको। शत्रुओं का पूर्ण रूप से दमन करो, जैसा तुम्हारे तेज का सहज स्वभाव है (निरवशेषतां शत्रवो नेया)। ऐसा कहते हुए प्रभाकरवर्धन ने आँखें सदा के लिए बन्द कर लीं।^४ इस उपदेश में राजधर्म

१—ह०च०, पृ० १७४

२—वही, टीकाकार शंकराय

३—वही, उ० ८, पृ० ३३४

४—वही, ३०५, पृ० २३३

का सार दिया गया है। इसके अनुसार नृप-गुणों^१ पर ही राजत्व की प्रतिष्ठा थी।

राजत्व का उद्भय

बाण राजा की दैवी उत्पत्ति पर विश्वास करते हुए बताते हैं कि सभी प्राणियों के आश्रय रूप राजा श्रीधर (विष्णु) से ही उत्पन्न हुए हैं—

सर्वभूताश्रया विश्वरूपप्रकारा इव श्रीधरादजायन्त राजानः।^२

विष्णु पुराण भी यही कहता है कि सभी राजा विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए हैं।^३

राजा के अभाव में भूमि अरक्षित रहती है (अनायकं साधनं मत्वा... भुवम्)^४। अराजक दोष से बचाने के लिये राजा की आवश्यकता होती है। इसीलिये ब्रह्मा ने धरती की रक्षा के लिये राजाओं (क्षत्रियों) को बनाया।^५

इस प्रकार हर्ष ऐसे महान शासक में राजगुणों की प्रधानता थी जिसके कारण उसके पिता और सामन्तों ने उसे राजपद के योग्य समझा। परन्तु ज्येष्ठ भाई के होते हुए उनकी अनुपस्थिति में हर्ष ने स्वप्न में भी अधिकार की ओर अपनी इच्छा न की। उसकी कर्तव्य-परायणता और भ्रातृ-भक्ति आदर्श थी जो उस युग में परमावश्यक थी। हर्ष में सभी गुण और चारित्रिक तथा शैक्षणिक योग्यताएं थीं जिनके कारण उसका अकलंक शासन सर्वप्रिय बन सका।

राज-कार्य

जब उसकी विजय-वाहिनी सेना जा रही थी तो प्रजा-जन उस प्रियदर्शन सम्राट हर्ष को देखने उमड़ पड़ती थी। यहीं पर जनता जब औत्सुक्य से दौड़ती थी तो लोग बहुत से खेतों को रौंदते हुए कृषि को हानि पहुँचाते जाते थे। किसान कुपित होकर राजा और राज्य के अन्य राज्याधिकारियों को कोसते हुए उनकी निन्दा करते थे :—

क्व राजा कुतो राजा कीदृशो वा राजेति^६।

१—ह०च०, उ० ६, पृ० २४१

२—वही, उ० ४, पृ० १७४

३—विष्णु पु०, १/२२/१६, २०

४—ह०च०, पृ० २५१

५—वही, पृ० २५६

६—वही, पृ० २८६

कहां राजा है ? (जो रक्षा करे);

किसलिये राजा है (जो रक्षा नहीं करता है); और किस प्रकार का राजा है (जो रक्षा नहीं कर सकता है) । इस प्रकार उन्होंने अरक्षक राजा की निन्दा (नरनाथनिन्द) की । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि राजा वही होने का अधिकारी समझा जाता था जो देश रक्षक हो—

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पृथिवीमनुपालयेत् ।

पालकस्य भवेद्भूमिः कीर्तिरार्युयशोबलम् ॥^१

जनता ने केवल राजा की ही निन्दा न की, स्थानीय शासकों और गर्वनरों की भी निन्दा की गयी । हर्ष ने इसीलिये 'परिपालकपुरुषों'—सस्य संरक्षण और प्रजापालन करने वाले अधिकारियों—की नियुक्ति की । इससे सिद्ध होता है कि हर्ष स्वयं प्रजा रक्षक था और वह अपने राजतंत्र में भी ऐसे ही प्रजा-पालक पुरुषों को भी नियुक्त करता था ।

यहीं पर विभिन्न अधिकारी पुरुषों के भी नाम मिलते हैं—ग्रामेयक, अग्रहारिक, महत्तर, भोगपति, आयुक्तक, चाट और परिपालकपुरुष ।^२ इससे सिद्ध होता है कि राज्य शासन की सुविधा के लिये छोटी-छोटी इकाइयों—ग्राम, विषय (अग्रहार), भुक्ति और प्रदेशों—में बंटा था । जहां राजा स्वयं अधिकारियों की नियुक्ति करता था । इस प्रकार स्पष्ट है कि "हर्ष एक प्रजा-रंजक और जन-हितैषी शासक था । उसका उद्देश्य सदैव प्रजा का हित-चन्तन और कल्याण उसका ध्येय ही था । राजपद का यह आदर्श हर्ष ने अपने नाटक 'नागानन्द' में इस प्रकार प्रस्तुत किया है : सम्पूर्ण प्रजा उचित मार्ग पर चल रही है । सत्पुरुष अपने अनुकूल मार्ग पर हैं । बन्धु-बान्धव मेरी तरह सुख-भोग कर रहे हैं । राज्य की सब प्रकार सुरक्षा निश्चित हो चुकी है । प्रत्येक नागरिक अपनी आवश्यकताओं को इच्छानुकूल ढंग से सम्पादित कर रहा है । यही तो राज्य का आदर्श है । बाण ने कादम्बरी में राजा शूद्रक के

१—अवस्थी, गरुण पुराण एक अध्ययन, पृ० ८३

२—ह०च०, पृ० २८६ इस उद्धरण पर डा० मुकर्जी, डा० त्रिपाठी गौरीशंकर चटर्जी आदि हर्ष पर लिखने वाले विद्वानों ने ध्यान नहीं दिया । यू०एन० घोषाल (क्लासिकल एज०पृ० ३५०) ने केवल भोगपति, आयुक्तक और प्रतिपालक पुरुष का उल्लेख किया है । शायद हर्ष च० का अंग्रेजी अनुवाद (टामस और कावल, १८६७) ही पढ़ा था । तभी उन्होंने इसे "Official-ridden village administration" कहा है ।

रूप में एक आदर्श राजा का चित्रण प्रस्तुत किया है। वह 'न्याय का अवतार' और 'प्रजा का कष्ट निवारक' कहा गया है। हर्ष चरित भी यही आदर्श प्रस्तुत करता है।^१

हर्ष बौद्ध विचारधारा से प्रभावित होकर बोधिसत्त्व की करुणा-मूर्ति था। इसी लिये राजाओं के प्रति क्षमा और पशु-रक्षा के धर्म को उसके शासन में स्थान था। उसने सम्पूर्ण राज्य (पंच भारतों) में पशुबध बन्द करा दिया था।^२ अशोक ने भी ऐसा किया था।

उन्हीं राजकुमारों और राजाओं के साथ उसकी मैत्री और गोष्ठी होती थी जो शीलवन्त थे और जो धार्मिक कार्य करते थे। इसके प्रतिकूल आचरण वाले लोगों के साथ वह व्यवहार नहीं रखता था।^३

इतना कोमल हृदय का होते हुए भी हर्ष शासन-व्यवस्था की मर्यादा की रक्षा करने में कठोर था (व्यवस्थास्थापननिष्ठुरें)^४ उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता था (अवन्ध्यशासनः शासनानाम्)।^५

राजधर्म के अनुसार शासन में दैनिक कार्य भी जन-हित भावना से ही करता था। राजकार्य के लिये दिन को तीन भागों में बांटा गया था। पहला भाग राज-कर्म और दूसरे तथा तीसरे भागों में वह जन-सम्पर्क तथा धार्मिक कार्य करता था।^६ इस प्रकार निस्सन्देह, जैसा डा० मुकर्जी ने कहा है, हर्ष के चरित्र में अशोक और समुद्रगुप्त के कुछ गुणों का समन्वय था। अशोक की भांति हर्ष भी 'अनुसंयान' (प्रजा-दर्शन की यात्राएं) करता था।^७

मन्त्री (सचिव-मण्डल)

राजतन्त्रीय शासन में मन्त्रियों का विशेष महत्व है। वे राजा को सहायता देते तथा उनको अच्छे-बुरे का ज्ञान कराते थे, जैसा कि हर्ष की भीषण प्रतिज्ञा के समय मन्त्री (सेनापति सिंहनाद) ने उसकी प्रज्ञा को जगाकर

१—डा० पांडे, प्राचीन भारत, पृ० ३१७

२—वाट्स, १/३४४

३—वही, १/३४४

४—ह०च०, पृ० २८१

५—वही, पृ० २७४

६—वाट्स, १/३४४

७—वही, १/३४४

पराक्रम से जोड़ा था। प्रज्ञा-शून्य-पराक्रम ही राजपूतों का दोष था। मंत्री ही राजा को दोषों से बचाता था।

राजा की नियुक्ति तथा निर्वाचन में भी मन्त्रियों का विशेष हाथ रहता था। कान्यकुब्ज के खाली सिंहासन को देखकर मन्त्रियों ने हर्ष को राज-पद ग्रहण करने के लिये अनुरोध किया था।^१

मन्त्रगुप्ति

मन्त्र-गुप्ति पर ही राजा और राज्य की सुरक्षा निर्भर करती है। नागसेन के नाश की कथा यही सिद्ध करती है। इसलिए सचिव-मण्डल को मन्त्र की रक्षा करना आवश्यक था (मन्त्र इव सचिवमण्डलेन रक्ष्यमाणे)।^२ इस प्रकार शासन में सचिवों^३ की भी विशेष महत्ता थी।

राजभृत्य

विभिन्न कोटि के राजभृत्य ही शासन की सहाय-सम्पत्ति हैं। राजा को सद्भृत्य दुर्लभ होते हैं (प्रथमं राज्यांगं दुर्लभाः सद्भृत्याः)।^४ देश के विभिन्न भागों में राज-रक्षक (अवनिपालपुरुष)^५ नियुक्त थे। अमात्य, पुरोहित, सेनापति, सान्धिविग्रहाधिकृत, अध्यक्ष, महत्तर, चाट, दूत, प्रतिहार, दौवारिक (द्वारपाल), नागवीथीपाल, उष्ट्रपाल, आदि केन्द्रीय शासन के प्रमुख अधिकारी थे जिनके नाम हर्ष चरित से प्राप्त होते हैं। सेना में भी विभिन्न अधिकारी थे। राजा ही सेना का प्रधान था।

अभिलेखों में भी अनेक अधिकारियों के उल्लेख मिलते हैं यथा साधनिक कुमारामात्य, उपरिक (भुक्ति का शासक=भोगपति), विषयपति या वैषयिक आदि। इन अधिकारियों से भी सिद्ध होता है कि पूर्व-प्रचलित शासन पद्धति ही हर्ष की भी व्यवस्था थी। गांवों का शासन ग्रामेयक के हाथों में था। शासन का मूलाधार प्रजा-सुख ही था।

सेना

देश में शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए सेना की आवश्यकता थी। युअनच्चांग ने चतुरंगिणी सेना—हस्ति, अश्व, रथ और पदाति का

१—वाटर्स, १/३४३

२—ह०च०, पृ० १६१

३—वही, पृ० १५१, १८६

४—वही, पृ० १६५

५—वही, पृ० २००

उल्लेख किया है। अश्ववार और धनुष विशेष महत्व रखते थे। सेना का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था।^२ चीनी यात्री ने हर्ष की विशाल सेना— ६०,००० हाथी और १,००,००० अश्व का उल्लेख किया है।^३ मंजुश्री मूलकल्प भी हर्ष की महासैन्य का उल्लेख करता है। अभिलेखों में भी नाव, हाथी और घोड़ों से युक्त सैनिक शिविरों (स्कन्धावार) का उल्लेख मिलता है। हर्ष चरित से ज्ञात होता है कि सैनिक अभियान (दण्ड-यात्रा) में सामन्त राजा भी भाग लेते थे।

इस प्रकार लोकपालोपम हर्ष ने समुचित शासन द्वारा ही देश में विषमता और अव्यवस्था को मिटाकर आदिराज पृथु की तरह अकलंक या धर्म-राज्य की स्थापना की थी। उसकी धार्मिक नीति सर्व-हित-कारी और उदार थी। अस्तु चीनी यात्री ने ठीक ही कहा है :—

Harsha had brought Five Indias under allegiance. Then having enlarged his territory he increased his army bringing the elephant corps upto 60,000 and the cavalry to 1,00,000 and reigned in peace for thirty years without a weapon. He was just in his administration and punctilious in the discharge of his duties. He forgot sleep and food in his devotion to good works.^४

कर-व्यवस्था

शासन प्रबन्ध और सेना की स्थिति धन (कोश) पर निर्भर था। इसी लिये कर लगाये जाते थे। ये कर साधारण थे जिन्हें प्रजा आसानी से दे सकती थी। उपज का षष्ठांश (छठैयाँ = १/६ भाग) कर लिया जाता था। चीनी यात्री ने भूमि (से प्राप्त कर और राजस्व) को चार प्रकार का बताया है :—

१—राज्य के व्यय के लिये,

२—कर्मचारियों और जनकल्याण के लिए,

१—वाटर्स, १/१७१

२—वही, १/१६६

३—वही, १/३४३-३४४

४—वही, १/३४३-३४४

३—उपहार और विद्यार्थियों के लिए तथा

४—धार्मिक कार्यों के लिए निश्चित था ।^१

इससे ज्ञात होता है शासन के सभी पक्षों पर समान रूप से व्यय किया जाता था ।

पिता प्रभाकरवर्धन के आदेशानुसार हर्ष ने शत्रुओं का दमन कर प्रजा को सुखी और राष्ट्र को सशक्त बनाया । उसने 'एक-राज्य' की स्थापना कर इतिहास में अपना स्थान बना लिया । सेन्ट हिलेरी ने भी 'ह्वेनसांग के विवरण' के आधार पर कहा है :—

Shiladitya, king of Kanyakubja (Central India) had succeeded his elder brother, who had perished a victim to the treachery of a neighbouring prince jealous of his military talents. He devoted himself to the happiness of his people.^२

हर्ष कालीन धार्मिक सभाएं

बौद्ध धर्मावलंबी होते हुए भी हर्ष अत्यन्त शक्तिशाली सम्राट था । कन्नौज की धार्मिक-सभा भी उसकी शक्ति, शासन-क्षमता और सार्वभौम-पद का ज्वलंत उदाहरण है । डा० मुकर्जी कहते हैं :—

"With his suzerainty thus achieved Harsha was able to reign in unbroken peace for more than thirty years..... During these years he achieved triumphs of peace which were not less than his triumphs of war. Thus his reign.....wasquite eventful in point of religion and culture. One of this latter class of events was the convocation of a religious assembly at Kanauj for the purpose of giving publicity to the doctrines of Mahayana."

Harsha, p. 75.

अस्तु स्पष्ट है कि कन्नौज की धार्मिक सभा का उद्देश्य महायान-धर्म की प्रतिष्ठा करना था । युअनच्वांग ने इसकी विशद व्याख्या की थी और हर्ष इसके सिद्धान्तों का प्रचार चीनी यात्रा की अध्यक्षता में ही करना चाहता

१—बाटर्स, १/१७६

२—ह्वेनसांग इन इण्डिया, पृ० ७६

था। अतः 'पंचभारतो' (सम्पूर्ण भारत) के ब्राह्मण-श्रमण और विद्वान-विचारक आमन्त्रित किये गये।

सम्राट हर्ष भी युअनच्वांग और आसाम के सम्राट तथा अन्य सामन्तों के साथ कन्नौज की महासभा में पधारे। बड़ी धूमधाम के साथ गंगा के तट पर महोत्सव-समाज आयोजित किया गया। अठारह राजा (अठारह द्वीपों के राजा ?) सम्राट और अतिथि का स्वागत करने को तैयार थे। ३००० महायान और हीनयान के भिक्षु, ३००० ब्राह्मण और जैन आचार्य तथा नालन्दा विश्वविद्यालय के १००० विद्वान सम्मिलित थे।

बैठने के लिये दो विशाल मंडप (घास, नरकुल और बाँस के बने हुए) तैयार किये गये थे। सभा-भवन में आदमकद स्वर्ण की बनी हुई बुद्ध की प्रतिमा सिंहासन पर प्रतिष्ठित की गयी थी।

धार्मिक सभा के प्रारम्भ होने के पहले एक विशाल जलूस निकाला गया जिसमें तीन फिट ऊँची बुद्ध-प्रतिमा को हाथी पर रख कर जन-समुदाय श्रद्धा के साथ आगे बढ़ा। एक ओर इन्द्ररूप में स्वयं हर्ष चंवर लिए हुए और दूसरी ओर ब्रह्मा के रूप में भास्करवर्मन चल रहे थे। पीछे दो हाथियों पर मोती और फूल लदे हुए थे जो लुटाए जाते थे। इसके पीछे युअनच्वांग हाथी पर सवार था। अन्य राजा और सामन्त भी हाथियों पर सवार पीछे-पीछे चल रहे थे।

जब जन-समूह सभा-भवन के पास पहुँचा तब सभी लोग हाथियों से उतर पड़े और बुद्ध की मूर्ति को सभा-मंडप में प्रतिष्ठापित कर वन्दना की गयी। हर्ष ने सभा का उद्घाटन किया और युअनच्वांग ने उस सभा का अध्यक्ष-पद ग्रहण किया। फिर अठारह (सामन्त) राजाओं ने प्रवेश किया। उनके बाद चुने हुए एक सहस्र विद्वान, पाँच सौ ब्राह्मण तथा बौद्धेतर धर्मानुयायी और अन्य बड़े-बड़े मन्त्री तथा दूत प्रवेश कराए गए। बुद्ध की पूजा के बाद महायान धर्म पर विचार-गोष्ठी प्रारम्भ हुई और यह सम्मेलन अठारह दिनों तक चलता रहा। युअनच्वांग के विचारों से प्रभावित होकर लोग महायान धर्म की ओर आकृष्ट हुए। यही इस सम्मेलन का उद्देश्य भी था। डा० मुकर्जी कहते हैं:—

“For the promotion of Mahayana Buddhism Harsha convoked a great religious assembly at Kanauj, to which

were invited the exponents of the different Indian religions to listen to the discourse of Yuan Chwang.”^१

परन्तु सभा-भवन के द्वार पर युअनच्वांग ने एक घोषणा लिखवा कर टंगवा दी थी—“यदि कोई व्यक्ति युअनच्वांग के भाषण में एक भी शब्द तर्क-विरुद्ध बताएगा, तो वह उसे अपना सर काट कर दे देगा ।” पांच दिन तक सभा का कार्य सुचारु-रूप से चलता रहा और सभा की शांति में कोई बाधा नहीं पड़ी । परन्तु इस घोषणा से ब्राह्मणों और ब्राह्मण-संस्कृति के उन्नायकों में रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था । परन्तु किसी भी प्रतिद्वंदी विचारक या वक्ता का साहस नहीं हुआ कि वह उसकी चुनौती को स्वीकार करे ।^२ स्मिथ महोदय का विचार है कि वाद-विवाद एकांगी था; विवाद की शर्तें न्याय-संगत न थीं । हर्ष इस बात पर तुले हुए थे कि उनका प्रिय अतिथि-वक्ता पराजित न हो ।^३ इसीलिए यह सत्य नहीं है कि “देयर वाज्र नन टु टेक अप दि चैलेन्ज ।”^४ सत्य यह है कि प्रतिवादी गण—ब्राह्मण और हीनयान के समर्थक—आतंकित थे और राजकोप के कारण कुछ न बोले । परन्तु इसका परिणाम कुछ और ही हुआ ।

युअनच्वांग की हत्या करने का षडयंत्र किया गया । इसका पता लगते ही हर्ष ने एक घोषणा-पत्र निकलवाकर यह सूचित किया कि यदि कोई व्यक्ति युअनच्वांग को चोट पहुँचायेगा तो उसे प्राण-दण्ड दिया जायगा और जो कोई उसके विरुद्ध कोई भी बात कहेगा उसकी ज़बान काट ली जायगी । किन्तु जो लोग उनके उपदेशों से लाभ उठाना चाहें, वे निर्भय रहें ।” इस घोषणा द्वारा राज-कृपा से सुरक्षित चीनी बौद्ध-विद्वान के विरुद्ध किसी ने कुछ न कहा । अठारह दिन बीत गए और अन्त में महायान-धर्म के माहात्म्य से सभा समाप्त होकर विसर्जित हो गयी । इस सभा से हीनयान सम्प्रदाय को भी ठेस पहुँची ।

१—मे० था०, पृ० १६६

२—ह्वेनसांग, पृ० ३३ : “Although this solemn challenge excited them, not one of the adversaries dared to address the meeting to contest the arguments of the Master of the Law.

३—अर्ली हि० इ०, पृ० ३६१

४—हि० क०, पृ० १५४

सी० यू० की०^१ के अनुसार युअनच्वांग की हत्या करने का कोई षडयंत्र नहीं रचा गया था। स्वयं सम्राट का बध करने का षडयंत्र अवश्य रचा गया था। घास के मंडप में आग लगा दी गयी और इससे उपद्रव उत्पन्न हो गया। हर्ष उस अग्नि-कांड को देखने के लिए एक ऊँचे बुर्ज पर चढ़ा। वहाँ से जब नीचे उतर रहा था, उस समय एक व्यक्ति ने छुरे से उस पर आक्रमण कर दिया। हर्ष ने स्वयं उसका दमन कर उसे बन्दी बना लिया। उस धूर्त व्यक्ति ने स्वयं स्वीकार किया कि उसे उसके विधर्मियों द्वारा सम्राट की हत्या करने के लिए नियुक्त किया गया था। उसने यह भी बतलाया कि सब इस बात से रुष्ट हैं कि राजा बौद्धधर्मावलम्बियों पर विशेष कृपा रखते हैं। षडयन्त्र के नायकों को प्राणदण्ड दिया गया तथा लगभग ५०० ब्राह्मणों को निर्वासित किया गया।

यह घटना तत्कालीन धार्मिक-कलह पर विशेष प्रकाश डालती है। गुप्त युग में जो धार्मिक-समवाय स्थापित हुआ था, वह गुप्त-युग के अवनति काल में समाप्त हो गया था। अन्तिम गुप्त-युग में बौद्ध धर्म की विशेष उन्नति हुई। परन्तु मौखरियों ने इस मोह को मिटा कर श्रुति-पथ की प्रतिष्ठा जमायी। वर्धन-सम्राट भी ब्राह्मण धर्मानुयायी बने रहे। परमसौगत राज्य-वर्धन, भिक्षु दिवाकरमित्र और युअनच्वांग के प्रभावों से हर्ष के हृदय में बौद्ध धर्म के लिए विशेष उत्साह जम गया और कनौज में इस महायान-सभा ने ब्राह्मणों के मन में असन्तोष तथा विद्रोह की भावना भर दी। आगे भी इसी लिये यह विरोध बढ़ता ही गया।

सम्मेलन के अन्त में हर्ष और उसके सामन्त राजाओं की बहुमूल्य भेंटों को युअनच्वांग ने लेने से इनकार कर दिया। अन्त में उसे हाथी पर बिठा कर जुलूस में निकाल कर महायान धर्म की विजय और चीनी बौद्ध-यात्री का गौरव घोषित हुआ।^१ इसके बाद ही 'महायानदेव' युअनच्वांग चीन वापस जाना चाहता था। परन्तु हर्ष के आग्रह पर प्रयाग की मोक्ष-परिषद को भी देखने के लिये रुक गया।

१. ह्वेनसांग, पृ० ३४ : "The Chinese Master of the Law has brilliantly established the doctrine of the Great Vehicle, and has reduced to nought all the errors of the sectaries. This great triumph shall be known to all men."

प्रयाग-मोक्ष-परिषद

गंगा-यमुना का संगम प्रयाग धर्म-क्षेत्र माना गया है। इसे ही सिद्ध क्षेत्र भी कहते थे।^२ अनेक राजाओं ने यहाँ धार्मिक क्रियाएँ कीं और प्रचुर दान दिये। यहाँ दान देने का विशेष महत्व है।^३ हर्ष भी यहाँ पंच-वर्षीय दानोत्सव करता था जिसे मोक्ष-परिषद कहा गया है। युअनच्वांग के समय यह छठा दानोत्सव था। इस दानोत्सव में भी सभी सामन्त राजा तथा चीनी यात्री सम्मिलित हुए थे। इसमें लगभग ५ लाख व्यक्ति शामिल हुए थे। विभिन्न सम्प्रदायों—ब्राह्मण, श्रमण, निर्ग्रन्थ—तथा निर्धन और दीन सम्मिलित हुए थे।

एक हज़ार फिट लम्बा और इतना ही चौड़ा एक प्रांगण था जिसके बीच में घास-फूस के झोपड़े बने हुए थे। इनके अन्दर बहुमूल्य निधियाँ—सोना, चाँदी, मणि, मोती, रेशमी और सूती वस्त्र आदि—जमा थे। इस हाते के बाहर भोजन करने के लिये स्थान बने हुए थे। विश्राम करने के लिये लगभग १०० बड़े-बड़े झोपड़े बने हुए थे जिनमें हर मंडप में एक हज़ार व्यक्ति सो सकते थे।

उत्सव के प्रारम्भ में एक विशाल जलूस निकला। पहले दिन एक अस्थायी भवन में बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गयी और बहुमूल्य वस्त्र आदि बाँटे गये। दूसरे तथा तीसरे दिन क्रमशः आदित्य देव (सूर्य) तथा ईश्वर देव (शिव) की मूर्तियाँ स्थापित की गयीं। परन्तु जितना दान पहले दिन दिया गया था उसका आधा ही सामान दूसरे और तीसरे दिन दान में दिया गया। चौथे दिन, बौद्ध-धर्म-संघ के चुने हुए दस हज़ार व्यक्तियों को दान दिया गया। उनमें से प्रत्येक को १०० सुवर्ण मुद्राएँ, एक सुन्दर मोती और एक अच्छे सूती वस्त्र के अतिरिक्त भोजन, शरबत, फूल और सुगंधित पदार्थ मिले। अगले बीस दिनों में राजा ने बहुत से ब्राह्मणों को दान दिया। बाद के १० दिनों तक बौद्धेतर व्यक्तियों को दान मिलता रहा। इसके बाद १० दिनों तक दान उन लोगों को मिलता रहा जो आमन्त्रित नहीं किये गये थे। अंत में एक मास तक कृपण, दीन, अनाथ और आतुर व्यक्तियों को दान दिया गया।

दान वितरण में सभी सम्पत्ति दे दी गयी। ऐसा बताते हैं कि सैन्य-बल के अतिरिक्त सभी कोश-राशि समाप्त हो गयी। हर्ष ने अपने आभूषणों—मोती, हीरा, आदि—को भी दे डाला। अब उसने अपनी बहन राज्यश्री से वस्त्र

२. मत्स्य पु०, १०९/१२

३. कूर्म पुराण, १/३५/४४-४८; मत्स्य पुराण, १०४/१३-२२, १०५/१०

लेकर ही धारण किये । इस प्रकार हर्ष ने त्याग-धर्म का आश्रय लेकर परमानन्द का अनुभव किया । हर्ष चरित भी 'सर्वस्वमहादान' का उल्लेख करता है । शायद बाण के मस्तिक में दान-सभा का दृश्य अंकित था:—

"The king gave away all his fortune. Heaps of wealth, like Kuvera's treasuries, were plundered by the folk on every side. The great festival ended....."^१

दिशि-दिशि कुबेरकोशा इवालुप्यन्त लोकेन द्रविणराशयः । एवं च वृत्ते तस्मिन्महोत्सवे..... ।^२

हर्ष की उपलब्धियाँ

श्री हर्ष इत्यवनिर्वातिषु पार्थिवेषु
नाम्नैव केवलमजायत् वस्तुतस्तु ।

गीर्हर्ष एष निज संसदि येन यज्ञा

सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः ॥ उ० सु० क०, पृ० २

पृथिवी के विद्यमान राजाओं में हर्ष का प्रभाव अत्यधिक था । वाणी (विद्या) के क्षेत्र में भी वह महान था, जिसने अपनी सभा में बाण को सुवर्ण दान से पूजा ।

कर्तव्य-परायणता

हर्ष महान् था और उसकी सहानता उसके व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित है संकटों और संघर्षों में उसका विकास हुआ । बड़े भाई की अनुपस्थिति में उसके पिता का देहान्त हुआ और मरने के पहले पिता प्रभाकरवर्धन ने उसे राज-पद ग्रहण करने का आदेश दिया था । परन्तु ज्येष्ठ भाई के होते हुए वह कैसे राज्य ग्रहण कर सकता था । उसके मन में लक्ष्मण और भीम का भ्रातृ-स्नेह तथा कर्तव्य-परायणता थी । ग्रहणमन के हत्यारे को मारने के लिये अर्थात् कर्तव्य करने के लिये भाई से बहस कर रहा था और भाई को उसकी बात न मानने पर हर्ष ने यही कहा कि वह चुपचाप भाई का अनुगमन ही करेगा ।

भाई की मृत्यु के बाद भी उसने राजसिंहासन को न सोच कर दुष्ट गौडाधिप को मार कर बदला लेना ही कर्तव्य समझा । सैनिक अभियान में भी जब उसे राज्यश्री का विन्ध्याटवी को चले जाने और खोजने वालों के न लौटने

१. काबेल-टामस, ह० च०, पृ० ११५ ।

२. हर्ष च०, उ० ४, पृ० १६१ ।

का समाचार मिला तो हर्ष की धर्म बुद्धि ने यही कहा कि औरों के जाने से क्या ?” यह सोच कर वह राज्यश्री की खोज के लिये चल पड़ा ।

इतना होने पर भी उसने राज्य बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के कहने पर ही ग्रहण किया । प्रजा-सुख भी उसका कर्तव्य ही था । जिसे स्वयं अपनी नींद और भूख की याद नहीं रहती थी । पिता की रुग्णता में उसकी दशा स्वयं बोधिसत्व की थी । एक पुत्र की भांति जो फुफककर रो पड़ा, वही आगे भी चल कर महाराज हर्ष दुखी लोगों के दुख दूर करने वाले हर्ष (=शिव) ही थे (आर्तिजनहराय हर्षाय) । इस प्रकार हर्ष एक आदर्श पुत्र, भाई और सम्राट था, जिसका धर्म और जीवन दूसरों के सुखों के लिये ही था । अशोक की भ्रातृ-भक्ति सन्दिग्ध है, परन्तु हर्ष के भ्रातृ-स्नेह का साक्षी बाण-कृत उसका इतिहास ही है ।

रण-दक्ष पराक्रमी शूर (एक वीर)

मंजुश्री मूलकल्प के लेखक की दृष्टि में^१ हर्षवर्धन एक महासैन्य-नायक तथा पराक्रमी और धर्म-विजयी सम्राट था जिसने उस अधम-पापी शशांक को पराजित करने के बाद भी उदारता से उसे सामन्त बना कर छोड़ दिया था । इसीलिए मंजुश्री मूलकल्प में उसे ‘एकवीरो...शूरः क्रान्तविक्रमः’ कहा गया है । ‘क्षत्रधर्म समाश्रित्य’^२—क्षत्रधर्म का अनुसरण करते हुए—उसने ‘एक-राज्य’^३ की स्थापना की जिससे वह ‘सार्वभूमिनराधिपः’ अर्थात् ‘सर्वत्र भूपतिः’^३—सार्वभौम सम्राट बन बैठा । इस पद को पाने के लिए उसे विजय करनी पड़ी ।

सार्वभौम सम्राट

वृद्ध मंत्री से अनुशिष्ट होकर हर्ष ने अपने युद्ध मंत्री अवन्ति को आदेश दिया—“लिखो कि पूर्व में उदयाचल से लेकर दक्षिण में त्रिकूट पर स्थित लंका तक, पश्चिम में अस्ताचल से लेकर उत्तर में गन्धमादन (हिमालय) तक बसे हुए सभी राजा लोग हर्ष के स्वामित्व को स्वीकार करें या उसके साथ युद्ध करने के लिये तैयार रहें ।” स्पष्टतः इससे हर्ष का चक्रवर्ती सम्राट बनने का उद्देश्य ज्ञात होता है । उसकी यह सार्वभौम शक्ति ‘सर्व द्वीपान्तर संचारी’ भी थी ।

१—मं० सू० क०, पृ० ६३४

२—हं० च० (नि०सा०प्रे०), पृ० ७१

३—मं० सू० क०, पृ० ६२६

अठारह द्वीपों वाली तथा चतुरन्त-धरा को जीतने के लिये हर्ष सेना के साथ निकल पड़ा। बाण ने इस अभियान का सुन्दर वर्णन दिया है। सेना और सम्राट को चिन्ता थी कि 'वाहीक-रक्षित-क्षेत्र'^१ नष्ट न हो जाय। सिन्धु और सतलज नदियों के बीच विस्तृत प्रदेश को वाहीक देश कहते थे। अतः ज्ञात होता है कि सेनाएँ सारस्वत क्षेत्र से पंजाब की ओर बढ़ी थीं।

पहले दिन की यात्रा के बाद ही प्राग्ज्योतिष (कामरूप=आसाम) के सम्राट कुमार (भास्करवर्मन) का दूत भेंटोपहार लेकर सन्धि तथा मैत्री के लिये हर्ष से मिला। कामरूप और थानेश्वर के राजाओं में होनी वाली इस सन्धि का एक विशेष राजनैतिक महत्व है। गौड शासक दोनों ही राज्यों का शत्रु था। अतः यह सन्धि दुर्घर्ष शत्रु का दमन करने के लिये अत्यन्त हितकर थी। आसाम के राजा (कुमार) ने हर्ष के सार्वभौम पद (चतुर्णामिण्वानामधिपतिः, हर्षचरित, पृ० २१५) को स्वीकार कर लिया। हर्ष को भी भास्करवर्मन की मित्र-शक्ति की आवश्यकता ही थी। अतः हर्ष से भी भेंटों द्वारा इस मैत्री को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। इतिहासकारों ने भी इस सन्धि के महत्व को स्वीकार किया है।

इस सन्धि के बाद ही हर्षवर्धन का ध्यान राज्यश्री की ओर चला गया। राज्यवर्धन के साथ गये हुए भण्डि ने हर्ष को कन्नौज का सम्पूर्ण हाल बता दिया कि किस प्रकार राज्यवर्धन की हत्या के बाद उसने मालव-गौड की सेनाओं का दमन कर कान्यकुब्ज का उद्धार किया था। परन्तु राज्यश्री कन्नौज की जेल से निकल कर विन्ध्याटवी की ओर चली गई थी। अस्तु हर्ष के समक्ष राज्यश्री की खोज के अतिरिक्त और कोई महत्वपूर्ण काम न था। उसने भण्डि को गौड देश पर आक्रमण करने के लिये (भवानपि कटकमादाय प्रवर्ततां गौडाभिमुखम्, हर्ष च०, पृ० २२६) नियुक्त कर स्वयं विन्ध्याचल की ओर चल पड़ा। अन्त में बौद्ध भिक्षु दिवाकरमित्र की सहायता से हर्ष ने राज्यश्री को प्राप्त कर लिया।

यहीं से हर्ष चरित भी समाप्त होता है और इसी घटना से हर्ष का बौद्ध दर्शन की ओर झुकाव तथा कान्यकुब्ज की सत्ता का उत्कर्ष भी होता है। सन्ध्या होते ही हर्ष राज्यश्री को लेकर जाह्नवी के तट पर (कान्यकुब्ज) पहुँचा। साथ ही नरेन्द्र की सर्व-द्वीप-विजयिनी कथा का वक्ता बाण भी रात्रि के अन्धकार में विलीन हो गया।

१—"वाहीक-रक्षितं क्षेत्रमिदम्" हर्ष चरित, पृ० २१०।

ऊपर के विवरणों से बाहीक, मालवा (भण्डी द्वारा विजित), विन्ध्य प्रदेश और कान्यकुब्ज देश अर्थात् सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर हर्ष की प्रभुता का परिचय मिलता है। कान्यकुब्ज शत्रुओं से मुक्त था। वस्तुतः आर्यावर्त में कोई प्रतिद्वन्दी नहीं बचा था। गौड नरेश भी कान्यकुब्ज से भण्डी द्वारा आक्रान्त होकर भाग गया था।

बाण कहते हैं कि सम्पूर्ण पृथिवी की विजय करने के लिये निकले हुए हर्ष राज्यश्री के साथ देश-काल के दोषों को दूर कर महोदय में आदि राज (पृथु) के समान प्रतिष्ठित हुए। यहाँ राज्यश्री पर श्लेष है। राज्यश्री उसकी बहन का नाम था जिसके साथ वह कन्नौज को लौटा था और राज्यश्री राज-लक्ष्मी का भी परिचायक है जिसका संयोग हर्ष और कन्नौज के साथ हुआ था। यही कान्यकुब्ज का महोदय (महान् उत्कर्ष) था जो हर्ष के प्रभुत्व का आधिष्ठान था।

चीनी यात्री युअनच्चांग भी कहता है—“उस समय कन्नौज में हर्षवर्धन नामक वैश्य राजा राज्य करता था। वह शीघ्र ही ‘पंच भारतों’ का अधिपति बन गया।” ये पंच भारत इस देश के पाँच स्थल विभाग—पूर्व देश, दक्षिणापथ, पश्चाद्देश, उत्तरापथ और मध्य देश ही थे (देखिये काव्य-मीमांसा अ० १७)।

परन्तु पूर्व देश के प्रसिद्ध और प्रबल शासक शशांक तथा हर्ष के संबंधों पर न तो हर्ष चरित से ही निश्चित सूचना मिलती है और युअनच्चांग ही कुछ कहता है। परन्तु चीनी यात्री इतना अवश्य कहता है कि हर्ष पूर्व की ओर बढ़ा और ६ वर्षों के लगातार युद्धों द्वारा वह पंच भारतों पर अधिकार स्थापित करने में सफल हुआ।

मंजुश्री मूलकल्प से ज्ञात होता है कि हर्ष (हकाराख्य राजा) ने दुष्ट सोम (शशांक) नामक राजा को पराजित कर उसे अपने प्रदेश में ही प्रतिष्ठित कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि हर्ष ने बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर शशांक के प्रति ‘ग्रहण-मोक्षानुग्रह’ की नीति अपनायी। शशांक की मृत्यु के बाद गौड को भास्करवर्मन और हर्ष ने आपस में बाँट लिया। भास्करवर्मन की निघनपुर लिपि से कर्णसुवर्ण पर उसका अधिकार सिद्ध होता है। ६१६ ई० तक निश्चित रूप से (गंजाम लेख) शशांक अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा के साथ शासक बना रहा, यद्यपि रोहतास गढ़ की मुहर में उसे महासामन्त कहा गया है। युअनच्चांग की यात्रा के समय शशांक का अस्तित्व मिट चुका था।

युअनच्चांग के जीवन-चरित्र से ही हर्ष का कोंगद (गंजाम) पर भी अधिकार ज्ञात होता है। हर्ष ने ६४३ ई० के आस-पास यहाँ आक्रमण किया था। यह प्रदेश भी पहले गौड शासक के ही अधिकार में था।

पश्चिमी भारत में मालवा के अतिरिक्त गुर्जर और बलभी राज्यों पर भी हर्ष की प्रभुता का प्रभाव स्थापित हो गया। बलभी सम्राट ध्रुवभट्ट या ध्रुवसेन के साथ हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह कर संतान-संधि द्वारा उसे अपना मित्र बना लिया। हर्ष की दक्षिणापथ विजय की यही भूमिका भी थी। दक्षिण की शक्ति के साथ लोहा लेने के लिये ही वह आगे गढ़ा परन्तु दक्षिण के द्वार पर ही उसे रुक जाना पड़ा।

कुछ साक्ष्यों से ऐसा ज्ञात होता है कि हर्ष का प्रभुत्व दक्षिण भारत पर भी स्थापित हो गया था। इस प्रसंग में बाण के श्वसुर मयूर-कृत हर्ष-प्रशंसा में बनाये गये निम्नलिखित श्लोक से हर्ष की विजयों और राज्य-विस्तार पर प्रकाश पड़ता है:—

भूपालाः शशिभास्करान्वय भुवः के नाम नासादितः ।

भर्तारम् पुनरेकमेव हि भुवस्त्वाम् देव मन्यामहे ॥

येनांगम् परिमृष्य कुन्तलमथाकृष्य व्युदस्यायतं ।

चोलं प्राप्य च मध्यदेशमधुना कांच्यां करः पातितः ॥

इसके आधार हर्ष को कुन्तल और चोल राज्य को कांची तक जीता था।

गद्देमने अभिलेख के आधार पर भी शिलादित्य को दक्षिण का विजेता कहा गया। परन्तु शिलादित्य की हर्ष से पहचान पर संदेह है। अस्तु इस विजय पर भी संदेह है।^१ उपर हर्ष की विजयों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि हर्ष चरित के अनुसार उसका विजय चक्र दक्षिण में मलय-महेन्द्र तक गया था। मालवा की विजय भण्ड कर चुका था और स्वयं सिंहासन पर बैठने के बाद ऐसा ज्ञात होता है, कि कुमारगुप्त को मालवा में तथा मगध में माधवगुप्त को लोकनाथ हर्ष ने लोकपाल नियुक्त किया।

हर्ष चरित बार-बार उसे अठारह द्वीपों (द्वीपान्तर) का स्वामी बताता है। कन्नौज और प्रयाग में उसका अनुगमन करने वाले १८ सामन्त राजा कौन थे। इस प्रकार हर्षवर्धन के सर्वत्रभूपति—सार्वभूमि-नृप होने में सन्देह नहीं है।

धार्मिकता

हर्ष की कर्तव्यपरायणता उसकी धर्मबुद्धि का ही परिणाम था। विजय-यात्रा के पूर्व उसको शिव की पूजा करते हुए पाते हैं। परन्तु कालान्तर में घटनाओं और व्यक्तियों के प्रभाव से वह बौद्ध धर्म और दर्शन की ओर झुकता गया। दिवाकरमित्र तथा युअनच्वांग के प्रभाव से वह महान बुद्ध-भक्त बन गया। कुल देवता आदित्य और शिव भी उपास्य बने रहे। यह उसकी सहिष्णुता का परिचायक है। वह दान-धर्म का महान अनुयायी था। उसकी मृत्यु कहाँ हुई और कैसे हुई, इतिहास ठीक-ठीक नहीं जानता है। ऐसा धार्मिक व्यक्ति, हो सकता है, त्यागधर्म का अनुसरण करते हुए बौद्ध बन गया हो।

विद्या का उन्नायक और स्वयं विद्वान—हर्ष

जिस वंश का राजा परमादित्य भक्त राज्यवर्धन पुराणों प्रसिद्ध हो गया, अवश्य ही वह पुराण-प्रिय सम्राट् रहा होगा। कालिदास पुराण-प्रिय कवि था। बाण बताते हैं कि हर्ष चरित भी वायु पुराण (पवमानप्रोक्तं पुराणं) से भिन्न नहीं है (हर्षचरितादभिन्नं प्रतिभाति हि मे पुराणमिदं)^१। बाण बताते हैं कि जिस प्रकार श्रीकण्ठ (शिव) से सभी विद्याएं निकलीं उसी प्रकार हर्ष राज्य से भी सभी विद्याएं बहीं (श्रीकण्ठविनिर्यातं गीतमिदं हर्ष-राज्यमिव)^२। सभा और राज्य में वेदों, न्याय, व्याकरण, राजाधि-चरित, महाभारत, इतिहास, आदि विषयों के पण्डित (महाविद्वांसो) और महाकवि विद्यमान थे^३। इनमें सर्वश्रेष्ठ विद्वान बाण था, जिसने शुद्ध संस्कृत गद्य और ऐतिहासिक गद्य-काव्य को प्राञ्जल रूप प्रदान किया। इस प्रकार यह सत्य है कि हर्षराज्य-श्रीकण्ठराज्य या सारस्वत क्षेत्र—से हर्ष सदृश सहृदय कवि को पाकर साहित्य की विविध धाराएं फूट निकलीं।

ऐसा समृद्ध देश—‘पूरिताशः श्रीकण्ठो नाम जनपदः’—यदि विद्या संपन्न हुआ तो आश्चर्य ही क्या। वैदिक युग में भी सरस्वती के तट से ही श्रुतियाँ सर्वत्र फैलीं। यह वीरक्षेत्र (योधेय देश) गुरुकुलों और विद्यार्थियों से भरा था^४।

१—ह०च०, पृ० १३२

२—वही, पृ० १३२

३—वही, पृ० १३२-१३३

४—वही, पृ० १४७

हर्ष के जन्म के समय ही सभी 'ग्रह-संहिताओं' में पारंगत ज्योतिषी आया था^१। धर्मावतार ब्राह्मण पुरोहित थे^२। सभा में बहुत से विद्वान थे^३। राज्य-वर्धन और हर्ष के युग में द्वीपान्तर भी प्रकाशित हो गया (द्वीपान्तरेष्वपि प्रकाशतां जग्मतुः^४)।

बाण

हर्ष ने बाण को आश्रय दिया और बाण ने हर्ष-चरित को अमर कर दिया। बाण सोमपायी वात्सायन गोत्र के ब्राह्मण परिवार में पैदा हुआ था।^५ व्यास और उनके महाभारत, भास और उनकी वासवदत्ता, (गुणाढ्य कृत) बृहत्कथा, गद्यकार हरिचन्द्र, सातवाहन, प्राकृत सेतुबन्ध कृत प्रवरसेन, कालिदास आदि से सुपरिचित थे^६। बाण कहते हैं :—

जयति ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकार कृत जगद्रक्षः।

सकलप्रणयिमनोरथसिद्धिपर्वतो हर्षः ॥^७

सुरक्षित और सुशासित देश में सभी प्रेमीजनों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले हर्ष श्रीपर्वत के समान पुण्य सिद्ध-क्षेत्र थे, जिनके सेवन से (कवि) लोग सिद्ध हो जाते थे। हर्ष और बाण का युग विद्यागोष्ठियों^८ से अलंकृत था। बाण का हर्ष-चरित के अतिरिक्त कादम्बरी भी एक प्रसिद्ध गद्य-काव्य है।

बाण के समकालीन ही हर्ष की सभा में मयूर और मातंग दिवाकर नाम के दो अन्य कवियों के उल्लेख मिलते हैं।

हर्ष की रचनाएँ

हर्ष भी विद्वान राजाओं की परम्परा में आते हैं, जिनको नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका का लेखक माना जाता है। कहीं-कहीं उनकी कुछ पद्य-रचनाएँ भी मिलती हैं। कुछ लोग हर्ष के कृतित्व पर संदेह करते हैं।

१—ह० च०, पृ० १८४

२—वही, पृ० १८५

३—वही, पृ० १८१

४—वही, पृ० १८५

५—वही, पृ० १२३

६—वही, श्लोक, १-२१

७—वही, श्लोक, १-२२

८—वही, पृ० ११

प्रियदर्शिका और रत्नावली नामक नाटकों में भास का प्रभाव प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। भास रचित प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्ता तथा हर्ष कृत प्रियदर्शिका और रत्नावली में वत्सराज उदयन के इतिहास से ही विषय-सामग्री ली गयी है। रत्नावली में भी उदयन के रोमाञ्चकारी वृत्त का चित्रण किया गया है। यह चार अंकों में विभक्त नाटक है जिसमें मन्त्री यौगन्धरायण ने उदयन और रत्नावली को विवाह-मूत्र में बाँधने का उपक्रम किया है। रत्नावली लंका की राजपुत्री थी। लंका में भारत आते समय रत्नावली का पोत-भंग होता है। परन्तु कौशाम्बी के एक व्यापारी ने उसे बचा लिया और उसे उदयन के दरबार में ले आया। वह देवी वासवदत्ता की दासी रूप में सेवा करती हुई उदयन की दृष्टि में आती है। सागरिका (रत्नावली) वसन्तोत्सव के समय उदयन से मिलती है। बहुत सी बाधाओं के बाद दोनों दाम्पत्य में बंध जाते हैं। इस ग्रन्थ से हर्ष कालीन भारत के सीलों के साथ सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है।

प्रियदर्शिका में भी उदयन की प्रणय-कथा का चित्रण है।

नागानन्द ५ अंकों में हर्ष के गम्भीर चिन्तन का परिचायक नाटक है जिसमें उनसे बौद्ध धर्म और दर्शन का परिचय कराया है। बोधिसत्व की करुणा का ही यहाँ चित्रण किया गया है।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि “श्री हर्षवर्धन को, जो राजा, सम्राट, प्रतिभाशाली सैनिक, संगठन कर्ता, विद्वानों का आश्रयदाता तथा कवि सभी कुछ था, भारत के महापुरुषों में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है^१।”

ह्वेनसांग (युअनच्वांग)

बुद्ध-भूमि को देखने चीन से ईसा की सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग या युअनच्वांग अनेक कठिनाइयों को सहता हुआ आया। यहाँ वह रहा, पढ़ा और घूमा। घूमने का जो विवरण उसने लिखा वह इस युग के इतिहास का महत्वपूर्ण साधन है। हमें उसका यात्रा-विवरण तीन रूपों में मिलता है—

१. सी-यू-की—उसी का लिखा हुआ विवरण है। इस ग्रन्थ में १३८ देशों का हाल मिलता है, जिनमें से १०० देशों को उसने स्वयं देखा था। इसके ही आधार पर बील और वाटर्स के ग्रन्थ अंग्रेजी में उपलब्ध हैं।

२. युअनच्वांग-यात्रा का सारांश—और

१—नारिमन, जैक्सन तथा आगडेन, ‘प्रियदर्शिका बाई हर्ष’ भूमिका पृ० ३४

गौरी शंकर चटर्जी, हर्षवर्धन, पृ० २१३

३. युअनच्वांग की जीवनी—युअनच्वांग १६ वर्ष तक यहाँ रहा और कठिन परिश्रम के साथ संस्कृत पढ़ कर बौद्ध धर्म और दर्शन का अध्ययन करता रहा। अपने जीवन में उसने ७५ संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया। ६५ वर्ष की अवस्था में उसका देहान्त हुआ। उसके विवरणों से भारत में बौद्धधर्म के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उसने महायान धर्म का प्रचार किया। भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन के अतिरिक्त युअनच्वांग भूगोल और समाजशास्त्र का महान् विद्वान् था।

चीन के एक प्रतिष्ठित परिवार में उनका जन्म हुआ था। युअनच्वांग अपने चार भाइयों में सबसे छोटा परन्तु प्रतिभाशाली बालक था। पिता ने उसे विशेष प्रयत्नों से पढ़ाया। उसका एक भाई बौद्ध भिक्षु हो गया और युअनच्वांग भी अपने भाई की ओर झुका तथा वहीं बौद्ध बिहार में बड़ी लगन के साथ पढ़ने लगा। वह १३ वर्ष की अवस्था में बौद्ध भिक्षु हो गया। वह निर्वाण-ग्रन्थ और महायानधर्म से सम्बन्धित महायान सम्परिग्रह शास्त्र का अध्ययन करता रहा।

अपने भाई के साथ ७ वर्षों तक वह विभिन्न विख्यात विद्यालयों में पढ़ता रहा। चीन की उस समय की विषम परिस्थितियों में वह आने वाले कठिन जीवन की साधना करता रहा। कुछ समय तक वह चाउ प्रान्त में रहा जहाँ उपद्रव कम थे। २७ वर्ष की अवस्था में युअनच्वांग एक पूर्ण धर्म-निष्णात भिक्षु हो गया। फिर उसने विनय-सूत्र तथा सूत्रों और शास्त्रों का अध्ययन किया। उसकी चर्या, प्रज्ञा और धर्म-ज्ञान की ख्याति चारों ओर फैल गयी। स्वयं राजा हनयंग भी बौद्ध भिक्षुओं और अन्य अनुयायियों के साथ उसके पास धर्म-श्रवण के लिये आया। इससे सिद्ध होता है कि उसकी चीन में कितनी ख्याति हो चुकी थी। परन्तु इतना ज्ञान होने पर भी युअनच्वांग को अपने में अभाव-कमी का अनुभव होता था। जिज्ञासु व्यक्ति का यही लक्षण है।

इसी जिज्ञासा से वह बुद्धि-भूमि की परिक्रमा करने अपने घर से चल पड़ा। वह पिछले धर्म-यात्रियों—फाह्यान और चीयुन—का स्मरण करता हुआ बढ़ा। उनका अनुकरण करना चाहता था। उसने अन्य भिक्षुओं के साथ पश्चिमी (चीन के पश्चिम स्थित) देशों की यात्रा के लिये राजाज्ञा माँगी। परन्तु वह न मिली। शाही फरमान से उसे यात्रा करने से मना कर दिया गया। इसी कारण अब वह अकेले कठिनाइयों और खतरों की परवाह न कर यात्रा के लिये दृढ़-बुद्धि हो गया। २६ वर्ष की अवस्था में वह घर से चल पड़ा।

व्यापारियों और विदेशियों के अड्डों पर 'एलो' नदी के पश्चिमी तट पर पहुँचा। यहाँ कई व्याख्यान देकर वह चलने वाला ही था कि गवर्नर ने, जिसे सख्त आज्ञा दी गयी थी कि किसी को देश के बाहर न जाने दिया जाय, उसे रोका। परन्तु कुछ प्रोफेसरों की मदद से वह भाग निकला। दिन में छिपा रहता था और रात में वह यात्रा करता था। फिर भी कई बार वह गिरफ्तार होते-होते बचा। कितना अदम्य साहस था और थी कितनी ज़बरदस्त उसकी ज्ञान-पिपासा। दो साथी, जो इसके साथ चल पड़े थे घबड़ाकर लौट गये। पर युअनच्वांग न लौटा— उठ गया जिसका कदम वह कब रुका है ॥

अवनि अम्बर बन प्रलय की वात लायें ॥

रश्मियाँ रवि की स्वयं बन काल आयें ॥

सिन्धु की लहरें उठा तूफान लायें ॥

तूफान बन जो चल पड़ा वह कब रुका है ॥

बाण धनु से चल पड़ा वह कब रुका है ॥

रास्ता आसान न था। रेगिस्तान, पहाड़ी, विषम भूमि बियावान जंगल और वह अकेला अद्वैत लक्ष्य—बुद्ध दर्शन—को लेकर चला जा रहा था। इस प्रकार बड़ी मुश्किल से वह चीन की सीमा के बाहर हुआ। इस क्षेत्र को जहाँ अब चीनी यात्री चल रहा था संस्कृत साहित्य में बालुकार्णव कहा गया है। वहाँ पीने का पानी भी दुर्लभ था। एक बार उसकी वक्रे की खाल की बनी थैली खाली हो गयी। घोर निराशा में निमग्न होकर वह पूर्वाभिमुख हो वापस चलने वाला ही था कि उसे अपनी प्रतिज्ञा—'यदि मैं भारत न पहुँच सका तो पैर वापस चीन भी न जायेंगे—का स्मरण हो आया और उसने तीव्र भक्ति से अवलोकितेश्वर की प्रार्थना की और उत्तर-पश्चिम की ओर अपने मार्ग पर पुनः चल पड़ा। चलते हुए ध्यानमग्न वह प्रज्ञापारमिता और अवलोकितेश्वर सूत्र का पाठ करते हुए अपने लड़खड़ाते पैरों और गिरते शरीर को बल दे रहा था। यह थी उसकी भक्ति, आश्रय और आस्था। वह एक सरोवर के सन्निकट जा पहुँचा। दो दिन बाद वह एक बौद्ध बिहार में पहुँचा जहाँ कुछ चीनी भिक्षु रहते थे। इसी प्रकार संघर्ष करते-करते धर्मयात्री कौशांग राज्य में राजा के निमन्त्रण से पहुँचा। परन्तु १० दिनों के बाद जब वह यात्री अपने मार्ग पर आगे जाना चाहता था, राजा ने उसे वहीं अपने जीवन-काल भर रखने का दृढ़ विचार व्यक्त किया। परन्तु यात्री को भारत के पहले चैन कहाँ थी। यात्री की दृढ़ता के सामने राजा को झुकना पड़ा और वापसी में राजा को अपने दर्शन से अनुग्रहित करने का वचन दे वह आगे

बड़ा। कुश, कपिश (काफिरिस्तान), बक्त्र (बैक्ट्रिया=बलख), बामियान, हिन्दुकुश, लम्पाक (लमगन) और नगरहार होता हुआ भारत की सीमा पर स्थित उद्यान (देश), कश्मीर और पंजाब में आ पहुँचा। जालन्धर, श्रुघ्न, मातीपुर (मंडावर, जिला बिजनौर, उ० प्र०), कान्यकुब्ज, अयोध्या, हयमुख, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर, सारनाथ, पाटलीपुत्र, नालन्दा (जहाँ १० हजार बौद्ध भिक्षु रहते थे), आदि विद्या-विहारों और धर्म स्थानों में पढ़ता और देखता हुआ तथा साधना में जुटा हुआ तीर्थ यात्रा कर रहा था।

वह कहता है कि मगध का शासक शिलादित्य एक प्रतापी शासक था जिसका आधिपत्य भारत के अधिकांश भागों में फैला था। ऊपर बताया जा चुका है कि तत्कालीन इतिहास को जानने में उससे कितनी सहायता मिलती है—

“In general, however, we may trust and be grateful to him for valuable information he hands down to us. At the moment, he visited India, before Mussulman conquest, it was exclusively Brahmanist and Buddhist. It is a very obscure period of its history, and Hiouen-Tsang is almost the only eye witness who has given us any information about it.”

यहाँ हम स्थानाभाव से न तो उसकी भौगोलिक प्रतिभा और न ऐतिहासिक प्रगल्भता को ही आंक सकते हैं। इसी प्रकार उसके ज्ञान और आध्यात्मिक शक्ति को भी नहीं माप सकते हैं। इतना ही कहना पर्याप्त है कि ‘ब्रह्म-जिज्ञासा’ (सत्यान्वेषण) से प्रेरित होकर वह स्वयं बोधिसत्व बन गया। उसके समय प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ थे जिनका अध्ययन उसने किया था और उसके विवरणों पर उन ग्रन्थों की छाप पड़ी है। उस समय में संस्कृत के ऐतिहासिक ग्रन्थों का अभाव न था—

“We must therefore conclude that in the seventh century after Christ, at the time when the Chinese pilgrim travelled over India, there were to be found in Sanskrit literature, works which described more or less faithfully the history, statistics, and geography of the country; none of which have come down to us,”

शशांक

पूर्व दिशा में प्रसिद्ध गौड देश^१ प्राचीन इतिहास, साहित्य और संस्कृति^२ में एक विशेष स्थान रखता है। यह गंगा की घाटी में^३ समुद्र से सटा हुआ स्थित था।^४ मंजुश्री मूलकल्प के अनुसार गौड, पुण्ड्र, वंग और समतट^५ बंगाल की विभिन्न भौगोलिक इकाइयाँ थीं जिनको संघटित कर ही गौड साम्राज्य की प्रतिष्ठा हुई। मंजुश्री मूलकल्प से गौड-लोक के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

ज्ञात होता है, कि शशांक (सोमाख्यो) नाम का अति वीर राजा गंगा तट पर स्थित वाराणसी तक राज्य और प्रभाव फैला चुका था; वह बुद्ध मूर्तियों का विनाश बनारस (सारनाथ) तक कर रहा था। साथ ही विहारों (बौद्ध मठों), आराम (आश्रम) और चैत्यों-स्तूपों को भी विध्वंसित कर रहा था।^६ सोम (शशांक) राजा के इन दुष्कर्मों का ज्ञान युजन-च्चांग के विवरणों से भी होता है कि वह बौद्ध-विरोधी शासक था।

१—ततोऽनुपूर्वेण गत्वाऽसौ प्राचीं दिशि माश्रुतः ।

गौडां जनपदां प्राप्य निःसपत्ना ह्य वै तदा ॥ मंजुश्री मूलकल्प, पृ० ६३३

२—cf. गौड़ी वाच् and रीति

असुराणां भवेद्वाचा गौडपौण्ड्रोद्भवो सदा ।

यथा गौडजनश्रेष्ठं स्तं शब्दविभूषितम् ॥

मंजुश्री मूलकल्प, पटल २२, पृ० २३२

३—गौडदेशेस्मिं गंगातीरसमाश्रुतः । मं० मू० क०, पटल ५३, पृ० ६३१

४—गौडान् समुद्राश्रयान्.....हरहा लेख ।

५—मं० मू० क०, पटल २२, पृ० २३२

६—पूर्वं सम्मानिता ये तु नृपैर्विग्रहमानिभिः ।

घातयामास सर्वेषां गौडानां जनवासिनानाम् ॥

सोमाख्योऽपि ततो राजा एकवीरो भविष्यति ।

गंगातीरपर्यन्तं वाराणस्यामतः परम् ॥

नाशयिष्यति दुर्मेधः शास्तु बिम्बां मनोरमाम् ।

जिनैस्तु कथितं पूर्वं धर्मसेतुमनल्पकम् ॥

विहाराराम चैत्याश्च निर्ग्रन्था वसथां भुवि ।

भेत्स्यते च तदा सर्वा वृत्तिरोधमकारक ॥

मं० मू० क०, पटल ५३, पृ० ६३४

शशांक को गौड देश का राजा (गौडाधिप) कहा गया है। गौड देश को पूर्व देश में स्थित बताया है। पूर्व देश में ही प्राग्ज्योतिष (गौहाटी) और लौहित्य (ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी), जिनको इस समय आसाम कहते हैं सम्मिलित थे। पूर्व देश ही में पौण्ड्र (उत्तरी बंगाल), उत्कल और ओड्र (आधुनिक उड़ीसा), समतट, (समुद्र तट से मिला हुआ गंगा और ब्रह्मपुत्र का डेल्टा), मिथिला (उत्तरी बिहार) और काशी (पूर्वी उत्तर प्रदेश) आदि देश सम्मिलित थे।^१ पूर्व देश को वाराणसी के उस पार पूर्व दिशा में फैला हुआ क्षेत्र कहा गया है।^२

शक्तिशाली दो पड़ोसी राज्यों में युद्ध का होना ऐतिहासिक सत्य है। गुप्त साम्राज्य के पतन होने पर पूर्व देश के प्रभुत्व के लिये कामरूप और गौड राज्यों में संघर्ष हुए। गुप्त वंश के अन्तिम सम्राटों और कामरूप के राजाओं में युद्ध हुए।^३ ऊपर बताया जा चुका है कि वाराणसी से स्थानेश्वर तक फैले हुए मध्य देश में भी इसी प्रकार मौखरियों, उत्तर गुप्तों और पुष्यभूति वंशजों में संघर्ष हो रहे थे। पूर्व देश में शशांक ने अपनी प्रभुता जमा ली थी और वह मध्य देश पर भी अपनी शक्ति का प्रसार करने के लिये वहाँ की राजनीति में कूद पड़ा। सामरिक शक्ति और उपाय नीति (गुणवत्युपायनिलया नीति-विद्या) ने उसके हाथों में पड़ कर उत्तरी भारत में मध्यदेश के राजनैतिक नकशे को ही बदल दिया। ज्योंही हूणहरिण केसरी, मालवलतापरशुः, गुर्जर-प्रजागारः, सिन्धुराजज्वरः, गन्धार-गज-रोग तथा लाट को लूटने वाला प्रभाकर-वर्धन दाहज्वर से मर गया, उसी समय कन्नौज का नया राजा ग्रहवर्मन भी मार डाला गया और ठीक उसी समय राज्यवर्धन भी मार डाला गया। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण कान्यकुब्ज राज्य अनाथ था और श्रीकण्ठ राज्य में एक बालक-नृप था। अस्तु, स्पष्टतः, शशांक की साम्राज्यवादिनी शक्ति के लिये मध्यदेश खाली था। परन्तु चक्रवर्ती हर्ष के हाथों उसके सपने मिट गये। व्यक्तित्व और गुणों के कारण प्रभाकरवर्धन हर्ष को ही राज्य दे रहे थे। हर्ष सोच रहे थे कि राज्यवर्धन कहीं सन्यास न ले लें। अतः सरल स्वभाव के पराक्रमी राज्यवर्धन राज-पद के योग्य न थे। जिस युग में वे गुजर रहे थे वही—गुण-युवत (संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, संश्रय), उपाय

१—बृहत्संहिता, १४-५-७

२—काव्यमीमासा, अ० १७, पृ० ६३/२०

३—इ० हि० ववा०, जिल्द २६, संख्या ३, सितम्बर १६५०, पृ० २४१

(साम, दान, दण्ड और भेद) वाली नीति का युग था। अतः प्रज्ञा-शून्य राज्यवर्धन शशांक की चालों के सामने हार गये।

इसी समय जब शशांक वाराणसी और उससे भी आगे बढ़ रहा था, मध्य देश में ही शशांक के समान सशक्त शासक राजा राज्यवर्धन (रकाराख्यो) तथा उसका पराक्रमी छोटा भाई हर्ष (हकाराख्यः) राज्य कर रहे थे। मंजुश्री मूलकल्प से यहां स्पष्टतः ज्ञात होता है कि राज्यवर्धन और हर्षवर्धन मध्य देश (कान्यकुब्ज महादेश) के शासक थे।^१ यद्यपि इसी ग्रंथ से ज्ञात होता है कि पहले (आदित्यवर्धन) के समय हर्ष के पूर्वज श्रीकण्ठ देश में स्थानेश्वर के शासक थे।^२ मंजुश्री मूलकल्प से ही ईशानवर्मन, सर्ववर्मन, ग्रहवर्मन और सुव्र वर्मन^३ नामक मौखरी राजाओं का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि हर्ष कान्यकुब्ज देश के भी सम्राट बन गये थे।

हर्ष चरित से ज्ञात होता है कि प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के समय शशांक राज्य का उदय हो रहा था।^४ बाण ने अपनी काव्य शैली में बताया है कि जिस प्रकार सूर्यास्त के बाद ही चन्द्रोदय होता है उसी प्रकार प्रभाकर (सूर्य) वर्धन की मृत्यु के बाद शशांक (चन्द्र) का राजनैतिक आकाश में उदय हुआ; यद्यपि यह उदय कलंक (राज्यवर्धन-वध और अत्याचार-विध्वंस) पूर्ण था। इसीलिये

१—भविष्यते च तदा काले मध्यदेशे नृपो वरः ।

रकाराद्योतयुक्तात्मा वैश्यवृत्तिमचञ्चलः ॥

शासनेऽस्मिं तथा शक्त सोमाख्यसमो नृप ।

सोऽपि याति तवान्तेन नग्नजाति नृपेण तु ॥

तस्याप्यनुजो हकाराख्य एकवीरो भविष्यति ।

महासैन्य समायुक्तः शूरः क्रान्तविक्रमः ॥ मं०मू०क०, पटल ५३, पृ० ६३४

२—सप्तमष्टशता व्रीणि श्रीकण्ठावासिनस्तदा ।

आदित्य नामा वैश्यास्तु स्थानमीश्वरवासिनः

भविष्यति न सन्देहो अन्ते सर्वत्रभूपतिः ।

हकाराख्यो नामतः प्रोक्तो सार्वभूमिनराधिपः ॥

मं०मू०क०, पटल ५३ पृ० ६२६

३—मं०मू०क०, ५३ पटल, पृ० ६२६

४—“प्रकट कलंकमुदयमानम्.....अकाशताकाशे शशांक मण्डलम् ॥”

ह०च०, ७०६, पृ० २४५-२४६

हर्ष चरित इस (हत्यारे) का नाम भी लेना पाप ही समझता है। इसीलिये इसकी सत्ता भी अस्थायी थी ^१

हर्ष चरित द्वारा शशांक की निन्दा इसीलिए की गयी है कि उसने राज्य-वर्धन की हत्या की थी। इसमें राज्यवर्धन की मूर्खता थी कि शत्रु के साथ संधि कर उस पर विश्वास करते हुए जो बेखबर रहता है तो ऐसे मूर्खराजा का नाश होना आवश्यक है।^२ इस लिये अविश्वासी पर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए, ऐसा नीति-वाक्य है—

न विश्वसेदविश्वस्तं विश्वस्ते नातिविश्वेत् ।

विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति ॥^३

राजनीति में 'अविश्वासः पदे पदे' यही हर्ष को भी बाण के वचनों से उसके अनुभवी मन्त्री ने बताया था। अतः बाण की निन्दा शशांक की निन्दा नहीं है।

युअनच्वांग और मंजुश्री मूलकल्प के बौद्ध लेखक द्वारा शशांक को दुष्ट कर्मानुचारी इसीलिए कहा गया है कि वह बौद्ध धर्म विरोधी था। अतः शशांक की निन्दा उसके विरोधी वर्ग द्वारा हुई है। डा० आर० सी० मजुमदार का विचार है —“यद्यपि शशांक के व्यक्तित्व और चरित्र के मूल्यांकन करने की पर्याप्त सामग्री नहीं प्राप्त होती है फिर भी उसे बंगाल का प्रथम महान शासक माना जाना चाहिये। उसने न केवल गौड़ को एक स्वतंत्र राज्य ही बनाया, प्रत्युत उसने उड़ीसा और दक्षिण बिहार पर अपना आधिपत्य बढ़ाया। उसने उत्तरी भारतीय साम्राज्य की स्थापना के लिये अदम्य साहस का परिचय दिया। उसने पाल साम्राज्य की भूमिका स्थापित की। यदि बाण या युअनच्वांग की भांति कोई सहृदय-मित्र उसका इतिहास लिखता तो हर्षवर्धन के समान ही प्रकाशित होता। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि उसका नाम और यश मिट गया है। इतिहास केवल उसको राज्यवर्धन का हत्यारा और बौद्धधर्म का विध्वंसक ही जानता है।”^४ परन्तु खेद है कि

१—“कातरस्य तु शशिन इव हरिणहृदयस्य पाण्डरपृष्ठस्य कुतो द्विरात्रमपि निश्चला लक्ष्मीः” ह०च०, उ०६, पृ० २६०

२—गरुड पु०, १/११४/४८

रामायण, किष्किन्धा का०, ३/२०—२१

आदि पुराण, १३६/७५

३—गरुड पु०, १/११४/४७

४—क्लासिकल एज, पृ० ८१

इतिहासकारों ने इन शत्रु-साक्ष्यों का सही मूल्यांकन नहीं किया। रोहतासगढ़ मुहर लेख में ही इस महासामन्त-शासक को शशांक देव कहा गया है। 'देव' ही शशांक के महत्व का परिचायक है। मंजुश्री मूलकल्प भी उसे 'सोमविश्रुत' (प्रख्यात सोम) बताता है। गंजाम शासन-पट्ट लेख (३०० गु० सं० = ६१६ ई०) में उसे चारो समुद्रों से घिरी, द्वीपों और नगरों से युक्त वसुन्धरा में शासन करते हुए महाराजाधिराज कहा गया है। ये उल्लेख भी उसके महत्व के कम साक्षी नहीं हैं। वह न केवल महान् ब्राह्मण था, प्रत्युत ब्राह्मण संस्कृति का उन्नायक था। इसीलिये पुराणों में उसका माहात्म्य मिलता है। परन्तु पुराण-पाठक विद्वानों ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया है।

एक भ्रान्ति हमारे इतिहास में घर कर गयी है कि गुप्त वंश के बाद का इतिहास पुराणों में नहीं मिलता है। परन्तु गुप्त वंश के बाद भी ब्राह्मण या ब्राह्मण संस्कृति के उन्नायक राजाओं के दरबार में सूत लोग समकालीन इतिहास लिखते रहे। शशांक के दरबार में भी पुराणों का विशेष कर विष्णु-धर्मोत्तर पुराण का नया संस्करण किया गया। यहां हम गुप्त वंश के पतन के बाद क्षीण युग का इतिहास पाते हैं।

इस क्षीण-युग की व्याख्या करते हुए पुराणकार कहता है कि विभिन्न युगों में (युगे-युगे) परीक्षीण भारतवर्ष में संघर्ष द्वारा ही वर्णों के उत्तम लोगों का विनाश होता रहा है। कृतयुग (स्वर्ण युग) के अन्त में ब्राह्मणों का क्षत्रियों के साथ युद्ध हुआ। इसी प्रकार वैश्यों और शूद्रों के साथ भी क्षत्रियों का युद्ध हुआ। युद्ध में क्षत्रियों ने तीनों वर्णों को पराजित कर दिया। तब कुछ ब्राह्मणों ने क्षत्रियों से कहा कि किस प्रकार संख्या में कम होते हुए भी क्षत्रियों ने उन्हें हरा दिया। क्षत्रियों ने उनको बताया कि उनका सेनापति एक है और वह सभी शस्त्रास्त्रों में कुशल है तथा वे सब उसी सेनापति के अनुगामी हैं। परन्तु ब्राह्मणों के मन बहुतों की ओर बटे हुए हैं। इसीलिये पग-पग पर एकमत क्षत्रियों द्वारा बहु-मति-भेद वाले ब्राह्मणों की पराजय होती है।^१ क्षत्रियों द्वारा ऐसा कहा जाने पर ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के राजा (द्विजेश) सोम-शशांक की शरण में गये—

क्षत्रियैरेवमुक्तास्ते ब्राह्मणास्संशितव्रताः ।

शशांकं शरणं जग्मुर्द्विजेशं सोममञ्जसा ॥^२

१—विष्णुधर्मोत्तर, १. ७४. २-६

२—बही, १. ७४. १०

उस धर्मात्मा राजा सोम ने उन ब्राह्मणों से कहा कि तुम लोग प्रयाग में भार्गव वंशी राजा शूर के पास जाओ। उसका धार्मिक पुत्र प्रमिति है जो सभी शास्त्रों और धनुर्वेद में कुशल साक्षात् विष्णु ही ही है। वह सेना-नायकों द्वारा मर्यादा हीन क्षत्रियों को युद्ध में पराजित करेगा। उन ब्राह्मणों ने सोम की राय मान कर वैसा ही किया। इस प्रकार कृतयुग के अन्त में दारुण युद्ध हुआ। राजा भीमरथ ने भी, जो विष्णु का ही अवतार था, राक्षसीवृत्ति वाले क्षत्रियों का वध लिया।^१ ऊपर के विवरण में शशांक को 'धर्मात्मा सोमो राजा'^२ कहा गया है। वही 'द्विजेश'^३ भी था। मंजुश्री मूलकल्प में भी उसे द्विज और द्विजों को दान देने वाला कहा गया है।^४ अतः स्पष्ट है कि शशांक स्वयं ब्राह्मण और ब्राह्मणों का संरक्षक था। इसीलिये वह बौद्ध धर्म का विरोधी भी था।

ऊपर के विवरणों से ही यह भी ज्ञात होता है कि शशांक प्रयाग मण्डल के शासक भार्गव शूर नामक राजा का आधीन था; क्योंकि उसने उसके पास गये हुए ब्राह्मणों को ब्राह्मण राजा शूर के पास भेज दिया था।^५

यह शूर कौन था? यही शूर राजा शूर वंश का आदि संस्थापक था। बनारस से प्राप्त ताम्रपत्र लेखों से शूर वंश के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।^६ इन ताम्र-पत्र-लेखों के संपादक प्रो० अहिभूषण भट्टाचार्य का मत है कि भग्न-राज शूर-वंश का संस्थापक था।^७ परन्तु पुराणों के अनुसार शूर ही शूर वंश का संस्थापक था और इसका राज-केन्द्र प्रयाग था।

अभिलेखों से ही ज्ञात होता है कि उसके (भग्नराज के) पौत्र हरिराज ने विजयों द्वारा राज्य का विस्तार किया था। विभिन्न प्रदेशों में शासक नियुक्त किये गये थे। उसकी राज-सभा में एक महामातृगण भी था जिसमें शशांक

१—विष्णुधर्मोत्तर, १. ७४. ११—१९

२—वही, १. ७४. ११

३—वही, १. ७४. १०

४—मं० सू० क०, पृ० ६३५/११-१२

५—वि० ध०, १. ७४. ११-१२

६—जर्नल यू० पी० हिस्टारिकल सोसाइटी, जिल्द १८, (भाग १-२, १८४५),

पृ० १६७-१७३

७—वही, पृ० १७०

और प्रभाकर इसके सदस्य (महामात्र) थे ।^१ पहले ब्राह्मण शशांक के पास गये थे और शशांक ने उन्हें शूर के पास भेज दिया था । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि शशांक एक सामन्त था । इसी भाँति प्रभाकर भी था । आगे चल कर ये दोनों स्वतन्त्र हो गये—प्रभाकर पश्चिम में और शशांक पूर्व में ।^२

यहीं से इन दोनों में शत्रुता भी बढ़ी और गंगा की घाटी—अंतर्वेदी—के लिये दोनों में संघर्ष भी हुआ । इसीलिये शशांक को रोहतासगढ़ मुहर-लेख में महासामन्त भी कहा गया है । परन्तु आगे चलकर वही महाराजाधिराज भी बन गया और इसने सोने के सिक्कों को भी चलाया । परन्तु बढ़ती हुई हर्ष की शक्ति के सामने उसे झुकना पड़ा । स्पष्ट कहा गया है कि हर्ष ने उसे अपने ही देश में शासन करने के लिये पराजित कर छोड़ दिया था । इस प्रकार स्पष्ट है कि शशांक एक महान विजेता और शासक था । शशांक के स्वर्ण सिक्कों पर भी उसे वृष (धर्म) और वृषारूढ (शिव) के आश्रय में जय घोष करते हुए पाते हैं ।

—:०:—

१—जर्नल यू० पी० हिस्ट्रीखिल सोसायटी, जिल्द १८, १६४५), पृ० १७२

२—इतिहास परिषद, १६६६, विवरण एवं विचार, (देहली) पृ० ४०-४३,

‘शशांक और उसका युग’ ।

अध्याय ३

यशोवर्मन और उनका युग

हर्ष की मृत्यु के बाद ही उत्तरी भारत का विघटन प्रारम्भ हो गया और अनेक छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ। हर्ष की मृत्यु के बाद लगभग ७० वर्ष तक कन्नौज का इतिहास अंधकार में है। इसीलिए विभिन्न विद्वानों ने कन्नौज के इस युग के इतिहास पर अटकलें लगाई हैं। परन्तु वे मान्य नहीं हैं। यशोवर्मन के इतिहास में अवतरण होने से ही अंधकार मिट गया। वह महत्वाकांक्षी शासक था जिसने एक बार पुनः शान्ति और व्यवस्था स्थापित की। इससे कन्नौज फिर राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन का प्रथित केन्द्र बन गया।

यशोवर्मन वंश

दुर्भाग्यवश यशोवर्मन के वंश तथा प्रारम्भिक जीवन के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। कनिंघम,^१ अयंगर,^२ सी० वी० वैद्य,^३ पायर्स,^४ डा० बुधप्रकाश,^५ स्मिथ,^६ डा० त्रिपाठी,^७ और डा० आर० सी० मजुमदार^८ उसको किसी प्रथित राजवंश से संबद्ध नहीं मानते हैं।

यशोवर्मन को मौखरी वंश से संबद्ध किया गया है, क्योंकि उसके नामान्त में 'वर्मन' शब्द प्राप्त होता है। वाकूपति उसे चंद्र वंश से सम्बन्धित करते हैं।^९ जैन ग्रन्थों के अनुसार वह चन्द्रगुप्तमौर्य का वंशज था जिसने वंश के लुप्त गौरव को फिर से स्थापित किया।^{१०} इन साक्ष्यों के

१—आर्कैलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द १५, पृ० १६४

२—साउथ इण्डियन हिस्ट्री, एण्ड कल्चर, भाग १, पृ० ३२२

३—हिस्ट्री ऑफ मेडेवेल हिन्दू इण्डिया, भाग १, पृ० ३३५

४—दि मौखरीज़, पृ० १३५—१३६

५—एन्शेन्ट इण्डियन हिस्ट्री ऐन्ड कल्चर, पृ० १०२-१०३

६—जर्नल र्वायल एशियाटिक सोसाइटी, १६०८, पृ० ७८४

७—हि० क०, पृ० १६३-१६४

८—क्लासिकल एज, पृ० १३८

९—गौडवाहो, १०६५

१०—वर्म मौर्य महावंशे संभूतस्य महद्युतेः । श्रीचन्द्रगुप्तभूपालवंशमुक्तामणि-
श्रियः...कान्यकुब्जयशोवर्मः

आधार पर यशोवर्मन् को किसी प्रसिद्ध राजवंश से सम्बन्धित न करना तर्क-संगत नहीं प्रतीत होता है। सातवीं-आठवीं शताब्दी में मौर्यों की कई शाखाएं विभिन्न भागों में शासन कर रही थी, अतएव जैन ग्रन्थों का मत भी निराधार नहीं माना जा सकता है। कुछ भी हो, वह महान् था और प्राचीन आदर्श का अनुसरण करता हुआ दिग्विजय-प्रवृत्त था। अस्तु वह किसी भी प्राचीन क्षत्रिय वंश से सम्बन्धित अवश्य था।

तिथि

यशोवर्मन की राज्यारोहण-तिथि भी विवादग्रस्त है। श्री यस०पी० पंडित (गौडवाहो की भूमिका, पृ० ६५-६६), सी०वी० वैद्य (हिस्ट्री ऑफ हिन्दू मेडेवेल इण्डिया, भाग १, पृ० ३३८) तथा डा० बुध प्रकाश (ऐन्शेण्ट इण्डियन हिस्ट्री ऐन्ड कल्चर, पृ० १०२-१०३) यशोवर्मन का राजत्वकाल सातवीं शताब्दी का अन्तिम चरण और आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में मानते हैं। इन विद्वानों का तिथि-विषयक मत कल्हण के तिथिक्रम पर आधारित है। परन्तु चीनी तिथि-क्रम के आधार पर कल्हण की तिथियों में सुधार किया गया है और अब अधिकांश विद्वान यशोवर्मन के राजत्व-काल को ७२० ई० और ७५५ ई० के बीच मानते हैं।^१

उस समय देश को अरब विजेताओं से, जो सिन्ध में बस चुके थे, भय था। यशोवर्मन् की ललितादित्य मुक्तापीड में मित्रता थी और चीन के सम्राट के पास ७३१ ई० में अपना दूत मण्डल भेजा था।^२ इस प्रकार अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के बाद ही उसने दिग्विजय की थी।

यशोवर्मन की दिग्विजय यात्रा—

संभवतः कालिदास (रघुवंश, चतुर्थ सर्ग) और बाण (हर्ष चरित) का अनुसरण करते हुए वाक्पति ने गौडवाहो नामक प्राकृत के ग्रंथ में यशोवर्मन् की दिग्विजयों का विस्तृत वर्णन दिया है।

वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही यशोवर्मन् संपूर्ण पृथिवी विजय के लिये (सकल-धरा-वल्लय विजय व्यवसायो) अपनी राजधानी से पूर्व की ओर चला।

१—हि०क०, पृ० १६६-१६७; जर्नल र्वायल एशियाटिक सोसाइटी, १६०८, पृ० ७८४; इण्डियन कल्चर, जिल्द १५, पृ० २०७; आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट्स, III, पृ० १३५; एपिग्रेफिका इण्डिका, जिल्द ३४, पृ० २४७

२—A.S.I.R., III, पृ० १३५

दिविजय यात्रा के लिये प्रस्थान करने के पहले उसने वैदिक विधि से अवसरोचित यज्ञों का अनुष्ठान किया ।

मगध राज—सर्व प्रथम वह शोण (सोन) नदी की घाटी में पहुँचा । वहीं से वह विन्ध्यवासिनी देवी की पूजा के लिये वहाँ गया । जिस समय उसकी सेना विन्ध्य प्रदेश में थी, उसी समय मगध का राजा यशोवर्मन के आक्रमण से भयभीत होकर भाग गया । किन्तु भगोड़े मगध के राजा के सामन्तों ने उसे युद्ध करने के लिए उत्साहित किया । इसके पश्चात् वह यशोवर्मन् से युद्ध करते हुए मारा गया (गौडवाहो, ४१४, ४१७) । मगध उसके राज्य में मिला लिया गया । संभवतः पराजित मगध-नरेश जीवितगुप्त द्वितीय था जिसका उल्लेख उसके देववर्णार्क लेख में मिलता है ।

वंग—

इसके बाद यशोवर्मन् वंग देश में पहुँचा जहाँ वंग पति ने आत्म समर्पण कर दिया (गौडवाहो, ४१६-४२१) । उसने वंग-सेना के अगणित मद-गज सेना (गौडवाहो, ४१६-४२०) का दमन किया । नालन्दा लेख से भी ज्ञात होता है कि यशोवर्मन् ने हाथियों के मस्तकों को कुचल कर राजाओं की श्री को प्राप्त (करीन्द्रकुम्भदलन प्राप्तश्रियाम् भूभुजाम्) । पराजित वंग राजा की पहचान कठिन है ।

दक्षिण—

समुद्र तट की विजय यात्रा करता हुआ वह मलय (पर्वत और वहीं के देश) में पहुँचा । यहीं पर दक्षिण के राजा ने उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया (गौड वाहो, ४२२-४२३) । यशोवर्मन द्वारा पराजित 'दक्षिण-दिश-नरेन्द्र' की पहचान नहीं हो सकी है । यशोवर्मन ने महेन्द्र पर्वत (पूर्वीघाट) के राजाओं को भी पराजित किया था (गौडवाहो, ५०६-५१०) ।

पारसीक-युद्ध—(गौडवाहो, ४३१-४३६)

पारसीकों के साथ यशोवर्मन का बहुत समय तक घोर युद्ध हुआ (तुमुलो महाह्वो आसि चिरयरं पारसीएहि) ।^१ अन्त में यशोवर्मन की विजय हुई । डा० आर० सी० मजूमदार के अनुसार पराजित पारसीक अरब थे ।^२ इन अरब विजेताओं को ही ताजिक भी कहा गया है ।^३

१—गौडवाहो, ४३६ : तुमुलो महाह्व आसीच्चिरतरं पारसीकैः सह ।

२—क्लासिकल एज, पृ० १३०

३—कार्पस इ० इ०, जिल्द ४, पृ० ४१, पंक्ति २५-३५

इस पश्चिम विजय में ही उसने पश्चिमी पर्वतों से घिरे हुए क्षेत्र की विजय की और उससे कर वसूल किया। वाक्पति बताते हैं कि दोनों समुद्रों (पूर्व समुद्र=बंगाल की खाड़ी और पश्चिम समुद्र=अरब सागर) के बीच प्रदेश की विजय की^१ (गौडवाहो, ४४०)। उसने नर्मदा की घाटी में भी प्रवेश किया था (गौडवाहो, ४६०-४६५)। इस प्रकार यशोवर्मन ने सागरान्त पृथिवी की विजय की (गौडवाहो ४७०, साअरन्ते दिठ्यं पट्टणा=सागरान्ते स्थितं प्रभुणा)।

मरु-देश—पारसीकों को पराजित कर वह मरु देश^२ (गुर्जर देश) में घुसा जहाँ प्रतिहार क्षत्रिय राज्य कर रहे थे। इन गुर्जरो को भी उसने पराजित किया।

श्रीकण्ठ देश

इसके बाद वह श्रीकण्ठ देश में गया। पुण्यभूति के समय से ही श्रीकण्ठ देश इतिहास में प्रसिद्ध हो चुका था जिसकी राजधानी स्थाणेश्वर (थानेश्वर) थी। वाक्पति भी इस प्रदेश को नागों से सम्बद्ध करता है।^३

कुरु-विजय—इसके बाद वह कुरु-राज्य में रहा जो एक इतिहास-प्रसिद्ध देश था।^४

इसके बाद वह अयोध्या में गया, जहाँ उसने एक विशाल देव-मन्दिर का निर्माण कराया।

उत्तर-दिश विजय—यक्षाधिप-कुबेर की दिशा^५ में उत्तर के पर्वतीय प्रदेश को जीत कर वह अपनी राजधानी वापस आया।

गौडवाहो-दिग्विजय समीक्षा

वाक्पति क्षत्रिय (परमार वंशीय) कवि था जिसने अपने अधिराज यशोवर्मन की दिग्विजयों का वर्णन गौडवाहो (गौड-राज-वध) में किया है। इस वर्णन की सत्यता उसके समसामयिक साक्ष्य पर आधारित है। श्री वी० वी० वैद्य ने केवल गौड (वंग) के राजा का वध ही ऐतिहासिक सत्य माना है।^६ उनका

१—गौडवाहो, ४४०-४५६

२—वही, ४७१

३—वही, ४७२-४८४

४—वही, ४८५-४८४

५—वही, ५१०-५११

६—हिस्ट्री ऑफ हिन्दू मेडेवेल इण्डिया, भाग १, पृ० ३४२-३४३

विचार है कि किसी भी पराजित राजा का नामोल्लेख नहीं हुआ है। डा० त्रिपाठी वाक्पति की दिग्विजय-प्रशस्ति को रघु की विजयों पर आधारित अनैतिहासिक मानते हैं।^१ परन्तु इसके विपरीत विन्सेन्ट स्मिथ इस विवरण को सत्य मानते हुए कहते हैं—

“I see no reason to doubt the substantial truth of the contemporary testimony. There is nothing incredible in the assertion that a powerful king occupying at Kanauj a good central position should have carried his arms eastwards across Bengal, southwards to the Narmada and northwards to the foot of the mountains”^२

वाक्पति का यशोवर्मन की उपलब्धियों का ज्ञान उसके अपने साक्ष्य पर आधारित है। इसीलिये इसको पूर्ण रूप से अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। इतना अवश्य ही सत्य है कि वर्गों में अतियोग्यता अवश्य ही है। यशोवर्मन के नालन्दा लेख से उसकी दिग्विजय स्पष्ट सिद्ध होती है—

सर्वेषां मूर्ध्नि दत्त्वा पदमवनिभृतामुद्गतो भूरिधामा
निस्त्रिंशंशुप्रतानप्रदलितनिखिलारातिघोराब्धकारः ।

ध्यातो यो लोकपालः सकलवसुमती पद्मिनीबोधहेतुः ।

श्रीमान् भास्वानिवौचैस्तपति दिशि-दिशि श्रीयशोवर्म देवः ॥^३

यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि श्री यशोवर्म देव सूर्य के समान राजा था जिसका उच्च प्रताप प्रत्येक दिशा में फैला हुआ था; वह प्रसिद्ध लोकपाल (सम्राट) था, जिसका अधिकार ‘सकल-वसुमती’ (सम्पूर्ण देश) में जमा था; उसका यह प्रताप और प्रभाव उसकी तलवार के बल पर आधारित था जिससे उसने सभी शत्रुओं को नष्ट कर दिया था; और उसने सभी राजाओं के सिर पर अपना पैर रखा था। अतः हमें उसकी दिग्विजयों पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।

यहाँ ध्यान देना आवश्यक है कि गौडवाहो में भी यशोवर्मन की समता तिमिर-नाशक भगवान् भानु से की गयी है (गौडवाहो, ७००-७०५)। रिपु-श्री को यशोवर्मन की तेज तलवार ने नष्ट किया था (रिपु श्रियाः निशितासि-

१—हि० क०, पृ० २००

२—J. K. A. S., 1908, p. 779

३—यशोवर्म देव का नालन्दा लेख, श्लोक २

घटित प्रतिबिम्ब) ।^१ यथा नाम तथा गुण-नाम के अनुरूप गुण वाला-यशोवर्मन भयभीत जनों का त्राता था ।^२ परिजनों के प्रति अनुराग और शत्रुओं के प्रति कोप उसका चारित्रिक गुण था ।^३ इस प्रकार यशोवर्मन के 'गुणों का उत्कर्ष' हुआ था ।^४ उसके राजत्व में दोष न थे ।^५ सकल दिशाओं में उसके गुणों की छाप लगी थी ।^६ गौडवाहो और नालन्दा अभिलेख में वर्णित उसके व्यक्तित्व और चरित्र में सादृश्य है, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया । ऊपर उद्धृत नालन्दा अभिलेख के श्लोक में बताया गया है कि "निस्त्रिंशांशुप्रतानप्रद-लितनिखिलारातिघोरान्धकारः" (तलवार रूपी सूर्य से शत्रु-रूपी घोर अन्धकार को नष्ट कर दिया था) ; गौडवाहो भी स्पष्ट कहता है कि 'श्री तुम्हारी खड्ग में ही क्यों न निवास करे' (कह णु सिरी वसउ तुइझ खग्गम्मि) ।^७ कुछ शत्रु तो तलवार द्वारा मौत के घाट उतरे, कुछ शत्रु आपकी शरण में आ गये और बाकी शत्रु समुद्र में समा गये ।^८ उसके सामन्तों ने शत्रु-रूपी हाथियों के मस्तकों का दमन किया ।^९ गौडवाहो भी यही कहता है ।^{१०} इस प्रकार कन्नौज में बन्दि-सूत-मागध आदि उसकी दिग्विजय और यश का वर्णन करते ही थे—

“इति बन्दिनन्दित जयं गाधिपुरारूढसैन्यविन्यासः”^{११}

यशोवर्मन-पराभव

इसे काल की चित्रता ही कहेंगे कि इस पराक्रमी राजा को भी पराजित होना पड़ा । काश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड ने भी दिग्विजय की ।^{१२}

१—गौडवाहो, ७१२; ७१४, ७१६, ७२१

२—वही, ७१३

३—वही, ७१५

४—वही, ७१७

५—वही, ७२३-७२४, ७२६;

६—वही, ७२५

७—वही, ७१६—कथं न श्रीर्वसतु तव खड्गे ।

८—वही, ७२१

९—नालन्दा लेख, श्लोक ४, पंक्ति १-२

१०—गौडवाहो ७३१

११—वही, ७३७

१२—राजतरंगिणी ४-१३१; इसकी दिग्विजय भी पृथिवी-प्रदक्षिणा-क्रम पर आधारित थी ।

यह महाराज पूर्व में अन्तर्वेदी (दोआब) की ओर बढ़ा और गाधिपुर (कान्यकुब्ज) में घुस कर भय उत्पन्न कर दिया ।^१ क्षण मात्र में ही ललितादित्य यशोवर्मन की विशाल सेना को नष्ट कर विजयी बन गया ।^२ दोनों ही सम्राटों में सन्धि हो गयी (सोऽभूत् संधिः यशोवर्मललितादित्ययोरिति) ।^३ इस प्रकार यशोवर्मन के प्रताप और प्रभाव को ललितादित्य ने मूलतः नष्ट कर दिया (यशोवर्मनृपं तं च समूलमुदपाटयत्) ।^४ पराजित राजा के राज्य से कान्यकुब्ज देश (यमुना पार से लेकर कालिका=काली नदी तक का क्षेत्र) ललितादित्य के अधिकार में चला गया ।^५

युद्ध-समीक्षा

पहले कम से कम, ७३६ ई० तक दोनों ललितादित्य और यशोवर्मन मित्र थे । परन्तु बाद में दोनों में शत्रुता हो गयी । दिग्विजय के पश्चात् यशोवर्मन का अधिकार कुरु और श्रीकण्ठ देश (पूर्वी पंजाब) तक जम गया था । अतः जब दो महत्वाकांक्षी राजाओं की सीमाएं एक दूसरे की सीमा को छूने लगीं, तो दोनों में संघर्ष होना आवश्यक था । इस युद्ध का विवरण केवल काश्मीरी कवि कल्हण की राजतरंगिणी में मिलता है । राजतरंगिणी से ऐसा ज्ञात होता है कि दोनों राजाओं में दो युद्ध हुए थे । यशोवर्मन ने पहले युद्ध में पराजित होकर संधि कर ली । किन्तु सन्धि-पत्र में यशोवर्मन का नाम पहले था और ललितादित्य का नाम बाद में था । ललितादित्य के साधिविग्रहिक (युद्ध-संधि-मंत्री) मित्रशर्मा इसे न सह सका । उसने ललितादित्य को उकसाया जिससे दोनों में पुनः युद्ध हुआ और अबकी बार यशोवर्मन की बुरी तरह पराजय हुई ।

इस युद्ध की तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद है । परन्तु यह युद्ध ७३६ ई० के बाद ही हुआ था, जैसा कि स्ट्राइन,^६ आयंगर^७ और बनर्जी^८ मानते हैं ।

१—राजतरंगिणी, ४. १३२-१३३

२—वही, ४. १३४ : यशोवर्माद्रिवाहिन्याः क्षणात्कुर्वन् विशोषणम् ।
नृपतिः ललितादित्यः प्रतापादित्यतां ययौ ॥

३—वही, ४. १३८

४—वही, ४. १४०

५—वही, ४. १४५

६—R. T. (अंग्रेजी अनुवाद), p. 89

७—S. I. H. C., Vol. I, p, 333

८—Indian Culture XV, p. 211

साम्राज्य-विस्तार

उसके साम्राज्य की सीमाएं निर्धारित करना कठिन है। परन्तु इतना सत्य है कि कान्यकुब्ज देश के शत्रुओं का दमन कर उसने एक बार फिर कान्यकुब्ज की शक्ति जमा दी। पूर्व में मगध-वंग उसके आधीन थे। पश्चिम में मालवा और मरु देश में भी उसका प्रभाव था। अतः वह हिमालय और विन्ध्य के मध्य श्रीकण्ठ से मगध तक मध्य देश का शासक था। यस्० के० अयंगर का विचार है—

“Yashovarman must have been the ruler of the whole territory which comprised in the kingdom of Magadha and the province of Tirabhukti, leaving Pundravardhana farther east.”^१

चीन-दौत्य

वह काश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड का समकालीन ‘मध्य भारत का राजा’ था जिसने अरबों के बढ़ते प्रवाह को रोकने के लिये चीन से सहायता मांगी थी। परन्तु चीन से यह सहायता न मिली और जैसा ऊपर कहा गया है कि उसने पारसीकों या अरबों को पराजित किया था।

इस प्रकार यशोवर्मन ने ‘मध्यमलोक’ (मध्य देश) की पवित्रता और गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित किया।^२

संभवतः काश्मीर राजा के साथ ही युद्ध में इसकी मृत्यु हो गयी जिससे उसकी शक्ति भी मूलतः समाप्त हो गयी थी।

परन्तु यशोवर्मन एक महान विजेता ही नहीं विद्या और साहित्य का उन्नायक भी था। महाकवि भवभूति और वाक्पतिराज उसके दरबार में ही रहते थे। मगध में उसने यशोवर्मपुर नामक नगर की भी स्थापना की थी। उसकी मृत्यु के बाद उत्तरी भारत में फिर अराजकता और कलह फैल गया।

जैन ग्रंथों के आधार पर सम्राट आम को यशोवर्मन् का पुत्र बतलाया गया है। स्कन्द पुराण में भी आम को कान्यकुब्ज का महान शासक बताया गया है। परन्तु कान्यकुब्ज-सम्राट आम की पहचान प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय से की गयी^३ है।

1—S. I. H. C., Vol, I, p, 330

२—महावीर चरित (चौखम्बा, १६५५ ई०), अंक ७, पृ० ३१३, ३१८

३—श्रवस्थी, स्ट० स्क० पु०, पृ० १८८-१८३

शासन प्रबन्ध

हमें उसके शासन प्रबन्ध का विस्तृत विवरण नहीं मिलता है। नालन्दा अभिलेख में उसे लोकपाल कहा गया है जो सूर्य के समान प्रत्येक दिशा में अपने प्रताप का प्रकाश फैला रहा था। प्राचीन नीति शास्त्र के ग्रन्थों में राजा को लोकपाल के गुणों से युक्त कहा गया है। वाकपतिराज ने गौडवाहो में यशोवर्मन् के गुणों का विशेषतः उसकी सेना और सैन्य बल का विशद वर्णन किया है। उसने अपने गुणों और तलवार से ही 'श्री' (राजसत्ता) को अपना लिया था और जब तक शक्ति रही उसका प्रताप भी बना रहा।

भवभूति के उत्तर रामचरित नामक नाटक से ज्ञात होता है कि राजा का वरण होता था और इसमें 'पौरजानपद' प्रजा का विशेष हाथ था।^१ क्षत्रिय ही राज-पद का योग्य अधिकारी माना गया था जो धर्म-मूर्ति और धर्म-रक्षक भी था यही क्षत्र-धर्म या राजधर्म भी था।^२ उनका भुज बल ही पराक्रम था (बाह्वोर्वीर्यं यत्तु क्षत्रियाणाम्)।^३ लोक रक्षा में प्रवृत्त वही लोकपाल था—

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः

क्षात्रो धर्मः इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।

सामर्थ्यानामिव समुदयः संचयो वा गुणाना-

माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः ॥^४

सत्य ही प्राचीन भारतीय विचार के अनुसार राजा ही धर्म-मूर्ति था—

प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः।^५

धर्ममूर्ति यशोवर्मन् रामचन्द्र के समान धर्म-द्रोहियों (पाषण्डों) के दमन के लिये ही अवतरित महावीर था।^६ इसके आभूषण प्रताप और विक्रम थे जो धर्म के अनुगामी थे।^७ इस प्रकार सत्य है कि राजगुणों से राजा प्रजा द्वारा पूजित होता है—

गुणैस्तं राजानं जनो बहुमन्यते।^८

१—उत्तर रामचरित, अंक ७, पृ० ३४८

२—वही, अंक ५, पृ० २६१

३—वही, अंक ५, पृ० २६३

४—वही, ६/६, (महावीर चरित २/४१)

५—वही, ६/१०

६—महावीर, चरित १/६

७—वही, १/२२

८—उत्तर राम चरित, ५/२८

इस युग के दोष—ब्राह्मण और क्षत्रिय विरोध का—अन्त करने के लिये भवभूति ने भी कहा है कि राम ब्रह्मद्रोहियों का वध करते थे ।^१ क्षात्र तेज और ब्राह्म तेज का संयोग ही राजश्री की वृद्धि करता था । इसीलिये राजा का कर्तव्य ब्राह्मणों पर अनुग्रह करना ही था ।^२

भवभूति ने मनु-वैवस्वत वंश के गुणवान क्षत्रिय राजा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है,^३ जिसे पाकर पृथिवी अराजक अवस्था से निकल कर सराजक (सुशासित) हो गई थी—

वसुमती वीरेण राजवन्ती^४

यशोवर्मन् निस्सन्देह, ऐसा ही वीर शासक था—

वीरः क्षत्रियपुंगवो गुणानिधिः श्लाघ्यो धरित्र्यापतिः ।^५

राजकार्य में आलस्य महान दोष या (महावीर चरित, पृ० २५४-२५५) ।

राज-कर्तव्य

राजा का प्रमुख धर्म प्रजानुरञ्जन^६ और प्रजा-पालन^७ ही था ।^८ धर्म^९ और वर्णाश्रम रक्षा करना भी राजा का प्रमुख कर्म था ।

राज-शासन में मंत्री और मन्त्रि-परिषद का भी महत्व^{१०} था । राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि साधन-व्यग्रहिक का पद कितना महत्वपूर्ण था । पुरोहित का महत्व अत्यधिक था । वही राष्ट्र रक्षक था (राष्ट्रगोपः पुरोहितः) । जिस राष्ट्र में विद्वान पुरोहित होता है वहां आपत्ति नहीं आती है ।^{११} सेना का भी स्थान महत्वपूर्ण था । शासन का भार अठारह अध्यक्षों^{१२} पर भी था ।

१—महावीर चरित, १/६२

२—वही, २/५ : अमोघमस्त्रं क्षत्रस्य ब्राह्मणानामनुग्रहः ।

दुरासदं च तत्तेजः क्षत्रं यद्ब्रह्मसंयुतम् ॥

देखिये, मनुस्मृति ७/१४

३—महावीर चरित, ३/१; ४/१, १७, ७/२६

४—वही, ३/१

५—वही, ४/१७

६—उत्तर राम चरित, १/११; महावीर चरित ४/४४

७—महावीर चरित, ७/१५

८—महावीर चरित, ५/३०

९—मालतीमाधव, अंक १, पृ० २२; अंक २, पृ० ११५

१०—महावीर चरित, २/१८

११—राजतरंगिणी, ४/१४१-२४३

सभा

सभा^१ और परिषद^२ भी महत्वपूर्ण संस्थाएं थीं, जहाँ राज-कार्य पर विचार किया जाता था ।

समाज और संस्कृति

गौडवाहो और भवभूति के ग्रन्थों में समाज और संस्कृति का चित्र प्राप्त होता है । वर्णाश्रम धर्म की प्रधानता थी और क्षत्रिय राजा का मुख्य कर्म उसकी रक्षा करना था । ब्राह्मण विद्या, विशेष कर ज्ञान (ब्रह्म विद्या) के उन्नायक थे जो राष्ट्र-रक्षा का भी ध्यान रखते थे । चरित्र, त्याग और सेवा के कारण ही उनका राष्ट्र में सम्मान था । विद्वान पुरोहितों को ही राष्ट्र-रक्षक कहा गया है । क्षत्रियों के साथ उनका सहयोग ही राष्ट्र-वर्द्धक था । क्षत्रिय शास्त्रास्त्र ज्ञान में कुशल धर्म-गोप्ता थे । दुष्टों का दमन करना उनका मुख्य कर्तव्य था । आर्थिक और औद्योगिक उन्नति का श्रेय क्रमशः वैश्यों और शूद्रों का धर्म था ।

आश्रम धर्म प्रचलित था । ब्रह्मचर्य आश्रम ही शिक्षा-काल और चरित्र-निर्माण की ट्रेनिंग थी ।

कला, विद्या और विद्वानों का आदर था । राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि भवभूति और वाक्पतिराज इत्यादि उसकी प्रसिद्ध कवि थे ।^३ भवभूति आद्य कवि वाल्मीकि की काव्य-प्रतिभा का अनुवचन से प्रस्फुटन तथा उनके द्वारा रामचरित (रामायण) के प्रणयन का उल्लेख करते हैं ।^४

समाज शास्त्रविदों और शिष्टों से विभूषित था । वेद, उपवेद, उपनिषद, आन्वीक्षिकी, त्रयी, दण्डनीति, धनुर्वेद आदि शास्त्रों का पठन-पाठन होता था ।^५ इस प्रकार भवभूति-सेवित यशोवर्मन का युग पाण्डित्य और शास्त्र-प्रतिष्ठा^६ से महान युग बन गया, जिसमें कला का भी उन्नयन हुआ । अयोध्या, कान्यकुब्ज कुंडिनपुर, पद्मावती और कालप्रिय (कालपी) विद्या तथा शिक्षा के केन्द्र थे ।

१—उत्तर रामचरित, अंक १, पृ० ६

२—महावीर चरित, अंक ३, पृ० ११०

३—राजतरंगिणी, ४/१४४ : कविः वाक्पतिराजश्चैव भवभूत्यादि सेवितः ।

४—उत्तर रामचरित, अंक २, पृ० ८६-८०

५—मालतीमाधव, अंक १, पृ० २; १/८; ३/११

उत्तर रामचरित, २/३४; पृ० ८६; ६/६

६—मालतीमाधव, ३/११

आयुध वंश और त्रिकोणात्मक संघर्ष

यशोवर्मन् की मृत्यु के बाद कन्नौज के इतिहास में फिर अंधकार छा गया । यथाक्रम बज्रायुध, इंद्रायुध और चक्रायुध नामक राजाओं को कन्नौज में शासन करते हुए पाते हैं । निश्चित रूप से नहीं ज्ञात है, कि ये सम्राट किस वंश के शासक थे । पायर्स महोदय के अनुसार यशोवर्मन् का उत्तराधिकारी था जिसका उल्लेख राजशेखर की कर्पूर मंजरी में किया गया है । बज्रायुध के बाद इंद्रायुध शासक हुआ । उसका उल्लेख धर्मपाल के भागलपुर ताम्रपट्ट लेख में मिलता है । पाल शासक धर्मपाल ने इंद्रायुध को हटाकर चक्रायुध को कन्नौज का शासक नियुक्त किया था । इन राजाओं के अंत में आयुध शब्द के होने के कारण इस वंश को आयुध कुल कहा गया है ।

ये सम्राट अत्यंत दुर्बल थे जो उस संकट कालीन युग में न तो अपने आप को ही स्वतंत्र रख सके और न कन्नौज की प्रतिष्ठा और मर्यादा ही बनाये रख सके । जिस कन्नौज ने हर्ष और यशोवर्मन् के समय सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपनी शक्ति और प्रतिभा से आकृष्ट कर लिया था, वही कन्नौज विभिन्न शक्तियों के हमले का शिकार बन गया ।

अन्तर्वेदी, मध्यदेश अथवा आर्यावर्त^१ अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रसिद्ध रहा है । आर्थिक दृष्टि कोण से भी यह भूखंड उपजाऊ और समृद्ध था । अपने वैभव और धन धान्य के लिए प्रसिद्ध था । भिन्नभिन्न देशों और दिशाओं से व्यापारी वणिक् भी अपने पण्य को लेकर आते रहते थे । यह विद्या और कला का भी केन्द्र था । धार्मिक दृष्टिकोण से भी यह स्थान प्रसिद्ध था । कान्यकुब्ज की इस समृद्धि के कारण ही उसे महोदय भी कहा गया । वराह पुराण में इसी को महागृहोदय भी कहा गया है, जो संपूर्ण जम्बूद्वीप का भूषण ही था ।^२

१—राजशेखर, काव्यमीमांसा, अध्याय १७, पृ० २७६: पूर्वपरयोः समुद्रयोर्हिम-
वद्विन्ध्ययोश्चान्तरमार्यावर्तः । तस्मिंश्चातुर्वर्ण्यं चातुराश्रम्यं च । यन्मूलश्च
सदाचारः । तत्रत्यो व्यवहारः प्रायेण कवीनाम् ।

१—महागृहोदयं नाम जम्बूद्वीपस्य भूषणम् । वराह पुराण १६/२

स्कन्द पुराण में भी कान्यकुब्ज को महादेश कहा गया है और यही इस प्रदेश की ग्राम संख्या (३६ लाख) से भी सिद्ध होता है। अस्तु स्पष्ट है कि इस प्रथित प्रदेश पर देश की भिन्न-भिन्न राज शक्तियों का ध्यान जाना स्वाभाविक ही था और यही हुआ भी। उत्तरी और दक्षिण भारत के राज वंश कान्यकुब्ज पर आधिपत्य जमाने के लिए प्रयत्नशील थे।

इसी समय बंगाल में क्रान्ति हुई जिसमें गोपाल नामक वीर और पराक्रमी पुरुष राजा चुना गया। उसने बंगाल-बिहार में न केवल शांति और व्यवस्था की स्थापना की, प्रत्युत प्रथित पाल साम्राज्य की प्रतिष्ठा भी उसी ने की। उन्नतशील पाल साम्राज्य ने भी पश्चिम की ओर ही अपने विस्तार का उपयुक्त क्षेत्र पाया।

इसी समय मरु देश में ही दूसरी राजशक्ति का उदय हुआ जिसे इतिहास में गुर्जर-प्रतिहार के नाम से जानते हैं। पश्चिम से अरब शासकों के आक्रमण राजस्थान और अवन्ति देश पर हो रहे थे। इस राजवंश का उदय हुआ और अभियान इसी विदेशी शक्ति की बढ़ को रोकने के लिए हुआ था। स्पष्टतः उनका राज्य विस्तार और शक्ति का विकास पश्चिम की ओर नहीं हो सकता था क्योंकि उधर अरबों और राष्ट्रकूटों के राज्य थे उनका भी ध्यान कन्नौज की ओर गया, क्योंकि यहाँ कोई सशक्त शासक नहीं था। इस प्रकार कन्नौज और मध्यदेश पर अधिकार करने के लिए दो साम्राज्यवादी शक्तियाँ सचेष्ट थीं। बिहार, बंगाल से कन्नौज की ओर पाल बढ़ रहे थे और राजस्थान तथा अवन्ति से प्रतिहार बढ़ रहे थे। इन दोनों बढ़ती हुई शक्तियों में संघर्ष होना स्वाभाविक था। जिस समय पाल और प्रतिहार शासक कन्नौज पर अधिकार करने के लिए युद्ध कर रहे थे, दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा भी इस द्विमुखी युद्ध में कूद पड़े। इस प्रकार उत्तरी भारत के प्रभुत्व के लिए शताब्दियों तक इन तीनों राजवंशों में युद्ध होता रहा। यह त्रिकोणात्मक संघर्ष इन वंशों की कई पीढ़ियों तक चलता रहा जिसने देश को जर्जर कर दिया।

जिस समय कन्नौज पर इन्द्रायुध नामक दुर्बल शासक राज्य कर रहा था (शक संवत् ७०५ = ७८३-८४ ई०), प्रतिहार शासक वत्सराज ने अपनी शक्ति का विस्तार करना प्रारंभ किया। राष्ट्रकूट अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने गौड़ शासक को पराजित कर उसके दो श्वेत राज छत्रों को छीन लिया। यह युद्ध प्रतिहार शासक वत्सराज और पाल सम्राट धर्मपाल में ही हुआ था। डा० सिन्हा के मत से यह युद्ध इलाहाबाद के निकट हुआ होगा। इसी युद्ध से त्रिकोणात्मक संघर्ष का श्रीगणेश होता है। पहले युद्ध में जैसा कि

ऊपर कहा गया है पाल सम्राट की पराजय हुई थी क्योंकि प्रतिहार शासक ने उसे हराकर उसके राज चिन्हों (श्वेत राजछत्र) को छीन लिया था ।^१ इसी समय राष्ट्रकूटों की शक्ति दक्षिण में अधिक बढ़ चुकी थी । उन्होंने उत्तरी भारत की ओर भी ध्यान दिया । गोविन्द द्वितीय के उत्तराधिकारी सम्राट ध्रुव ने वत्सराज को पराजित कर उससे श्वेतराज छत्रों को छीन लिया ।^२ इस प्रकार प्रतिहार शासक पराजित होकर मरु देश में शरण लेने के लिए विवश हुआ । इसके बाद राष्ट्रकूट शासक ने गौड सम्राट को भी पराजित किया । यह युद्ध गंगा-यमुना द्वार (अंतर्वेदी) में ही हुआ था जैसा कि संजन लेख से ज्ञात होता है । परंतु राष्ट्रकूट सम्राट उत्तरी भारत में अधिक समय तक न ठहरा । उसे अपनी राजधानी को लौटना पड़ा । यद्यपि अभिलेखों में राष्ट्रकूट शासक को गंगा-यमुना के दोआब का में अधिकारी बताया गया है^३ । परन्तु ज्योंही वह दक्षिण की ओर मुड़ा धर्मपाल ने अन्तर्वेदी पर जो उसकी साम्राज्यवादी नीति और क्रियाओं के लिए खाली पड़ा हुआ था, ध्यान दिया । इस प्रकार रणकुशल और नीतिज्ञ धर्मपाल को उत्तरी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए सुअवसर मिल गया । खालिमपुर ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि धर्मपाल ने अपने आपको कान्यकुब्ज के सम्राट रूप में प्रतिष्ठित कर लिया । उसके इस प्रभुत्व को तत्कालीन राजाओं ने भी मान लिया था । इन राजाओं अथवा राज्यों में जिन्होंने धर्मपाल के स्वामित्व को स्वीकार कर लिया था, उनमें पांचाल, भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गंधार और कीर के सम्राट सम्मिलित थे । ”^४ परन्तु धर्मपाल ने कान्यकुब्ज के सिंहासन पर चक्रायुध को बिठलाया नारायणपाल के भागलपुर लेख से भी ज्ञात होता है कि धर्मपाल इन्द्रराज (इन्द्रायुध) और अन्य शत्रुओं को पराजित कर महोदय (कन्नौज) का स्वामी बन गया परन्तु उसने यह प्रभुत्व चक्रायुध को वापस कर दिया ।^५ चक्रायुध को यहाँ पर वामन के

१—वणि डिंडोरी लेख : हेलास्वीकृत गौडराजकमलामत्तम्.....वत्सराजम्

२—अमोघवर्ष प्रथम का संजन ताम्रपट्ट लेख—: गङ्गायमुनयोर्मध्ये राज्ञो गौडस्य नश्यतः लक्ष्मीलीलारविन्दनिश्वेतच्छत्राणि योऽहर्त्त ॥

६—कर्क सुवर्णवर्ष का बड़ौदा ताम्रपत्र लेख :—

यो गंगायमुने तरङ्गसुभगे गृह्णन्परेभ्यः समम्
साक्षाच्चिन्हनिभेन चोत्तमपदं तत्प्राप्तवानीश्वरम् ।

४—धर्मपाल का खालिमपुर ताम्रपत्र लेख-श्लोक १२

५—नारायणपाल देव का भागलपुर दान-पत्र लेख-श्लोक ३

समान याचक बताया गया है जिसे बलि रूपी धर्मपाल ने राज्य दान कर दिया था। यहाँ पर उल्लिखित इंद्रराज कन्नौज का शासक इंद्रायुध ही था जिसे हटाकर धर्मपाल ने चक्रायुध को राजा बनाया। अमोघवर्ष के संजन ताम्रपत्र लेख से धर्मपाल और चक्रायुध की मित्रता ज्ञात होती है। प्रतिहार शासक भोज की ग्वालियर प्रशस्ति से भी ज्ञात होता है कि चक्रायुध को धर्मपाल ने कन्नौज का शासक नियुक्त किया था। इस प्रकार स्पष्टतः धर्मपाल ही कन्नौज का वास्तविक शासक और उत्तरी भारत का प्रमुख सम्राट बन गया। उसने सार्वभौम पद को कान्यकुब्ज की सभा ही भोज, मत्स्य, मद्र, यदु, अवन्ति, यवन, गंधार, कुरु, और कीर देश के राजाओं ने स्वीकार कर लिया था।^१ देवपाल के मुंगेर ताम्रपत्र लेख से भी ज्ञात होता है कि विजय करते हुए धर्मपाल के सैनिकों ने केदार, गंगासागर, गोरकण और अन्य तीर्थों पर स्नान किया था।^२ इस उल्लेख से भी धर्मपाल का सार्वभौम स्वरूप ही सिद्ध होता है।

परन्तु प्रतिहारों ने भी राष्ट्रकूटों के आघात से होने वाली क्षति को पूरा कर अपनी शक्ति को बढ़ा लिया था। वत्सराज के उत्तराधिकारी नागभट द्वितीय ने अपने वंश की खोयी हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया महाराज भोज की ग्वालियर प्रशस्ति से भी ज्ञात होता है कि अन्ध्र, सिन्धु, विदर्भ और कलिङ्ग के शासकों ने नागभट द्वितीय के प्रताप और प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया था।^३ इन राज्यों की शृंखला और स्थिति को देख कर ऐसा ही ज्ञात होता है कि दोनों प्रतिद्वन्द्वियों, पालों और राष्ट्रकूटों, के विरुद्ध ही नागभट द्वितीय ने इन राज्यों के साथ एक संघ बनाया था। इस संघ शक्ति से राष्ट्रकूटों के दक्षिणी आक्रमण से सुरक्षित होकर उसने सबसे पहले नीच और दुर्बल चक्रायुध को कन्नौज से हटाकर वहाँ अपनी शक्ति जमाई। नागभट द्वितीय ने बंग-राजा की सेनाओं को भी पराजित किया। यहाँ पर उल्लिखित बंग-नरेश, पाल सम्राट, धर्मपाल ही था। उत्तरी भारत के महान शासक धर्मपाल की पराजय से ही नागभट द्वितीय का पराक्रम और यश स्थापित हो गया। अब वह उत्तरी भारत में अन्तर्वेदी का प्रभु भी बन गया। उसने आनर्त (गुजरात), मालवा, किरात, तुरुष्क (अरब-शासक) और वत्स तथा मत्स्य

१—धर्मपाल का खालिमपुर लेख, श्लोक १२

२—I.A., XXI, pp., 253ff

३—भोज का ग्वालियर लेख, श्लोक ८

राज को पराजित कर प्रतिहार साम्राज्य की स्थापना की । कन्नौज ही इसकी राजधानी थी । नागभट्ट द्वितीय और धर्मपाल के बीच युद्ध मुंगेर (विहार प्रदेश) के निकट लगभग ७६६ ई० में हुआ था ।

इसी समय फिर राष्ट्रकूटों का आक्रमण हुआ । गोविन्द तृतीय ने अपने राज्य की सुव्यवस्था और सुरक्षा करने के बाद उत्तरी भारत पर चढ़ाई की । उत्तरी भारत में उसके पिता के आक्रमण के बाद अब वहाँ की राजनीति में बहुत परिवर्तन हो चुका था । गोविन्द तृतीय ने भी बड़ी सतर्कता और सुयोग्यता से तैयारी करने के बाद उत्तरी देश पर आक्रमण किया । उसने अपने सामन्तों और सेनानायकों को वेंगी, उड़ीसा, दक्षिण कोशल और मालवा के शासकों पर निगाह रखने तथा उन्हें अपने राज्य को शत्रुओं के आक्रमण से बचाये रखने का आदेश देकर उत्तर की ओर बढ़ा । उसने अपने भाई इन्द्र को प्रतिहारों के मूल-प्रदेश (गुर्जरत्ता) पर आक्रमण करने का आदेश दिया । स्वयं उसने नागभट्ट द्वितीय पर कान्यकुब्ज में आक्रमण कर दिया । डा० अल्टेकर के अनुसार यह आक्रमण ८०६-८०७ ई० के लगभग हुआ था ।^१ इस आक्रमण का उद्देश्य क्षत्रियोचित शौर्य का प्रदर्शन मात्र ही था । अपने पिता द्वारा ध्वस्त प्रतिहार शक्ति के उत्कर्ष को गोविन्द तृतीय न सह सका । साथ ही दक्षिण और पश्चिम के राज्यों (आनत, सिन्धु, विदर्भ और कलिंग) का संघ जिसे नागभट्ट द्वितीय ने बनाया था, राष्ट्रकूट सत्ता के लिये एक खतरा था; क्योंकि ये राज्य राष्ट्रकूट राज्य की उत्तरी सीमा पर ही स्थित थे । इसके अतिरिक्त उत्तरी भारत की प्रभुता पाना इस वंश की महत्वाकांक्षा ही थी ।

अमोघवर्ष के संजन ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि गोविन्द तृतीय ने नागभट्ट द्वितीय को पराजित किया^२ और धर्मपाल तथा चक्रायुध ने उसे स्वयं आत्मसमर्पण कर दिया (स्वयमेवोपनतौ च यस्य महतस्तौ धर्मचक्रायुधौ)^३ । डा० अल्टेकर का विचार है कि गोविन्द तृतीय का उत्तरभारतीय अभियान दिग्विजय मात्र था । उसने किसी भी प्रदेश को अपने साम्राज्य में नहीं सम्मिलित किया ।^४ इस आक्रमण का प्रभाव प्रतिहारों की प्रगति पर अवश्य पड़ा ।

१—राष्ट्रकूटाज एन्ड दियर टाइम्स, पृ० ६५

२—अमोघ वर्ष का संजन ताम्रपत्र लेख पंक्ति १६-२० :

स नागभट्टचन्द्रगुप्तनृपयौयशौर्य रणे

स्वहार्यमपहार्य..... ।

३—वही, पंक्ति २२

४—डा० अल्टेकर 'राष्ट्रकूटाज एन्ड दियर टाइम्स, पृ० ६७

धर्मपाल और चक्रायुध को, जो नागभट द्वितीय के प्रतिद्वन्दी थे, प्रतिहार शासक की पराजय से प्रसन्नता हुई। इसके विपरीत, बढ़ती हुई नागभट द्वितीय की शक्ति को क्षति पहुँची। धर्मपाल जानते थे कि राष्ट्रकूट सम्राट उत्तर में न ठहर कर शीघ्र ही अपने राज्य को वापस लौट जायगा। परन्तु राष्ट्रकूट आक्रान्ता के वापस लौट जाने के बाद भी नागभट की शक्ति और सत्ता अक्षुण्ण बनी रही, यद्यपि पाल शासकों-धर्मपाल और देवपाल ने अपनी शक्ति का यथेष्ट विकास कर लिया। इसके प्रतिकूल नागभट द्वितीय के उत्तराधिकारी के समय में प्रतिहारों की शक्ति और प्रतिष्ठा का ह्रास हुआ।

नागभट द्वितीय के पुत्र और उत्तराधिकारी के शासनकाल में देवपाल ने विस्तार-नीति अपना कर पाल साम्राज्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। उत्तरी भारत की प्रभुता के लिये होने वाले त्रिकोणात्मक संघर्ष में रामभद्र प्रतिहार-प्रतिष्ठा को बनाये न रख सका। प्रतिहारों के शत्रुओं ने प्रतिहार प्रदेशों को रौंद डाला। रामभद्र के पुत्र और उत्तराधिकारी मिहिर-भोज को प्रतिहार साम्राज्य पुनः संगठित करना पड़ा।

प्रारम्भिक राज्य काल में भोज को भी देवपाल की शक्ति के सामने झुकना पड़ा। दक्षिण में राष्ट्रकूटों के विरुद्ध भी उसे कोई सफलता न मिली। क्योंकि गुजरात के राष्ट्रकूट शासक ध्रुव ने भोज को पराजित कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि भोज के समय में भी उत्तरी भारत में प्रतिहारों के साम्राज्यवादी विकास में कुल-शत्रुओं, पालों और राष्ट्रकूटों, ने बाधाएँ उत्पन्न कर दीं। फिर भी अपनी योग्यता और शक्ति से भोज उत्तरी भारत का सार्वभौम सम्राट बन गया।

भोज के पुत्र और उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल के राज्यकाल में भी मगध और उत्तरी बंगाल के कुछ भागों पर, जो कभी पाल साम्राज्य के भाग थे, प्रतिहारों का प्रभुत्व बना रहा जैसा कि उसके रामगया लेख से ज्ञात होता है। डा० आर० सी० मजुमदार ने बताया है कि भोज के बाद उसके पुत्र महेन्द्रपाल ने भी पाल साम्राज्य को उग्रता के साथ ध्वस्त कर दिया। (हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १२६)। ईसा की नवीं शताब्दी में पालों के पराभव का मूल कारण भोज की अदम्य शक्ति और नीति ही थी। परन्तु पाल प्रदेशों पर प्रतिहारों का प्रभुत्व अधिक समय तक न बना रहा, जैसा कि मगध में पाये जाने वाले नारायणपाल के लेखों से सिद्ध होता है।

अध्याय ५

प्रतिहार-वंश

इस वंश का उदय राष्ट्र संकट के समय देश की रक्षा करने के लिये हुआ और इसकी उत्पत्ति तथा प्रतिष्ठा भी इसी कर्तव्य परायणता पर आधारित थी। जिन अरब विजेताओं ने अपनी शक्ति की आंधी से पश्चिम एशिया, उत्तरी अफ्रीका और दक्षिणी योरप को भी लूट और ध्वस्त कर दिया था, उनकी क्रोधाग्नि भारत में भी सम्पूर्ण प्रजा के दुःख का महान कारण (अशेषलोक-संतापकलापदः ताजिकानलः) बन गई थी, परंतु आघात से रक्षा करने वाले (क्षतात् संताननात् क्षत्रः) ^१ क्षत्रियों (तत्कथित राजपुत्रों) ने उस ताजिकानल को अपनी तलवार की धार के पानी से बुझा दिया (असिधाराजलेन प्रसभं शमितः)। गुर्जर-प्रतिहार भी ऐसे ही क्षत्रिय वीर थे। प्रारम्भ से अन्त तक सभी गुर्जर सम्राट इसी कर्तव्य का पालन करते रहे जैसा कि महाराज भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में बताया गया है। भोज के समय प्रतिहार-साम्राज्य उत्तरी भारत की सार्वभौम शक्ति बन गया था।

परन्तु उन्हें यह प्रभुत्व पाने के लिये बहुत ही संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने अपने इतिहास में बहुत ही उतार-चढ़ाव देखे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि उनके प्रारम्भिक इतिहास से हम उन्हें लेखों में कलचुरि संवत् का प्रयोग करते पाते हैं। उनकी प्रारम्भिक राजधानियाँ भी नान्दीपुर, भड़ौच और भिनमाल थीं। भिनमाल ही युअनच्वांग का पि-लो-मे-लो है। ईसा की छठी शताब्दी में ही उनकी शक्ति का आभास मिलता है। प्रभाकरवर्द्धन को भी गुर्जरों के विरुद्ध युद्ध करते हुए पाते हैं जैसा कि बाण द्वारा दी गई उपाधि, 'गुर्जर प्रजागरः' से ज्ञात होता है। युअनच्वांग के समय भिनमाल का राजा क्षत्रिय था। वह पराक्रमी और बुद्धिमान भी था।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इन गुर्जर शासकों ने अरबों के आक्रमण के विरुद्ध बलभी सम्राट की सहायता की थी। वे, इस प्रकार, प्रारम्भिक अवस्था में पहले चालुक्यों और फिर राष्ट्रकूटों (दन्तिदुर्ग) के सामन्त रहे होंगे। जैसे जैसे उन्हें अवसर मिलता गया वे अपनी शक्ति को बढ़ाते गये।

मुख्यतः गुर्जर-प्रतिहार वंश की दो शाखाएं थीं। दोनों ही अपना मूल सम्बन्ध लक्ष्मण से बताते हैं। एक का संस्थापक हरिचन्द्र था और दूसरे का संस्थापक नागभट था।

हरिचन्द्र का परिवार

प्रथम परिवार की राजधानी माण्डव्यपुर (मण्डोर) थी। इस वंश-शाखा का संस्थापक हरिचन्द्र था जिसने राजपूताना में जोधपुर के आस पास ५५० ई० के लगभग अपना राज्य स्थापित किया था।

इस वंश-शाखा का इतिहास बाउक के जोधपुर तथा कक्कुक के घटियाला लेखों से ज्ञात होता है। दोनों ही लेखों में अन्तिम राजाओं को छोड़कर प्रायः एक ही वंशावली प्राप्त होती है।

विप्र हरिचन्द्र की क्षत्रिय और ब्राह्मण पत्नियाँ थी। क्षत्राणी पत्नी से चार मधुपायी पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम भोगभट, कक्क, रज्जिल, और दद् थे। उन्होंने शत्रुओं को आतंकित करने वाला महान दुर्ग अपनी भुजाओं से जीते हुए प्रदेश में माण्डव्यपुर नामक स्थान पर स्थापित किया।^१

उनमें से रज्जिल के पुत्र नरभट को उसके पराक्रम के कारण 'पेल्लापेल्ली'^२ कहा गया है। कुछ विद्वानों ने इस पराक्रम-सूचक उपाधि से गुर्जर-प्रतिहारों को विदेशी माना है। यह विदेशी शब्द न होकर पक्का देशी शब्द है जिसका अर्थ है 'ढकेलने वाला' अथवा 'खदेड़ने वाला' है परन्तु प्रश्न होता है कि किसे? इसका उत्तर द्विज हरिचन्द्र के उपनाम 'रोहिल्लद्वयङ्क' से मिलता है। 'पेल्लापेल्ली' की भांति 'रोहिल्लाद्वि' को भी विदेशी मूल का एक स्वरूप माना गया है। परन्तु वह 'वेदशास्त्रार्थ पारगः द्विजः' था।^३ अतः उसे भी विदेशी मानना अल्पज्ञता है। इससे भी 'रोहिल्ल' (रोह-अफगानिस्तान के

१—बाउक का जोधपुर लेख-श्लोक ६-१० :

चत्वारः चात्मजास्तस्यां जाता भूधरणक्षमाः।

श्रीमान्भोगभटः कक्को रज्जिलो दद् एव च ॥६॥

माण्डव्यपुर दुर्गोस्मिन्नेभिन्नजभुजाजिते।

प्राकारः कारितस्तुङ्गो विद्विषां भीतिवर्धनः ॥१०॥

२—वही, श्लोक ११—अमीषां रज्जिलाज्जातः श्रीमान्नरभटः सुतः।

पेल्लापेल्लीतिनामाभूद्वितीयं तस्य विक्रमैः ॥

३—वही, श्लोक ६—बभूव रोहिल्लद्वयङ्को वेदशास्त्रार्थ पारगः।

द्विजः श्री हरिचन्द्राख्यः प्रजापतिसमोगुरुः ॥

रहने वाले अर्थात् मुस्लिम आक्रान्ताओं) को मारने वाला ही ज्ञात होता है । यही 'विद्विषां भीतिवर्धन'^१ भी था । यही उनका विक्रम भी था जिसके कारण उनको ये संज्ञायें मिलीं ।

नरभट से नागभट का जन्म हुआ जिसने मेडान्तकपुर (मेरटा) को अपनी स्थिर राजधानी बनाया । इस प्रकार इस शाखा ने जोधपुर के आस पास मरु मण्डल (मारवाड़) में अपनी सत्ता जमाई । प्रारम्भ में ये सामन्त ही रहे ।

नागभट द्वारा जज्ञिका देवी से उत्पन्न दो महामुणी और सुन्दर तथा शत्रुओं को नष्ट करने वाले पुत्र हुए जिनके नाम तात और भोज थे । तात संसार की असारता जान कर छोटे भाई भोज को राज्य सौंप कर माण्डव्याश्रम में तपस्वी जीवन विताने लगे । भोज के बाद तात का पराक्रमी पुत्र यशोवर्धन राजा हुआ । उसे कण्टकों (राज्य के शत्रुओं) को नष्ट करने वाला बताया गया है । वह विद्वेषी शत्रुओं को युद्ध में पराभूत करने वाला था । उसके पुत्र शीलुक को भी 'दुर्वार विक्रम' कहा गया है, जिसने त्रवणी (जोधपुर का दक्षिणी पश्चिमी भाग मलनी प्रान्त) और वल्ल (अरब लेखकों का मण्डल) देशों की स्थिर सीमा स्थापित की थी । वल्ल मण्डल के पालक भट्टी देवराज को पराजित कर छत्र चिन्ह (राजचिन्ह) प्राप्त किया । उसके उत्तराधिकारी जोट और भिल्लादित्य धार्मिक प्रवृत्ति के शासक थे । उसके बाद श्रियुत कक्क को गौड़ों के साथ मुद्गिरि (मुंगेर) में यश लाभ करते हुए बताया गया है ।^२ इस प्रकार कक्क ने प्रथित प्रतिहार शासक नागभट द्वितीय को पाल शासक के विरुद्ध युद्ध में ही सहायता दी थी और वहीं उसने यश प्राप्त किया था ।

कक्क और श्रीमती महाराज्ञी पद्मिनी ने बाउक को जन्म दिया । वह महा-पराक्रमी नृसिंह ही था ।^३ उसके इस लेख की तिथि वि०सं० ८८४=८३७ ई० दी गई है ।

उसके उत्तराधिकारियों के अभाव में डा० पुरी ने यही बताया है कि यह परिवार और सामन्त-राज्य प्रथित गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य में सम्मिलित हो गया ।^४

१—बाउक का जोधपुर लेख, श्लोक १०

—वही, श्लोक १—२५

२—वही, २६—३१

३—डा० पुरी, "हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहाराज", पृ० २६

पहले भी दोनों परिवारों में सद्भाव और सहयोग विद्यमान था जैसा कि कक्क की नागभट द्वितीय को दी गई सहायता से ज्ञात होता है ।

भारतीय द्वार-रक्षक प्रतिहार-पाल

कैलासशैलवसर्तेगिरिशोपरोधात्

द्वारप्रवेशविनिषेधकषायितेन ।

शप्तोऽस्मि कण्वमुनिनाऽयमहं पितुस्ते

श्रीहर्षदेवनृपतेः प्रतिहारपालः ॥^१

भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम और राष्ट्रीयता के इतिहास में प्रतिहार शासकों की देश-भक्ति अनुपमेय है । उनकी राष्ट्र-सुरक्षा कालान्तर में क्षत्रिय शासकों के समक्ष एक उज्ज्वल आदर्श बन गया । देश पर ताजिकों और तुर्कों के आक्रमण हो रहे थे और उत्तरी पश्चिमी द्वार पर देश-रक्षक दुर्बल सिद्ध हो चुके थे । प्रबल ताजिकानल सम्पूर्ण देश को भस्मीभूत करना चाहती थी । अतः ऐसी शक्ति की आवश्यकता थी जो उन्हें देश-द्वार पर ही रोक कर राष्ट्र-रक्षण करने में समर्थ होती । प्रतिहार शासक ऐसे ही वीर क्षत्रिय शासक थे :—

तीव्रदण्डः प्रतिहरणविधेयः प्रतीहार आसीत्^२ ।

मध्यकालीन भारतीय चेतना का जागरूक रूप हमें कवि-शक्ति और उसके उपकरणों यमक, श्लेष और ध्वनि आदि में ही देखने को मिलता है । प्रतिहार एक ऐसी ही सुनिश्चित और सुनियोजित तथा प्रथित-प्राचीन वंश संज्ञा थी । पुराणों में प्रतिहार कुल (प्रतिहारान्वय) का उल्लेख मिलता है । इस युग में भी एक ऐसे व्यक्ति तथा वंश अथवा राष्ट्र शक्ति की आवश्यकता थी कि जो 'प्रतिहरण-विधि' में भी पटु होती । गुर्जर देश पर प्रबल ताजिकों के हमले हो रहे थे । वे उज्जयिनी तक बढ़ भी आये थे और आगे भी बढ़ना चाहते थे । ऐसे अवसर पर इस देश के वीर क्षत्रियों ने इस महान् राष्ट्र-भार को अपने कंधों पर ले लिया । परन्तु यह महत्वपूर्ण कार्य एक राष्ट्र-सम्मेलन में ही सम्पन्न हुआ था ।

१—नवसाहसांकचरित, १८-४३

२—मिहिर भोज की खालियर प्रशस्ति, श्लोक ३

गुर्जर-प्रतिहारान्वय

गुर्जर-प्रतिहारों का मूल

भारतीय इतिहास समस्याओं का इतिहास है। गुर्जर-प्रतिहार वंश का उदय भी हमारे इतिहास की एक जटिल समस्या है। गुर्जर शब्द की ही व्याख्या भिन्न-भिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है और इसी कारण इस प्रश्न पर बहुत से मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों ने गुर्जर-प्रतिहारों को भारतीय मानकर क्षत्रिय बताया है और इसके प्रतिकूल अन्य विद्वान उन्हें अ भारतीय मानकर विदेशी बताते हैं। इस प्रकार गुर्जर-प्रतिहारों की वंशोत्पत्ति के सम्बन्ध में दो प्रमुख विचार धाराएँ हैं।

अभारतीय (विदेशी मूल) विचार धारा

इस विचार धारा के अनुसार गुर्जर एक जाति थी जो भारतवर्ष में बाहर से, विशेषकर मध्य एशिया से, हूणों के साथ ही अथवा कुछ बाद में, यहाँ आकर बस गयी। इस मत के प्रतिपादकों (जैक्सन और भण्डारकर) का विचार है कि गुर्जर और खज्जर (एक विदेशी जाति) एक ही थे, जैसा कि ए० एम० टी० जैक्सन महोदय ने प्रतिपादित किया। डॉ० डी० आर० भण्डारकर और ह्वोरन्ले गुर्जर को हूणों से सम्बद्ध करते हैं। डॉ० ह्वोरन्ले का विचार है, कि ईसा की छठी शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में हूणों, गुर्जरों तथा अन्य मध्य एशिया की जातियों ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया।

ब्रूजर के अनुसार भी हूणों और गुर्जरों में निकट सम्बन्ध था और गुर्जर राजपूताना में स्थायी रूप से बस गए। कनिंघम महोदय ने उनकी समानता यूवी अथवा तुबारी जाति से की। पी० सी० बागची भी बड़ी खींचातानी करने के बाद उन्हें हूणों से सम्बद्ध करते हैं। उनका विचार है कि वूसुन नामक जाति का हूणों से सम्बन्ध था। वूसुन नाम ही आगे चलकर औसुन बन गया और उससे ही गुसुर और अन्त में गूजर भी हो गया। इसे अटकल के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार जैक्सन के मत को मानते हुए कैम्पबेल साहब गुर्जर और खज्जर को एक ही मानते हैं। वे भी चोजार या चजार, खजील और खोजार आदि को गूजर से सम्बद्ध करते हैं। इन तथ्यों में न तो कोई भाषा विज्ञान का ही सिद्धांत है और न ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक आधार ही है। डा० बी० एन० पुरी का भी यही मत है कि गुर्जर और खज्जरों का तादात्म्य, जैसा कि जैक्सन और भण्डारकर मानते

हैं, समान पदों के एकसा अन्तिम रूपों—जर, जार—पर आधारित है। इस समानता का कोई प्रामाणिक आधार भी नहीं है।

डॉ० पुरी का विचार है कि हूणों के आक्रमण के बाद ही ईसा की छठी शताब्दी में गुर्जरोँ का एकवारगी उदय होना ही उनके विदेशी होने का कारण है। इसी से वे पंजाब से लेकर दक्षिण पूर्व में गंगा-यमुना तक फैल गये थे। परन्तु डा० आर० सी० मजूमदार ने इस मत का खण्डन किया है। इसी प्रकार गुर्जरोँ और हूणों के तादात्म्य में भी सन्देह ही है। इस मत का खण्डन करते हुए डॉ० पुरी कहते हैं कि यदि दोनों परस्पर सम्बद्ध जातियाँ थीं, तो भारतीय साहित्य में उनका उल्लेख भी एक ही साथ मिलता। महा-भारत के भीष्म पर्व में हूणों का उल्लेख हुआ है; परन्तु गुर्जरोँ का उसमें उल्लेख नहीं मिलता। युधनच्वांग ने गुर्जर राज्य का उल्लेख किया है जिसकी राजधानी भिनमाल थी। बाणभट्ट ने भी हूणों और गुर्जरोँ में भेद किया है^१। डा० अनिल चन्द्र बैनर्जी के अनुसार गुर्जरोँ को विदेशी सिद्ध करने के लिए उनको हूणों से सम्बद्ध करना अनावश्यक है। वे मानते हैं कि गुप्तोत्तर काल में विदेशी जातियों के आगमन के बारे में हमारा ज्ञान इतना कम है कि यह असम्भव नहीं माना जा सकता कि गुर्जर भारत में हूणों के पहले या बाद में प्रविष्ट हुए^२।

गुर्जर-प्रतिहारों को विदेशी सिद्ध करते हुए डॉ० बैनर्जी मानते हैं कि पेशावर से लेकर रुहेल खण्ड तक, तथा जम्मू-काश्मीर, मध्य प्रदेश और राजपूताने तक गुजर लोगों का प्रसार उनका खँबर दरें से होकर ही भारत में आना सिद्ध करता है। उनका तर्क है कि शायद ही गुर्जर लोग इतने विस्तृत भूखण्ड में फैले हों। शासन-लिप्सा और राज-श्री से प्रलुब्ध होकर अपने साम्राज्य के प्रसार और प्रतिष्ठा की स्थापना के पूर्व वे राजपूताना के किसी भाग में अज्ञात अवस्था में पड़े थे। उनके मत से एक अल्पसंख्यक जाति का इतना विस्तार होना विश्वसनीय भी नहीं मालुम पड़ता। साथ ही गुर्जर-प्रतिहारों का राज्य भी पेशावर, मध्य पंजाब और जम्मू तथा काश्मीर तक नहीं फैला। इसलिए इन स्थानों के गुजरों के अस्तित्व को गुर्जरोँ की राज-नैतिक शक्ति के प्रसार का ही प्रभाव मान सकते हैं। डॉ० बैनर्जी मानते हैं

१—बाण ने प्रभाकर वर्द्धन को 'हूण हरिण केसरी' (हूण रूपी हिरणों को सिंह के समान नष्ट करने वाला) और 'गुर्जर-प्रजागर' कहा है।

२—डॉ० अनिल चन्द्र बैनर्जी, 'लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री', पृ० ८

कि विश्वस्त आभिलेखिक साक्ष्य के अभाव में गुर्जरो के प्रसार, फिलहाल, गुर्जरो अथवा गुर्जर प्रतिहारों के विदेशी होने का प्रमाण माना जाना चाहिए^१ ।

पुनः डॉ० बैनर्जी पृथ्वीराज रासो तथा अन्य इसी प्रकार के उन साक्ष्यों पर जो प्रतिहारों (परिहारों) को अन्य मुख्य राजपूत वंशों—परमार, चालुक्य (सोलंकी) और चौहान—को अर्बुद पर्वत पर अग्निकुण्ड से उत्पन्न बताते हैं; इसे अविश्वस्त बताते हुए वह गुर्जर प्रतिहारों को विदेशी ही मानते हैं। उनका विचार है कि अग्निकुल विचार धारा गलत और गढ़ी हुई, अतः अविश्वस्त है^२ । वे कहते हैं कि यूरोपीय विद्वानों ने अग्निकुल विचार धारा पर इसी लिये विश्वास किया था, यथा विन्सेन्ट स्मिथ, कि उससे राजपूतों का विदेशी होना ही सिद्ध होता था । स्मिथ का कहना है कि यदि वे विदेशी न होते तो अग्नि द्वारा उनकी शुद्धि करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । वे अग्निकुलज न कहला कर भारतीय कहलाते । अग्नि से शुद्ध होकर ही वे हिन्दू वर्ण व्यवस्था में मिल गये । परन्तु ये तर्क भी पुराने हैं और पृथिवी राज रासो के संस्करण भी पुराने ही हैं जिसकी ऐतिहासिकता के विषय में विद्वानों को संदेह था । अतः स्पष्ट है कि डा० बैनर्जी भी विन्सेन्ट स्मिथ^३ के ही तर्कों का अनुसरण करते हुए प्रतिहारों को गुर्जरों की एक शाखा बताते हैं । वे मानते हैं कि गुर्जर भी विदेशी थे तो हूणों से कुछ पहले या बाद में भारत में प्रविष्ट हुए । डा० आर० यस० त्रिपाठी भी इसी तथ्य को मानते हुए कहते हैं कि कन्नौज के शासक विजयपाल देव के मथनदेव नामक सामन्त के रजोर (राज्यपुर) लेख (विक्रम सं० १०१६=६५६ ई०) से भी यही सिद्ध होता है प्रतिहार गुर्जरों की एक शाखा थे । उक्त लेख में उसे 'गुर्जर-प्रतिहारान्वय' अर्थात् 'गुर्जरों की प्रतिहार शाखा' से सम्बन्धित बताया गया है । डा० त्रिपाठी का विचार है कि 'कुछ विद्वानों के अनुसार गुर्जर शब्द जातिबोधक न होकर गुर्जर देश (गुर्जरता भूमि) का परिचायक है । परन्तु रजोर लेख के आधार पर यह मत सत्य नहीं सिद्ध होता है । इस लेख की बारहवीं पंक्ति में लिखा है—“...तथैतत् प्रत्यासन्न श्री गुर्जर बाहित समस्तक्षेत्र समेत.....” जिसका सही अनुवाद किया गया है कि “सभी निकटस्थ क्षेत्रों सहित जिस पर गुर्जर खेती करते थे ।” यहाँ पर कृषकों को गुर्जर बताया गया है । अतः यह मानना ही

१—डॉ० अनिल चन्द्र बैनर्जी—‘राजपूत हिस्ट्री’ पृ० ८-६

२—वही, पृ० ६-११

३—अली हिस्ट्री आफ इण्डिया. प० ४२२-४२६

उचित है कि प्रारम्भ में गुर्जर शब्द जाति के लिए प्रयुक्त होता था, जैसा कि इस लेख की चौथी पंक्ति से ज्ञात होता है यहाँ इस शब्द को जाति के लिए उल्लिखित किया गया है। राष्ट्रकूट लेखों और अबूजैद तथा अलमसूदी नामक अरब लेखकों से भी जिन्होंने जुज्ज या गुर्जर और अरबों के संघर्ष का उल्लेख किया है, यही ज्ञात होता है। कन्नर कवि पम्प ने भी महीपाल को 'गुर्जर-राज' की उपाधि दी है। यदि गुर्जर एक देश वाची शब्द था तो विस्तृत साम्राज्य के शासक महीपाल को गुर्जर-राज की उपाधि देना भी न्याय-संगत नहीं है। इसके अतिरिक्त गुर्जरों का विदेशीपन उनके कुछ विदेशी नामों से भी सिद्ध होता है। बाउक के जोधपुर लेख में 'रोहिल्लद्धि' तथा नरभट की 'पेल्लापेल्ली' उपाधि आर्य संज्ञाएं नहीं हैं। इसके अतिरिक्त ये नाम उस समय धारण किये गये थे, जिस समय राजपूताना के प्रतिहार शासक हिन्दू समाज में घुलमिल चुके थे। भोज की ग्वालियर प्रशस्ति तथा बाउक के जोधपुर लेख और बालभारत तथा विद्वशालभञ्जिका में इस वंश को इक्ष्वाकु कुल तथा रघुकुल बताया गया है और साथ ही इसे लक्ष्मण से सम्बद्ध किया गया है। परन्तु डा० त्रिपाठी इन उल्लेखों को अविश्वस्त और बाद का गढ़ा हुआ मानकर गुर्जर-प्रतिहारों को विदेशी ही मानते हैं^१।

इसके विरुद्ध डा० बी० यन० पुरी का मत है कि यदि वे विदेशी होते तो इतनी जल्दी वे हिन्दू समाज में घुल मिल न जाते। पाणिनि के सूत्र—'शूद्राणां अनिवसितानाम्'—पर भाष्य करते हुए पतंजलि ने कहा है कि उस समय शूद्रों में यवनों और शकों को भी गिना जाता था। परन्तु गुर्जरों के लिये आर्यों के समीप रहना भी वजित न था, जिससे वे भारतीय और आर्य परिवार के ही प्रतीत होते हैं। यवन ब्राह्मण, शक वैश्य या हूण ब्राह्मण का उल्लेख साहित्य में कहीं भी नहीं मिलता है। यदि वे विदेशी होते तो यह सम्पर्क सम्भव नहीं था। इसके विपरीत हमें गुर्जर ब्राह्मणों के उल्लेख मिलते हैं।.....गुर्जर-ब्राह्मण का उल्लेख उनके विदेशीपन को निराधार सिद्ध करता है। दक्षिणी भारत के तामिल गीत मणिमेखलै, जिसकी रचना ईसा की छठी शताब्दी में हुई थी, गुर्जर कला पर निर्मित मन्दिर कुचरकुदिहै का उल्लेख करता है। इससे गुर्जर जाति के विदेशी कलाकार का दक्षिण में जाना असम्भाव्य ही सिद्ध होता है। पुनः डा० पुरी बताते हैं कि यदि गुर्जर प्रतिहार विदेशी थे और उत्तर-पश्चिमी देश-द्वार से भारत में प्रविष्ट हुए

थे, तो वहाँ के मूल निवासियों से उनका संघर्ष क्यों नहीं हुआ। एक वीर विदेशी जाति चोरी से राजपूताना तक पहुँचकर राज्य स्थापना करना न चाहेगी और साथ ही वहाँ की जनता और राजसत्ता भी उनको बिना संघर्ष किये आने न देगी। इस संघर्ष का इतिहास में कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है। क्या एक विदेशी जाति के लिए यह सम्भव था कि इतनी जल्दी वह भारतीय समाज में घुल मिल जाती और राजनैतिक क्षेत्र में भी सभी राष्ट्र-शक्तियों (क्षत्रियों) के बजाय वे ही इस राष्ट्र की संस्कृति और मर्यादाओं के रक्षक मान लिये जाते। बाद में हूणों को भारतीय बनने में समय लगा। डा० पुरी का यह भी विचार है कि भारतीय साहित्य या लेखों में उनके उल्लेखों का न होना उनकी अभारतीयता का प्रमाण नहीं हो सकता। गुर्जर शब्द का विवेचन करते हुए डा० पुरी ने बताया है कि गुर्जर देश था या जाति, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। उनका मत है कि भारतीय साहित्य में गुर्जर नाम किसी विशेष भूखण्ड के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ है। इस प्रकार जटिल प्रश्न की उलझनों से निकलते हुए डा० पुरी ने गुर्जर-प्रतिहारों को भारतीय ही माना है। वे कहते हैं कि “इस प्रकार गुर्जरों को विदेशी मानने का कोई उपयुक्त कारण नहीं है”^१।

डा० कृष्णस्वामी अयंगर का निष्कर्ष है कि सम्पूर्ण प्राप्त सामग्री का परीक्षण करने के बाद कोई भी ऐसा तथ्य नहीं मिला कि जिसके आधार पर गुर्जरों का बाहर से आना सिद्ध हो सके। इसीलिये ऐसा कोई निश्चित प्रमाण नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि गुर्जर किसी व्यक्ति की जाति का नाम था या वह व्यक्ति विदेशी था^२। डा० के० यम० मुंशी भी गुर्जरों के विदेशीपन को योरूपीय दिमाग की उपज बताते हुए इसे निराधार सिद्ध करते हैं^३। बात बहुत कुछ सही है। भारतीय साक्ष्य—प्राचीन साहित्य और अभिलेख—उन्हें एकमत से इक्ष्वाकु वंशीय राघव राम और लक्ष्मण से सम्बद्ध करते हुए क्षत्रिय बताते हैं। दूसरी ओर योरूपीय मत सदैव भारत को एक

१—डा० बी० एन० पुरी, ‘हिस्ट्री आफ गुर्जर प्रतिहाराज’ पृ० २-७

२—वही, पृ ६ : “Thus, there is not a sound reason for thinking that the Gurjaras were of foreign origin.”

३—डा० के० यम० मुंशी, “ग्लोरी दैट वाज़ गुर्जर देश” भाग १—अपेन्डिक्स १ पृ० १७३

४—वही, पृ० १७४-१८१

मुसाफिरखाना ही मानता आया है। इतना विचित्र-विशाल भूखण्ड जो सभी प्राकृतिक सम्पदाओं और वृद्धि के उपयुक्त साधनों से सम्पन्न देश था, उसे निग्रोइट (काले, पिछड़े हुए असभ्य) जाति का मूल आवास माना गया है। साम्राज्यवादी विदेशी इतिहासकार के लिये ऐसी अटकलें और काल्पनिक चित्र खींचना स्वाभाविक ही था।

प्रेम ममत्व से होता है। यदि हूण और गुर्जर विदेशी थे और वे दोनों ही हिन्दू समाज में मिल गए थे, तो भारतीय धरा और धर्म के संरक्षण में हूणों ने क्यों नहीं भाग लिया। इस समय भी देश में शक विद्यमान थे, क्यों नहीं उन्होंने देश-रक्षा की। स्पष्ट है कि वे विदेशी थे। इसके विपरीत प्रारम्भ से अन्त तक प्रतिहार, परमार, चालुक्य और चाहमान पृथिवी के आर्तनाद पर उसकी रक्षा के लिए अविलम्ब प्राणों और प्रिया, प्रिय पुत्र तथा सर्वस्व का मोह छोड़कर दौड़ पड़े। इसीलिए न कि पृथिवी उनकी माँ थी और वे उसके पुत्र थे—

“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः”

वही उनकी जन्मभूमि थी जिसे वे प्राणों से भी प्रिय मानते थे :

प्राणिनां निरृष्टाऽपि जन्मभूमिः परा प्रिया

प्रतिहार ऐसे ही वीर क्षत्रिय थे जिनका परम कर्तव्य राष्ट्र द्वार की रक्षा करना और म्लेच्छों को रोकना (प्रतिहरण करना) था। इसलिए ही वे प्रतिहार ‘प्रतिहरण विधेयः प्रतीहार आसीत्’^१ कहलाए।

प्रतिहार वंश (प्रतिहारवंशोऽयम्)

बाउक के जिस जोधपुर लेख में उल्लिखित ‘रोहिलखि’ और ‘पेल्लापेल्ली’ उपाधियों के आधार पर गुर्जर प्रतिहारों को विदेशी बताया गया है उसी लेख में धीमान् बाउक के स्ववंशीय—प्रतिहारवंशीय—वीरों की कीर्ति और यश का वर्णन किया गया है। इसके पहले श्लोक में उन्हें उसका पूर्वज—पूर्वपुरुष—बताया गया है। वह विष्णु के भी परम भक्त थे—

ओं नमो विष्णवे ॥

यस्मिन्विशन्ति भूतानि यतस्सर्गस्थितीमते ।

स वः पायाद्वृषीकेशो निर्गुणस्सगुणश्च यः ॥ १ ॥

गुणाः पूर्वं पुरुषाणां कीर्त्यन्ते तेन पण्डितैः ।

गुणकीर्त्तिरनश्यन्ती स्वर्गवासकरी यतः ॥ २ ॥

अतः श्री बाउको धीमां स्वप्रतीहारवंशजान् ।

प्रशस्तौ लेखयामास श्री यशो विक्रमान्वितान् ॥ ३ ॥

स्पष्टतः यह लेख प्रतिहार वंश की पराक्रमप्रशस्ति है । उपर्युक्त लेख में कहीं विदेशी गन्ध भी नहीं आती है । शब्दावली, भाव और विचार भारतीय आत्मा के पोषक हैं और प्राचीन अनुश्रुति-गम्य ऐतिहासिक परम्परा का समर्थन करते हैं ।

इस लेख में न केवल प्रतिहार वंश का उल्लेख किया गया है; प्रत्युत इस वंश के मूल तथा इसकी 'प्रतिहार' संज्ञा की भी व्याख्या की गई है—

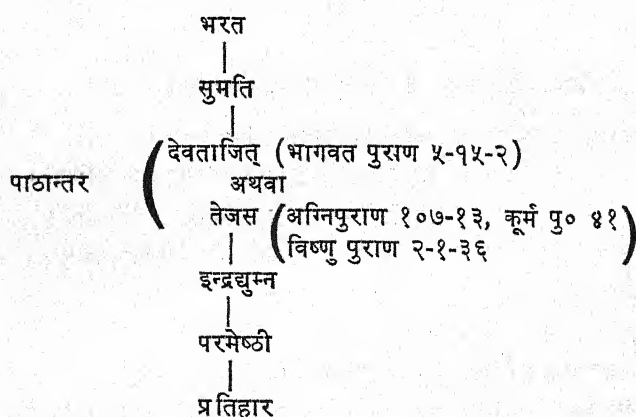
स्वभ्रात्रा रामभद्रस्य प्रतिहार्यं कृतं यतः ।

श्री प्रतिहारवंशोऽयमतश्च्यमतश्चोन्नतिमाप्नुयात् ॥ ४ ॥

अर्थात् अपने भाई रामभद्र का 'प्रतिहार्य' (द्वारपाल का कार्य) करने के कारण इसे प्रतिहार वंश का नाम दिया गया ।

इस प्रकार वि० संवत् ८८४ (= ८३७ ई०) में ही प्रतिहार वंश की प्रसिद्धि लोगों को ज्ञात थी ।

पुराणों में भी हमें प्रतिहार कुल^१ अथवा प्रतिहारान्वय^२ (प्रतिहार वंश) का उल्लेख मिलता है । यहाँ बताया गया है कि



१—वायु पुराण, ३३-३५

२—विष्णु पुराण, २-१-३६

भागवत पुराण, ५-१५-५

अग्नि पुराण, १०७-१४

कूर्म पुराण, ४१, पृ० ३६६

इसी प्रतिहार से प्रतिहार वंश प्रसिद्ध हुआ^१। यह कोई अनहोनी घटना न थी। हम जानते हैं कि रघु से रघुवंश, शिशुनाग से शैशुनाग, सातवाहन से सातवाहन कुल, गुप्त से गुप्त वंश, मुखर से मौखरि वंश, चोल से चौलान्वय नामक राजवंशों के नाम प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार चन्द्रात्रेय से चन्देल, राष्ट्रकूट से राष्ट्रकूटवंश और चाहमान से चौहान तथा परमार से परमार राजवंशों की भी संज्ञाएं प्रसिद्ध हुईं। इसी प्रकार इतिहास-प्रसिद्ध प्रतिहार कुल भी प्रतिहार नामक सम्राट से ही प्राचीन क्षत्रियराजवंश कहा गया जिसका मूल सम्बन्ध ऋषभ और स्वायम्भुव मनु प्रजापति से था।

भागवत पुराण से ज्ञात होता है कि प्रतिहार का पुत्र प्रतिहर्ता और उसके (प्रतिहर्ता) के तीन पुत्रों में से एक का नाम अज भी था^२। राम-लक्ष्मण के पिता दशरथ के भी पिता का नाम अज था। अतः यह प्रतिहार कुल भी राम और उनके भाई लक्ष्मण से सम्बन्धित था। इसी लिए इसे इक्ष्वाकु कुल अथवा रघुकुल भी बताया गया है। राजशेखर सदृश कवि को गप्पी तथा अविश्वस्त नहीं कहा जा सकता। यही बात हमें भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में भी बताई गई है कि मनु, इक्ष्वाकु, ककुस्थ जिस वंश के मूल सम्राट थे उनके ही वंशज और रावणान्तक राम के छोटे भाई लक्ष्मण (जो राम के सशक्त प्रतिहार थे) से ही यह प्रतिहार वंश प्रचलित हुआ—

मन्विक्ष्वाकु ककुस्थ मूलपृथ्वः क्षमापाल कल्पद्रुमाः ।

तेषां वंशे सुजन्मा क्रमनिहितपदे धाम्नि वज्रेषु धोरं

१—विष्णु पुराण २-१-२८ : ऋषभाद् भरतो जज्ञे.....

सुमर्तिभरतस्याभूत्पुत्रः परम धार्मिकः ।

सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत् ।

परमेष्ठी ततस्तस्मात्प्रतिहारस्तदन्वयः ॥

वही, २-१-३३

वही, २-१-३६

भागवत पु०, ५/१५/२-५

अग्नि पु० १०७/११-१४

कूर्म पु०, ४१

यही तथ्य अन्य पुराणों में भी उल्लिखित है। परन्तु वायुपुराण में प्रतिहार कुल बताया गया है :

परमेष्ठी सुतस्चाथ निधने तस्य शोभनः ।

प्रतीहार कुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात् ॥ वायु पु० ३३-५५

रामः पौलस्त्यहिंस्रक्षतविहृतिसमित्कर्म चक्रे पलाशैः ।
 श्लाघ्यस्यतस्यानुजोऽसौ मघवमदमुषो मेघनादस्य संख्ये
 सौमित्रिस्तीव्रदण्डः प्रतिहरणविधेयः प्रतीहार आसीत् ।

भोज का ग्वालियर लेख, पंक्ति २-३

स्कन्दपुराण, जो प्रतिहार युग का प्रशस्त प्रमाण है, लक्ष्मण के कठिन प्रतिहार्य कार्य का साक्षी है। अतः पुराणों, अभिलेखों और समसामयिक कवि राजशेखर के आधार पर यह प्रतिहार कुल प्राचीन राजवंश से सम्बद्ध था। हमें कहीं भी किसी प्रकार प्रतिहार जाति का उल्लेख नहीं मिलता है। यह निराधार अटकल ही है।

‘गुर्जर-प्रतिहारान्वय’ की व्याख्या में भी कुछ विद्वानों ने प्रतिहारों को गुर्जरो की एक शाखा माना है। परन्तु यह अर्थ इसीलिये भ्रमपूर्ण है कि न तो प्रतिहार ही कोई जाति थी और न गुर्जर ही।

प्राचीन देश या जनपद वाची शब्दों के विषय में यह निश्चयतः नहीं कहा जा सकता कि अमुक नाम देश वाची है अथवा जाति बोधक। दोनों ही रूप आगे पीछे प्रयुक्त होते रहे। जिन्हें गुर्जर जाति से सम्बद्ध किया गया है वह गुर्जर देश के ही निवासी थे। स्कन्द पुराण में स्पष्टतः गुर्जरत्ता अथवा गुर्जर देश को ७० हजार गाँव वाला एक भारतीय प्रदेश माना गया है^१। सिन्ध के अरब शासकों ने सिन्धु, कच्छेल्ल, सौराष्ट्र, चावोटक, मौर्य और गुर्जर आदि (देशों) के राजाओं को अपनी तीखी ततारी तलवार से काटकर सम्पूर्ण दक्षिण को जीतने की इच्छा से आगे बढ़ रहे थे (तरलतरतार तरवारि दारितोदित सैन्धवकच्छेल्लसौराष्ट्रचावोटकमौर्यगुर्जरादिराजे निःशेष दाक्षिणात्य-क्षितिपतिजिगीषया दक्षिणापथ प्रवेशाभिलाषिणि^२)।

परन्तु पुलकेशिराज अवनिजनाश्रय ने उनको पराजित कर दक्षिण-द्वार की रक्षा की थी। परन्तु अवन्ति (उज्जयिनी) और गुर्जरत्ता की ओर उनकी बाढ़ को रोकने वाले गुर्जर देश के प्रतिहार क्षत्रिय ही थे। उनकी प्रतिहार संज्ञा इस प्रतिहरण-कार्य पर ही आधारित थी। अतः गुर्जर-प्रतिहारान्वय का अर्थ गुर्जर देश का प्रतिहार वंश ही करना न्यायोचित और तर्क-संगत है जैसा डा० गंगुली ने बताया था।

१—स्टडीज़ इन स्कन्द पुराण, पृ० ४०

२—कार्पस इन्सक्रिप्शनम इन्डेकेरम, भाग ४—पुलकेशिराज का नवसारी लेख, पृ० १३६-१४१

उन पर ही गुर्जर देश के द्वार की रक्षा करने का भार सौंपा गया था :

हिरण्यगर्भ राजन्यैरुज्जयिन्यां यदासितम् ।

प्रतिहारीकृतं येन गुर्जूरेशादिराजकम् ॥

प्रथम अमोघवर्ष का संजन ताम्रपत्र लेख—श्लोक ६

राष्ट्रकूट राज्य और उसके पड़ोसियों पर सिन्ध के अरबों के जब-तब हमले हो रहे थे। “जुनैद की आज्ञानुसार मालवा और उज्जैन पर भी अरबों के हमले हुए थे^१।” राष्ट्रकूट शासक दन्तिदुर्ग ने इन आक्रमण कारियों को पराजित किया था। डा० अल्टेकर के अनुसार दन्तिदुर्ग ने उज्जयिनी पर भी आक्रमण किया। दशावतार लेख से स्पष्ट ज्ञात होता है कि गुर्जर शासक का एक राजभवन दन्तिदुर्ग के अधिकार में था और अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि जब दन्तिदुर्ग ने उज्जयिनी में हिरण्यगर्भ यज्ञ और महादान क्रिया का सम्पादन किया था, उस समय वहाँ ही गुर्जर-शासक को प्रतिहार नियुक्त किया गया। इससे यह अर्थ लगाना कि गुर्जर शासक दन्तिदुर्ग के राजभवन का प्रतिहार अथवा द्वारपाल था मूर्खता होगी। कोई भी क्षत्रिय शासक कभी भी विशेषतः उस राजपूत युग में, इस कार्य को स्वीकार न करेगा, चाहे उसे अपने प्राण ही क्यों न खोने पड़ें। परन्तु निर्विरोध रूप से गुर्जर-शासक ने प्रतिहार्य कार्य स्वीकार कर लिया था। वहाँ उस यज्ञ में अन्य क्षत्रिय भी मौजूद थे। अतः यह घटना एक साधारण घटना न थी।

इसका महत्व इस प्रदेश की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति से ही सिद्ध होता है। मुस्लिम लेखक अल बिलादुरी से ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र अरब-आक्रान्ताओं का शिकार था^२। “इसके उपरान्त (मुहम्मद बिन कासिम की मृत्यु) बहुत से शासक नियुक्त होकर आते रहे। सन् १०७ हि० में जुनैद यहाँ का शासक होकर आया। यह बहुत बड़ा अधिकारी था। इसने सिन्ध से कच्छ पर चढ़ाई की। वह पहले मरमद पहुँचा और वहाँ से मांडल और फिर धबख तक गया। यहाँ से वह भड़ौच के वन्दरगाह तक पहुँच गया और उसके एक अधिकारी ने उज्जैन (मालवा) तक धावा किया; और वहाँ से फिर सम्मैद और भीलमाल को जीतता हुआ गुजरात पहुँचा और वहाँ से वह फिर सिंध लौट आया, परन्तु इन सब विजयों का महत्व आकर निकल

१—ईलियट ऐन्ड डाउसन—हिस्ट्री आफ इण्डिया—भाग १, पृ० २९०

२—वही, पृ० १२५-१२६

जानेवाली आँधी से अधिक नहीं है^३ ।”

इस आक्रमण आँधी की भीषणता का परिचय सोमदेव कृत यशस्तिलक और अभिलेखों से भी प्राप्त होता है । “कलचुरि संवत् में दिये गये कई गुर्जर अभिलेख पश्चिमी भारत में किम और मही नदियों के मध्य स्थित भूखण्ड में पाए गए हैं । इनका समय कलचुरि संवत् ३८० से ४८३ संवत् तक है । डा० आर० सी० मजूमदार के अनुसार संभवतः दद् प्रथम (गुर्जर शासक) और विप्र हरिश्चन्द्र तथा उसकी क्षत्रिय पत्नी भद्रा का पुत्र, जिसका उल्लेख बाउक प्रतिहार के जोधपुर लेख में किया गया है, एक ही थे । वह प्रत्यक्षतः माण्डव्यपुर (आधुनिक मण्डोर, जोधपुर के निकट) के निकट ही कहीं राज्य कर रहा था । जयभट्ट प्रथम उसका पुत्र और उत्तराधिकारी था । संभवतः उसने ५५६ ई० से ६२० ई० तक शासन किया^१ । इस वंश में उसके बाद दद् द्वितीय, जयभट्ट द्वितीय, दद् तृतीय, जयभट्ट तृतीय तथा जयभट्ट चतुर्थ (७१५-७२० ई०) शासक हुए^३ । “जयभट्ट चतुर्थ ने वलभी के शासक की उस समय सहायता की जिस समय ताजिकों या अरबों ने हमला किया था और उन्हें हराया^४ ।” डा० मीराशी बताते हैं कि “जयभट्ट चतुर्थ लगभग ७२० ई० में राजसिंहासन पर बैठा । उसकी कावी और प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम के दोनों लेखों की तिथि ७२६ ई० है । अरबों के साथ पहला युद्ध, जिसमें जयभट्ट (चतुर्थ) को पूर्ण विजय मिली, ७२० ई० और ७३५ ई० के बीच हुआ था । इसी समय वह जिसमें अरबों ने भीषण आक्रामक नीति को अपनाया जुनैद (सिन्ध का गवर्नर) का शासन काल था । अल बिलादुरी से ज्ञात होता है कि जयशिय (जयसिंघ) की पराजय और कीरज का विध्वंस करने के बाद जुनैद ने अपने अधिकारियों और सैनिकों को मरमद, मण्डल, दहनज और बरूस पर आक्रमण करने भेजा । उसने उज्जैन, मालवा और बहरीमद के विरुद्ध भी सेनाएं भेजीं तथा बैलमान और जुर्ज जीत लिये । इन्हीं आक्रमणों के समय उसकी सेनाओं

३—सय्यद सुलैमान नदबी (अनुवादक रामचन्द्र वर्मा) अरब और भारत के सम्बन्ध, पृ० १५

२—डा० मीराशी, कार्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम—जिल्द ४, भूमिका, पृ० ५२

३—वही, भूमिका, पृ० ५२-५५

४—वही, पृ० ५६

ने बलभी पर भी अवश्य ही आक्रमण किया होगा। इसीलिये इस संकट को समझ कर जयभट्ट चतुर्थ बलभी सम्राट की सहायता करने गया और वहाँ उसने अरबों को पराजित किया। इस समय बलभी का सम्राट, जिसकी सहायता जयभट्ट चतुर्थ ने की थी, सम्भवतः शिलादित्य चतुर्थ था। परन्तु अरब आक्रान्ता पूर्णरूप से पराजित नहीं कर दिए गए थे। कुछ ही समय बाद उन्होंने स्वयं जयभट्ट के ही राज्य को रौंद डाला और नवसारिका तक बढ़ते चले गये। इस समय उनकी बाढ़ को अवनिजनाश्रय पुलकेशिराज ने रोक कर उन्हें बुरी तरह पराजित किया। इसके बाद सम्भवतः गुर्जरराज्य चालुक्य साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। राष्ट्रकूट राज दन्तिदुर्ग द्वारा चालुक्यों को हटाने के बाद किम नदी के उत्तरी भाग में उसके सामन्त चाहमान नृप ने अधिकार कर लिया। गुर्जर प्रतिहार शासक नागभट्ट के सामन्त भट्टवृद्ध की हांसोट लिपि भरुकच्छ से प्रचालित की गई थी। गुर्जर राज्य दक्षिण में किम नदी और पश्चिम में अरब सागर से घिरा था। पहले उनकी राजधानी नान्दीपुरी (नान्दोद, राजपीपला प्रान्त) थी बाद में भरुकच्छ बनाई गई। गुर्जर हिन्दू धर्म के प्रबल पोषक थे^१।”

स्पष्ट है कि इस आपद-ग्रस्त क्षेत्र में पुनः राष्ट्रकूट वीर दन्तिदुर्ग ने शान्ति, सुरक्षा और सुव्यवस्था स्थापित की। बार-बार बताया गया है कि दन्तिदुर्ग ने शत्रुओं को पराजित कर चारों समुद्रों से घिरी हुई इस (भारत) भूमि में अपनी तलवार रूपी हल से विषमता मिटाकर राष्ट्रीय एकता स्थापित की :—

तमनु च सुत राष्ट्रकूट नाम्ना भुवि विदितोजनि राष्ट्रकूट वंशः ।

तस्मादरातिवनिता कुचचारुहार भानुरुदगादिह दन्तिदुर्गः ।

एकं चकार चतुरब्ध्युपकण्ठसीमक्षेत्रं य एतदसिलंगलभिन्नदुर्गः^२ ॥

ऐसे राष्ट्ररक्षक और राष्ट्रीय एकता के पोषक दन्तिदुर्ग के समक्ष भारती-मर्यादा और भारतीय-क्षेत्र के द्वार-देश की रक्षा करने के लिए गुर्जर शासकों से बढ़कर और कौन सुयोग्य व्यक्ति अथवा वंश था। उज्जयिनी और इसके आस-पास का भूखण्ड म्लेच्छों से आक्रांत ही था। अतः स्पष्ट है कि उज्जयिनी

१—डा० मीराशी ‘कार्पस इन्सक्रिप्शनम इन्डिकेरम’ जिल्द ४, भूमिका,

पृ० ५६-५७

२—राष्ट्रकूट करहड ताम्र पत्र लेख—प्रथम पत्र लेख पंक्ति ११-१२

देउली ताम्र पत्र लेख—प्रथम पत्र लेख, पंक्ति १२-१३

में हिरण्यगर्भ महायज्ञ और महादान का सम्पादन तथा वहाँ की राजसभा में गुर्जरों को प्रतिहार नियुक्त करना सोद्देश्य राष्ट्र-यज्ञ था। गुर्जर शासक दन्तिदुर्ग का सामन्त था और दन्तिदुर्ग का प्रभुत्व भी उसकी प्रज्ञा और पराक्रम पर आधारित था। अतः गुर्जर शासकों का भी यह पवित्र कर्तव्य था कि वे स्वामी के कार्य और राष्ट्र-रक्षण को सुभक्ति से करें। यही उन्होंने किया भी। इसीलिए लेख में उनकी सुभक्ति की समता लक्ष्मण की रामभक्ति के समान बताई गई है और उनका प्रतिहार नाम भी उनके 'प्रतिहरण विधि' पर आधारित था। यह नाम भी प्राचीन राजवंश से सम्बद्ध था। अतः गुर्जर धरा के रक्षक सम्राट ही गुर्जर प्रतिहार कहलाए। इन तथ्यों और उनके परस्पर एकात्म्य रूप के सामने विदेशी मूल का विचार अनर्गल प्रलाप मात्र ही है।

नागभट और प्रतिहार साम्राज्य की स्थापना

ऊपर के वर्णन से ज्ञात होता है कि हरिचन्द्र के परिवार को शत्रुओं से संघर्ष करना पड़ा था। इन शत्रुओं में अरब के मुस्लिम गवर्नर भी सम्मिलित थे जिन्हें अभिलेखों में ताजिक कहा गया है।

नागभट के परिवार को भी संघर्ष ही करना पड़ा। एक ओर तो उनको देश द्वार की रक्षा कर विदेशियों और विधर्मियों को खदेड़ना था; दूसरी ओर उत्तरी भारत की प्रभुता के लिए होने वाले आन्तरिक युद्धों में भी भाग लेना पड़ता था। मिहिर भोज के ग्वालियर लेख में नागभट से लेकर भोज तक प्रतिहार राजाओं के इस द्विमुखी संघर्ष का सुस्पष्ट वर्णन किया गया है।

नागभट प्रथम

प्रमुख वंश शाखा का संस्थापक नागभट मनु, इक्ष्वाकु, ककुस्थ मूल सम्राटों के समान पृथिवी का रक्षक (क्षमापाल) और प्रजा की समृद्धि तथा सुख को देने के लिए कल्पद्रुम के समान उन मूल सम्राटों के ही वंश में उत्पन्न हुआ था। वह रावण को नष्ट करने वाले राम के अनुज, जिनसे इन्द्रजित मेघनाद का बध हुआ था, अर्थात् लक्ष्मण के समान ही तीव्रदण्ड और राम का आज्ञा पालक प्रतिहार (द्वारपाल) था। प्रतिहार-केतन (राजचिह्न) को धारण करने वाले नागभट उन्हीं सौमित्र (लक्ष्मण) के वंशधर थे^१। नागभट स्वयं सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने के लिए पुरातन मुनि (विष्णु) का मूर्तरूप (अवतार) था जिसने म्लेच्छों की सेनाओं को अपनी चारों भुजाओं से मथ

डाला^१। म्लेच्छ बलवान बताए गए हैं। स्पष्टतः म्लेच्छ ताजिक (अरब) ही थे। प्रत्यक्ष ही यह सिद्ध करता है कि इस्लाम की पोषिका सेनाएं, जो पश्चिमी भारत को उस समय अपनी उग्रता से मिटा देना चाहती थीं, रोकी गईं। इसका साक्ष्य अलविलादुरी से भी मिलता है कि उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों को ध्वस्त करने के बाद उज्जैन पर हमला किया तथा बहरीमद पर आक्रमण कर उसके आस-पास क्षेत्रों को जलवा दिया। जुनैद ने बलमन (भिनमाल) और जुर्ज (गुर्जर) की भी विजय की^२।” इससे स्पष्ट है कि अरब आक्रमण कारियों को उज्जैन में कोई सफलता न मिली। उसके उत्तराधिकारी तमीम के समय तो अरब-शासकों ने बहुत से विजित स्थानों को भी छोड़ दिया। अरब शासकों की इस हीनता, असफलता और पतन का मुख्य कारण उज्जैनी के प्रतिहार शासक को ही है। डा० त्रिपाठी का मत है कि इन्हीं युद्धों के समय ही नागभट भड़ौच तक विजय करते चले गये जहाँ भर्तृवृद्ध द्वितीय नामक चाहमान सामन्त का दान लेख (वि० सं० ८१३=७५६ ई०) प्राप्त होता है^३। इसी हंसोट पत्र लेख से ज्ञात होता है कि चाहमान भर्तृवृद्ध द्वितीय नागाबलोक (नागभट प्रथम) का आधीनस्थ सामन्त ही था।

नागभट प्रथम का समय ७३०-७५६ ई० के आस-पास रखा जा सकता है। वह म्लेच्छों की विजय के कारण राष्ट्र-वीर माना गया और इससे इस वंश की प्रतिष्ठा भी बढ़ गई। डा० पुरी के अनुसार उसकी मृत्यु ७६० ई० के कुछ बाद हुई^४।

काकुस्थ-कक्कु का ही इस वंश का दूसरा शासक था जिसे नागभट प्रथम का भतीजा (भाई का पुत्र) बताया गया है। वह कक्कु भी कहलाता था^५।

१—भोज की ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक ४ :

तद्वन्धो प्रतिहारकेतनभृति त्रैलोक्यरक्षास्पदे ॥

देवो नागभटः पुरातनमुनेर्मूर्तिबभूवादभुतं ॥

येनासौ सुकृत प्रमाथिव बलबन्धलेच्छाधि पाक्षौहिणीः ॥

२—ईलियट ऐन्ड डाउसन, जिल्द १, पृ०

३—डा० आर० यस० त्रिपाठी, 'हिस्ट्री आफ कन्नौज', पृ० २२८

४—डा० दशरथ शर्मा, अली चौहान डाइनेस्टीज, पृ० १४

५—गु० प्र०, पृ० ३८

६—भोज का ग्वालियर लेख श्लोक ५, प्रथम दो पंक्तियाँ

देवशक्ति-देवराज

परमवैष्णव महाराज श्री देवशक्ति-देवराज काकुस्थ का छोटा भाई था । इसे वज्रधर (कुलिशधर) इन्द्र के समान बताया गया है^१ । सेना अनेक नावों, हाथियों, घोड़ों, रथों और पदातियों से सम्पन्न थी । उसे परम वैष्णव महाराज (देवशक्ति) का विरुद्ध दिया गया है^२ । काकुस्थ और देवराज ने ७६०-७८० ई० के बीच राज्य किया ।

वत्सराज

परम माहेश्वरो महाराज श्री वत्सराज देव परमवैष्णव महाराज श्री देव-शक्ति-देवराज के पुत्र थे । इनकी माता का नाम श्री भूमिका देवी था ।

पृथिवी के पालक महाराज वत्सराज अत्यन्त तेजस्वी, प्रतापी और लोक-वत्सल सम्राट् थे जिनकी ये सम्पदाएँ हाथियों के मद रूपी सुरा को पान करने में निहित थीं^३ ।

कुल-उन्नति और विजय

इस प्रकार स्पष्ट है कि वत्सराज इस वंश का शक्तिशाली शासक था जिसने धनुष की शक्ति से (कार्मुक शाखा) युद्ध में (संख्ये) बलपूर्वक (हठाद-ग्रहीत) साम्राज्य की प्राप्ति की (साम्राज्यमधिज्य^४) । परन्तु प्रश्न है कि उसने ये सफलताएँ युद्ध में कहाँ और किसके साथ प्राप्त कीं जिनसे उसने अकेले क्षत्रिय-मण्डल में यशलाभ करते हुए इक्ष्वाकु कुल (स्ववंश) को उन्नत कर उस प्रथित वंश पर अपने सुचरित्त कार्य और नाम की मुहरें लगायीं :—

ख्याताद्भुण्डि कुलान्मदोत्कटकरि-प्राकार-दुर्लङ्घतो

यः साम्राज्यमधिज्य कार्मुकसखासंख्ये हठादग्रहीत्

१—भोज का ग्वालियर लेख, श्लोक ५, अन्तिम दो पंक्तियाँ

२—भोज का बराह ताम्रपत्र लेख, पंक्तियाँ १-२

३—भोज का ग्वालियर लेख, श्लोक ६ :

तत्सूनुः प्राप्य राज्यं निजमुदयगिरिस्पद्भिर्भास्वत्प्रतापः ।

क्षमापालः प्रादुरासीन्नतसकलजगद्वत्सलो वत्सराजः ।

यस्यैतास्सम्पदश्च द्विरदमद सुरास्वाद सान्द्रप्रमोदाः ।

पद्माक्षीराक्षिपन्त्यप्रणयिजनदरिष्वङ्गकान्ता विरेजु ।

४—भोज की ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक ७, पंक्ति २ :

यः साम्राज्यमधिज्य कार्मुकसखा संख्येहठादग्रहीत्

एकः क्षत्रियपुङ्गवेषु च यशोगुर्वीन्धुरं प्रोद्वह—

त्रिश्वाकोः कुलमुन्नतं सुचरितैश्चक्रे स्वनामाङ्कित^१ ॥

यह श्लोक प्रतिहार वंश के इतिहास और साम्राज्य-प्रतिष्ठा पर अत्यन्त महत्व पूर्ण प्रकाश डालता है। इससे ज्ञात होता है कि :—

१. यह प्रतिहार सम्राट वत्सराज श्रेष्ठ क्षत्रियों (क्षत्रियपुंगवेषु) में यशस्वी इक्ष्वाकु कुलज था;

२. वत्सराज ने अपने सुचरित और स्वनाम तथा लोकशक्ति (जगद्वत्सलोवत्सराजः) द्वारा इस कुल को उन्नत किया था;

३. यह कुल-कीर्ति वत्सराज द्वारा साम्राज्यप्रतिष्ठा पर आधारित थी;

४. और साम्राज्य की स्थापना वत्सराज की सैन्यशक्ति, स्वभुजबल (कार्मुक सखा) और उत्साह शक्ति (हठात्) द्वारा हुई थी;

५. क्योंकि इन शक्तियों—सेना, निजपौरुष और प्रज्ञा—द्वारा उसने दो महान कार्य किये थे :

(क) प्रथमतः, प्रसिद्ध भण्डिकुल का पराभाव किया और

(ख) द्वितीयतः, उसने 'मदोन्मत्त हाथियों' की अलङ्घ्य और अजेय प्राचीर (सीमा, परिखा, परकोटा) को भी पार कर आक्रमण किया।

भाण्डिकुल और बंगाल-विजय

त्रिपाठी^१, पुरी^२ आदि विद्वानों ने इस उल्लेख को केवल भण्डिकुल से सम्बद्ध किया है। डा० त्रिपाठी का विचार है कि भण्डिकुल की पहचान करना कठिन है, क्योंकि इतिहास में हर्षचरित में उल्लिखित भण्डी राजकुमार के अतिरिक्त अन्य कोई उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु हम भण्डी के बारे में नहीं जानते कि उसका क्या हुआ और कहाँ उसने अधिकार (राज्य) स्थापित किया। सम्भवतः यह उल्लेख भट्टी कुल के लिए प्रयुक्त किया गया है। प्रतिहार शासक बाउक की माँ पद्मिनी इसी वंश से सम्बद्ध (भट्टिवंश-विशुद्धायाम्.....पद्मिन्याम्^३) थी। इस प्रकार डा० त्रिपाठी के अनुसार,

१—भोज की ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक ७

२—हि० क०, पृ० २२८-२२९

३—हिस्ट्री आफ गुर्जर प्रतिहाराज, पृ० २६

४—बाउक का जोधपुर लेख, श्लोक २६

५—हि० क०, पृ० २२६

वत्सराज ने गुर्जरना अथवा मध्य राजपूताना में प्रभुत्व प्राप्त किया जैसा कि उसके ओसिया (जोधपुर) और दौलतपुर के लेखों से सिद्ध होता है^१। प्रो० आर० डी० बैनर्जी का मत है कि हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद, उसका ममेरा भाई भण्डी ही राज सिंहासन पर बैठा। वत्सराज ने अपने समय में बंगाल की विजय सरलता से प्राप्त की। बैनर्जी साहब का ही विचार है कि बंगाल में गुर्जरों और राष्ट्रकूटों के आक्रमण भी गोपाल प्रथम के पूर्व ही हुए होंगे, न कि वत्सराज के समय में जैसा वी० ए० स्मिथ का विचार है^२। भण्डी कुल से सम्बन्धित घटनाओं का बंगाल से किसी भी तरह सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता, यद्यपि इससे वत्सराज की विस्तारवादी नीति को बढ़ने का मौका मिला^३। वत्सराज द्वारा बंगाल विजय की विवेचना करते हुए डा० पुरी मानते हैं कि वत्सराज बंगाल में बहुत दूर तक घुसता चला गया और वहां के राजा को पराजित करने में सफल हुआ^४।

पाल-पराजय

डा० त्रिपाठी का मत, कि भण्डी कुल के स्थान पर भट्टी कुल को ग्रहण करना उचित ही है यद्यपि भट्टी वंश का उल्लेख प्रतिहार लेखों में प्राप्त होता है, परन्तु उसके विषय में कोई निश्चित सूचना नहीं मिलती। हरिचन्द्र शाखा के शीलुक ने देवराज भट्टिक को पराजित का छत्र छीने थे^५। उसके प्रपौत्र कक्क ने गौड़ों के साथ युद्ध में मुद्गिरि (मुंगेर) में यश-लाभ किया था^६।

१—हि० क०, पृ० २२६

२—गु० प्र०, पृ० ३६ (दृष्टव्य, बैनर्जी-पालाज आफ बंगाल), पृ० ४४

३—वही पृ० ३६-४० : “While the event connected with the line of Bhandi may not, in any way, be associated with Bengal, it certainly helped him to pursue the policy of expansion.”

४—वही, पृ० ४१

५—बाउक की जोधपुर प्रशस्ति श्लोक १६ :

भट्टिकं देवराजं यो वेला मण्डलपालकः ।

निपात्य तत्क्षणं भूमौ प्राप्तवानच्छत्रचित्तकम् ।

६—वही, श्लोक २४ : ततोपि श्रीयुतः कक्कः पुत्रो जातो महामतिः

यशोमुद्गिरौ लब्धं येन गौड़ं समं रणं ।

कक्क को प्रसिद्ध प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय का धर्मपाल के विरुद्ध सहायक माना गया है^१। अतः स्पष्ट है कि नागभट्ट द्वितीय का पूर्वज वत्सराज, जिसने भट्टिकुल को पराजित किया था, भी कक्क के प्रपितामह शीलूक का समकालीन था, क्योंकि कक्क के पिता और पितामह दोनों ही सन्यासी हो गये थे^२। अतः स्पष्ट प्रतीत होता है कि शीलूक की सहायता से ही वत्सराज ने भट्टिकुल को पराजित किया था। दुर्वार विक्रम शीलूक को भट्टि राजा को युद्ध में गिराकर छत्र छीनने का भी यश मिला था। वत्सराज को भी (दो श्वेत) राजछत्रों को छीनने वाला बताया गया है। अतः स्पष्ट है कि वत्सराज को उसके सामन्त शीलूक ने ही ये छत्र अर्पित किए थे। इतिहास प्रसिद्ध है कि वत्सराज ने ये राजछत्र पाल सम्राट को हराकर प्राप्त किये थे। अतः ख्यात भट्टिकुल की पहचान प्रसिद्ध पाल कुल से ही करना समीचीन है।

अरब व्यापारी सुलेमान के अनुसार “बल्लभराय के बाद जज्जर के बादशाह का उल्लेख है। जज्जर वास्तव में गूजर है। गूजर गुजरात के राजा थे।……………इसके बाद ताफन का बादशाह या राजा है।……………ताफन शब्द के शुद्ध रूप के सम्बन्ध में यूरोपियन अन्वेषकों में मतभेद है।……………इसके बाद रहमी का राजा है जिसके पास राजा बल्हरा और दूसरे राजाओं से अधिक सेना है। इसकी सेना के साथ पचास हजार हाथी रहते हैं। इसके देश में ऐसे सूती कपड़े होते हैं जैसे और किसी जगह नहीं होते^३।” सैयद सुलेमान नदवी के अनुसार “कपड़ों की प्रशंसा के आधार पर समझा जाता है कि यह ढाके के पास किसी रामा नामक राजा का राज्य था^४।” डा० सरकार भी इसका उल्लेख करते हैं—“अरब व्यापारी सुलेमान (८५१ ई०) ने रह्म के शक्तिशाली राज्य का उल्लेख किया है जिसकी पहचान पालों के राज्य से की गई है और अरबों के रह्म, रह्मी और रूह्मी की पहचान काँक्स बजार से कुछ मील दूर रामू से की गई है (इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, पृ० २३२-२३४)……………फकीर मुहम्मद ने बंगाल को भाटी के पूर्व स्थित बताया है।……………

१—गु० प्र०, पृ० २६

२—बाउक का जोधपुर लेख, श्लोक २१-२३

३—अरब और भारत के सम्बन्ध, पृ० २५

४—वही, पृ० २५

बंगाली लोक गीत 'माणिकचन्द्र राजार गान', जिसमें बताया गया है—'भाटी हैने ऐल बांगाल लम्बा लम्बा दारी' अर्थात् लम्बी दाढ़ी वाले बंगाली भाटी (दक्षिण भारत) से आये, सिद्ध करता है कि पूर्व बंगाल के लोग, जिनका यह लोकगीत है, जानते थे कि बंगाल और भाटी एक हैं (दृष्टव्य सी० सी० बैनर्जी—चन्डीमंगल बोधिनी, जिल्द २, पृष्ठ ७६५)^१।" डा० सरकार का मत है कि माणिकचन्द्र-राजार-गान के अनुसार पूर्व बंगाल के निवासी भी जानते थे कि भाटी लोग भी बंगाली ही थे^२।

पंजाब और भावलपुर राज्य के आस-पास भी भट्टी राजपूत रहते थे। अलबरूनी के अनुसार नराना के पश्चिम मुल्तान ५० परसंग दूर स्थित है और वहाँ से भाटी १५ (परसंग) दूर है। भाटी के दक्षिणपूर्व अरूर १५ परसंग दूर है। भाटी सिन्ध नदी की दो शाखों के बीच स्थित है^३.....पृथ्वीराज^४ रासो में भटनेर (हनुमानगढ़) को भाटी लोगों का नगर कहा गया है। बीकानेर के उत्तरी भाग में इनकी एक शाखा रहती थी^५।

इस प्रकार भारत के दोनों पार्श्व भागों पर भाटी या भट्टि कुल की स्थिति का प्रमाण मिलता है। परन्तु शीलुक द्वारा छत्र छीनना और कक्क का गौड़ों (बंगालियों) के युद्ध में मुँगेर नामक स्थान पर यश प्राप्त करना, वह भी अपने वंश के ही महान शासक वत्सराज और नागभट्ट द्वितीय के लिए जैसा ऊपर कहा गया है, यही सिद्ध करता है कि वत्सराज ख्यात भट्टीकुल (? भण्डिकुल) को पूर्वी देश में ही पराजित किया था और यह प्रसिद्ध पाल कुल ही था। भम्भवतः चाहमान शासक दुर्लभराज ने भी गौड़ों के विरुद्ध

१—डा० डी० सी० सरकार, ज्याग्रफी आफ ऐन्शेन्ट ऐन्ड मेडेवेल इण्डिया, पृ० १२७, पाद टिप्पणी १

२—वही, पृ० १२७, पादटिप्पणी १ : The Manikchandra-rajar Gan, an East Bengal production, is therefore more important in this connection. There in we see that the people of Bhati were known even to the people of East Bengal as Vangalas i.e. inhabitants of Vangala."

३—ईलियट ऐण्ड डाउसन, "हिस्ट्री आफ इण्डिया", जि० १, पृ० ६१

४—पृथ्वीराज रासो, सलख युद्ध छंद ७६, भट्टिरा भटनेर.....

५—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द ३, पृ० ५२०

प्रतिहार शासक की सहायता की थी जैसा कि पृथ्वीराज विजय^१ नाभक ग्रंथ से ज्ञात होता है, क्योंकि दुर्लभराज का पुत्र गूवक प्रथम नागावलोक (नागभट) की सभा का विशेष वीर पुरुष था। दुर्लभराज भी वत्सराज का सामन्त था। डा० आर० सी० मजूमदार^२ का अनुगमन करते हुए डा० पुरी^३ पृथ्वीराज विजय के इस प्रमाण को अस्वीकार करते हैं। इसका कोई कारण भी नहीं है। डा० दशरथ शर्मा^४ ने इसके प्रमाण को सतर्क सत्य माना है। प्रतिहार शासक के साथ गौड युद्ध में अन्य सानन्तों ने भी भाग लिया था। अतः चाहमान सामन्त के लिए भी भाग लेना और प्रतिहार शासक की सहायता करना स्वामी-धर्म ही था। पृथ्वीराज विजय एक विश्वस्व काव्यग्रंथ है।

वत्सराज का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य 'मदोत्कट करि प्राकार' का दुर्लभधन करना था। प्रायः सभी विद्वानों ने वत्सराज के इस पराक्रम का सम्बन्ध भण्डि-भट्टि कुल से ही बताया है। बंगाल की सेना में भी हाथियों की एक महान शक्ति थी^५। अन्त में डा० पुरी भी पाल राजा द्वारा शासित बंगाल की विजय का श्रेय वत्सराज को देते हैं।

राष्ट्रकूट-आक्रमण और वत्सराज पराजय

जब वत्सराज गुर्जरत्ता से बाहर निकल कर अपनी शक्ति का प्रसार करता हुआ कन्नौज और बंगाल तक विजय कर रहा था, उसकी शक्ति पर दक्षिण से राष्ट्रकूट शासक का आघात पड़ा। पाल-नरेश को पराजित करने वाला वत्सराज स्वयं राष्ट्रकूट राजा ध्रुव द्वारा पराजित होकर मरु देश (मारवाड़, गुर्जरत्ता) में आश्रय लेने को बाध्य हुआ। ध्रुव ने न केवल दोनों श्वेत राजकुलों को उससे छीन लिया, प्रस्तुत राष्ट्रकूट शासक ने उसके यश को हर लिया। इस प्रकार अन्ततः, वत्सराज त्रिकोणात्मक संघर्ष (पीछे देखिये अध्याय ४) में असमर्थ रहा और उसे अपने मूल क्षेत्र गुर्जरत्ता में ही सीमित रहना पड़ा।

१—पृथिवी राज विजय, ५-२० : असिः स्नातोत्थितो यस्य गंगासागर संगमे ।

चिरं गौडरसास्वाद शुद्धां ब्राह्मणतां ययौ ॥

२—हिस्ट्री आफ बंगाल, भाग १, पृ० १०५

३—गु० प्र०, पृ० ४०-४१

४—अली चौहान डाइनेस्टीज, पृ० २५

५—भोज का ग्वालियर लेख, श्लोक १०

राष्ट्रकूट राजा के दक्षिण वापस जाने पर धर्मपाल ने अपना प्रभुत्व गंगा की घाटी में जमाया और वह उत्तरी भारत का सम्राट बन गया ।

नागभट द्वितीय

श्रीसुन्दरीदेव्यामुत्पन्नः परमभगवतीभक्तो महाराज श्री नागभटदेवः

महान् सम्राट

वत्सराज की मृत्यु के बाद सम्भवतः ८०८ ई०^१ के आस-पास उनका पुत्र नागभट द्वितीय प्रतिहार वंश का महान् राजा हुआ । उसकी प्रारम्भिक तिथि विक्रम संवत् ८७२ (= ८१५ ई०) है । उसके राजा होते समय वंश की प्रतिष्ठा राष्ट्रकूट विजेता द्वारा नष्ट कर दी गयी थी और मध्यदेश में धर्मपाल का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था । परन्तु नागभट द्वितीय ने अपने वंश को इस हीन स्थिति से ऊपर उठाकर यशस्वी बना दिया । स्कन्द पुराण में जिस कान्यकुब्ज के सार्वभौम नरेश आम का उल्लेख मिलता है वह यही नागभट द्वितीय था । अतः स्पष्ट है कि वह प्रतिहार वंश का महान् सम्राट था जिसने पुनः विष्णु के रूप में अवतरित होकर कीर्ति को फैलाया—

आद्यः पुमान् पुनरपि स्फुटकीर्तिरस्मा—

उजातस्स एव किल नागभटस्तदाख्यः^२ ।

डा० त्रिपाठी कहते हैं—

“Thus having dispersed the dense clouds in the from of the mighty clouds in the form of the mighty hosto of Dharmapala the sun of Nagabhata's glory shone in the political horizon, and soon its brilliant rays began to permeate and radiate all round^३.”

डा० पुरी भी यही कहते हैं—

“The fortunes of Gurjara glory, which lay enveloped in

१—गु० प्र०, पृ० ४२

हि० क०, पृ० २३१, डा० त्रिपाठी इसे ८०५ ई० मानते हैं ।

डा० मुंशी, ग्लोरी, भाग १, पृ० ८७, नागभट द्वितीय का राज्यारोहण ७६२ ई० मानते हैं ।

२—ग्वा० प्र०, श्लोक ८, पंक्ति १-२

३—हि० क०, पृ० २३४

in darkness.....witnessed a new dawn^१.”

परन्तु नागभट द्वितीय के नवयुग के सूर्योदय का मूलाधार क्या था ? इन विद्वानों का आधार यही था कि नागभट द्वितीय ने शत्रुओं का पराभव कर कान्यकुब्ज में प्रतिहारों का प्रभुत्व जमाया । परन्तु इस नव-युग के अवतरण का मूल आधार वेदों और वैदिक विचारों पर प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज संस्कृति का उन्नयन ही था । यही भोज के ग्वालियर लेख में कहा गया है । इस आदि पुरुष वासुदेव ने क्षात्रधर्म का आश्रय लेकर तृयी (वेदों और वैदिक धर्म) की प्रतिष्ठा कर पुण्यकार्य किया—

त्रय्यास्पदस्य सुकृतस्य समृद्धिमिच्छु—

यः क्षत्रधामविधिवद्धवलिप्रबन्धः^२ ॥

डा० त्रिपाठी और डा० पुरी ने इन पंक्तियों पर ध्यान नहीं दिया ! नागभट ने तृयी-धर्म की प्रतिष्ठा कर क्षात्र-धर्म का परिचय दिया । क्या वह विदेशी था ? म्लेच्छों और नास्तिकों से वैदिक धर्म कुंठित था । यही वह युग था जब कुमारिल भट्ट और भगवान् शंकराचार्य वैदिक धर्म का पुनरुद्धार कर रहे थे और स्कन्द पुराण स्पष्ट कहता है कि जैनों और बौद्धों से दबी हुई ब्राह्मण-संस्कृति को आम (नागभट द्वितीय) ने राजाश्रय देकर उन्नत बनाया । यही कान्यकुब्ज संस्कृति का पूर्वमध्य युग में उत्थान था ।

स्कन्द पुराण स्पष्ट कहता है कि “इस समय कलि युग में कान्यकुब्ज का राजा आम हुआ । वह श्रीमान् राजा धर्म और नीति को जानने वाला था । वह शांत, संयमी, सुशील और सत्यधर्मपरायण था । कलि और अधर्म के भय से सभी लोग (देवाः) पृथिवी को छोड़कर नैभिषारण्य चले गये^३ । कलि और अधर्म की प्रमुख विशेषताएँ—ब्राह्मण-विद्वेष, परस्पर-विरोध, विष्णु-भक्ति की कमी, दुष्टवृत्तियाँ और वैष्णवधर्म छोड़कर बौद्धधर्म या जैनधर्म को स्वीकार करना—थी^४ । इस प्रकार पाखण्डधर्म ने वैदिक धर्म का, विशेषकर इसके हिसात्मक यज्ञविधान का घोर विरोध किया । परन्तु आम (नागभट द्वितीय)

१—गु० प्र०, पृ० ४३

२—ग्वा० प्र०, श्लोक ६, पंक्ति १-२

३—स्कन्द, ३/२/३६/१२-१४

४—वही, ३/२/३६/१७-६७

को विवश होकर तृतीय-धर्म का विस्तार करना पड़ा^१। तृतीय विद्या और त्रैविद्य ब्राह्मणों का महत्व बढ़ा। नागभट्ट द्वितीय का यह महान सुकृत कर्म था, यही ग्वालियर प्रशस्ति की ऊपर उद्धृत पंक्तियों में भी कहा गया है। इसी कार्य द्वारा उसने सूर्य के समान प्रकट होकर घोर अन्धकार दूर किया और बौद्धराजा धर्मपाल को पराजित कर तीन लोकों में प्रसिद्ध हो गया—

घोर घनान्धकारं ।

निजित्य बंगपतिमाविरभूद्विवस्वानुद्ययन्निव त्रिजगदेक विकासको यः^२ ।

चरित्र और व्यक्तित्व

कितना महान था चरित्र और व्यक्तित्व उस नागभट्ट (द्वितीय) का जो सूर्य के समान सम्पूर्ण देश (त्रिजगत्) के विकास का एक मात्र कारण था। उसका पृथिवी पर ऐसा विश्वजनीनवृत्त बाल्यकाल से ही उसके आत्मवैभव (आत्मशक्ति) पर आधारित था। यह आत्म-बल अतीन्द्रिय था—

यस्यात्मवैभवमतीन्द्रियमाकुमारमाविर्बभूव भुवि विश्वजनीनवृत्तेः^३ ।

उसका यह आत्मबल ही था जो उसे कान्यकुब्ज का सार्वभौम शासक बना सका। उसका यह आत्मबल ही दुर्ध्वष शत्रु धर्मपाल की पराजय का कारण बना। यह आत्मबल ही उसे म्लेच्छ-तुरकों का दमन करने में सहायक हुआ। यही आत्मबल उसे तृतीयधर्म का उन्नायक बना सका।

आत्मज्ञानी होने के साथ ही वह विद्वान तो था ही; सम्भवतः वह कवि भी था जिसने बलि-प्रबन्ध (बलि-वामन-कथा) की रचना भी की थी (बद्ध-बलि-प्रबन्धः)^४। देवपाल के समय के सियदोनी अभिलेख में वामन (ह्रस्व मूर्ति) के त्रिविक्रम स्वरूप का सुन्दर वर्णन किया गया है—

योऽसौ चक्राम धात्रीं गिरिकुहरसरित्सागरानूपरम्यां

पादेनैकेन कृत्स्नां बलिच्छलनवशान्मूर्तिमास्थाय ह्रस्वां ।

१—स्कन्द, ३/२/३७/१४, यशोवर्मन् के खजुराहो लेख (श्लोक ४६) में कहा गया है—तृतीयधर्मः प्रवर्द्धताम् ।

२—ग्वा० प्र०, श्लोक १०

३—वही, श्लोक ११, पंक्ति ३-४

खेद है कि शोध कर्ताओं की दृष्टि ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों पर क्यों नहीं जाती है। न इस पर डा० त्रिपाठी ने ही ध्यान दिया और न डा० पुरी ने ही।

४—वही, श्लोक ६, पंक्ति २

स्वर्गम्बभ्राम साकं पवनपथगर्णेभानुचन्द्रग्रहाग्र्यैः

सोऽव्यात्त्रिविक्रमो वस्तुतयपदपथो यस्यदेवैर्नलब्धः^१ ॥

महोदय (कन्नौज) में वामन स्वामी का प्रसिद्ध मन्दिर था^२ । यही महोदय श्री थी जिसकी स्थापना नागभट द्वितीय ने कान्यकुब्ज पर अधिकार प्राप्त कर की ।

उसकी उपलब्धियाँ

नागभट द्वितीय की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि कान्यकुब्ज पर अधिकार कर उसे प्रतिहार वंश की राजधानी बनाना तथा कान्यकुब्ज को एक साम्राज्य का रूप देना था । यह कार्य उसने लगातार विजयों द्वारा प्राप्त किया । उसकी विजयों का उल्लेख हमें भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में मिलता है । बाउक के जोधपुर लेख में बताया गया है कि उसके सामन्त कक्क ने गौड़ों (पालों) के विरुद्ध मुद्गिरि (मुंगेर) में युद्ध कर यश प्राप्त किया था । इसके प्रतिकूल अमोघवर्ष राष्ट्रकूट के संजन ताम्रपत्र लेख में नागभट द्वितीय की पराजय का उल्लेख मिलता है । जब राष्ट्रकूट शासक ध्रुव ने नागभट द्वितीय के पिता को पराजित कर मध्यदेश से बाहर मरुभूमि में भगा दिया था, तब प्रतिहार वंश हीन स्थिति को प्राप्त कर क्षीण दशा में था । इसी हीन स्थिति से प्रतिहार वंश को उठाकर मध्यदेश में प्रतिष्ठित कर दिया । राष्ट्रकूट राजा की पराजय का इसके बढ़ते हुए प्रभाव पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा । स्कन्द पुराण भी यही बताता है कि जब आम कान्यकुब्ज का राजा हुआ देश कलि-व्याप्त था; परन्तु वह अपने गुणों और कर्मों से सार्वभौम सम्राट बन गया । अमोघवर्ष के संजन लेख में भी नागभट (द्वितीय) के रणों में 'अहार्य-शौर्य' (अदम्य शूरता) का उल्लेख सिद्ध करता है कि नागभट (द्वितीय) कितना पराक्रमी शूर था । उसकी विजयों का तिथिक्रम और इसका पूर्वापर स्वरूप उलझा हुआ है ।

विजय—आन्ध्रसैन्धव विदर्भकलिग

भोज के ग्वालियर लेख में सबसे पहले यह बताया गया है कि आन्ध्र, सैन्धव, विदर्भ और कलिग के राजाओं ने स्वयं ही उसकी शरण ली—जैसे पराजित देवताओं ने कुमार कार्तिकेय की शरण ली थी (कौमारधामनि)

१—सियोदोनी लेख, पंक्ति ३६-४०

२—का० मी०, पृ० ६४

अथवा जैसे पतंगे प्रकाश का आश्रय लेते हैं—

यत्तान्ध्रसैन्धवविदर्भकलिगभूपैः ।

कौमारधामनि पतंगसमैरपाति^१ ॥

डा० त्रिपाठी के अनुसार कन्नौज पर अधिकार करने तथा धर्मपाल को पराजित करने के बाद नागभट द्वितीय “इतना शक्तिवान् हो गया था कि अन्ध्र, सिन्ध, विदर्भ तथा कलिग के राजाओं ने उससे सहायता तथा मैत्री की प्रार्थना की^२ ।” “यह सहायता उन्होंने अपने-अपने शत्रुओं के विरुद्ध चाही थी और क्रमशः ये शत्रु पश्चिम में आने वाले मुसलमान, दक्षिण में राष्ट्रकूट और पूर्व में पाल थे^३ ।”

डा० पुरी के अनुसार राष्ट्रकूटों और पालों के बढ़ते हुए आतंक से बचने और उनका सामना करने के लिये यह एक राज मण्डल था जो पाल और राष्ट्रकूट साम्राज्यों के मध्य स्थित था^४ । पुराना विचार है जिसके अनुसार इन राजाओं ने पालों और राष्ट्रकूटों के विरुद्ध एक संघ बनाया था^५ । यही अधिक सम्भव है । नागभट द्वितीय ने पालों और राष्ट्रकूट शत्रुओं का सामना करने के लिए पालों के निकटस्थ कलिग, राष्ट्रकूटों के निकटस्थ सैन्धवों, विदर्भों और आन्ध्रों से मित्रता की । ये छोटे राष्ट्र स्वयं ऐसे व्यक्ति की खोज में थे जो उनकी रक्षा कर सकता और उन्होंने ऐसा व्यक्ति नागभट द्वितीय ही पाया ।

अन्ध्र अति प्राचीन देश है । राजशेखर के समय में भी यह प्रसिद्ध था^६ । उन्होंने अन्ध्र देश के ईश्वर^७ (राजा) का भी उल्लेख किया है । अस्तु

१—ग्वा० प्र०, श्लोक ८, पंक्ति ३-४

२—प्रा० भा०, पृ० २४०

३—हि० क०, पृ० २३५ : “In other words they sought his powerful alliance against the incoming Muslims in the west, the Rashtrakutas in the south, and the Palas in the east.”

४—गु० प्र०, पृ० ४४

५—ए० इ० क०, पृ० २५

६—का० मी०, पृ० ८४, १००

७—बाल रामायण, ३/६३

प्रतिहार-युग में भी अन्ध्र देश का महत्व था। यहाँ वेंगी के चालुक्यों का राज्य था। गोविन्द तृतीय ने यहाँ आक्रमण किया था।

कलिंग भी प्राचीन प्रसिद्ध देश था। इन दोनों राज्यों को उत्तर से पालों और दक्षिण के राष्ट्रकूटों की बढ़ती हुई शक्ति से भय था।

सैन्धव (पश्चिमी सौराष्ट्र में शासन कर रहे थे)^१ और विदर्भ (बराह) के लोगों को राष्ट्रकूटों और मुसलिम आक्रान्ताओं से भय था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि ये राज्य मुसलिम आक्रमणकारियों, राष्ट्रकूटों और पालों के शत्रु नागभट से सन्धि करते।

राष्ट्रकूट आक्रमण

परन्तु नागभट द्वितीय और उसके इस मित्र-संघ से राष्ट्रकूट शासक अत्यन्त रुष्ट होकर इसे तोड़ने और अपना प्रभुत्व जमाने के लिए प्रतिहार शासक पर आक्रमण करना चाहता था। परन्तु उत्तरी भारत पर आक्रमण करने के पूर्व उसे अपने राज्य की सुरक्षा करना आवश्यक था। इसलिए उसने कर्क राज को मालव-राज्य की रक्षा करने के लिये नियुक्त किया^२ जिससे प्रतिहार शासक इधर आक्रमण न कर सके।

उसने कई सेनानायकों को मालव, कोसल (दक्षिण), उड़ीसा और वेंगी के शासकों की नियन्त्रण में रखने के लिए नियुक्त किया। उसने अपने भाई इन्द्र को गुर्जर-प्रतिहारों पर उनके मूल देश में आक्रमण करने भेजा और वह स्वयं गंगा-यमुना की घाटी (दोआब) और कन्नौज पर आक्रमण करने (८०६ या ८०७ ई० में) के लिए उत्तर की ओर बढ़ा। इससे सिद्ध होता है कि गोविन्द तृतीय ने बहुत तैयारी के साथ कन्नौज पर आक्रमण किया^३।

अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्र लेख में बताया गया है कि चन्द्रगुप्त और नागभट के युद्ध में पर्वत के समान (स्थिर) धैर्य को मिटाकर उनके शौर्य को नष्ट कर दिया। इससे नागभट द्वितीय की रणदक्षता का परिचय मिलता है। परन्तु केवल यश को चाहने वाले गोविन्द तृतीय ने उन्हें पुनः

१—ए० इ० क०, पृ० ६८-१००

२—कर्क राज का बड़ीदा ताम्रपत्र लेख, सं० ७३४ (=८१२ ई०)

३—राष्ट्रकूटाज, पृ० ६५

अपने-अपने राज्यों में प्रतिष्ठित कर दिया^१ । इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रकूट शासक का यह उत्तरी अभियान नागभट द्वितीय के लिए कोई विशेष हानिकार सिद्ध न हुआ ।

धर्मपाल-चक्रायुध-आत्मनिवेदन

किन्तु इसी अभिलेख में बताया गया है कि धर्मपाल और चक्रायुध ने स्वयं ही गोविन्द तृतीय की बिना युद्ध किये आधीनता मान ली (स्वयमेवोपनतौ च यस्य महतस्तौ धर्मचक्रायुधौ)^२ ।

राष्ट्रकूट शासक के इस आक्रमण से भी नागभट द्वितीय के व्यक्तित्व की महानता का परिचय मिलता है ।

कान्यकुब्ज-विजय

इस प्रकार अपनी शक्ति संगठित करने के बाद नागभट द्वितीय ने कान्यकुब्ज पर आक्रमण किया जहाँ धर्मपाल का आधीनस्थ राजा चक्रायुध शासक था । नागभट द्वितीय ने उस पराश्रयी नीच राजा को पराजित किया—

जित्वा पराश्रयकृतस्फुटनीचभावं ।

चक्रायुधं विनयनम्रवपुर्व्यराजत्^३ ॥

इस विजय से ही नागभट द्वितीय का कान्यकुब्ज पर अधिकार हो गया । इसी को प्रतिहार शासक ने अब अपनी राजधानी बनायी ।

वंगपति (धर्मपाल)-पराभव

ग्वालियर प्रशस्ति की अगली पंक्तियों में बताया गया है कि नागभट द्वितीय ने अजेय हाथियों, घोड़ों और रथों की सेना वाले शत्रु वंग (बंगाल) के राजा को जीता । तभी ऐसा लगा कि तैलोक्य के विकास का एक मात्र कारण सूर्य (सूर्य वंशी राजा) उदित हुआ—

दुर्वारवैरि वर वारणवाजिवारयाणौघसंघटन घोरघनान्धकारं ।

निर्जित्य वंगपतिमाविरभूद्विवस्वानुद्यन्निवन्निजगदेकविकासको यः^४ ।

१—अमोघवर्ष प्रथम का संजन ताम्रपत्र लेख, श्लोक २२ :

स नागभटचन्द्रगुप्तनृपयोर्यशौर्यं

रणेष्वहार्यमपहार्यं धैर्यं विकलानथोन्मूलयत् ।

यशोजनपरो नृपान्स्वभूवि शालिसस्यानिव ।

पुनपुनरतिष्ठितस्त्वपद एव चान्यानपि ॥

२—वही, श्लोक २३

३—ग्वा० प्र०, श्लोक ६, पंक्ति ३-४

४—वही, श्लोक १०

डा० मुंशी ने कहा है कि इस वत्सराज के अन्तिम राज्य-वर्षों में जो गुर्जर देश में अनिश्चयता और अस्थिरता आ गयी थी, उसे नागभट द्वितीय ने इस विजय द्वारा दूर किया^१ ।

सम्भवतः यह युद्ध मुद्गगिरि (मुंगेर) के निकट ही हुआ था; क्योंकि बाउक के जोधपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके पिता कक्क ने मुद्गगिरि में गौड़ों के विरुद्ध युद्ध करते हुए यश प्राप्त किया था (यशो मुद्गगिरौ लब्धं येन गौडैः समं रणे)^२ । कक्क ने नागभट द्वितीय के साथ ही उसकी आधीनता में पालों के विरुद्ध युद्ध किया था । इस युद्ध में नागभट द्वितीय के साथ अन्य सामन्त भी लड़े थे । इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि कान्य-कुब्ज से चक्रायुध को हटाकर नागभट द्वितीय ही इस राज्य का स्वामी हुआ और बंगाल में धर्मपाल शासक बना रहा ।

अन्य विजय

भोज के ग्वालियर अभिलेख में ही चक्रायुध और वंग-पति को पराजित करने के बाद नागभट द्वितीय ने आनर्त्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स और मत्स्य आदि देशों के राजाओं के गिरि-दुर्गों पर बल-पूर्वक अधिकार किया—

आनर्त्तमालवकिराततुरुष्कवत्स ।

मत्स्यादि राजगिरिदुर्गहठापह रैः^३ ॥

आनर्त्त

पश्चिम भारत का धन-धान्य सम्पूर्ण देश था जिसकी पहचान उत्तरी काठियावाड़ से की गई है । इसकी राजधानी द्वारका थी^४ । रक्तशृंग पहाड़ी के ऊपर स्थित चमत्कारपुर या आनर्त्तपुर (गुजरात में अहमदाबाद प्रान्त का आधुनिक वडनगर) भी इनकी राजधानी थी । सम्भवतः यही गिरि दुर्ग था जिसे नागभट द्वितीय ने जीतकर अपने राज्य में मिलाया । आगे भी हम देखेंगे कि नागभट द्वितीय के पौत्र भोज प्रथम का अधिकार इस क्षेत्र पर था । इसे जीतकर प्रतिहार राज्य में मिलाने का श्रेय नागभट द्वितीय को ही था ।

मालव

हर्ष के राज्यकाल में ही मालवा उत्तरी-भारत की राजनीति में प्रसिद्ध

१—ग्लोरी० पृ० ८६

२—बाउक का जोधपुर लेख, श्लोक २४

३—ग्वा० प्र०, श्लोक ११

४—स्ट० स्क० पु०, पृ० ८४

था । कालान्तर में यह राज्य प्रसिद्ध था जहाँ सिन्ध के अरब शासकों के भी आक्रमण हुए^१ । प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों ने भी मालवा पर अपना-अपना प्रभाव जमाने के लिए होड़ थी । दोनों ही वंशों के लेखों में इसका उल्लेख किया गया है । परन्तु जिस समय राष्ट्रकूट शासक अपने राज्य के संगठन और दक्षिण भारत की समस्याओं में फँसे थे, नागभट द्वितीय अपनी शक्ति के शिखर पर था । इसी समय उसने मालव-राज के गिरिदुर्ग, सम्भवतः, विदिशा (मध्य प्रदेश) पर अधिकार कर लिया । ऐसा मालूम पड़ता है कि राजशेखर के समय अवन्ति के कई भाग थे—

ततः सोऽवन्तीन् प्रत्युच्चचाल

यत्नावन्तीवैदिशसुराष्ट्रमालवार्बुददभृगुकच्छादयो जनपदाः^२ ।

इस प्रकार अवन्ति (पश्चिमी मालवा), वैदिश (आकर या पूर्वी मालवा) और मालव तो स्पष्टतः अवन्ति खण्ड या मालवा के ही विभिन्न प्रान्त थे ।

किरात

पुराण और कालिदास के ग्रन्थों—कुमारसंभव और रघुवंश आदि में किरातों को हिमालय में बसा हुआ बताया गया है । काव्यमीमांसा में भी किरातों का उल्लेख मिलता है^३ । वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में किरातों का कई बार उल्लेख किया है । यहाँ उनकी स्थिति दक्षिण-पश्चिम दिग्भाग में आनर्त के साथ ही बताई गई है^४ । इनका उल्लेख ईशान दिशा (उत्तर पूर्व) में कीर, काश्मीर, दरद, कुलूत, ब्रह्मपुर, कुणिन्द आदि हिमालय पर स्थित देशों और जातियों के साथ भी मिलता है^५ । ये शस्त्र से जीविका चलाने वाले (शस्त्रवार्ताः) थे^६ । यहीं 'किरातपार्थिव' (किरातों के प्रधान)^७ का भी उल्लेख मिलता है । अतः यह सिद्ध होता है कि नागभट द्वितीय ने किमी गण जाति के प्रधान को जीता था । यह यहाँ हिमालय-जाति न होकर पश्चिम देश में रैवतक पर्वत पर बसी कोई न्य जाति थी ।

१—मजूमदार, ऐन्शेन्ट इंडिया, पृ० २८०

२—का० मी०, पृ० ६/३

३—वही, ५६/७-१२

४—व० सं०, १४/१७-१६

५—वही, १५/२६-३०

६—वही, ५/३५

तुरुष्क

इन्को सभी विद्वानों ने सबसे पहले पश्चिम भारत में बसे हुए मुसलमानों से पहचान की है^१। डा० पुरी ने इनकी पहचान सिन्ध में बसे हुए अरबों से की है^२। मुंशी ने भी इनकी पहचान अरबों से की है, जिनको नागभट द्वितीय ने पीछे ढकेल दिया था^३।

परन्तु राजशेखर इन्को उत्तरापथ (उत्तर-पश्चिमी भारत) में स्थित बताते हैं, जो पृथुदक या पिहोआ के उसपार पंजाब की ओर फैला था^४। निस्सन्देह ये तुर्की मुसलमान थे जो काबुल-खुरासान के आस-पास की पहाड़ियों में जमे हुए थे और देश-द्वार को खटखटा रहे थे। गरुड़ पुराण में सिन्ध में बसे हुए अरबों को यवन-म्लेच्छ कहा गया है। इसी प्रकार उत्तर पश्चिम में हिमालय की पहाड़ियों में भी म्लेच्छ थे (हिमाचलालया म्लेच्छा उदीचीं दिशमाश्रिताः)^५। पद्मपुराण में तुरुष्कों को भी म्लेच्छ बताया गया है जो मुस्लिम थे और कुशल घुड़सवार तथा युद्ध में मुँह मोड़ने वाले न थे^६। काबुल-क्षेत्र में तुर्क (तुरुष्क) बसे हुए थे^७। ऐसा प्रतीत होता है कि नागभट द्वितीय ने सीमान्त तुर्की शत्रुओं को पराजित किया। इसमें सिन्ध के अरब विजेता भी थे जिनको नागभट द्वितीय ने निश्चिन्त रूप से पराजित कर पीछे ढकेल दिया था।

वत्स

यह प्रसिद्ध कौशाम्बी राज्य था।

मत्स्य

जयपुर, भरतपुर, अलवर राज्य जिसकी राजधानी विराटनगर (वैराट) थी।

इन विजयों से सिद्ध होता है कि उत्तरी भारत के मध्यदेश में अन्तर्वेदी (गंगा-यमुना-द्वाब) और पश्चिम देश—मत्स्य, मालव, मरु, (गुर्जरत्ता) और आनर्त्त—सम्मिलित थे। अब वह एक सार्वभौम सम्राट था—

१—हि० क०, पृ० २३५

२—हि० गु० प्र०, पृ० ४५, नोट ५

३—ग्लोरी, भाग १, पृ० ८६

४—गरुड़ पुरा०, १/५५/१७

५—पद्म पुरा०, सृष्टि खंड, ४४/७४-७६

६—ईलियट एन्ड ड्राउसन. जिल्द २ पृ० ६००

“Nagabhata thus reached the zenith of his power.”^१

“नागभट के विषय में बहुत-सी गाथाएँ प्रचलित हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उत्तर में केरा तक सम्पूर्ण गुजरात प्रतिहार राज्य से सम्मिलित था। एक ब्राह्मण अनुश्रुति के अनुसार ज्ञात होता है कि कन्नौज का राजा आम ग्वालियर में रहता था। उसने उत्तरी गुजरात की प्राचीन राजधानी खेटकपुर (केरा) के राजा को हटा कर उसके देश पर अधिकार कर लिया था^२।” परन्तु मुंशी जी ने इस ब्राह्मण-अनुश्रुति का नामोल्लेख नहीं किया है। इसलिए डा० त्रिपाठी तथा डा० पुरी ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। ब्राह्मण-अनुश्रुति पर विचार करने के पूर्व बप्पभट्टिचरित में प्राप्त उसके इतिहास का विवेचन करते हैं।

नागभट (द्वितीय) और बप्पभट्टिचरित^३

चन्द्रप्रभसूरी रचित प्रभावकचरित में बप्पभट्टिचरित मिलता है। कन्नौज के राजा आम की पहचान नागावलोक से की गयी है। इसी ग्रन्थ के अनुसार राजा आम (नागावलोक) ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया और अन्त में संवत् ८६० में उसने अपने प्राण त्याग दिये।

प्रो० कृष्णस्वामी अयंगर और डा० मजूमदार का अनुसरण करते हुए डा० पुरी मानते हैं—“यह सन्देहास्पद है कि नागभट द्वितीय ने कन्नौज पर अधिकार जमा लिया हो।……अयंगर के अनुसार कन्नौज को भोज प्रथम ने जीता था, न कि उसके पहले किसी प्रतिहार शासक ने। नागभट द्वितीय के राज्यकाल के अन्त तक कन्नौज यशोवर्मन् के उत्तराधिकारी आमराज के अधिकार में रहा। डा० मजूमदार के अनुसार भी कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि चक्रायुध को पराजित करने के बाद उसके राज्य को अपने साम्राज्य में मिलाकर अपनी राजधानी को कन्नौज में स्थापित किया। कन्नौज की राजधानी बदलने का साक्ष्य केवल प्रभावक चरित में उपलब्ध होता है। (डा० पुरी मानते हैं) कि कन्नौज को राजधानी बनाने का उल्लेख इसलिए है कि बाद को कन्नौज ही प्रतिहारों की प्रसिद्ध राजधानी थी। यदि नागभट द्वितीय ने राजधानी-परिवर्तन किया था, तो वह अपने

१—ग्लोरी, भाग १, पृ० ८६

२—वही, पृ० ८६

शासन के अन्त में धर्मपाल की मृत्यु के बाद ही^१। परन्तु हम आगे स्पष्ट साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध करेंगे कि नागभट्ट द्वितीय और रामभद्र के समय ही कन्नौज प्रतिहारों की राजधानी थी।

राजशेखर सूरी (विक्रम संवत् १४५८=१४०१ ई०) द्वारा लिखे गये प्रबन्धकोश में बप्पभट्टिसूरि प्रबन्ध (प्रबन्ध संख्या ६)^२ प्राप्त होता है जिससे ज्ञान होता है—

कान्यकुब्ज देश में गोपालगिरि दुर्ग नगर (स्वालयर) में यशोवर्म राजा था। उसकी सुयशा देवी से उत्पन्न पुत्र आम था^३। आम ही राजा बनाया गया और वह राजा राम के समान न्याय-प्रिय था (एवं राज्यश्रीः श्री आमस्य न्यायरामस्य)। गोपाल गिरि भी उसकी राजधानी थी। वहाँ जैनों का प्रभाव अधिक था^४। उसने बप्पभट्टि को अपना आचार्य बनाया और वह सिंहासनारूढ़ जैन आचार्य उसके दरबार से सूरिपद (पुरोहित पद) पर नियुक्त किया गया। आम ने ही गोपगिरि में एक विशाल जैन मन्दिर बनवाकर वहाँ वर्धमान (महावीर स्वामी) की मूर्ति स्थापित करायी। इन कार्यों से ब्राह्मण क्रुद्ध हो गये और उन्होंने राजा से कहा कि ये जैन शूद्र हैं। (तद् दृष्ट्वा विप्रैः क्रुधा ज्वलिन्भूरो विज्ञप्तः—देव श्वेताम्बरा अमी शूद्राः।) इनको सिंहासन पर बैठने का क्या अधिकार (एभ्यः सिंहासनं किम्)। यह सुनकर 'सूरीन्द्र' रूष्ट हो गया और उसने ब्राह्मणों के घमण्ड को नष्ट करने के लिए कहा। राजा ने उसका स्वागत-सत्कार किया^५।

इसी समय गौड देश की राजधानी लक्षणावती (लखनौती) में राजा धर्म (धर्मपाल) शासन कर रहा था जिसकी सभा में कविराज बाकपति भी विद्यमान था^६। बप्पभट्टि आम राजा के यहाँ से गौड देश चला गया। उसकी खोज में आम गौड देश को गया। राजा धर्म (पाल) को भी मालूम हो गया कि उसका शत्रु उसकी राजधानी में आ गया है^७।

१—गु० प्र०, पृ० ४८, नोट २

२—प्रबन्धकोश, विश्वभारती (सं०), वि० सं० १६६१. (जिनविजय संपादित)

३—वही, पृ० २७

४—वही, पृ० २८

५—वही, पृ० २६

६—वही, पृ० ३०

७—वही, पृ० ३३

राजा धर्म ने आम राजा के पास संदेश भिजवाया—“हमारे यहाँ एक महा-वादी बौद्ध-दर्शन का विद्वान विदेश से आया है। आपके राज्य में यदि कोई वादी हो तो ले आइये। हमारा आपका बहुत ही पुराना बैर है (अस्माकं भवद्भिः सह चिरन्तन वैरम्)। जिसका भी वादी जीत जायगा, वही दूसरे का प्रभु (सम्राट) होकर उसके राज्य को भी पायेगा।” आम बप्पभट्टि को लेकर दरबार में गया। राजा धर्म भी परमार वंशीय राजा वाक्पति को लेकर उपस्थित हुआ। बाद-विवाद में बौद्ध सूरी को बप्पभट्टि ने पराजित कर दिया। राजा धर्म ने अपना सम्पूर्ण (सप्तांग) राज्य आम को दे दिया। परन्तु उसने बप्पभट्टि के कहने से पुनः राज्य धर्म को वापस कर दिया। यह महादान था। आम ने गाम्भीर्य और औदार्य का परिचय दिया^१।

बप्पभट्टि ने ब्राह्मण धर्म की भी निन्दा की। आम भी अर्हत हो गया^२।

आम का लड़का दुन्दुक था। आम ने राजगिरि नामक दुर्ग पर आक्रमण किया जहाँ समुद्रसेन राज्य कर रहा था। परन्तु वह उसे न जीत सका। इससे आम खिन्न हो गया। उसके पौत्र भोज की दृष्टिमात्र से ही राजगिरि के दुर्ग को जीत लिया गया। परन्तु उसने वहाँ प्रजा-संहार न किया, क्योंकि राजषि क्रूर नहीं होते थे। वे दयालु होते थे। इस राजगिरि विजय के ६ मास बाद ही वि० सं० ८६० (= ८३३ ई०) के भाद्रपद शुक्लपक्ष की पंचमी को पंचपरमेष्ठिन् का ध्यान करते हुए उसने अन्तर्धान-विधि द्वारा समाधिस्थ होकर गंगा नदी में मागध तीर्थ के निकट प्राण त्याग दिये।

इसी समय उनकी मृत्यु के पूर्व सौराष्ट्र के रैवतक तीर्थ में जैनों के श्वेताम्बर और दिगम्बर साधुओं में भी कलह हुआ था। परन्तु आम ने सौराष्ट्र के रैवतक तीर्थ में नेमिनाथ और प्रभास में चन्द्रप्रभ की प्रतिष्ठा बढ़ाकर जैन धर्म का उन्नयन किया^३। प्राण-त्याग के पूर्व उसने अपने पुत्र दुन्दुक को राज्य पर प्रतिष्ठित किया। उसके देहान्त के बाद तत्त्वज्ञ सूरी और सेवक-गण भी विलाप करने लगे—

हा शरणागत-रक्षावज्रकुमार ! हा राजस्थापना दाशरथे ! हा अश्वदमन-नल ! हा सत्यवाग् युधिष्ठिर ! हा मज्जाजैनश्रेणिक ! हा सूरिसेवासम्प्रते !

१—प्रबन्धकोश, पृ० ३५-३६

२—वही, पृ० ४०

३—वही, पृ० ४१-४३

हा अनृणीकरण विक्रमादित्य ! हा वीरबिद्या शातवाहन^१ ।”

इस प्रकार प्राचीन भारत के प्रसिद्ध और श्रेष्ठ राजाओं—राम (पीछे भी देखिये), नल, युधिष्ठिर, श्रेणिक (बिम्बिसार), सम्प्रति, विक्रमादित्य और शातवाहन—से उसकी समता की गयी है। इससे ज्ञात होता है कि राजा आम प्रतापी और धार्मिक सम्राट था। यद्यपि इस जैन उपाख्यान में नामों और उनकी समकालीनता के बारे में गड़बड़ी है; परन्तु फिर भी हमको कुछ ऐसी बातें मालुम होती हैं जो अन्य साक्ष्यों से भी सिद्ध होती हैं। ये निम्न लिखित हैं—

१. राजा आम कान्यकुब्ज देश का राजा था, जिसका पोता भोज था। अतः आम की पहचान नागभट द्वितीय से ही करना उचित है।

२. राजा आम और गौड-नरेश धर्म में चिरंतन बैर था। इस कारण भी आम की पहचान नागभट द्वितीय से करना उचित है और धर्म तो बंगपति धर्मपाल ही है, जिसे उसने पराजित किया था। यह बैर उनके धर्मों—क्रमशः जैन और बौद्धधर्म—के भेदों पर भी आधारित था।

३. आम (=नागभट द्वितीय) और धर्मपाल में सन्धि हो गयी तथा आम ने धर्मपाल के प्रति ग्रहण-मोक्ष की नीति अपनायी। अस्तु धर्मपाल अपने राज्य पर शासन करता रहा और आम-नागभट द्वितीय-कान्यकुब्ज देश में राज्य करता रहा जिसमें गोपगिर (ग्वालियर), कालिंजर^२, सौराष्ट्र, रैवतक और प्रभास सम्मिलित थे। स्तम्भतीर्थ भी उसके राज्य में सम्मिलित था^३।

४. इन अन्य देशों के अतिरिक्त उसने राजगिरि को भी जीता था (आमो राजगिरिमविक्षत्)^४। भोज के ग्वालियर लेख से भी ज्ञात होता है कि उसने राजगिरि की विजय की थी—

आनर्त्तमालवकिराततुष्कवत्स

मत्स्यादि राजगिरिदुर्गहठापहारैः ॥

यहाँ ऊपर की पंक्ति में भी राजगिरि-दुर्ग के अपहरण का उल्लेख है।

‘राजगिरि-दुर्ग’ का अर्थ hill-forts या ‘पर्वतीय दुर्ग’ यहाँ पर लगता नहीं है; क्योंकि ऊपर उल्लिखित देश पहाड़ी देश न थे।

१—प्रबन्धकोश, पृ० ४३

२—वही, पृ० ४०

३—वही, पृ० ४२

४—वही, पृ० ४१

५. मृत्यु के पूर्व उसके पुत्र और पौत्र थे। सम्भवतः पौत्र भोज ने उसकी विजयों में भी कुछ सहायता की थी। उसका साम्राज्य पश्चिम में रैवतक पर्वत, प्रभास और सौराष्ट्र से लेकर पूर्व में राजगिरि-मुंगेर तक तथा उत्तर में (किरातविषय) हिमालय से लेकर गोपगिरि-कालिंजर तक फैला हुआ था। इससे सिद्ध होता है कि वह उत्तरी भारत का सार्वभौम सम्राट था।

कुछ विद्वानों को नागभट द्वितीय के कान्यकुब्ज पर अधिकार कर राजधानी बनाने में सन्देह है। परन्तु इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। भोज के ग्वालियर अभिलेख में बताया गया है कि भोज के पिता रामभद्र ने सूर्य की उपासना करके सूर्य देव की कृपा से एक पुत्र प्राप्त किया जिसको 'मिहिर' नाम दिया गया^१। कन्नौज के मन्दिर के सूर्य देवता का नाम ही मिहिर था (मिहिरं कान्यकुब्जे च)^२। कन्नौज का यह मिहिर (सूर्य) मन्दिर भारत के प्रसिद्ध मन्दिरों में से एक था। यदि रामभद्र कन्नौज का शासक था जैसा कि उल्लिखित तथ्य से सिद्ध होता है और कन्नौज में ही मिहिर-भोज का जन्म भी हुआ था जो एक ऐतिहासिक तथ्य है, तो नागभट द्वितीय द्वारा कन्नौज को अपने अधिकार में लाकर उसे राजधानी बनाने में किसको सन्देह हो सकता है। इसी कारण स्कन्दपुराण में आम (नागभट द्वितीय) को कान्यकुब्ज का सार्वभौम सम्राट कहा गया है।

स्कन्दपुराण में वर्णित आम राज्य

स्कन्द पुराण प्राचीन भारतीय इतिहास का अति महत्वपूर्ण साधन है। इसमें हमें आम राजा के राज्यकाल का महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है। स्कन्द पुराण के धर्मरत्न खंड में बताया गया है कि "इस समय कलियुग प्राप्त होने पर आम नामक कान्यकुब्ज का राजा हुआ। वह नीति-परायण, धर्मज्ञ, श्रीमान्, शांत, दांत, सुशील और सत्यधर्मपरायण राजा था। इस समय कलि के भय से त्रस्त होकर देवता लोग पृथिवी (देश) छोड़कर नैमिषारण्य चले गये थे। राम भी साथियों के साथ सेतुबन्ध चले गये^३। इससे तत्कालीन लोक-भीति का आभास मिलता है।

कलि-भय-पाषण्डधर्म का प्राबल्य

कलियुग के आने पर कान्यकुब्ज का बली राजा आम राज्य करते हुए

१—ग्वा० प्र०, श्लोक १५: सुतं रहस्यं व्रतसुप्रसन्नात्सूर्यादवापन्मिहिमामिधानं।

२—स्कन्द पुराण, ७/१/१३६/२२ (२)

३—वही, ३/२/३६/१२-१५

सार्वभौम सम्राट बन गया । वह प्रजा-पालन में तत्पर शासक था । उसकी बुद्धि में विचार परिवर्तन हुआ और उसने वैष्णवधर्म छोड़ कर क्षपणकों (बौद्ध या जैन सन्यासियों) के प्रभाव में आकर बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया । नागभट (द्वितीय) का पितामह देवशक्ति परम वैष्णव था । आम राजा की रत्नगंगा नामक पुत्री थी । एक बार कान्यकुब्ज देश में बाहर से इंद्रसूरि (नामक जैन साधू) आया । उसके प्रभाव से रत्नगंगा का विवाह ब्रह्मावर्त के राजा कुम्भीपाल (या कुमारपाल) के साथ कर दिया गया । इस प्रकार आम के दरबार में जैनों का प्रभाव बढ़ता गया । ब्राह्मणों को दान देना भी बन्द कर दिया गया और विप्रों के राजशासन से दिये हुये दानों (अग्रहारों) का भी लोप हो गया (लब्धशासनका विप्रा लुप्तस्वाम्या अहर्निशम्)^१ । इससे आकुलित होकर ब्राह्मणों ने राजा आम से सब कहा जो जैनियों से घिरा हुआ कन्नौज में शासन कर रहा था । उनका दामाद कुमारपाल भी जैन धर्म का प्रचार कर रहा था^२ । जैनियों के प्रभाव के विरुद्ध ब्राह्मणों ने विद्रोह कर दिया और अन्त में उनकी विजय हुई ।^३ इस प्रकार तृतीयधर्म (वेदधर्म) की महिमा पुनः स्थापित हुई तथा न्याय मार्ग प्रवर्तक कनौजिया ब्राह्मणों (महोदयाश्व ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः) की भी प्रतिष्ठा स्थापित हुई ।^४ राजा आम का आधिपत्य धर्मारण्य (मही और साभ्रमती नदियों की घाटियों में खम्भात की खाड़ी के उत्तर-पूर्व स्थित) तक फैला था ।

इस प्रकार आम के राज्यकाल में बढ़ते हुए जैनों (नग्न-क्षपणकों) का प्रभाव कम हुआ और ब्राह्मण धर्म का गौरव बढ़ा । जैनग्रन्थों—बप्पभट्टि-चरित और प्रभावक चरित—से कन्नौज पर जैनों का प्रभाव परिलक्षित होता है । इस प्रकार स्कन्द पुराण में वर्णित कान्यकुब्ज का बली सार्वभौम राजा आम नागभट द्वितीय ही था ।

रामभद्र

नागभट द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका राम नामक पुत्र (तज्जन्मा राम नामा)^५ राजा हुआ । मिहिर भोज के बराह लेख से ज्ञात होता है कि

१—स्कन्द पु०, ३/२/३६/४७

२—वही, ३/२/३६/४८-६८

३—वही, ३/२/अ० ३६-३६

४—वही, ३/२/३६/३२

५—ग्व० ले०, श्लोक १२, पंक्ति १

महाराज श्री नागभट्ट देव और श्रीमतीसटा देवी से परमादित्यभक्त महाराज श्री रामभद्र का जन्म हुआ था^१ ।

भोज के ग्वालियर अभिलेख में राम (या रामभद्र) के गुणों और चरित्र की अत्यंत प्रशंसा की गई है । परन्तु आधुनिक विद्वानों ने न संस्कृत लेख ही देखा और न उनसे इसका अनुवाद ही देखा गया । मूल अभिलेख में निम्नांकित वर्णन मिलता है—

यस्यात्मवैभवमतीन्द्रियमाकुमारमाविर्बभूव भुवि विश्वजनीनवृत्तेः ॥
 तज्जन्मा रामनामा प्रवरहरिबलन्यस्त भूभृतप्रबन्धै-
 रावधनन्वाहिनीनां प्रसभमधिपतीनुद्धतकूरसत्वान् ।
 पापाचारान्तरायप्रमथनरुचिरः संगतः कीर्त्तिदारै-
 र्ज्ञाताधर्मस्य तैस्तैस्समुचितचरितैः पूर्ववन्निर्वभासे ॥
 अनन्यसाधनाधीनप्रतापाक्रान्तदिङ्मुखः ।
 उपायैस्सम्पदां स्वामी यः सत्रीडमुपास्यत ॥
 अथिभिविनियुक्तानां सम्पदा जन्मकेवलं ।
 यस्याभूत्कृतिनः प्रीत्यै नात्मेच्छा विनियोगतः ॥
 जगद्विद्वृष्णुः स विशुद्धसत्त्वः प्रजापतित्वं विनियोक्तुकामः ।
 सुतं रहस्यव्रतमुप्रसन्नात्सूर्यादिवापन्महिराभिधानं^२ ॥

इसका अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार है—

“(The great Rama), the protector of virtue, after having forcibly bridged over the oceans (literally the lords of rivers), full of exceedingly cruel animals, by means of continuous chain of rocks placed by the best monkey force looked bright by having killed the evil-doers who served as obstacles and (as he thereby) got (literally, was joined by) his wife and renown. His (Nagabhata's) son Rama by name, also shone forth like his (homonymous) predecessor by similar worthy deeds, for he, the defender of religion, too, had the haughty and cruel commanders of armies forcibly bound down by (his subordinate) kings who had

१—बराह लेख, पंक्ति ४-५

२—ग्वा० लेख, श्लोक ११-१५

the best cavalry under their charge; and looked radiant by having destroyed the obstacles caused by the evil doers (and as he thus) attained the fame which was unto him even as a consort."

"That tord of prosperity, who had overpowered the points of compass by means of valour (alone), unsupported by the other expedients, was yet demurely waited upon by the other means."

"The production of the wealth of that 'successful one was merely a source of delight; it was at the disposal of the supplicants, but never a means to satisfy his own desire."

"A pure souI, averse from the world he obtained a son by name Mihira, by (the favour of) the sun, propitiated by mysterious rites, in order to dispose of the lordship over his subjects."

इस प्रकार ग्वालियर लेख में रामभद्र की राम (दाशरथी) से तुलना करते हुए बताया गया है कि जिस प्रकार रामचन्द्र ने समुद्र को बांध कर क्रूर शत्रुओं का बध कर जानकी जी को प्राप्त किया और (पापी राक्षसों का बध कर) धर्म की रक्षा की। उन्होंने किसी अन्य राजा की सेना का सहारा न लेकर (अनन्यसाधनाधीन) अपने ही प्रताप से (दक्षिण) दिशा को आक्रांत कर उपाय-नीति द्वारा स्वामी (प्रभु) बन गये। इसी प्रकार रामभद्र ने भी उपायों (साम, दाम, दण्ड, भेद) के द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसने भी क्रूर पापियों को मार कर धर्म की रक्षा की। विशुद्धसत्त्व वाले रामभद्र ने अनेक रहस्यों तथा व्रतों को करते हुए सूर्य भगवान को प्रसन्न कर राज्य-शासन चलाने के लिये मिहिर नामक पुत्र प्राप्त किया।

के० धर्म० मुंशी ने बताया कि ग्वालियर प्रशस्ति में रामभद्र की परम्परागत प्रशंसा की गयी है और यह सत्य है कि वह प्रतिहार साम्राज्य की स्थापना में सफल न हुआ। उसके शासनकाल में प्रतिहार शक्ति क्षीण हुई^१।

डा० त्रिपाठी ने बताया कि जैन ग्रन्थ प्रभावक चरित के आधार पर रामभद्र वि० स० ८६०=८३३ ई० में राजसिंहासन पर बैठा। भोज की

प्रारम्भिक तिथि ८३६ ई० थी । अतः रामभद्र का अल्पकालीन शासन था । परन्तु ४५० वर्षों के बाद लिखे गये जैनग्रंथ पर जिसमें बहुत ऊट पटांग बातें लिखी हुई हैं, विश्वस्त नहीं है । सम्भव है नागभट द्वितीय) कुछ पहले मरा हो । अतः रामभद्र लगभग ८२५ ई० में गद्दी पर बैठा ।^१

ग़वालियर प्रशस्ति का विवेचन करते हुए डा० त्रिपाठी कहते हैं कि उसके सामन्त राजाओं ने अपनी अश्वसेना द्वारा घमंडी और क्रूर सेना-नायकों को बन्दी बना लिया था । परन्तु यह निश्चित करना कठिन है कि ये शत्रु कौन थे । डा० आर० सी० मजुमदार के अनुसार ये शत्रु बंगाल के शासक पाल ही थे जिन्होंने इस समय उत्तरी भारत पर आक्रमण किये ।^२ डा० त्रिपाठी भी इस मत को मानते हैं, क्योंकि राष्ट्र कूट शासक अमोघ वर्ष प्रथम दक्षिण में फंसा था । डा० त्रिपाठी कहते हैं कि रामभद्र के काल में कोई आपत्ति अवश्य आयी ।...उसको दुष्ट पापाचारियों का बध करने वाला कहा गया है । वह अकेले कुछ न कर सका अतः उसे अपने सामन्तों से सहायता लेनी पड़ी ।...यह ठीक-ठीक नहीं मालुम है कि उसने किस प्रकार अपने राज्य की सुरक्षा की ।^३

डा० पुरी ने कहा कि 'वह दुष्चरित्र शासक था जिसने अपना जीवन और राज्य इसी चरित्र हीनता के कारण खोया । उसके अल्प शासन-काल में साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्त टूटने लगे और उसके शत्रुओं, विशेषकर, देवपाल को अपने राज्य का विस्तार करने का यह सुअवसर मिला । क्रूरों का प्राबल्य भी उसके दुश्चरित्र के कारण ही हुआ । उसकी दुर्बलता के कारण ही उसकी प्रजा और उसके सम्बन्धी भी उसके विरोधी बन गये, जैसा कि जैन आचार्य बताते हैं ।^४ परन्तु अभिलेखों के साक्ष्य पर बताते हैं । विश्वास करते हुये डा० के० यम० मुंशी ने सत्य ही कहा है—

“Ramabhadra was brave and virtuous, pure soul, opposed to worldliness, and a defender of faith.”

१—ग्लो० गु० पृ० ९३

२—हि० क०, पृ० २३६

३—वही, पृ० २३७

४—गु० प्र०, पृ० ४९

५—ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश, पृ० १२१

भोजराज

कान्यकुब्ज महादेशे राजा भोजेति विश्रुतः ॥

प्राचीन समय में कान्यकुब्ज नामक महादेश में भोज नामक एक प्रसिद्ध राजा हुआ। रामभद्र का सुपुत्र प्रसिद्ध सम्राट मिहिर भोज था जिसकी प्रशंसा स्कन्द पुराण, अभिलेखों और मुस्लिम लेखकों के विवरणों में की गयी है। उसने विजयों द्वारा विशाल साम्राज्य की स्थापना कर कान्यकुब्ज के महोदय की उत्तरोत्तर वृद्धि की। वास्तव में मिहिर भोज प्राचीन भारतीय इतिहास में एक महान् प्रभावशाली शासक था जिसके राज्यकाल में कान्यकुब्ज एक महान् देश के नाम से प्रसिद्ध हो गया। वहाँ अंधकार (अव्यवस्था) को मिटाने वाला सूर्य (मिहिर), और डूबती हुई पृथ्वी को बचाने वाला विष्णु (आदिवराह) था। उसके इतिहास को जानने के निम्नलिखित साधन हैं—

अभिलेख

भोज और उसके वंशजों के अभिलेखों से उसके इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

बराह ताम्रपत्र लेख (विक्रम सं० ८६३ = ८३६ ई०) की प्राप्ति बराह कानपुर प्रान्त (कानपुर-कालपी मार्ग पर कानपुर से २३ मील दूर अकबरपुर के ४ मील पूर्वस्थित) से हुई थी। यह लेख इस समय लखनऊ म्यूजियम में है। इस अभिलेख में कान्यकुब्ज भुक्ति (प्रदेश) में स्थित महोदय (कन्नौज) का उल्लेख है। यह भोज की सेना पर प्रकाश डालता है, जिसमें नावें, हाथी, घोड़े, रथ और पदाति (नौ हस्त्यश्व-रथपति सम्पन्न स्कन्धावारात्) सम्मिलित थे। इसमें महाराज श्री देवशक्ति से लेकर महाराज श्री भोज तक की वंशावली भी दी गयी है—

परम वैष्णवो महाराज श्री देव शक्तिदेव = श्री भूमिकादेवी

परम माहेश्वरो महाराज श्री वत्सराजदेव = श्री सुन्दरी देवी

परम भगवतीभक्तो महाराज श्री नागभटदेव = श्रीमतीसटादेवी

परमादित्यभक्तो महाराज श्री रामभद्र देव = श्रीमदम्मा देवी

परम भगवती भक्तो महाराज श्री भोजदेव

इसी अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि कालञ्जर मण्डल कान्यकुब्ज (भुक्ति = कमिशनरी) में सम्मिलित था। इस लेख में यह बताया गया है कि

जो दान परमेश्वर शर्ववर्म के समय में दिया गया था और जिसका अनुमोदन महाराज श्री नागभट्ट देव द्वारा भी किया गया था, वही दान महाराज श्री रामभद्र देव के राज्य काल में राज्य के एक अधिकारी (व्यवहारी) के दोष के कारण (व्यवहारिणो वैगुण्यात्) बन्द हो गया था। इसलिये पिता के पुण्य को बढ़ाने के लिये भोज ने शासकीय दोष को जानकर इसे फिर से चला कर ठीक कर दिया। विद्वानों—त्रिपाठी, पुरी आदि ने इसे भोज के पिता रामभद्र की दुर्बलता बताकर यह मत प्रतिपादित किया कि कालञ्जर मण्डल में प्रतिहारों के अधिकार का लोप हो गया था, जिसे भोज ने पुनः स्थापित किया। अभिलेख स्पष्ट कहता है कि व्यवहारी की भूल या प्रमाद के कारण यह अग्रहार ब्राह्मणों को दान में दिया गया था। इस क्षेत्र में न तो किसी राजशक्ति के अधिकार होने की बात ही उठती है, न अभी चन्देलों के उत्कर्ष का ही प्रश्न उठता है। चन्देलों द्वारा स्वतन्त्रता घोषित करने का कोई प्रमाण नहीं है। यह अभिलेख स्पष्ट कहता है कि कालञ्जर मण्डल (बुन्देल खण्ड) कान्यकुब्ज भुक्ति का एक भाग था। जैन साक्ष्य-वर्णनभट्टिचरित प्रभावक चरित-से भी सिद्ध होता है कि गोपगिरि (दुर्ग) = ग्वालियर पर आम (नागभट्ट द्वितीय) और भोज का अधिकार अक्षुण्ण था।

दौलतपुर (जोधपुर, प्रान्त, राजस्थान) ताम्रपत्र लेख

(वि० सं० ९०० = ८४३ ई०) में भी पुराने दान का नवीकरण करने का उल्लेख है। इस लेख में भी प्रतिहार वंशावली दी गई है।

देवगढ़ (झांसी प्रान्त, उत्तर प्रदेश) जैन स्तंभ लेख (वि० सं० ६१६ = ८६२ ई०) एक स्तंभ की स्थापना का उल्लेख करता है।

ग्वालियर के दो लेखों (वि० सं० ६३२ और ६३३) से गोपाद्रि (ग्वालियर) पर रामभद्र का अधिकार परिलक्षित होता है। उसके बाद भोज का भी अधिकार बना रहा।

आहार बुलन्दशहर प्रान्त और पिहोवा (प्राचीन पृथूदक, करनाल प्रान्त, हरयाना प्रदेश में कुरुक्षेत्र के निकट) लेख भी उसके राज्य पर प्रकाश डालते हैं।

परन्तु सबसे महत्वपूर्ण लेख भोज की सागरताल (ग्वालियर) प्रशस्ति है जिसमें उसके चरित्र, व्यक्तित्व और उपलब्धियों का वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त उसके देहली और भावनगर म्यूजियम लेख मिले हैं। उसके वंशजों और सामन्तों के लेखों से भी उसके राज्य पर प्रकाश पड़ता है। इन अभिलेखों की प्राप्ति ही भोज की महानता का प्रमाण है।

राजतरंगिणी व अरब लेखक मुलेमान के वर्णन से भी भोज के राज्य पर प्रकाश प्रकाश पड़ता है। परन्तु स्कन्द पुराण में उल्लिखित भोजवृत्तान्त की ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया।

स्कन्दपुराण का भोजवृत्तान्त

स्कन्द पुराण के वस्त्रापथ माहात्म्य के आधार पर डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने १६२६ ई० में यह बताया था कि कन्नौज के शासक भोज का सौराष्ट्र से सम्बन्ध था और उसने अपने पुत्र को सिंहासन सौंप कर राज्य त्याग दिया।^१

डा० रायचौधरी ने भी पूरी कहानी न पढ़ी और न बाद के शोध कर्त्ताओं—त्रिपाठी और पुरी—ने ही इस वृत्तान्त को पढ़ने का कष्ट किया। स्कन्दपुराण को बिना पढ़े ही उन्होंने भोज के राज्य-त्याग के मत का विवेचन कर इसे अमान्य ठहराया। स्वयं स्कन्दपुराण ही कहता है कि भोज ने राज्य-त्याग नहीं किया था। ग्रंथ को देखे बिना ही उसके विषय में मत बनाना शोधकों के प्रयत्न-लाघव का परिचायक है।

डा० त्रिपाठी कहते हैं—

“Much of the story is no doubt absolutely unworthy of credence.....”^२

डा० पुरी कहते हैं—“It is needless to go into the story.....”

“The story is incredible.....”^३

वस्त्रापथ माहात्म्य का अधिकांश भाग-अध्याय ६ से १६वें (अन्तिम) अध्याय-भोज और सारस्वत मुनि का संवाद भोज के दरबार में ही हुआ। सम्पूर्ण प्रभासखण्ड ही कान्यकुब्ज के दरबार में संकलित किया गया प्रतीत होता है। प्रभास प्राचीन और प्रसिद्ध तीर्थ था। परन्तु भोज की उपाधि ‘प्रभास’ ही प्रभास के माहात्म्य की साक्षी है। सारस्वत भोज-कालीन विद्वान था जिसने भोज को राज्य-त्याग करने से रोका और कहा कि घर में

१—स्टडीज इन इण्डियन एन्टीकिटीज़, पृ०, १५०—१५५

२—हि० क०, पृ० २४५

३—हि० गु० प्र०, पृ० ५८

भी देवता, जल, तिल, और कुश आदि हैं। बाहर जाने से अपने मन को हटाओ—

गृहेऽपि देवा हरविष्णुमुख्या जलानि दर्भा नृपते तिलाश्व ।

अनेकदेशांतरदर्शनार्थ मनो निवार्य नृपते त्ययेति ॥^१

जैसे ही राजा ने राज्य-त्याग का विचार किया,^१ मुनि सारस्वत ने राजा को यात्रा के लिये राज्य-भार छोड़ने से रोका (निवारयामास मुनिर्नरेन्द्रम्)^२। कारण स्पष्ट था जिसके लिये भोज को अपना भार नहीं छोड़ना था। मुस्लिम आक्रमण प्रबल थे और देशद्वार की रक्षा करना प्रतिहार भोज का मुख्य धर्म था। राजपूतों और तुरुष्कों (तुर्कों) के संघर्ष को देव-दानव युद्ध के नाम से वर्णन किया गया है। भोज को नारदीय-नीति का वर्णन करने हुए शत्रुओं के प्रति आक्रामक और उग्र नीति अपनाने का आदेश दिया गया है। कहा गया है कि शत्रुओं के प्रति मृदुता से काम न ले और उनको पूर्ण रूप से नष्ट कर डाले (हत्वा शत्रून् शेषयेत्)^३। मुस्लिम लेखकों और ग्वालियर प्रशस्ति से जानते हैं कि असुरों, तुरुष्कों और म्लेच्छों के प्रति भोज की नीति कितनी कठोर थी। इस प्रकार स्कन्दपुराण के वस्त्रापथ माहात्म्य से महाराज श्री भोज देव के व्यक्तित्व, गुणों, चरित्र और कार्य पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। साहित्यिक दृष्टि से भी कान्यकुब्ज, जो कभी जैनों के प्राबल्य से वेद-विमुख हो गया था, ब्राह्मण धर्म, संस्कृति और विद्या का महान् केन्द्र बन गया। यहीं नैमिषारण्य के ऋषियों का समवाय (समाज) हुआ था जिसमें पौराणिकी संहिता (प्रभास खंड) और दिव्यभाषायुक्त, वेद संमत, पंचसंधि-षडलंकार भूषित, रस-गुण-रंजित काव्य और वेदांत तथा भागवत (वैष्णव) दर्शन पर महत्वपूर्ण कार्य हुआ।

भोज का व्यक्तित्व और चरित्र

भोज ऐसे प्रभावशाली महान् शासक का व्यक्तित्व भी कितना महान् था—
लम्बी-लम्बी भुजाएँ (दीर्घबाहुः), बड़ी-बड़ी आँखें (विशालाक्षो), विद्वान् और प्रशस्तवचन तथा प्रियवक्ता (विद्वान्वाग्मी प्रियंवदः)^४ था। इससे ज्ञात होता है कि वह पराक्रमी (दीर्घ भुजाएँ), प्रज्ञावान् (विशालाक्ष) और गुणज्ञ विद्वान्

१—स्कन्द पुराण. ७. २. १०. १६

२, वही, ७. २. १०. १५

३. वही, ७. २. १०. १८

४. वही, ७. २. १७. ९३

५. वही, ७. २. ६. २१ (१)

तथा दक्ष व्यक्ति था जिसका शरीर सभी महापुरुषों के लक्षणों से सुशोभित था । वह बहु-आश्चर्य को भी देखने वाला था ।^१ उसकी ग्वालियर प्रशस्ति में भी उसके व्यक्तित्व और गुणों की प्रशंसा की गयी है । वह यशस्वी, शान्तात्मा तथा लोक-कल्याण में निपुण था । इसलिये राजलक्ष्मी ने उसका वरण किया था । परन्तु इतना होने पर भी उसमें मद (अहंकार) का दोष (राज-व्यसन) न था । गुणी (विद्वान्) लोगों के प्रति प्रेमाद्र था और उसकी वाणी सत्य और प्रिय थी ।^२ उसने कुमार (कार्तिकेय) के समान मातृ-शक्तियों की सहायता से (भोज परमभगवती भक्त था) घोर असुरों को अपने अस्त्रों से सबक सिखाया था कि यदि भारत पर क्रूर कुदृष्टि से आक्रमण कर अहित किया तो यही दुर्गति होगी । इसीलिये वह 'जगदहितविच्छेदनिपुणः' थे । भोज का यह एक अद्भुत (महान्) कर्म था —

कुमारैव विद्यानां वृन्देनाद्भुतकर्मणा ।

यः शशासासुरान्घोरान्स्त्रैणेनास्त्रैकवृत्तिना ॥^३

उस राजा के प्रभुत्व के लिये अक्षपटल पर ब्रह्मा ने ही सम्पूर्ण विश्व की सम्पदाओं को उसका मुह देख कर लिख दिया था ।^४ इस प्रकार स्कन्द पुराण में वर्णित गुणों का साम्य अभिलेखों से भी होता है । संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि पूर्व मध्यकालीन युग के उस आपत्ति काल में भोज ही ऐसा महान सम्राट था जिसने उत्तरी भारत में सौराष्ट्र से लेकर बिहार तक शान्ति और व्यवस्था स्थापित की थी । इससे सांस्कृतिक उन्नति भी हुई । स्मिथ की धारणा है—

Ramabhadra's son Mihira, usually known by his title Bhoja, enjoyed a long reign.....and beyond question was a

१. स्कन्द पु०, ७/२/६/२१

२. भोज का ग्वालियर शिला लेख, श्लोक १७ :

यशस्वी शान्तात्मा जगदहितविच्छेद निपुणः ।

परिष्वक्तो लक्ष्म्या न च मदकलंकेन कलितः ।

बभूव प्रेमाद्रो गुणिषु विषयः सूनृतगिराम् ।

३. वही, श्लोक, २२

४. वही, श्लोक, २३

very powerful monarch, whose dominions may be called an 'empire' without exaggeration."^१

भोज की उपाधियाँ

स्मिथ ने ठीक ही कहा है कि उसका नाम मिहिर (मिहिराभिधानं) था जिसने भोज की उपाधि ग्रहण की। उसके ग्वालियर लेख में बताया गया है कि अगस्त्य की भाँति ही बढ़े हुए विन्ध्य को (आक्रमण) द्वारा पार कर राजाओं से भोग (कर) को प्राप्त करने के कारण वह सम्राट (प्रभुः) भोज कहलाया।^२ वह आदिवराह (विष्णु का अवतार) था। ग्वालियर प्रशस्ति में ही उसे अति तेजस्वी—प्रज्वलित अग्नि की शिखा के समान कीर्तिबाला सूर्य से भी प्रखर किरण वाला (उद्दामतेजः प्रसरप्रसूता शिखेव कीर्तिर्द्युमणिं विजित्य)^३ कहा गया है। इसलिये मिहिर-भोज की प्रभास नामक उपाधि भी उपयुक्त ही थी। सूर्य का जो तेज पृथिवी पर प्रभास क्षेत्र में आकर गिरा वही प्रभास कहलाया।^४ अतः भोज सभी प्राणियों के कल्याण के लिये ही सूर्य रूप में (प्रभास बन कर) अवतरित हुआ था—

तत्र चार्कमयं रूपं कृत्वा देवो दिवाकरः ।

उत्पन्नः सर्वभूतानां हिताय धरणीतले ॥^५

वह सूर्य तेज से भासित (यस्मादकंतेजोभिभासितं) होने के कारण ही प्रभास कहलाया (तस्मात्प्रभासनामेति...प्रथितं)^६। इस प्रकार भोज के विविध-नाम उसकी आर्य कीर्ति के साक्षी हैं। वह धार्मिक (धर्म्यः)^७ और बलवान (बलवान्भोजराजो)^८ राजा था।

१. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३६३

२. ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक १६ :

उपरोधैकसंख्यविन्ध्यवृद्धेरगस्त्यतः ।

आक्रम्य भूभृतां भोक्ता यः प्रभुर्भोज इत्यभात् ।

३. वही, श्लोक २४ (१)

४. स्कन्दपुराण, ७/१/१३/१—६

५. वही, ७/१/१३/८

६. वही, ७/१/१३/२१

७. वही, ७/२६/२० (२)

८. वही, ७/२/६/२९ (२)

प्रजापति भोज

मिहिर-भोज का पिता रामभद्र न तो दुर्बल ही था और न दुश्चरित्र तथा व्यसनी ही था। उसे धर्म-रक्षक (त्राता धर्मस्य) और क्रूर पापाचारियों का नाश करने वाला कहा गया है, उसकी सेना में श्रेष्ठ अश्व (प्रवर हरिबल) थे; उसने बिना किसी की सहायता के अपने प्रताप से दिग्गज की थी (अनन्य साधनाधीन प्रतापाक्रान्तदिङ्मुखः) और उपाय-नीति में दक्ष था (उपायैस्सम्पदां स्वामी यः)। वह कुशल और धार्मिक सम्राट (विशुद्धसत्त्वः) एक ऐसा पुत्र चाहता था जिसे वह 'प्रजापति' के पद पर नियुक्त करना चाहता था (प्रजापतित्वं विनियोक्तुकामः सुतं)। उसे मिहिर भगवान (सूर्य) के प्रसाद से ऐसा ही पुत्र प्राप्त हो गया जो आगे चलकर मिहिर भोज कहलाया^१।

रामभद्र का राज्यकाल अल्प था। वह रण दक्ष और धर्म रक्षक था। उसे तुहष्कों और म्लेच्छों (जिनको भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में क्रूर-पापी कहा गया है) के साथ युद्ध करना पड़ा। संभवतः इस युद्ध में ही उसे वीर गति मिली (संगतं कीर्तिदारैस्त्राता धर्मस्य)। अतः जब भोज अपने पिता के बाद सिंहासन पर आया, उसके राज्य की स्थिति शोचनीय अवस्था में थी। परन्तु भोज ने 'प्रजापति' के कर्तव्य को निभाकर इस शब्द को सार्थक बना दिया। जो सम्पूर्ण प्रजा के कल्याण की कामना करता है, वही प्रजापति है (प्रजासु हितकाम्यया प्रजापतिः^२)। भोज ऐसा ही प्रजापति था, जिसे जनेश्वर भी कहा गया है। पीड़ित पृथिवी ने भी ऐसे त्राता का स्मरण किया जो आदिवराह के रूप में गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी (देखिये उदयगिरि में बराह मूर्ति के पास गंगा-यमुना) को बचाने के लिये अवतरित हुआ। प्रतिहार सभा का महान् विद्वान् राजशेखर भी महावराह^३-आदिवराह के रूप से इस महान् शासक का स्मरण करता है।

जैसा कि ऊपर सिद्ध किया गया है कि नागभट्ट द्वितीय और रामभद्र के समय में ही कान्यकुब्ज का उतार-चढ़ाव हो रहा था, जिसके लिये प्रतिहार शासकों को पालों और राष्ट्रकूटों के साथ संघर्ष करना पड़ता था। प्रतिहारों

१—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक १५

२—काव्यमीमांसा, अ० १, पृ० १/५

३—वही, अ० १२, पृ० ६६/१९-२०; अ० १५, पृ० ८१५३-१४/

की एक विशेष जिम्मेदारी अरब आक्रमण कारियों से मध्यदेश को बचाना भी था । प्रतिहारों की दूसरी शाखा भी अपनी शक्ति बढ़ा रही थी । इन परिस्थितियों में कान्यकुब्ज साम्राज्य की स्थापना करना सरल कार्य न था । परन्तु ८३७ ई० के आस-पास जबसे भोज गद्दी पर बैठा उसका यही प्रयत्न रहा । उसने प्रजा और पराक्रम की सहायता से अपने लक्ष्य की प्राप्ति की । उसके अभिलेख इस बात के साक्षी हैं (जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है) कि भोज पिहोआ (कर्नाल प्रान्त, हरियाना) से कालञ्जर तक प्रदेश का स्वामी था । विजयों द्वारा उसने इसे बढ़ाया और संगठित किया । ग्वालियर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने बड़े-बड़े शत्रुवंशों को अपनी क्रोधाग्नि से जला दिया (यस्य वैरिवृहद्वंशान्दहतः कोपवह्निना)^१ । न तो इन वंशों का नाम ही दिया गया है और न विजित देशों का ही उल्लेख किया गया है ।

परन्तु इस वंश के इतिहास से ही ज्ञात होता है कि इसके पूर्व में पाल और दक्षिण में राष्ट्रकूट ही मुख्यतः इस वंश के प्रबल शत्रु थे जिनके विरुद्ध भोज के पूर्वजों को अपने प्रभुत्व के लिये संघर्ष करना पड़ा ।

मिहिर भोज और पाल वंश

कलचुरि नरेश कर्ण के बनारस ताम्रपत्र लेख (क० सं० ७९३= १०४२ ई०) से ज्ञात होता है कि कलचुरि वंश के कोकल ने भोज को अभय दान दिया था (भोजे राजनि.....अभयदः) ।^२ डा० मीराशी के अनुसार यह भोज प्रथम ही था ।^३ युवराजदेव द्वितीय के बिल्हरी शिलालेख से ज्ञात होता है कि कोकलदेव ने संपूर्ण पृथिवी को जीतकर दो कीर्तिस्तम्भों की स्थापना की थी—एक तो दक्षिण में कृष्णराज (द्वितीय, राष्ट्रकूट) और दूसरा उत्तर में भोजदेव को (कोबेर्याञ्च श्रीनिधिर्भोजदेवः)^४ । इस प्रकार डा० मीराशी के अनुसार जिस भोज को कोकल प्रथम ने सहायता दी भोज प्रथम ही था न कि भोज द्वितीय—

१—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक २१

२—कार्षस इं० ई०, जिल्द ४, अभिलेख ४८, पृ० २४१, पंक्ति ८-९,

३—वही, पृ० २३८

४—वही, अभिलेख ४५, पृ० २१०, पंक्ति ८

“The Bhoja whom he rendered help must consequently be identified with Bhoja I.”^१

डा० मीराशी आगे कहते हैं कि अपने राज्य काल के प्रारम्भ में जब उसे देवपाल के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ा था और जब देवपाल के आक्रमणों से रामभद्र के राज्य से कई प्रान्त निकल गये थे, उसी समय भोज प्रथम को कलचुरि नरेश ने सहायता पहुँचायी थी। मुंगेर ताम्रपत्र लेखों से ज्ञात होता है कि देवपाल ने अपने हाथियों की सहायता से विन्ध्य तक और घुड़सवारों की सहायता से काम्बोज देश को रौंद डाला। बादल स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि देवपाल ने गुर्जरो के स्वामी का दर्प चूर-चूर कर दिया (खर्वीकृतद्रविडगुर्जरनाथदर्पम्)।^२ परन्तु आगे चलकर देवपाल के राज्यकाल के अन्तिम समय में भोज ने अपनी शक्ति सुधार ली।^३ इस प्रकार स्पष्ट है कि कोकल प्रथम ने प्रथम भोज की सहायता पहुँचाकर उसके राज्य की नींव पक्की की।^४

सोढदेव के कहला ताम्रपत्र लेख (वि० सं० ११३५ = १०७७ ई०) से ज्ञात होता है कि कलचुरि शासक शंकरगण प्रथम के पुत्र गुणाम्भोधिदेव (या गुणसागर प्रथम) ने भोज देव से कुछ भूमि प्राप्त की थी (भोजदेवाप्त भूमिः) और उसने अपने बल से गौड लक्ष्मी का अपहरण किया था।^५ इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि “प्रथम गुणसागर ने गौड राजा को पराजित करने में गुर्जर प्रतिहार नरेश प्रथम भोज की सहायता पहुँचाई थी और इस कारण से भोज ने उसे कुछ प्रदेश दिये थे।”^६

इन उल्लेखों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भोज को अपने शासन काल के प्रारम्भिक दिनों में पाल सम्राट देवपाल के विरुद्ध विजय-अभियान में सफलता न मिली। सम्भवतः भोज पराजित हुआ था, जैसा बादल स्तम्भ लेख में बताया गया है कि गुर्जर-नाथ का दर्प चूर-चूर हो गया। ऊपर, बनारस

१—कार्पस इ० इ०, जि० ४, भूमिका, पृ० ७४,

२—एपीग्रे० इंडिका, जिल्द २, पृ० १६३

३—कार्पस इ० इ०, जिल्द ४, पृ० ७४, ७५

४—मीराशी, कलचुरि नरेश और उनका काल, पृ० १५

५—कार्पस इ० इ०, जिल्द ४, अभिलेख ४८, पृ० २३८, २४१

६—कलचुरि नरेश और उनका काल, पृ० ३४

ताम्रपत्र लेखों में भी बताया गया है कि कोकल प्रथम ने भोज को भय से बचाया था (अभयदः) । परन्तु आगे चलकर देवपाल की मृत्यु के बाद भोज ने कलचुरि सामन्त-नरेश की सहायता से गौड लक्ष्मी (पालों से प्रभुता) का अपहरण कर लिया । भोज के ग्वालियर लेख में भी बताया गया है कि भोज ने शत्रु-सेना रूपी समुद्र का मन्थन कर धर्मपाल के पुत्र (देवपाल) के यश रूपी लक्ष्मी पर अधिकार कर अपने प्रताप की प्रतिष्ठा की ।^१ इस लेख से भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि भोज ने देवपाल की यश-श्री पर अपना अधिकार जमाया । भोज को इस विजय में कलचुरि-सामन्त से सहायता प्राप्त हुई थी ।

चाटसू अभिलेख (जयपुर प्रान्त) से भी ज्ञात होता है कि भोज के सामन्तों, गुहिल और हर्षराज, ने भी गौड (पाल) सम्राट की पराजय में प्रतिहार शासक की सहायता की थी ।

भोज के सामन्त (कलचुरि, गुहिल और चाहमान)

इन उल्लेखों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कलचुरि और गुहिल नरेश भी भोज के अधीनस्थ सामन्त थे । इन सामन्तों ने भोज को उत्तरी भारत का सार्वभौम सम्राट बनने में बहुमूल्य सहायता दी । जिन देशों और राजाओं ने—भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति—ने धर्मपाल और देवपाल के प्रभुत्व को माना था, वे अब भोज के प्रताप से प्रभावित होकर उसके सामन्त बन गये थे । महेन्द्रपाल द्वितीय के परताबगढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि चाहमान नरेश भी भोज के सामन्त थे ।^२

भोज और राष्ट्रकूट

इन सामन्तों की स्थिति से ज्ञात होता है कि भोज की शक्ति पश्चिम और दक्षिण में राष्ट्रकूटों की शक्ति से टकराई और वंशानुगत वैर ने इन दोनों वंशों को संघर्ष में घसीट लिया । परन्तु जब मिहिर भोज अपनी शक्ति

१—ग्वालियर प्रशति, श्लोक १८ :

यस्याभूत्कुलभूमिभूत्प्रमथनव्यस्तान्य सैन्याम्बुधे—
व्यूढां च स्फुटितारिलाजनिवहान्हुत्वा प्रतापानले ।
गुप्ता वृद्धगुणैरनन्यगतिभिः शान्तैस्सुधोद्भासिभि—
धर्मपत्ययशः प्रभूतिरपरा यश लक्ष्मीः पुनर्भूज्या ॥

२—हि० क०, पृ० २४१

को काठियावाड़ तक फैला रहा था, अमोघवर्ष ने उसके विरुद्ध उंगली तक न उठाई। यदि उसमें अपने पिता की योग्यता होती, तो वह गुर्जर प्रतिहारों के प्रसार को रोकता।^१ जब गोविन्द तृतीय की मृत्यु के बाद अमोघवर्ष सिंहासन पर बैठा, वह अल्पवयस्क था; और बाल-नृप को जानकर चारों ओर विद्रोह होने लगे तथा कुछ समय के लिये अमोघवर्ष को सिंहासन छोड़कर भाग जाना पड़ा। ऐसी दुरवस्था से भोज के साम्राज्यवादी प्रसार में राष्ट्रकूटों की ओर से कोई विशेष बाधा न पहुँची। परन्तु बेगुम्रा ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है राष्ट्रकूटों के गुजरात में सामन्त ध्रुव द्वितीय ने गुर्जरों की शक्ति-सम्पन्न सेना को पराजित किया।^२ यह भोज की बढ़ती हुई शक्ति पर एक प्रबल आघात था। डा० अल्टेकर का मत है कि भोज के आक्रमण के भय से गुजरात के राष्ट्रकूट शासक ध्रुव द्वितीय और अमोघवर्ष में मैत्री हो गयी और संभवतः अमोघवर्ष ने ध्रुव द्वितीय को भोज के विरुद्ध सहायता भी दी।^३

अमोघवर्ष के पुत्र एवं उत्तराधिकारी कृष्ण द्वितीय के राज्य काल में भी यह संघर्ष चलता रहा। यह युद्ध क्षेत्र मालवा था। भावनगर म्यूजियम के प्रतिहार लेख से ज्ञात होता है कि भोज ने कृष्णराज (कृष्ण द्वितीय) पर आक्रमण किया था। गुजरात के राष्ट्रकूट कृष्ण के बेगुम्रा लेख (८८८ ई०) से ज्ञात होता है कि सामन्त नृप ने शत्रु को उज्जयिनी में पराजित किया था। इन्द्र तृतीय के बेगुम्रा लेख से भी इस युद्ध की भीषणता का पता चलता है। डा० अल्टेकर का विचार है कि इन युद्धों से किसी भी दल को कुछ लाभ न हुआ। अलमसूदी से ज्ञात होता है कि गुर्जर प्रतिहार शासक अपनी सीमा पर राष्ट्रकूटों को उत्तर में बढ़ने से रोकने के लिये सुदृढ़ सेना रखते थे। अतः सीमा पर युद्ध होना आवश्यक थी और इन युद्धों में विजय कभी एक दल को होती थी तो कभी दूसरे दल को विजय मिलती थी। कृष्ण (द्वितीय) इतना सशक्त न था कि वह ध्रुव प्रथम या गोविन्द तृतीय की भाँति वीरता से आक्रमण करता और भोज की भी आयु इतनी हो चुकी थी कि वह दक्षिण में कोई

१—अल्टेकर, राष्ट्रकूटाज, पृ० ७७

२—वही, पृ० ८५, नोट ४१,

गुर्जरबलमतिबलवत् समुद्यतम् बृंहितं च कुल्येन ।

एकाकिनैव विहितं पराङ्मुखं लीलया येन ॥

३—वही, पृ० ८५

बड़ा आक्रमण करता ।^१ परन्तु ग्वालियर लेख में स्पष्ट बताया गया है कि विन्ध्य को पार कर भोज ने राजाओं को अपना करद सामन्त बनाया था । स्कन्दपुराण से ज्ञात होता है कि उसके पास विशाल और सुदृढ़ सेना थी तथा सौराष्ट्र में उसका अधिकार था ।

उत्तरापथ

डा० त्रिपाठी कहते हैं कि अपने दीर्घ राज्य काल में भोज ने उत्तर पश्चिम की ओर भी साम्राज्य वादिनी दृष्टि डाली और निश्चित रूप से उसने सतलज नदी के पूर्वी भागों को अपने राज्य में मिला लिया जैसा कि पिहोआ (प्राचीन पृथूदक, कर्नाल प्रान्त, जो कुरुक्षेत्र के निकट स्थित है) अभिलेख (८८२ ई०) से सिद्ध होता है । इस लेख से ज्ञात होता है कि पृथूदक (पिहोआ, जो एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान भी था) के मेले में घोड़ों का क्रय-विक्रय होता था । अश्व-वाणिज्य का यह अभिलेख भोज देव के वर्धमान राज्य का उल्लेख करता है ।

कल्हण की राजतरंगिणी से भी भोज के 'अधिराजत्व' (सार्वभौम सम्राट-पद) और उत्तरी-पश्चिमी प्रान्तों (पंजाब में स्थित, मद्र देश जो कभी धर्मपाल के आधीन था, इस समय भोज के आधीन हो गया था) पर अधिकार सिद्ध होता है—

हृतं भोजधिराजेन स साम्राज्यमदापयत् ।

प्रतीहारतया भृत्यीभूते थक्किकयकान्वये ॥^२

अर्थात् पंजाब का जो भाग अधिराज (सम्राट) भोज के अधिकार में चला गया था, उसे काश्मीर के शासक (शंकरवर्मन्) ने थक्किय वंश के राजा को पुनः वापस करा दिया । इससे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि भोज को अधिराज मान लिया गया था । राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि काश्मीर शासक शंकरवर्मन् गुर्जर राजा पर विजय चाहता था (गुर्जरजय व्यग्रः)^३ और उसने युद्ध में गुर्जर शासक अलखान को पराजित किया । अलखान ने काश्मीर शासक को टक्क देश देकर सन्धि कर ली ।^४ इसके बाद के ही श्लोक

१—अल्टेकर, राष्ट्रकूटाज पृ० ६७

२—राजतरंगिणी, ५/१५१

३—वही, ५/१४४

४—वही, ५/१४६-१५०

(५/१५१) में भोज का उल्लेख है। अतः यही सिद्ध होता है, जैसा के० यम० मुंशी मानते हैं, कि शंकरवर्मन् ने पंजाब के उस भाग को जीत लिया था। परन्तु यह विजय भोज की मृत्यु के बाद ही हुई। जब तक भोज जीवित रहा, वह 'अधिराज' ही बना रहा।^१

भोज और तुरुष्क

भोज के सिंहासन पर आने के एक वर्ष के अन्दर ही सिन्ध के गवर्नर ईमान इब्न मूसा ने अरब शक्ति को बढ़ाना चाहा। परन्तु उसे सफलता न मिली। अरबों को कच्छ से बाहर खदेड़ दिया गया। यह मिहिर भोज की शक्ति और नीति का ही परिणाम था, जैसा कि तत्कालीन अरब यात्री सुलेमान के विचारों से सिद्ध होता है। वह कहता है कि जुज्र (या गुर्जर) के राजा (जिसकी पहचान कन्नौज के महान् शासक से की गयी है) के पास विशाल सेना थी। जितनी अच्छी अश्वारोही सेना भोज के पास थी, उतनी और वैसी सेना अन्य किसी भारतीय शासक के पास न थी। अरबों के प्रति उसका व्यवहार मित्रतापूर्ण न था। वह मुसलमानों का घोर शत्रु था—

“The King of Juzra (Jurz) maintains numerous forces and no other Indian prince has so fine a cavalry. He is unfriendly to the Arabs……Among the princes of India there is no greater foe of the Muhammadan faith than he.”^२

भोज के खालियर अभिलेख में भी यही बात कही गयी है—

कुमारैव विद्यानां वृन्देनाद्भुत कर्मणा।

यः शशासासुरान्घोरान्स्त्रैणैनास्त्रैकवृत्तिना ॥^३

“Like Kumara (Karttikeya) with his host of Matrikas who performed wonderful deeds, he subdued the terrible Asuras with the help of a band of woman that lived upon arms”

अर्थात् कुमार कार्तिकेय की भांति (सप्त) मातृकाओं की सहायता से उसने बहुत अद्भुत कार्य किये। उसने अस्त्रधारिणी स्त्रियों की सहायता से

१—ग्लोरी डैट वाज गुर्जर देश, पृ० ११२

२—Elliot & Dowson, History of India, Vol I, p. 4

३—खालियर प्रशस्ति, श्लोक २२

घोर (उग्र) असुरों का दमन किया। ये असुर वे ही थे जिन्हें इसी अभिलेख में म्लेच्छ (श्लोक ४), तुरुष्क (श्लोक ११) और पापी (पापाचारान्, श्लोक १२) कहा गया है। इस प्रकार म्लेच्छ-तुरुष्क ही घोर (क्रूर सत्व) थे जिनका दमन भोज ने किया था।

स्कन्द पुराण में दैत्यों (=घोर असुरों) को 'मुक्तकच्छशिखा' (कांच वाली धोती और चोटी से रहित अर्थात् तुरुष्क=तुर्क) वाला कहा गया है। महेन्द्र (महेन्द्रपाल ?) ने इनका मध्यदेश में संहार किया था (मुक्तकच्छ-शिखानां च चक्रे स कदनक्रियः)।^१ इस प्रकार ग्वालियर लेख के असुर तत्कालीन मुस्लिम आक्रमणकारी ही थे।

महेन्द्रपाल के ऊना ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि कच्छ और काठियावाड़ गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य में सम्मिलित थे।^२ स्कन्द पुराण से भी सिद्ध होता है कि सौराष्ट्र भोज के राज्य में सम्मिलित था। इसी देश में रैवतक पर्वत और वस्त्रापथ क्षेत्र स्थित थे।^३

स्कन्दपुराण और भोजवृत्तान्त (राज्यत्याग)

डा० रायचौधरी ने वस्त्रापथ माहात्म्य में उल्लिखित भोज के 'ऐतिहासिक उल्लेख' का वर्णन करते हुए कहते हैं कि भोज ने संभवतः कुछ ही समय के लिये राज्य त्याग दिया था, जैसा कि उनके विचार से ज्ञात होता है। भोज ने अपने गुरु (पुरोहित) सारस्वत से कहा कि राज्य, पुत्रों और सेना को छोड़ कर तथा पुत्र को सिंहासन पर बिठलाकर मैं तीर्थयात्रा पर चला जाऊँ।^४ परन्तु भोज के गुरु ने उनको रोका (निवारयामास मुनिनरेन्द्रम्) और कहा कि "घर में भी देवता, जल, तिल और कुश हैं। हे राजन् ! अनेक देशों को देखने की इच्छा से अपने मन को रोको।^५ बहुत बहस के बाद भोज ने अपने संकल्प को छोड़ दिया। यहां भोज को यह बताया गया कि राजा के लिये

१—स्कन्द पुराण, १.१.१४.१४

२—हि० गु० प्र०, पृ० ५८

३—स्कन्द पुराण, ७.२.१०.११

४—वही, ७.२.१०.१५:

त्यक्त्वा राज्यं प्रियान्पुत्रान्पत्यश्वरथकुंजरान् ।

पुत्रं राज्ये प्रतिष्ठाप्य गन्तव्यं निश्चितं मया ॥

५—वही, ७.२.१०.१८-१९

राज्य-रक्षा, प्रजा पालन तथा शत्रु-संहार करना ही परम धर्म था। इस लिये भोज को राज्य छोड़ना उचित नहीं था और न उसने राज्य छोड़ा ही। सारस्वत के इस आदेश और उपदेश के लिये भोज ने उनकी पूजा की। विधान के अनुसार सम्पूर्ण परिवार के साथ उसने वस्त्रापथ की यात्रा भी की। अपने कर्तव्य का पालन करते हुए वह 'कृतार्थ' हो गया तथा अन्त में (राजधर्म का पालन करते हुए) उसने परं पद प्राप्त किया—

ततो तथोक्त विधिना स भोजो नृपसत्तमः ।

वस्त्रापथक्षेत्रयात्रां परिवारजनैः सह ॥

कृत्वा कृतार्थतां प्राप्तो जगामन्ते परं पदम् ॥^१

मूल्यांकन

प्रारम्भ में ही भोज के व्यक्तित्व और चरित्र का मूल्यांकन किया गया है। उसकी कृतियाँ ही उसके कृतित्व की साक्षी हैं। उसका अति महत्वपूर्ण कार्य आर्यावर्त (उत्तरी भारत) में बिहार प्रदेश से लेकर प्रभास (पश्चिमी समुद्र तट) तथा पूर्वी पंजाब तक सार्वभौम शक्ति की स्थापना करना इसे मुस्लिम आक्रमणों से बचाना था। मुस्लिम लेखकों ने भी भोज की प्रतिभा, प्रभाव और प्रचण्डता का उल्लेख किया है। उसके ग्वालियर लेख में ही उसके कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है। असुरों का दमन करने के लिये वह कुमार (कार्तिकेय) ही था। वह शक्ति (देवी) का परम भक्त था। इन शंश्रधारिणी देवियों ने ही उसकी सहायता की थी।

वह प्रजापति था। राजशेखर ने बताया है कि प्रजा का हित करने वाला ही प्रजापति होता है (प्रजासु हितकाम्यया प्रजापतिः)। उसका राजत्व मद (अहंकार) के व्यसन से दूषित नहीं था (परिष्वक्तो लक्ष्म्या न मदकलंकेन कलितः)। गुणवान् लोगों पर प्रेम तथा उदारता का व्यवहार करता था (बभूव प्रेमादीं गुणिषु)^२। रक्षा करने से प्रसन्न तपस्वियों (प्रीतैः पालनया तपोधनकुलैः), स्नेह से वशीभूत गुरुओं (स्नेहाद्गुरुणां गणैः), नीतिनिपुणता से वशीभूत शत्रुओं (नीतिनिपुणैर्वन्दैररीणां) और सम्पूर्ण विश्व ही अपनी जीविका-पूर्ति (विश्वेनापि स्वजीवैषिणा) से ही वह दीर्घायु था।^३ श्रुति (वेद)

१—स्कन्द पुराण, ७.२.१६.३४

२—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक १७

३—वही, श्लोक १८

के अनुशासन से (श्रुतेरनुशासनाद्) यह सत्य है कि जब तक यह संसार है मनुष्य अपने किये कर्म का फल भोगता है, न कि दूसरा चाहें वह सैकड़ों राजाओं का प्रभु ही क्यों न हो । सद्बुद्धि वाले सज्जन लोगों की पुण्यकृतियों (सतां सुकृतैः) से इस राजा (भोज) की ऐश्वर्य-वृद्धि ही हुई । उसने कलि को पराजित किया था (अधरितकलेः) । इसीलिये वह कीर्ति का स्वामी था (कीर्त्तभर्तुः) ।^१ उसी पुण्यात्मा सम्राट ने अपनी रानियों के यश और पुण्य की वृद्धि के लिये अन्तःपुर में ही विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया था ।^२ अन्त में ग्वालियर लेख का लेखक, कवि बालादित्य, कहता है कि जब तक आकाश, गंगा, तप-प्रभाव और सत्य रहता है, तब तक संसार को भोज की आर्य-कीर्ति पवित्र करती रही (पुनातु जगतीमियमार्य कीर्तिः)^३ । राजा भोज देव की सभा विद्वान् लोगों से भी सुशोभित थी^४ और उन विद्वानों में बहुश्रुत राजशेखर भी विद्यमान था ।

इस प्रकार उसके अभिलेख से सिद्ध होता है कि भोज कितना महान् शासक था । इसीलिये राजतरंगिणी में उसे सत्य ही अधिराज कहा गया है । जो सभी राजाओं में अधिक तेजस्वी हो वही अधिराज कहलाता है (आधिव्येन राजते) । इससे भोज का अन्य राजाओं पर अधिपत्य सिद्ध होता है ।^५

स्कन्दपुराण में भोज का वर्णन सिद्ध करता है कि वह बलवान्, रणदक्ष, अश्वारोही और सशक्त सम्राट था जो अपनी सेना का स्वयं नेतृत्व करता था, यद्यपि सेनापति और बलाध्यक्ष थे । जिस सेना को सौराष्ट्र भेजा गया था, उसमें सेनाध्यक्ष के नेतृत्व में १० हजार घुड़सवार (अश्वानां दशसाहस्रं) और बहुत से वागुर तथा पैदल थे ।^६ इस सेना के साथ ही भोज भी गया था, वह हाथी पर सवार न होकर घोड़े पर सवार था (अश्ववाधिरूढो बलावान्भोजराजो) ।^७ इस प्रकार स्पष्ट है कि भोजराज की सैनिक शक्ति में अश्व-सेना

१—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक २०

२—वही, श्लोक २५

३—वही, श्लोक, २६

४—वही, श्लोक, २७

५—देखिये, वेदिक इन्डेक्स, जिल्द १, पृ० १९-२०; सरकार, इंडियन एपिग्रे-फिकल ग्लोसरी, पृ० ७

६—स्कन्द पु०, ७/२/६/२६

७—वही, ७/२/६/२९ (२)

की विशिष्टता थी, जैसा कि मुस्लिम लेखकों ने बताया है। इस सैनिक शक्ति और नीतिनिपुणता का ही परिणाम था कि भोज ने अपने युग को कलियुग के दोषों को मिटाकर पुण्ययुग (सतयुग) में बदल दिया था। यह सत्य ही है; क्योंकि राजा ही अपने युग का निर्माता होता है (राजा कालस्य कारण)। धार्मिक राजा भोज ने अपनी प्रजा पर शासन (राज) धर्म के अनुसार किया—

कान्यकुब्जे महाक्षेत्रे राजा भोजेति विश्रुतः।

पुरा पुण्ययुगे धर्म्यः प्रजा धर्मेण शासति ॥^१

कान्यकुब्ज महाक्षेत्र (अत्यन्त पवित्र भूखंड) था, जो गंगा के किनारे पुण्य जनपदों और ऋषियों तथा विद्वान विप्रों से सेवित प्रदेश था।^२ भोज ने अपनी विजय और व्यवस्था से इसे महादेश बना दिया—

कान्यकुब्जे महादेशे राजा भोजेति विश्रुतः।^३

इक देश के महोदय (उन्नति) में ही भोज की भी विश्रुति (कीर्ति) हो गयी।

भोज के सिक्के

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद मौखरियों और पुण्यभूति वंश के शासकों ने भी गुप्त परम्पराओं का अनुसरण करते हुए सिक्कों को चलाया। परन्तु हर्ष के बाद ज्यों-ज्यों आगे के इतिहास को देखते हैं, सिक्कों की प्राप्ति कम संख्या में होती है। अरब आक्रमणों (ईसा की सातवीं शताब्दी) से लेकर पृथ्वीराज-पराभव तक यहाँ की अतुल सम्पत्ति लुटती रही और वह देश के बाहर जाती रही। इसका उत्तरी भारत के आर्थिक जीवन पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा।

१—स्कन्द पुराण, ७/२/६/२०

२—वही, ७/२/१/७-८

३—वही, ७/२/६/१४१ (२)

डॉ० पुरी (हि० गु० प्र०, पृ० ५८) की आँख मूंद कर नकल करते हुए डॉ० विमलचन्द्र पांडे ने भी लिखा है “.....राजा भोजेति विष्णुतः।” एक अध्यापक ने भोज पढ़ाते समय इसकी व्याख्या भी कर दी कि “भोज विष्णु के समान ही था, क्योंकि आदिवराह (विष्णु) उसकी उपाधि थी।” यह सूखंता ही है। पाठ ‘विश्रुतः’ (ख्यातः=प्रसिद्ध है) है न कि ‘विष्णुतः’।

भोज के 'आदिवराह प्रकार' के चाँदी के सिक्के (चाँदी में कुछ अन्य धातु के मिलावट से बने हुए) प्राप्त होते हैं। इन सिक्कों के अग्र भाग में वराह को चक्र, गदा, पद्म और शंख धारण किये हुए पाते हैं। पृष्ठ भाग में तुलसी वृन्दावन और षटकोण चिन्ह अंकित पाते हैं। यहीं श्रीमद आदिवराह का लेख भी लिखा है। उसके ताँबे के भी सिक्के मिलते हैं।^१

मिहिर भोज का साम्राज्य विस्तार

भोज राज्य के विस्तार पर विचार करते हुए डॉ० के० यम० मुंशी ने बताया है कि गुर्जर देश की भौगोलिक सीमाएँ इस साम्राज्य के चरमोन्नति के समय कुछ निश्चयता के साथ आँकी जा सकती हैं। ह्वेनसांग के समय से जोधपुर और जयपुर प्रान्तों के कुछ भाग इन सम्राटों के मूल-आवास क्षेत्र, गुर्जरता में सम्मिलित थे। मालव, मेदपाट, प्रताबगढ़, डूंगरपुर, बंसवाड़ा, धोलपुर और शाकम्भरी, जहाँ गुहिलौत, परमार, चाप, चाहमान, और चालुक्य शासन करते थे, भी गुर्जरता या गुर्जर देश के साथ भाषा और सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर परस्पर सम्बन्धित थे। इन शासकों का भी प्रतिहार शासकों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। ये राजा प्रतिहार सम्राट के सामन्त भी थे।

दो अन्य प्रदेश, जेजाभूक्ति (आधुनिक बूंदेलखंड) और कान्यकुब्ज भुक्ति (जिसमें कालिंजर विषय और वाराणसी विषय सम्मिलित थे) भी प्रतिहार साम्राज्य के अंग थे।^२ भोज के राज्य में सौराष्ट्र भी सम्मिलित था। इस प्रकार कान्यकुब्ज एक महादेश (विशाल साम्राज्य) बन गया जिसमें ३६ लाख गांव सम्मिलित थे। यह उत्तरी भारत का प्रमुख राज्य बन गया। अस्तु डा० त्रिपाठी के अनुसार भोज का साम्राज्य बहुत बढ़ा हुआ था:—

"Thus under Bhoja the kingdom of Kanauj grew to enormous dimensions, and it may be roughly defined as limited by the Satlej in the north-west; the foot of the Himalayas in the north; the western boundaries of the Pala dominions in the east; Bundelkhand and the Vatsa territories

१—ग्लोरी देट बाज़ गुर्जर देश, भाग १, पृ० २१५-२१६

२—बही, पृ० ११७

in the south and south-east, possibly the lower course of the Narmada and Saurashtra on the south-west, and including the major portion of Rajputana on the west.”^१

इससे स्पष्ट है कि सम्पूर्ण मध्यदेश भोज के साम्राज्य में सम्मिलित था । मुस्लिम लेखक अबूजैद भी बताता है कि गुर्जर साम्राज्य का अंग कनौज एक विशाल देश था—

Kanauj, a large country forming the empire of Jurz.”^२

महेन्द्रपाल (प्रथम)

मिहिर-भोज के कई रानियाँ (देवियाँ) थीं ।^३ स्कन्द पुराण से ज्ञात होता है कि सौराष्ट्र से प्राप्त (मृगानना) स्त्री के साथ भोज ने विवाह कर लिया था । और वह ही प्रसिद्ध देवी (रानी) थी^४, जिसे भोजराज ने अपनी पट्टमहिषी बना लिया (कृता सा पट्टमहिषी भोजराजेन धीमता) ।^५ इसी पुराण से ही यह भी ज्ञात होता है कि उसके कई पुत्र (प्रियान् पुत्रान्) थे जिनमें वह किसी विशेष पुत्र को राज्य सौंपना चाहता था—

त्यक्त्वा राज्यं प्रियान्पुत्रान्पत्यश्वरथ कुंजरान् ।^६

पुत्रं राज्ये प्रतिष्ठाप्य गन्तव्यं निश्चितं मया ॥

परन्तु यहां किसी भी पुत्र का नामोल्लेख नहीं किया गया है । जिस पुत्र को वह राज्य सौंपना चाहता था, निश्चयतः वह महेन्द्रपाल ही रहा होगा ; क्योंकि उसकी शिक्षा के लिये राजशेखर को गुरु रूप में नियुक्त करना सिद्ध करता है कि महेन्द्रपाल को ही राज्यधुर ढोने के लिये सुयोग्य समझ कर राज्य

१—हि० क०, पृ० २४६

२—ईलियट ऐण्ड डाउसन, हिस्ट्री आफ इण्डिया, भांडा १, पृ० १०, ३५८

३—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक २५ :

राज्ञा तेन स्वदेवीनां यशः पुण्याभिवृद्धये ।

४—स्कन्द पु०, ७.२.७.३२

परिणीता तु सा तेन भोजराजेन सुन्दरी ।

मृगीमुखी तु विख्याता देवी सा भुवनेश्वरी ॥

५—वही, ७.२.७.३३

६—वही, ७.२.१०.१५

देना चाहता था। जिस समय भोज ने राज्य-त्याग का विचार किया था, उस समय महेन्द्रपाल अवश्य ही यौवराज्य के योग्य वीर (यौवराज्याभिषेकाहो वीरो) था।^१

भोज के दौलतपुर ताम्रपत्र लेख में नागभट्ट नामक युवराज दूत (श्रीमान् नागभट्ट नामा युवराजोत्तर दूतकः)^२ का उल्लेख मिलता है। परन्तु आगे चलकर उस युवराज का नाम नहीं सुनाई पड़ता है। इसलिये डा० पुरी का विचार है कि वह या तो भोज के जीवन काल में ही मर गया या भोज की मृत्यु के बाद एक दो साल तक उसने शासन किया।^३ महेन्द्रपाल ही भोज की मृत्यु के बाद, लगभग ८६० ई० के आस पास, सिंहासन पर बैठा।

उसकी मां का नाम चन्द्रभट्टारिका देवी था। उसके कई नाम थे—महेन्द्रपाल, महीन्द्रपाल, महेन्द्रायुध, महिषपाल आदि। उसके गुरु राजशेखर ने उसको निर्भयराज, या निर्भयनरेन्द्र का नाम दिया है। उसके राज्य काल के कई अभिलेख हैं जिनके प्राप्ति स्थान उसके राज्य की विशालता के प्रमाण हैं।^४

अभिलेख

१. ऊना (काठियावाड़) ताम्रपत्र लेख (वलभी संवत् ५७४) में भूमिदान का उल्लेख है। इस का सम्बन्ध सूर्य के मन्दिर तरुणादित्य से है। इसे महा सामन्त बलवर्मन् ने दान दिया था।

२. दिघवा—दुबौली (सारन प्रान्त, बिहार प्रदेश) ताम्रपत्र लेख (विक्रम सं० ६५५)

३. सियदोनी (ललितपुर प्रान्त, उत्तर प्रदेश) अभिलेख जिसमें कई प्रतिहार शासकों का उल्लेख है। इसकी पंक्ति ४० में अमरावती (इन्द्रपुरी) रूपी महोदय का शासक मनुष्येन्द्र (महोदयामरावत्यां मनुष्येन्द्रेण धीमता) महेन्द्रपाल ही है।

१—बालभारत, पृ० १०, १/४१

२—एपीग्रेफिया इंडिका, जिल्द ५, पृ० २१०

३—हि० गु० प्र०, पृ० ६६

४—वही, पृ० ६८-६९

४. आहार (बुलन्दशहर प्रान्त, अनूपशहर से ७ मील दूर उत्तर, प्रदेश) शिला लेख !

५. बिहार शरीफ (पटना प्रान्त, बिहार प्रदेश) में महेंद्रपाल के चौथे राज्यवर्ष का दान-परक लेखा है ।

६. बिहार शरीफ से ही उसके चौथे राज्य वर्ष का लेख बुद्ध मूर्ति पर खुदा हुआ प्राप्त हुआ, जो इस समय नालन्दा म्यूजियम में है ।

७. रामगया (गया) और गुनरिया (गया प्रान्त) से, दोनों लेख, बिहार के गया प्रान्त में मिले हैं ।

८. पहाड़पुर (राजशाही प्रान्त, पूर्वी पाकिस्तान) महेंद्र पाल के पांचवें राज्यवर्ष का लेख है । इस लेख से महेंद्रपाल के पूर्व में उत्तरी बंगाल तक राज्य विस्तार का परिचय मिलता है ।

१०. पिहोआ प्रशस्ति ।

इन अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों से ज्ञात होता है कि महेंद्रपाल का राज्य उत्तर-पश्चिम में पूर्वी पंजाब से लेकर उत्तरी बंगाल तक और पश्चिम में सौराष्ट्र तक विस्तृत था । इस प्रकार उसका अधिकार प्रायः सम्पूर्ण आर्यावर्त पर स्थापित था । राजशेखर सत्य ही महेंद्रपाल और उसके पुत्र को आर्यावर्त महाराजाधिराज कहते हैं (बालभारत, पृ० २) । इस प्रकार महेंद्रपाल के शासन काल में प्रतिहार साम्राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँचा ।

प्रतिहार-पाल

महेंद्रपाल ने अपनी विजय प्रज्ञा (नीतिनिपुणता) और पराक्रम से भोज की ही विस्तारवादी दृढ़ नीति का अनुसरण किया । मगध (बिहार प्रदेश) में महेंद्रपाल के कई (छः) अभिलेख प्राप्त हुए हैं । इससे उस क्षेत्र में महेंद्रपाल का अधिकार सिद्ध होता है । जैसा कि ऊपर बताया गया है कि राजशाही अभिलेख से महेंद्रपाल का आधिपत्य उत्तरी बंगाल तक सिद्ध होता है । इससे यही ज्ञात होता है कि प्रतिहार सम्राट ने पालों को इस क्षेत्र—बिहार और उत्तरी बंगाल—के अधिकार से वंचित कर दिया था ।

पाल शासक नारायण पाल के विष्णुपद (गुप्ता) के सातवें वर्ष के, और बिहार शिला लेख (वर्ष ९) तथा भागलपुर ताम्रपत्र लेख (वर्ष १७) जो मुद्गगिरि (मुँगेर) से लिखवाया गया था सिद्ध होता है कि उसके राज्यकाल के पूर्वार्द्ध में मगध पर उसका अधिकार था । परन्तु उसके राज्यकाल के

उत्तरार्द्ध में उसके अभिलेखों की प्राप्ति नहीं हुई, इससे यही सिद्ध होता है कि प्रतिहारों का मगध पर अधिकार हो गया था ।

डा० त्रिपाठी के अनुसार इस क्षेत्र में भोज का कोई अभिलेख नहीं मिला है । इससे यही सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र की विजय महेन्द्रपाल ने ही की थी । महेन्द्रपाल के भी लेख उसके प्रारम्भिक राज्य-वर्षों के प्राप्त होने से ज्ञात होता है कि सिंहासन पर बैठने के बाद ही उसने अपना ध्यान पूर्व की ओर पाल राज्य पर दिया और विजय प्राप्त की ।^१ परन्तु इस क्षेत्र की विजय स्वयं भोज ने ही की थी (जैसा ऊपर बताया गया है) और महेन्द्रपाल ने उसे सुरक्षित बनाये रखा । इसीलिये मगध में उसका दूसरे राज्यवर्ष का लेख मिला है ।

पश्चिम भारत

ऊना (काठियावाड़) से प्राप्त दो लेखों से सिद्ध होता है कि महेन्द्रपाल का आधिपत्य सौराष्ट्र पर बना रहा । परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेन्द्रायुध (महेन्द्रपाल) के चालुक्य राजा बलवर्मन और उसके पुत्र अवन्तिर्मन् द्वितीय सामन्त थे । बलवर्मन् ने इस क्षेत्र को हूणों से मुक्त किया था । अतः इस क्षेत्र में कुछ उपद्रव भी हुए ।^१

उत्तरापथ

परन्तु उत्तर-पश्चिम से काश्मीर के शासक शंकरवर्मन ने गुर्जर गर्वनर अलखान को पराजित कर विवश कर दिया कि वह टक्क प्रदेश को जिसे अधिराज भोज ने जीता था उसे वापस कर दे । फिर भी उत्तर पश्चिम में पूर्वी पंजाब के कर्नाल प्रान्त तक उसका अधिकार था जैसा कि पिहोआ प्रशस्ति से सिद्ध होता है ।

उत्तर में हिमालय की तलहटी तक उसका अधिकार था जैसा कि दिघ्वा-दुबौली लेख से सिद्ध होता है जिसमें नेपाल की तराई में स्थित श्रावस्ती मण्डल में सम्मिलित ग्राम का दानोल्लेख है ।

१—त्रिपाठी, हि० क०, पृ० २५०

२—पुरी, हि० गु० प्र०, पृ० ६६

३—त्रिपाठी, हि० क०, पृ० २५०

दक्षिण में सियदोनि (बुन्देल खंड) तक प्रदेश उसके राज्य में सम्मिलित था ।

मूल्यांकन

सुसंस्कृत सम्राट भोज का सुपुत्र महेन्द्रपाल भी एक शिष्ट और सुशिक्षित सम्राट था जिसका गुरु राजशेखर था । राजशेखर का विचार है कि कुल को बढ़ाने वाली शुद्ध बुद्धि का विकास पवित्र संस्कारों से ही होता है—

संस्कार शौचेन परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः कुलकामधेनुः ।^१

महेन्द्रपाल ऐसे विचारों वाले गुरु का शिष्य था ; इसलिये वह पराक्रम, सौजन्यता, सत्यता, और त्याग से युक्त गुणवान् राजा था—

आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारांनिधि—

स्त्यागी सत्यसुधा प्रवाह शशभृत कान्तः कवीनां मतः ॥

वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं साक्षादसौ ।

देवो यस्य महेन्द्रपाल नृपतिः शिष्यो रघुरामणीः ॥^२

वह रघुवंशी राजा था । राजशेखर ने सत्य ही कहा है कि नृपति का राजत्व उसके गुणों पर ही आधारित था—

राजते नृपति गुणैः ।^३

वह मध्यदेश का सम्राट था (मध्यदेश नरेन्द्र एष)^४ । उसकी तिथि ६०७-०८ ई० है अतः उसका राज्य-काल, संभवतः, ६१० ई० के आस-पास समाप्त हुआ ।

महेन्द्रपाल प्रथम के उत्तराधिकारी और प्रतिहार-पराभव

महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद ही प्रतिहार वंश में धुन लग गया जो इसे खोखला करता हुआ पतन की ओर ले गया । राजवंशों के क्षय-रोग (राजरोग) ने भी इसे दबा लिया । इस रोग का प्रमुख लक्षण वंश के राजपुत्रों में प्रेम

१—बालभारत, पृ० ३, १/९

२—वही, पृ० ३, १, ११

३—वही, पृ० ११ १, ४३

४—बाल रामायण, अंक ३, पृ० ७५

और भक्ति न होकर बैर और संघर्ष का होना था । इस दोष को दूर करने के लिये ही संभवतः राजशेखर ने अपने शिष्यों—महेन्द्रपाल, महीपाल तथा अन्य राजपुत्रों—को शिक्षा देने के लिये ही रामायण और महाभारत की कथा पर आधारित नाटकों, बालरामायण और बालभारत को, लिखा तथा उनका अभिनय भी कराया । बाल भारत या प्रचण्डपाण्डव^१ का मूल उद्देश्य था कि पाँच पांडव भाई (परस्पर प्रेम, सौहार्द और सहयोग के कारण) सौ भाइयों (कौरवों, जिनमें प्रेम की कमी थी) से प्रचण्ड सशक्त थे ।^२ राजशेखर स्पष्ट कहते हैं कि बैर (यथा कौरव-पाण्डव बैर) कुल को नाश कर देता है (कुलान्त-करं बैरं) ।^३ महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में बैर था जिससे उनमें युद्ध हुआ और इस घरेलू युद्ध से प्रणत सामन्तों ने भी अपना सिर उठाया और वे इस उत्तराधिकार युद्ध में भाग लेने लगे । सामन्तों का स्वतन्त्र होकर वंश की घरेलू राजनीति में भाग लेना दूसरा रोग था । मुसलमानों के आक्रमण नागभट्ट प्रथम के समय से बराबर हो रहे थे । सशक्त प्रतिहार शासकों ने उन्हें पीछे खदेड़ कर उनकी शक्ति कुंठित कर दी थी । परन्तु दुर्बल शासकों से वंश-शक्ति क्षीण होने लगी और इस क्षीण-युग की समाप्ति इस वंश के अन्तिम राजा राज्यपाल से ही हो गयी । वह महमूद गजनवी के आक्रमणों का सामना न कर भाग गया । ऐसे भगोड़े क्षत्रियों (वृषलों, क्षुद्र क्षत्रियों) को जीने का अधिकार ही न था और मरने के बाद भी वे नरक-अधिकारी थे । क्षत्रिय का युद्ध से भागना महा पाप था—

यत्त्वया कुर्वता राज्यं पापं वै समुपाजितम् ।

क्षात्रधर्मं परित्यज्य पलायनपरो मृतः ॥^४

जो क्षत्रिय अपने युद्ध-धर्म से विमुख (त्यक्त्वा धर्मं निजं) होकर भाग जाता है और भागता हुआ शत्रु के सामने झुकता है (तवास्मिन्वादी दुष्टात्मा)

१—बाल भारत, पृ० २ :

इदं बालभारतं यस्य हि प्रचण्डपाण्डवमिति नामान्तरम्,

२—वही, पृ० २ :

पंच भ्रातरो वयं, पंचापिनामसमर्थास्तदभिनयने किं पुनरस्माकं शतं पितृव्यपुत्राः ।

३—बाल भारत, पृ० ३

४—स्कन्द पु०, ७/२/७/८-६

और मारा जाता है तो उसकी गति नहीं है (मृतस्यैवं गतिनास्ति नरके स विपच्यते) ।^३ मिहिरभोज ने अपने पूर्व जन्मों में ऐसा पाप किया था । इन विचारों से तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचय मिलता है जिनसे प्रभावित होकर चन्देल राजा ने पापी प्रतिहार राजा का बध कर दिया । अस्तु प्रतिहार-पराभव और पतन में उन गुणों और धर्मों का त्याग ही सहायक था जिन गुणों के कारण वे इतिहास में प्रतिहार (प्रतिहरणविधे यो प्रतिहार आसीत्) प्रसिद्ध हुए थे । डा० पुरी ने सत्य ही कहा है—

“The Gurjara Pratihara history after Mahendrapala is a record of disputed succession, a number of kings, some assuming different names, internal troubles, and the beginning of the decline. The first half of the tenth century is characterised by attempts to preserve the empire intact, though the Rashtrakuta invasion from the south had partially eclipsed the Gurjara glory. In fact Mahipala had to seek shelter elsewhere till his supporter—the Chandella king—Harshadeva helped him in getting back his throne.....the last half of this century really represents the decline of the Gurjara. Pratiharas, and the vast empire built by Bhoja and his son Mahendrapala was considerably reduced in size.”^४

महेन्द्रपाल के दो रानियाँ थीं । एक का नाम देहनागा देवी और दूसरी का नाम महादेवी या महीदेवी था । देहनागादेवी के पुत्र का नाम भोज (द्वितीय) था और वह ही महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा । महीदेवी या (महादेवी) के पुत्र का नाम महीपाल था । संभवतः महीपाल के तीन अन्य नाम थे—क्षितिपाल, विनायकपाल और हेरम्बपाल जिसको कई अभिलेखों में उल्लिखित पाते हैं ।

३—वही, ७/२/६/८७-८८

४—हि० गु० प्र०, पृ० ७४

रानी देहनागा देवी = महेन्द्रपाल = महीदेवी (महादेवी)

भोज द्वितीय

विनायकपाल

६३१ ई० (एशियाटिक सोसाइटी (लेख)

महीपाल (असनी लेख) ६१४ ई०

= क्षितिपाल ६४८-४९ ई०

(सियदोनि अभिलेख)

देवपाल

भोज द्वितीय

कुछ विद्वान विनायकपाल, हेरम्बपाल और क्षितिपाल को महीपाल के ही नामान्तर नहीं मानते हैं। परन्तु फिर भी वे विवाद ग्रस्त प्रश्नों का हल ढूँढ़ने में असमर्थ हैं। महेन्द्रपाल के दो पुत्रों—भोज द्वितीय और महीपाल—में संघर्ष अवश्य हुआ और उसमें भोज सफल होकर सिंहासन पर बैठा। परन्तु शीघ्र ही महीपाल चन्देल सामन्त हर्ष की सहायता से भोज द्वितीय को हटाकर गद्दी पर आ बैठा। ऊपर कहा जा चुका है कि कलचुरि सामन्त ने सहायता भोज प्रथम को दी थी न कि भोज द्वितीय को।

महीपाल (प्रथम)

ध्यान देने की बात है कि महेन्द्रपाल का गुरु राजशेखर जो महीपाल का भी गुरु था, कान्यकुब्ज के दरबार में ही यह सब देख रहा था। संभव है वह भोज द्वितीय का भी गुरु था। परन्तु भोज के चरित्र से सन्तुष्ट न था। उसने महीपाल के चरित्र और कार्यों की प्रशंसा की है; परन्तु भोज के विषय में पूर्ण रूप से मौन है। राजशेखर इस समय काफी वृद्ध था और वह केवल अपनी कला और प्रतिभा से इन राजकुमारों को शिक्षा दे रहा था। महीपाल में अवश्य ही राजगुण थे। इसीलिये राजशेखर ने उसकी प्रशंसा भी की है। राजशेखर प्रतिहारों और चन्देलों के मेल की ओर संकेत कर इस मैत्री की साराहना करते हैं—

हरचूड़ामणिरिन्दुस्त्रिजगदीपश्च दिनकरो देवः ।

मासान्त-संगताविह लोकस्य हिताय वर्तते ॥^१

यहाँ चन्द्र (शिव-शीश-शोभित) चन्देलों का परिचायक है और सूर्य (रघुवंश) प्रतिहारों का परिचायक है। दोनों का मेल ही लोक हितकारी था। राजशेखर ने विनायकपाल की प्रशंसा विनायक (गणेश) रूप में की है—

विनायको यः शिवयोरपत्यमर्धं पुमानर्धंभिश्च देवः ।^१

शिव-पार्वती का पुत्र विनायक मनुष्य है और आधा देवता है। राजशेखर ने हेरम्ब के विक्रमकर्म का भी उल्लेख किया है।^२ इसीलिये हमारा विचार है कि विनायकपाल और हेरम्बपाल महीपाल (=क्षितिपाल) के ही पर्याय थे। इससे भी महीपाल की बहुमुखी प्रतिभा और प्रभाव का आभास मिलता है। वह आर्यावर्त का महाराजाधिराज था—

रघुवंशमुत्तामणिना आर्यायर्तं महाराजाधिराजेन ।

श्रीनिर्भयनरेन्द्रनन्दनेनाधिकृताः सभासदः ॥^३

वही मध्यदेश नरेन्द्र (मञ्जदेस णरिन्द) भी था।^४ उसने भी विजय कर दिशाओं में कीर्तिस्तम्भ स्थापित किये।^५

राष्ट्रकूट-संघर्ष

कृष्ण द्वितीय के बाद उसका पौत्र इन्द्र तृतीय शासक हुआ। कृष्ण द्वितीय की अन्तिम तिथि ६१२ ई० है। दो वर्ष के बाद ९१४ ई० के अन्त में उसकी मृत्यु हो गयी। ६१२ ई० में इन्द्र तृतीय शासक हुआ। इस समय प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद महीपाल प्रथम के सौतेले बड़े भाई भोज द्वितीय ने राज्य पर अधिकार किया था। चापवंशीय सामन्त धरणीवराह के हड्डल (काठियावाड़) अभिलेख ज्ञात है कि ६१४ ई० में महीपाल प्रतिहार शासक था।

खम्भात (कैम्बे) ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि इन्द्र तृतीय ने कालपी (=कालप्रिय, उत्तर प्रदेश) में यमुना को पार कर महोदय पर आक्रमण किया।

१—बाल रामायण, पृ० ५, १/२०

२—वही, २/४०, ४२

३—वही, पृ० २

४—वही, पृ० ७५

५—वही, ३/६०

इसे ध्वस्त कर उसने कुशस्थल बना दिया ।^१ इन्द्र तृतीय के सेनानायक नरसिंह के पीछा किये जाने पर महीपाल प्रथम भाग गया ।^२ संभवतः इसी समय चन्देल सामन्त हर्ष ने महीपाल को पुनः सिंहासन पर बिठलाया ।

इन्द्र तृतीय भी थोड़े ही समय बाद मर गया । महीपाल प्रथम ने भी कर्णाट पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की जैसा राजशेखर बताते हैं ।

विजय

राजशेखर ने बाल भारत में महीपाल (प्रथम) की विजयों का उल्लेख करते हुए लिखा है—

नमित मुरल मौलिः पाकलो मेकलानां
रणकलित कलिगः केलितट केरलेन्दोः
अजनिजित कुलूतः कुन्तलानां कुठारो
हृहृत रमठ श्री श्री महीपाल देवः ॥^३

इस प्रकार उसने मुरल, मेकल, कुलूत, कुन्तल, कलिग, केरल, कुलूत, कुन्तल और रमठ देश पर विजय पायी । इनमें मुरल, केरल और कुन्तल दक्षिणापथ के देश हैं ।^४

केरल—आज भी दक्षिण का प्रसिद्ध प्रदेश है ।^५

मुरल—यह हैदराबाद प्रान्त का उत्तरी भाग था ।^६

१—यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रियप्रांगणम् ।

तीर्णा यत्तुरगैरगाध यमुना मिन्धु प्रतिस्पर्धिनी ॥

येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मीलितम् ।

नाम्नाद्यापि जनैः कुशस्थलमिति ख्यातिपरां नीयते ॥

यहाँ कालप्रिय का अर्थ डा० त्रिपाठी ने उज्जैन लिया है । यह गलत है । कालप्रिय कालपी ही है जो यमुना तट पर बसा है । उज्जैन में यमुना नहीं है इसका ध्यान नहीं रखा और न उज्जैन कनौज के रास्ते में ही है । डा० त्रिपाठी की ही नकल करते हुए विमल चन्द्र पांडे भी उज्जैन ही लेते हैं ।

२—अल्टेकर, राष्ट्रकूटाज, पृ० १०१-१०२

३—बाल भारत, पृ० २, १/७

४—काव्यमीमांसा, १३/२५-२६

५—प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० ६९

६—वही, पृ० ७०

कुन्तल—कर्पूर मंजरी में विदर्भ नगर (बरार) को कुन्तल में स्थित बताया गया है। इस समय यहां 'बल्हरा' (बल्लभ राज) या राष्ट्रकूट राजा राज्य करते थे।^१

मेकल—यह चेदि राज्य (बघेल खंड) था जहाँ कलचुरि शासक राज्य करते थे। राजशेखर कहते हैं—

शिशुपालोमहीपालो मेकलानांकुलोद्भवः^२

कॉलिंग—प्रसिद्ध उड़ीसा देश का भाग है।^३

कुलूत—कांगड़ा प्रान्त है।^४

रमठ—पंजाब का एक प्रान्त।

पंजाब प्रदेश पर भोज का अधिकार था। परन्तु महेन्द्रपाल के राज्यकाल में काश्मीर के राजा ने इसे जीतकर ठक्किय वंश के राजा को वापस दिला दिया था। अतः महीपाल ने भी, ऐसा प्रतीत होता है, कि कुलूत और रमठ प्रदेशों को जीता। इसी प्रकार इन्द्र तृतीय की मृत्यु के बाद दुर्बल राष्ट्रकूट वंश को देखकर उसने कुन्तल की भी विजय की। परन्तु ऐसा भी प्रतीत होता है कि राजशेखर ने अपने नाटक में अपने नायक की दिग्विजय दिखाने के लिये 'अनुप्रास' युक्त देशों के नाम चुन कर लिख दिये यथा—मुरल मेकल (पहली पंक्ति), कॉलिंग केरल (दूसरी पंक्ति) और कुलूत कुन्तल (तीसरी लाइन)। जब तक अन्य साक्ष्य इन विजयों का समर्थन नहीं करते हैं तब तक इन पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता।

क्षेमीश्वर के चण्डकौशिकम् नामक नाटक के आधार पर भी उसकी कर्णाट विजय सिद्ध होती है।^५ ऊपर कहा गया है कि महीपाल ने कुन्तल विजय की थी। अतः उसकी कर्णाट विजय में संदेह नहीं है।

१—प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० ६२-६४

२—बाल भारत, पृ० १५, १/६४

३—प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० ८८

४—वही, पृ० ९३

५—हि० गु० प्र०, पृ० ८४ :

यः संश्रित्य प्रकृतिगहनमयं चाणक्य नीति ।

जित्वा नन्दान् कुसुमनगरं चन्द्रगुप्तो जिगाय ।।

कर्नाटत्वं ध्रुवपुरगतानघ तानेव हन्तुं ।

दोर्दपाड्यः स पुनरभवच्छ्रीमहीपालदेवः ॥

अतः यह सिद्ध होता है कि प्रारम्भ के कुछ उपद्रवों के अतिरिक्त महीपाल प्रथम का राज्य सशक्त और समृद्ध बना रहा और महीपाल प्रथम अपने पिता तथा पितामह, महेन्द्रपाल व भोज, की नीति का ही अनुसरण करता रहा। पश्चिम में काठियावाड़ तक उसका अधिकार अक्षुण्ण बना रहा। पूर्वी पंजाब पर अधिकार था। पालों के उत्कर्ष से पूर्व में उसके साम्राज्य से बिहार का कुछ भाग निकल गया, जैसा कि नारायणपाल के ५४वें राज्यवर्ष का अभिलेख बिहार में मिलने से ज्ञात होता है। राजशेखर ने भी पूर्व की ओर बिहार-बंगाल के किसी जनपद का अपने बाल भारत में उल्लेख नहीं किया है।

महीपाल के उत्तराधिकारी

महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उसके भाइयों में गड़बड़ी और विभिन्न नामों—क्षितिपाल, महीपाल, विनायकपाल, हेरम्बपाल और भोज तथा उनके सम्बन्धों में भी अस्पष्टता है। हमने क्षितिपाल, महीपाल, विनायकपाल तथा हेरम्बपाल को एक ही व्यक्ति के विभिन्न नाम माना है। परन्तु कुछ लोग ऐसा नहीं मानते हैं।

विनायकपाल ने ९४२ ई० तक शासन किया और उसके बाद उसका पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय (९४५-४६ ई०) राजा हुआ। आगे के १५ वर्षों में निम्नलिखित राजाओं के उल्लेख मिलते हैं—

१—देवपाल (९४८-४९ ई०) वह क्षितिपाल का पुत्र था।

२—विनायकपाल द्वितीय (९५३-५४ ई०)

३—महीपाल द्वितीय (९५५ ई०)

४—विजयपाल (९६० ई०), उसे क्षितिपाल का उत्तराधिकारी कहा गया है।^१

इन राजाओं के परस्पर सम्बन्धों में इतनी अस्पष्टता है कि जितने विद्वान हैं, उतने ही मत हैं। इससे इतना स्पष्ट है कि प्रतिहार वंश उन्नति के शिखर पर पहुँच कर नीचे उतर रहा था। शक्ति क्षीण हो चुकी थी। विपत्तियाँ, सामन्त-विरोध और बाह्य आक्रमण प्रबल थे। इन भीषण प्रवाहों को रोकने के लिए प्रतिहार शासकों में न तो नागभट, और भोज की तरह क्षात्रधर्म परायणता ही थी और न परस्पर भ्रातृ-भक्ति ही। शरीर दुर्बल होने पर रोग बढ़ते हैं और उन रोगों का सही इलाज न हो तो वह घातक क्षय रोग हो जाता है। राजशेखर ने रोगों का निदान किया। उसने रामायण और महाभारत के

नाटकों से कान्ता-सम्मित वाणी में उपदेश दिये । परन्तु उनमें कुलान्तकारी वैर का अन्त नहीं हुआ । इन रोगों के साथ साथ स्वयंवर-पद्धति ने भी राजवंश के पतन में सहायता दी जैसा कि बालरामायण और बालभारत से सिद्ध होता है । राज्य के स्थिर होने के लिये राजा में ३६ गुणों का उपदेश भोज को दिया गया था ।^१ बाद के राजाओं में इन गुणों का अभाव ही इस वंश के पतन में सहायक सिद्ध हुआ ।

परताबगढ़ (दक्षिण-पूर्व राजस्थान) में चाहमानों ने महेन्द्रपाल द्वितीय को अपना अधिराज माना (९४५-४६ ई०) । परन्तु ८५४ ई० में ही चन्देलों ने गुर्जर-प्रतिहारों को पराजित कर कालञ्जर पर अधिकार कर लिया । इस प्रकार सामन्तों ने भी अपनी शक्ति बढ़ा ली थी । जो भी सम्राटों के नाम उपाधियों के साथ भी मिलते हैं उनमें अब 'परमेश्वर' का स्वरूप, शक्ति और गुण न थे । वे अब नाम मात्र के महाराजाधिराज परमेश्वर थे जो एक धक्के में धराशायी हो सकते थे ।

राष्ट्रकूटों के भी उत्तरी अभियान होते रहे । चन्देल शासक धंग कान्य-कुब्ज के शासक की प्रभुता को मिटाकर स्वतन्त्र हो गया । ग्वालियर में भी कच्छपघातों (कछवाहे राजपूतों) का झोर बढ़ा । शांकभरी के चाहमानों ने भी अपनी शक्ति बढ़ा कर स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की । प्रतिहारों की रही सही प्रतिष्ठा भी महमूद गजनवी के आक्रमणों से नष्ट हो गयी, जब राज्यपाल अपनी प्रजा और राज्य को अरक्षित छोड़ कर भाग गया । चन्देल शासक ने उस नीच क्षत्रीय का बध कर वा दिया । त्रिलोचन पाल इस वंश का अन्तिम राजा (१०२७ ई०) था ।

अध्याय ६

पालवंश

“The age of the Palas is not only important in the political history of India but also a remarkable age in cultural history of the country.”
—R. C. Majumdar

गुप्त साम्राज्य में बंगाल का अधिकांश भाग सम्मिलित था। परन्तु गुप्त साम्राज्य के बाद वहाँ अराजकता फैल गयी। जिस समय हर्षवर्धन अपना साम्राज्य बना रहा था उसी समय शशांक भी वाराणसी से लेकर बंग तक सम्राट था। उसे गौडाधिप कहा गया है। उसकी मृत्यु के बाद पुनः वहाँ अराजकता फैल गयी और यशोवर्मन् तथा ललितादित्य मुक्तापीड ने अपनी-अपनी दिग्विजयों में बंगाल को रौंद डाला। अतः वहाँ की अरक्षित जनता ऊबी हुई थी। मात्स्य न्याय^१ से पीड़ित जनता ने गोपाल नामक एक वीर पुरुष का वरण किया।^२ इससे वहाँ की जन-चेतना का परिचय मिलता है कि मात्स्य न्याय को समाप्त करने के लिये ही जनता ने लक्ष्मी (राजलक्ष्मी) का हाथ गोपाल को सौंप दिया।

तारानाथ के अनुसार गोपाल का जन्म पुंड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) में क्षत्राणी के उदर से हुआ था। लड़कपन में यह चंडी का उपासक था। स्वप्न में उसे देवी का आदेश मिला कि वह खसपर्ण के बिहार में जाये। वहाँ राज्य के लिये प्रार्थना करते हुए उसे दैवी प्रेरणा हुई कि वह पूर्व की ओर जाय। उस समय भेंगल का राज्य शासक-हीन था। कई राजा चुने गये थे परन्तु वे सभी एक नागस्त्री द्वारा मार डाले गए थे। गोपाल ने उस स्त्री को मार डाला और जनता ने उसे अपना राजा चुन लिया।^३ इस प्रकार बौद्ध तारानाथ के विवरण

१—जहाँ बलवान दुर्बलों को पीड़ित करते हैं उसे मात्स्यन्याय कहते हैं; यथा पानी में बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है।

२—धर्मपाल का खालिमपुर ताम्रपत्र लेख, श्लोक ४ :

मात्स्यन्यायमपोहितुं प्रकृतिभिर्लक्ष्म्याः करं ग्राहितः ।

श्री गोपाल इति क्षितीश शिरसां चूडामणिस्तत्सुतः ॥

३—I. H. Q., VII, pp. 530-31; Ibid., XVI, pp. 219ff; D. M., p. 324

से भी सिद्ध होता है कि गोपाल को जनता ने चुनकर राजा बनाया । रामचरित के अनुसार वरेन्द्र (उत्तरी बंगाल) पालों की जनक-भू ही थी । उसके पिता का नाम वाप्यट और पितामह का नाम दयितविष्णु था । उसका पिता एक सेनानायक था । गोपाल का चुनाव ही सिद्ध करता है कि वह एक पराक्रमी, कुशल योद्धा और जन-प्रिय शासक था जिसने अपने व्यक्तित्व और चरित्र से जनता को प्रभावित कर लिया था । इस वंश के अधिकांश राजाओं के नामान्त में 'पाल' शब्द मिलने से ही इस वंश को पाल वंश कहा गया है ।

इस वंश के संस्थापक गोपाल की उपलब्धियों के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है । परन्तु उसने अपने पुत्र और उत्तराधिकारी धर्मपाल को एक संगठित राज्य सौंपा । उसका राज्य मगध पर जमा था और इसकी राजधानी ओदन्तपुरी थी । वह बौद्ध धर्मावलम्बी था जिसने नालन्दा में एक बिहार की स्थापना की । संभवतः उसने ७५० ई० से ७७० ई० तक राज्य किया ।

धर्मपाल

येभूवन् पृथु रामराघव नलप्राया धरित्री भुज—

स्तानेकत्र दिदक्षुणेव निचितान् सर्वान् समस्वेधसा ।

ध्वस्ताशेष नरेन्द्रमानमहिमा श्री धर्मपालः कलौ ॥

गोपाल के बाद उसका पुत्र धर्मपाल शासक हुआ जिसने उत्तरी भारत में एक विशाल संगठित साम्राज्य की स्थापना की । उसके समसामयिक प्रतिहार और राष्ट्रकूट शासक भी उत्तरी भारत के प्रभुत्व के लिये प्रयत्नशील थे । अतः स्पष्ट है कि उत्तरी भारत में त्रिकोणात्मक संघर्ष का वातावरण तैयार था ।

पाल-प्रतिहार-राष्ट्रकूट

वत्सराज और धर्मपाल

जिस समय धर्मपाल राजसिंहासन पर आया प्रतिहार शासक वत्सराज अवन्ति^१ (पश्चिमी मालवा) में शासन कर रहा था । उसने अपने विजय-अभियान में धर्मपाल को पराजित कर उससे दो श्वेत राजछत्र छीन लिए । इससे सिद्ध होता है कि धर्मपाल प्रतिहार शासक वत्सराज द्वारा पूर्ण रूप से पराजित हुआ था ।

१—पीछे देखिए अध्याय ४

२—श्रीमदवन्तिभूभृतिनृपे वत्सादिराजे..... ।

वत्सराज-ध्रुव और धर्मपाल

इसी समय दक्षिण के राष्ट्रकूट सम्राट ध्रुव ने उत्तरी भारत पर आक्रमण कर वत्सराज को पराजित किया और उससे उसने उन राजछत्तों को छीन लिया जिनको वत्सराज ने धर्मपाल से प्राप्त किया था । प्रतिहार शासक इस पराजय के बाद मरु देश में विलीन हो गया । राष्ट्रकूट शासक ने धर्मपाल को भी पराजित किया था परन्तु उसे शीघ्र ही अपने देश को लौट जाना पड़ा । इस प्रकार प्रतिहार राजा की पराजय और राष्ट्रकूट शासक के प्रत्यावर्तन से धर्मपाल को उत्तरी भारत में अपने साम्राज्यवादी विस्तार के लिए सुअवसर प्राप्त हो गया ।

धर्मपाल ने भी अपनी नीति निपुणता और रणदक्षता से इस परिस्थिति का समुचित लाभ उठाया । अभियानों और विजय द्वारा उसने अपने आप को उत्तरी भारत का स्वामी बना दिया । उसके खालिमपुर ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि वह सम्पूर्ण विजय को ही जीतने अर्थात् दिग्विजय^१ करने के लिये उसकी सेना के हाथियों ने चारों समुद्रों में स्नान किया था । इस प्रकार सज्जनों से स्तुत-चरित्र वाला धर्मपाल सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का एक राट बन गया था—

स्वामी भूमीपतीनामखिलवसुमतीमण्डलं शासदेकः ।^२

इसी अभिलेख में आगे बताया गया है कि उसने कान्यकुब्ज में एक दरबार किया था जहाँ पाञ्चाल वृद्धों ने उसके स्वामित्व को स्वीकार किया था और भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गन्धार और कीर के राजाओं ने नतमस्तक होकर धर्मपाल के प्रभुत्व को मान लिया । परन्तु धर्मपाल ने कनौज के सिंहासन पर चक्रायुध को अपने सामन्त रूप में नियुक्त किया । नारायण-पाल के भागलपुर दानपत्र से ज्ञात होता है कि धर्मपाल ने इन्द्रराज को पराजित करने के बाद महोदयश्री प्राप्त की और इसे पुनः चक्रायुध को दे दी इससे यही ज्ञात होता है कि धर्मपाल ने कनौज के इन्द्रायुध को पराजित कर कनौज पर अधिकार कर लिया और बाद में इन्द्रायुध के स्थान पर चक्रायुध को अपने अधीन सामन्त रूप में स्थापित कर दिया धर्मपाल का यह कार्य उसकी दूरदर्शिता का परिचायक है क्योंकि इससे अपने राज्य और प्रतिहार राज्य के बीच कान्यकुब्ज पर आक्रमण किए हुए बिना प्रतिहार पाल राज्य तक

१—धर्मपाल का खालिमपुर अभिलेख, श्लोक ७

२—वही, श्लोक ६

नहीं पहुँच सकते थे। भोज के ग्वालियर प्रशस्ति में बताया गया है कि चक्रायुध धर्मपाल के आधीन था। इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्मपाल ही कनौज का वास्तविक सम्राट था और उत्तरी भारत में उसकी प्रभुता कई सामन्त शासकों द्वारा कनौज के दरबार में मान ली गई थी। उदय-सुन्दरी कथा के लेखक सोहृदल ने सत्य ही उसे उत्तरापथ स्वामी कहा है।

देवपाल देव के मुंगेर ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि दिग्विजय के समय धर्मपाल के सैनिकों ने केदार, गंगा-सागर-संगम, गोकर्ण और अन्य तीर्थों में स्नान किया था। केदार हिमालय के स्थित गढ़वाल प्रदेश में स्थित केदारनाथ ही है। गंगा-सागर-संगम तो गंगा-सागर ही है। गोकर्ण की स्थिति नेपाल में बताई गई है। इस प्रकार धर्मपाल ने अपने आपको उत्तरी भारत का सार्वभौम सम्राट बना लिया। उसके साम्राज्य में बंगाल और बिहार प्रदेश सम्मिलित थे जिन पर वह स्वयं शासन करता था। कनौज का राज्य भी उसके अधीनस्थ था। उत्तर पश्चिम में मद्र (पंजाब में स्यालकोट के आस-पास का क्षेत्र), कीर (कांगड़ा प्रान्त, पूर्वी पंजाब) और सुदूर सीमान्त पर स्थित गांधार (पेशावर, रावलपिंडी) तक उसका प्रभाव फैल चुका था। यदु (गुजरात काटियावाड़ के यादव) और मत्स्य (जयपुर, अत्वर और भरतपुर) तथा अवन्ति (मालवा) भी उसके प्रभाव क्षेत्र में सम्मिलित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि अवन्ति सम्राट गुर्जर नरेश ही था जिसने धर्मपाल के प्रभुत्व को मान लिया था। यवन सिन्ध में बसे हुए अरब ही थे जिनको पाल शासक ने पराजित किया था इस प्रकार उसका साम्राज्य पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में बंगाल तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मध्य भारत और बरार (भोज) तक फैला हुआ था। इस प्रकार धर्मपाल उत्तरी भारत का एक सार्वभौम सम्राट था।

नागभट्ट द्वितीय—धर्मपाल—गोविन्द तृतीय

परन्तु धर्मपाल यह प्रभुत्व निर्विरोध रूप से अधिक समय तक न भोग सका। वत्सराज के पुत्र और नागभट्ट द्वितीय ने भी उग्र साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण कर कनौज पर आक्रमण किया। उसने वहाँ चक्रायुध को पराजित कर गद्दी से हटा दिया और स्वयं कान्यकुब्ज का सम्राट बन बैठा। भोज के ग्वालियर लेख से पता चलता है कि उसने युद्ध में वंगपति को भी पराजित किया। यह वंगपति धर्मपाल ही था।

किन्तु राष्ट्रकूट सम्राट ध्रुव के पुत्र और उत्तराधिकारी गोविन्द तृतीय ने उत्तरी अभियान में नागभट्ट द्वितीय को पराजित किया। पाल सम्राट

धर्मपाल और चक्रायुध ने भी स्वयं ही गोविन्द तृतीय को आत्म समर्पण कर दिया। इस प्रकार नागभट द्वितीय की सफलताओं पर राष्ट्रकूट आक्रमण ने पानी फेर दिया तथा धर्मपाल जीवन पर्यन्त एक महान शासक के रूप में राज्य करता रहा। इससे इतना अवश्य हुआ कि धर्मपाल का कनौज पर प्रभुत्व समाप्त हो गया जहाँ अब नागभट द्वितीय ने प्रतिहारों की शक्ति स्थापित की। खालिमपुर लेख में पाटलीपुत्र को एक विस्तृत साम्राज्य की राजधानी बताया गया है।

मूल्यांकन

तत्कालीन उत्तरी भारत के इतिहास में धर्मपाल निस्सन्देह एक महान् शासक था जिसने प्राचीन भारत के प्रथित सम्राटों—पृथु, राघवराम, नल इत्यादि राजाओं—की महिमा को भी मात कर दिया था।^१ उसकी सेना मान्धाता^२ (प्राचीन चक्रवर्ती सम्राट) के समान थी, जिसमें हाथी^३ और घोड़े^४ विशेष महत्व रखते थे। उसने अपनी अश्व सेना से बहुत से उत्तरी भारत के राजाओं को अपना करद सामन्त बनाया था।^५ धर्मपाल ने अपने सैन्य बल से ही समस्त जम्बूद्वीप के राजाओं को नतमस्तक किया था।^६ देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र लेख से पता चलता है कि उसने वर्णों को (चारों वर्ण के लोगों को) अपने-अपने धर्म के पालन में लगाया तथा यहीं पर यह भी बताया गया है कि वह शास्त्रार्थ का भी उन्नायक था।^७ जैन ग्रन्थ वप्पभट्टि चरित से ज्ञात होता है कि धर्मपाल की राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ था।^८ वह तीर्थ यात्रा और तत्सम्बन्धी अन्य धार्मिक क्रियाओं का करने वाला था।^९ इस प्रकार राजाओं का अधिराज (एकाग्रयोशुभृताम्) और शौर्य का घर (शौर्यालयो) धर्मपाल प्राचीन मर्यादाओं का पालन करने वाला था (मर्यादापरिपालनैकनिरतः श्री धर्मपालो नृपः)।^{१०}

१—धर्मपाल का खालिमपुर ताम्रपत्र लेख, श्लोक १०

२—वही, श्लोक ११

३—वही, पंक्ति २७

४—वही, पंक्ति २७

५—वही, पंक्ति २८

६—देवपाल का नालन्दा ताम्रपत्र लेख, श्लोक ४

७—पीछे देखिए अध्याय ५, पृष्ठ १३९

८—देवपाल का नालन्दा लेख, श्लोक ७

९—नारायणपाल का भागलपुर लेख, श्लोक २

इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन भारत में धर्मपाल ने अपनी विजयों द्वारा एक सशक्त साम्राज्य की स्थापना की। राजनय (डिप्लोमेसी) और प्रज्ञा का सहारा लेते हुए ही उसने राष्ट्रकूटों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया और अपना विवाह राष्ट्रकूट राजपुत्री से किया। यह उसकी कूटनीति ही थी। उसने सुचारु शासन व्यवस्था द्वारा राज्य में शान्ति स्थापित की। समृद्धि भी यथेष्ट थी जिसने विद्या और कला की उन्नति को प्रोत्साहित किया। वह बौद्ध धर्म का मानने वाला (परम सौगत) था। परन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी उसने सहिष्णु नीति अपनायी। प्रसिद्ध विक्रमशिला विश्व विद्यालय की स्थापना उसी ने की जो तत्कालीन जगत में शिक्षा और संस्कृति का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। धर्मपाल का एक अन्य नाम विक्रमशील भी था। विक्रम शिला की भांति ही उसने ओदन्तपुरी के प्रसिद्ध बिहार की भी स्थापना करायी और यह भी विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया।

डा० बी० पी० सिनहा के अनुसार—

“Dharmapala was a great conqueror. He established an extensive empire in the teeth of bitter opposition..... Dharmapala was a real empire-builder.”

अर्थात् धर्मपाल एक महान् विजेता था। जिसने उग्र विरोध और सघर्ष के वातावरण में विशाल साम्राज्य स्थापित किया।

डा० आर० सी० मजूमदार का मत है—

“Dharmapala was undoubtedly the greatest king that ever ruled in Bengal, and made his position supreme in North India.”

अर्थात् धर्मपाल बंगाल का श्रेष्ठ सम्राट था जिसने उत्तरी भारत में अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। इस प्रकार धर्मपाल निस्सन्देह महान् विजेता, कुशल शासक, विद्या तथा कला का आश्रयदाता और एक धार्मिक सम्राट था। उसके प्रोत्साहन से ही पाल-कला का जन्म और विकास हुआ। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान हरिभद्र उसकी राजसभा में रहता था।

१—डिक्लाइन ऑफ मगध, पृ० ३६३

२—ऐन्सेन्ट इण्डिया, पृ० २८२

देवपाल

“Devapala was the greatest emperor of the Pala dynasty.”

Dr. B. P. Sinha

धर्मपाल की राष्ट्रकूट वंशजा पतिव्रता पत्नी रणदेवी ने श्री देवपाल नामक पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका प्रसन्न मुख, निर्मल, मन संयत वाणी, और शरीर पवित्र कर्मों के करने में लगा था।^१ ऐसा सुयोग्य सुपुत्र धर्मपाल के बाद पाल सिंहासन पर बैठा। देवपाल ने न केवल धर्मपाल के राज्य को पाया, प्रत्युत उसके महान् गुणों को भी पिता से पाया। उसका राज्यकाल पाल साम्राज्यवाद के उत्कर्ष का विशिष्ट स्वरूप है, जब पालों की प्रभुता में नये नये रत्न जड़े गये। उसने उग्र आक्रामक नीति का अनुसरण कर दिग्विजय की (विजयक्रमेण)। अपने हाथियों द्वारा उसने विन्ध्याटवी को रौंद डाला।^२ उसे उसकी विजयों में जयपाल से विशेष सहायता मिली। अभिलेखों से इस प्रकार स्पष्ट है कि उस पराक्रमी शासक ने प्राग्ज्योतिष (ब्रह्मपुत्र की घाटी, कामरूप), उत्कल (उड़ीसा), हूण, गुर्जरोँ और द्राविडों को पराजित किया।

देवपाल के मुँगेर ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि उसने विन्ध्याटवी और काम्बोज तक विजय की। नारायणपाल के समय के बदल स्तंभलेख से ज्ञात होता है कि मंत्री दर्भपाणि की सहायता से देवपाल ने रेवा के स्रोत (मेकल पर्वत और देश) से लेकर हिमालय तक विजय प्राप्त की। उसने मंत्री केदार मिश्र की सहायता से समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त किया^३ और उत्कलों, हूणों तथा गुर्जरोँ को पराजित किया।

देवपाल और गुर्जर-प्रतिहार

देवपाल के समकालीन नागभट द्वितीय, रामभद्र और मिहिरभोज नामक प्रतिहार शासक थे। नागभट द्वितीय एक सशक्त शासक था जिसने कनौज पर अधिकार कर लिया था और कनौज पर रामभद्र तथा मिहिरभोज का भी शासन बना रहा। अतः सम्भव है कि देवपाल ने प्रतिहार राज्य के कुछ पूर्वी प्रान्तों (कोसल) पर अधिकार कर लिया हो और रामभद्र के अल्पकालीन

१—देवपाल का नालन्दा लेख—पंक्ति १४, १६ शुच्याचारा.....श्लाघ्या पतिव्रतासौ मुक्तारत्नं समुद्रशुक्तिरिव । श्री देवपालदेवम् प्रसन्न-वक्त्रं सुतमसूत् ॥ निर्मल मनसो वाचि संयतः कायकर्मणि च यः स्थितः शुचो ।

२—वही, पंक्ति १७

३—दि डिल्काइन ऑफ मगध, ३७१

शासन काल में भी देवपाल का अधिकार वहाँ बना रहा। मिहिरभोज ने भी इतनी पूर्वी प्रान्तों पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। परन्तु प्रारम्भ में उसे भी सफलता न मिली। आगे चलकर धर्म-पुत्र (देवपाल) से उसने लक्ष्मी छीन ली। इस कथन से भी यही समझना चाहिए कि जिन पूर्वी प्रान्तों पर देवपाल ने अधिकार कर लिया था, उन्हें भी भोज ने पुनः जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। देवपाल यथापूर्व अपने राज्य में शासन करता रहा।

राष्ट्रकूट नरेश

पराजित द्रविड़ नरेश की पहचान राष्ट्रकूट सम्राट अमीघवर्ष से की गयी है। संभव है कि इन समय राष्ट्रकूट राज्य में संकट होने से पाल नरेश ने विन्ध्य को पार कर राष्ट्रकूट राज्य पर आक्रमण किया है। कुछ विद्वान पराजित द्रविड़ सम्राट की पहचान पाण्ड्य राजा श्रीमार श्री वल्लभ से करते हैं। एक लेख में बताया गया है कि पाण्ड्य शासक ने गांग, पल्लव, चोल, कलिंग और मगध आदि देशों के राजाओं को पराजित किया। यहाँ मगध के राजा की पहचान पाल सम्राट से की गयी है।

देवपाल के मुगेर ताम्रपत्र लेख में देवपाल के राज्य का विस्तार उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम् (सेतुबन्ध) तक बताया गया है। इतना निश्चित ही है कि देवपाल उत्तरी भारत का एक महान सम्राट था जिसका आधिपत्य बङ्गाल और बिहार में स्थापित था। उसने अपने पिता से प्राप्त गौरव की रक्षा कर विद्या और कला को आगे बढ़ाया।

उसके राज्यकाल में सुवर्णद्वीप और यवद्वीप (यवभूमि=जावा) से भी भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध उत्तम दशा में थे।

मूल्यांकन

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि देवपाल एक शिष्ट, सौम्य और सुसंस्कृत सम्राट था जिसके राज्य-निर्माण में कई योग्य मन्त्रियों और सेनापतियों ने सहायता दी। डा० मिनहा कहते हैं कि—

“All these favourable factors contribute to explain the golden days of the empire under him.”

उसने प्रतिहारों के साम्राज्यवादी विस्तार को रोका और स्वयं अपने पिता की विस्तारवादी नीति का अनुसरण करता रहा। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी (परमसौगत) था। परन्तु वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था।

उसने नालन्दा और विक्रमशिला के प्रसिद्ध विहारों की उन्नति में सहायता दी । उसके समय में पाल साम्राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँचा और उसकी मृत्यु के बाद ही इसका पतन भी प्रारम्भ हो गया ।

पाल साम्राज्य का पतन

विग्रहपाल प्रथम

देवपाल की मृत्यु के बाद पाल-प्रतिष्ठा न बनी रह सकी । उसके पुत्र और उत्तराधिकारी विग्रहपाल ने बहुत ही थोड़े समय तक शासन किया । तीन-चार वर्षों के बाद ही उसने राज्य त्याग दिया । वह धार्मिक वृत्ति का शासक था ।

नारायणपाल

विग्रहपाल अपने पुत्र नारायणपाल को गद्दी पर बिठा कर राजकार्य से मुक्त हो गया । नारायणपाल भी शान्तिप्रिय और धार्मिक शासक था । इन शान्तिप्रिय राजाओं के शासनकाल में पाल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया । एक राष्ट्रकूट लेख से ज्ञात होता है कि अंग-वंग के राजाओं ने अमोघ-वर्ष प्रथम की आधीनता मानी । इससे यह सिद्ध होता है कि राष्ट्रकूट नरेश ने पाल राज्य पर आक्रमण किया था । प्रतिहारों ने भी इन दुर्बल पाल राजाओं के राज्यकाल में अपनी शक्ति का विस्तार बिहार और बंगाल में किया । महेन्द्रपाल का राज्य मगध और उत्तरी बंगाल में स्थापित हो चुका था ।

इन दुर्बलताओं के राज्यकाल में ही सामन्तों ने भी अपने को स्वाधीन कर लिया । आसाम और उड़ीसा के राजा भी स्वतन्त्र हो गये ।

इस प्रकार पाल साम्राज्य का पतन और पराभव पूर्ण रूप से हो रहा था । पाल राजाओं का आधिपत्य केवल बंगाल के कुछ भाग पर बना रहा । यद्यपि नारायणपाल ने बङ्गाल और बिहार में पाल-प्रभुत्व को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया । सन् ९०८ ई० के आस-पास उसकी मृत्यु हो गयी ।

उसके बाद उसका पुत्र राज्यपाल राजा हुआ । उसके बाद उसके दो उत्तराधिकारी गोपाल द्वितीय तथा विग्रहपाल द्वितीय हुए । इसी समय प्रतिहार साम्राज्य भी लड़खड़ा रहा था । नवोदित राजशक्तियों—चन्देलों और कलचुरियों ने भी गौड़, राढ़, अंग और वंग पर अभियानों द्वारा विजयें प्राप्त कीं । इन स्वतन्त्र राज्यों का उल्लेख ही सिद्ध करता है कि पाल राज्य टूट चुका था ।

विग्रहपाल द्वितीय का पुत्र महीपाल प्रथम ९८८ ई० के आसपास गद्दी पर बैठा। उसने अपनी शक्ति से पालवंश के लुप्त गौरव की पुनः प्रतिष्ठा स्थापित की। उसने उत्तरी और पूर्वी बङ्गाल को पुनः जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार १००० ई० में पुनः एक बार पाल वंश की शक्ति का विकास हुआ। बागढ़ लेख में अपने पूर्वजों के राज्य को फिर से स्थापित करने के लिए महीपाल की प्रशंसा की गयी है।

उत्तरी बङ्गाल में कम्बोज वंश का शासन था और दक्षिण तथा पूर्वी बङ्गाल में चन्द्र राजाओं का राज्य था। महीपाल ने इनको ही पराजित कर पुनः पाल राज्य संगठित किया।

उसने उत्तरी बिहार पर भी पुनः पालसत्ता स्थापित की। इस प्रकार सम्पूर्ण बिहार और बङ्गाल पर पालों का फिर अधिकार हो गया।

इसी समय चोल सम्राट राजेन्द्र चोल ने भी बङ्गाल पर आक्रमण किया और उत्तरी राढ़ जीत लिया। परन्तु इस आक्रमण से बङ्गाल पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। यह एक ऐतिहासिक सत्य है, कि महीपाल ने इस नष्ट प्राय वंश को कुछ समय के लिये नवजीवन प्रदान किया।

महीपाल के उत्तराधिकारी

महीपाल के बाद उसका पुत्र नयपाल राजा हुआ जिसे तिब्बती ग्रन्थों में मगध का शासक कहा गया है। इसी समय पालों और कलचुरि नरेशों में संघर्ष छिड़ गया। नयपाल के बाद उसका पुत्र विग्रहपाल तृतीय राजा हुआ। इस समय भी कलचुरि-पाल संघर्ष चलता रहा। अन्त में विग्रहपाल तृतीय और कलचुरि नरेश कर्ण में सन्धि हो गयी।

विग्रहपाल तृतीय के बाद महीपाल द्वितीय (१०७०-१०७५ ई०), शूरपाल (१०७५-१०७७ ई०), रामपाल (१०७७-११२०), कुमारपाल (११२० ई०-११२५ ई०), गोपाल तृतीय (११२५ ई०-११४४ ई०) और मदनपाल (११४४ ई०-११६१ ई०) शासक हुए। मदनपाल के तीसरे राज्य-वर्ष में ही गहड़वाल शासक गोविन्दचन्द्र ने मुंगेर तक विजय प्राप्त की। मदनपाल ने राज्य को बचाने का प्रयत्न किया। किन्तु असफल रहा। इसी समय उसे विजयसेन के साथ भी युद्ध करना पड़ा। गोपाल और धर्मपाल के प्रथित पालवंश का वह अन्तिम सम्राट था। इस प्रकार पालवंश जो भारत का एक प्रमुख राजवंश था लगभग ४०० वर्षों के बाद प्रभुता से हीन होकर गिर पड़ा। किन्तु उसके पतन के बाद भी उसकी विशिष्टताएं तत्कालीन कला कृतियों में अंकित देखने को मिलती हैं।

चन्देलों का इतिहास

वेदोपवेदाङ्ग पुराणधर्मशास्त्रेतिहासादिभिरुच्छितश्री ।

सरस्वती पद्मधरा शशाङ्क संकाश कान्तिः सहसाविरासीत ॥

चन्द्रान्वयपार्थिव पूजित पद्मधरा सरस्वती महामोहम्लेच्छ ध्वस्त देश में प्रकट हुईं । दुर्ग-तारिणी सावित्री कविकण्ठ से राष्ट्र को जगा रही थीः—

प्र० च० ५/६

औदार्य शौर्य रसिकाः सुखयन्तु भूपाः

सन्मार्ग वासितधियो विलसन्तु लोकाः ।

वर्षन्तु बद्धपरितोष भराः पयोदाः

सारस्वतोत्सवमयाः कवयोभवन्तु ॥

समुद्रमथन० (रूपकषटकं पृ० १९१, ३/१४)

चन्देलों का महत्व

“भारतीय इतिहास में चन्देलों का स्थान कइ दृष्टियों से महत्व पूर्ण है । विन्ध्य-मेखला और उसके जांगल प्रदेशों ने इतिहास के कई विकट कालों में भारत की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक शक्ति का गोपन, संरक्षण तथा परिवर्धन किया है । उत्तर भारत में जब प्रतिहारों की शक्ति क्षीण होने लगी और पश्चिमोत्तर से तुर्क आक्रमण शुरू हुए तब इन्हीं भू-भागों में एक प्रबल राजनीतिक शक्ति का उदय हुआ । तुर्कों की शक्ति इससे टकराकर लौट गयी और पश्चिमी पंजाब तक सीमित रही ।”^१

चन्देलों का युग धर्म तथा कला के क्षेत्र में भी अपनी प्रसिद्धि पा चुका है । उस युग के बने हुए खजुराहों के मन्दिर विश्व-विश्रुत हैं । उनकी कला-वास्तु, शिल्प और मूर्तियां-भारतीय कला के इतिहास में अपना विशेष महत्व रखती हैं । वे तत्कालीन जीवन की सुन्दर झांकी देती हैं ।^२

१—डा० राजवली पाण्डेय-आमुख पृ० ५ (चन्देल और उनका राजत्व काल)

२—डा० उमिला अग्रवाल— खजुराहो स्कल्पचर्स, देहली ।

चन्देलों के उदय होने के पूर्व की राजनीतिक दशा—

प्रतिहार साम्राज्य के लड़खड़ाते ही मध्य भारत-बुन्देल खण्ड और दक्षिण कोशल-में कई राजवंशों का उदय हुआ। इनमें जेजक भुक्ति (जजहोति, जुझौति आधुनिक बुन्देल खण्ड) के चन्देल और चेदि के कलचुरी प्रसिद्ध राजवंश थे। वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा दोनों वंश आपस में सम्बन्धित थे। दोनों ही राजवंश प्रभुत्व के लिये प्रयत्नशील थे। दोनों ही वंश तुर्कों आक्रमणों की बाढ़ रोकते रहे।

प्रतिहार साम्राज्य जिसने उत्तरी पश्चिमी भारतीय द्वार की रक्षा करते हुए मुस्लिम आक्रान्ताओं को मध्यदेश (गंगा-यमुना की घाटी) में घुसने नहीं दिया वह भी काल-वश अशक्त होकर ध्वस्त हो गया। पुनः मध्यदेश में ऐसी कोई शक्ति नहीं रही जो बढ़ते हुए मुसलमानों के आक्रमणों को रोकती। जब तक बुन्देल खण्ड के चन्देल अपनी शक्ति को संगठित कर कन्नौज की ओर बढ़े, जहाँ अब भी दुर्बल प्रतिहार शासक अपनी आखिरी स्वासों ले रहा था, महमूद गजनवी के आतंक से सम्पूर्ण उत्तरी भारत त्रस्त और निरुत्साहित सा दिखलाई पड़ रहा था। यह सत्य है कि चन्देलों ने उनका विरोध किया और सीमान्त रक्षक शाही राजाओं की भी सहायता की परन्तु इसमें वे असफल रहे। वे मध्यदेश में भी शक्ति स्थापित न कर सके जो राष्ट्र का हृदय था। फलतः तुर्क आक्रमणकारी पंजाब से मध्यदेश की ओर बढ़ते गये। चन्देल शासक खजुराहों, कालन्जर की ओर केन्द्रीभूत बने रहे। उन्होंने मध्य भारतीय राजनीति पर विशेष ध्यान दिया, जहाँ परस्पर चालुक्यों, परमारों और कलचुरियों में संघर्ष हो रहा था। आपसी युद्ध और वैर ने देश को गिरा दिया।

उत्तरी पश्चिमी भारत

सिन्ध के अरब शासक प्रतिहारों से पराभूत होकर मुल्तान और मन्सूरा में ही अपनी शक्ति बनाये रख सके थे। प्रतिहारों के पतनोन्मुख होते ही वे भी अपनी शक्ति बढ़ाने लगे। काश्मीर, पंजाब और अफगानिस्तान के अधिकांश भागों पर शाही राजवंश का शासन था। नवोदित गजनी शक्ति के साथ इसी वंश का संघर्ष प्रारम्भ हुआ। लमगन के युद्ध के बाद बराबर शाही साम्राज्य का ह्रास होता गया। शाही राजाओं ने सतत् और सचेष्ट प्रयत्न किया कि वे विदेशी आक्रान्ताओं से देश द्वार की रक्षा करें। आनन्दपाल, जयपाल, भीमपाल और त्रिलोचनपाल बराबर संघर्ष करते रहे। उन्होंने इसी उद्देश्य से अन्य राजपूत

राजाओं की सहायता भी ली तथा शक्ति-संघ भी बनाये परन्तु भारत का दुर्भाग्य ही या—

उपचितेषु परेष्वसमर्थतां व्रजति कालवशाद् बलवानपि ।

—शिशुपालवध, ६/६३

सत्य ही है कि काल के वशीभूत होकर सशक्त भारत भी शत्रु से पराभूत हुआ ।

यद्यपि शाही राजाओं को असफलता मिली और उनके अधिकार से अफगानिस्तान के भाग और पंजाब निकल गये परन्तु महमूद गजनवी और उसके उत्तराधिकारियों को काश्मीर में सफलता न मिली । पंजाब और सीमान्त प्रदेश में गजनवी शासकों का अधिकार हो गया । चन्देल शासक भी बुन्देल खण्ड में ही लौट आये और वहीं से तुर्कों आक्रमणों का विरोध करते रहे । न तो वे कान्यकुब्ज देश पर ही अधिकार कर सके और न मुस्लिम सत्ता को ही पंजाब और अफगानिस्तान से हटा सके । पंजाब पर मुस्लिम अधिकार हो जाने से ही भारतीय पराभव का इतिहास प्रारम्भ होता है ।

चेदि मण्डल

कलचुरियों ने दक्षिणी कोशल और निकटस्थ भागों में अपनी शक्ति जमा ली थी । निस्संदेह वे तुर्कों को रोकने का प्रयत्न करते रहे । परन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है उनका भी ह्रास पारस्परिक युद्धों में होता रहा ।

यह भी सत्य है कि कलचुरियों को उत्तर प्रदेश (अन्तर्वेदी) में भी सफलता मिली और वे गोरखपुर तक अधिकार बढ़ाते चले गये, परन्तु वे भी विदेशी आक्रान्ताओं से देश को न बचा सके ।

मालवा

मालवा में भी परमारों ने प्रतिहारों के पतन होने के बाद ही अपनी शक्ति बढ़ाना प्रारम्भ कर दी । वे भी पर (शत्रु) को मारने में कुशल होने के कारण परमार कहलाये । ये शत्रु तुर्क ही थे जिनके साथ उनका विरोध-संघर्ष होता रहा । परन्तु शौर्य-प्रदर्शन तथा तत्कालीन राजनीतिक प्रवृत्ति के वशीभूत होकर वे भी चालुक्यों के साथ संघर्ष करते रहे । चाहमानों, चन्देलों और कलचुरियों के साथ भी सम्बन्ध बनते और बिगड़ते रहे ।

गुजरात

गुजरात में चालुक्य वंश शासन कर रहा था । कुमारपाल और सिद्धराज इसी वंश के प्रसिद्ध तथा प्रतापी शासक हुए हैं । इन्होंने भी विदेशियों को

रोकने का यथेष्ट प्रयत्न किया परन्तु यह भी राष्ट्र-दोष (परस्पर संघर्ष) से मुक्त न थे। परमारों से इनका उग्र विरोध चलता रहा। अतः ये भी राष्ट्र को आपत्ति आँधी से बचाने में सफल सिद्ध न हुए।

बिहार-बंगाल

पाल साम्राज्य के पतन के बाद ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में सेन वंश का उदय हुआ। इसके पूर्व पाल वंश के अन्तिम दुर्बल शासक राज्य कर रहे थे। धर्मपाल और देवपाल की मृत्यु के बाद बंगाल और विहार की भी दुर्दशा ही परिलक्षित होती है। दक्षिण से चोल भी आक्रमण कर रहे थे और आन्तरिक विद्रोह भी देश में अव्यवस्था बनाये हुए थे। इसी समय मुसलमानों के भी आक्रमण उत्तरी पश्चिमी सीमान्त तथा पश्चिमी भारत पर हो रहे थे। अस्तु स्पष्ट है कि जिस देश के महान शासकों—धर्मपाल और देवपाल—ने सुदृढ़ सत्ता स्थापित की थी, वही क्षेत्र पुनः मात्स्य न्याय (अराजकता) से पीड़ित था।

इस प्रकार चन्देल वंश के उदय होने के पूर्व उत्तरी भारत की राजनैतिक दशा शोचनीय थी। इन सभी वंशों में इतनी शक्ति थी कि वे विदेशियों से देश की रक्षा कर सकने में समर्थ थे। परन्तु उनके दुर्गुणों और दोषों ने तुकों को दुर्निवार्य बना दिया। यह उन शासकों की अचेतना का ही परिणाम था—

म्लेच्छो दुर्निवार्यो ह्यचेतनः।

वह भी काल-वश अशक्त होकर ध्वस्त हो गया।

चन्देल वंश की उत्पत्ति

जनश्रुति

चन्देल वंश का उदय भी अन्य राजपूत वंशों के समान विवादास्पद है। परम्परा और अनुश्रुति के अनुसार चन्देलों का मूल सम्बन्ध चन्द्र देव से बताया जाता है। इस परम्परा के अनुसार चन्देलों का उदय हेमावती के गर्भ से हुआ जो काशी के गहड़वाल राजा इन्द्रजित के पुरोहित की पुत्री थी। कथा इस प्रकार है कि एक बार जब वह रति सरोवर में स्नान करने गयी तो चन्द्रमा और उसका संसर्ग हुआ। हेमावती को चन्द्रमा ने उसके गर्भ से पुत्र होने का वरदान दिया। चन्द्र ने यह भी कहा कि उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह पृथ्वी का शासक तथा एक राजवंश का प्रवर्तक होगा। अविवाहिता होने के कारण हेमावती को इससे विक्षोभ और खिन्नता भी थी। परन्तु चन्द्र ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि “तुम चिन्तित न हो। पवित्र कर्णावती (केन तवी) के तट पर तुम्हारा वीर पुत्र जन्म लेगा। उसे तुम बर्जुरपुर

(खजुराहो) ले जाना । वहीं दान देना और यज्ञ करना । इस प्रकार वह प्रवीर पुत्र उसी क्षेत्र पर राज्य करेगा—

शुभ कर्णवती के तीर तुव पुत्र होव सुवीर ।

पञ्जुरपुर फिरि जाय दिय दाय जज्ञ कराय ॥

भुव पुत्र करिहै राजु म्हा कहतु नर्क समाज ॥^१

इस प्रकार देव-प्रसाद के रूप में पुत्र प्राप्ति के वरदान को पाकर भी वह नर्क के भय से कांप रही थी । चन्द्र ने उसे कुछ अन्य धार्मिक क्रियायें भी करने का आदेश दिया—

षोडस वर्ष कुमार तब होइ भुर बल दाय ।

भाड्य जज्ञ करि भूमि तल पातक पुंज बहाय ॥

चन्द्र ने उसे विश्वास दिलाया कि उसका पुत्र पृथ्वी का महान शासक होगा (हेमावती तुव पुत्र बड़ छौनी छलिय होई) । यह आशीर्वाद देकर चन्द्रदेव वहाँ से बिदा हो गये । आगे चलकर उनकी भविष्य वाणी और वरदान सत्य सिद्ध हुआ—

काशिय तजि कालिंजर आइय चारमास तिय तंह विलमाइय ।

करि तीरथ अस्नान सुदाये । पुत्र काज सब देव मनाये ॥

छांड़ि कालिंजर संदरिय गइय धाम इक सोय ।

रहिय ग्राम पति के सदन मंह भयौ पुत्र एक जोय ॥

इस प्रकार हेमावती काशी छोड़ कर कालन्जर गई और वहाँ एक ग्राम-पति के घर में उसके पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम चन्द्रवर्मन् रखा गया ; क्योंकि चन्द्र देव ने उसे सचेत कर दिया था कि यह वंश उसी समय तक चलता रहेगा जब तक इस वंश के शासकों के नामान्त में वर्मन् शब्द रहेगा । चन्द्रदेव ने पुनः आकर उसी गाँव के पास एक बड़ा उत्सव (महोत्सव) किया । आगे चलकर यही स्थान महोत्सव नगर या महोबा कहलाया ।

कालान्तर में जब चन्द्रवर्मन् सोलह वर्ष का हुआ उसने एक व्याघ्र का बध पत्थर के टुकड़े से कर दिया । इससे हेमावती को प्रसन्नता हुई और उसने पुनः चन्द्रदेव का स्मरण किया जिससे चन्द्रदेव प्रकट हुए और उसे पारस पत्थर देकर चले गये । इसी अनुश्रुति में यह भी बताया गया है कि सभी देवताओं ने यहाँ आकर और चन्द्रवर्मन् को अपनी शक्ति तथा वरदान दिया । कुबेर, बृहस्पति और चन्द्रमा ने उसे राजनीति की शिक्षा दी । आगे पारस

पत्थर की सहायता से उसने अपनी शक्ति को बढ़ाया सर्व प्रथम उसने कालन्जर पर अधिकार स्थापित किया। उसने स्नान कर नीलकण्ठ शिव की पूजा की तदन्तर अपनी शक्ति को बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। विशाल सेना की सहायता से उसने थोड़े ही समय में दो जनपदों पर अधिकार स्थापित कर लिया—

पंच प्रहर भीतर लिये जनपद जुगल छिड़ाय

उसकी शक्ति के भय से गहड़वालों ने काशी को छोड़ दिया। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि काशी और कालन्जर पर चन्द्रवर्मन् का अधिकार हो गया था। माता की आज्ञा से चन्द्रवर्मन् ने भाड्य यज्ञ कर दीनों को बहुत सा धन दान दिया तथा खज्जुर पुर और महोबा का शासक बन बैठा।

इस प्रकार इस जनश्रुति से चन्देलों का उदय चन्द्र और चन्द्रवर्मन् से सिद्ध होता है। स्थानीय क्षेत्रों में आज भी लोग इस पर विश्वास करते हैं। महोबा के कानून जो परिवार द्वारा सुरक्षित वंशावली से भी ज्ञात होता है कि चन्द्रवर्मा ने बुन्देलखण्ड के परिहारों को राजपद से हटाया।

अभिलेख—

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इस महान वंश की उत्पत्ति मुनि चन्द्रात्रेय से हुई (चन्द्रात्रेयमुनेमहीयसि कुले^१—चन्द्रात्रेय नरेन्द्रानाम् वंशे^१)। धंग के खजुराहो लेख में (वि. सं. १०११) बताया गया है—विश्वस्रष्टा आदि पुरुष से पवित्र चरित्र वाले मरीचि आदि पूर्व ऋषियों की उत्पत्ति हुई और उनमें अत्रि मुनि से महाज्ञानी मुनि चन्द्रात्रेय का जन्म हुआ। उनसे प्रसूत (पैदा हुआ-चला हुआ) यह चन्देल वंश प्रशंसनीय कुल था।^१ धंग के खजुराहो लेख

१—इण्डि०, एन्टी० जिल्द १६, पृ० २०१, नान्यौर ताम्रपत्र लेख A

२—वही, जिल्द १६, पृ० २०८

वही, जिल्द २५, पृ० २०६

एपि० इण्डिका, ४, पृ० १५७

वही, १६, पृ० १२

वही, २०, पृ० १२६, १३३, १३५.

३—वही, जिल्द १, पृ० १२५ : तस्माद्विश्वसृजः पुराण पुरुषादाम्नायधाम्नः कव्येऽभूवन्मुनयः पवित्रचरिताः पूर्वे मरीच्यादयः। तत्रात्रिः सुषुवे निरन्तर तपस्तीव्र प्रभावं सुतं चन्द्रात्रेयमकृत्रिमोज्ज्वलतरज्ञान प्रदीपं मुनिम्। अस्ति स्वस्ति विद्याधिनः स जगतां निःशेषविद्याविदस्तस्यालोपनताखिल श्रुति-निधेर्वंशः प्रशंसास्पदम् ॥

(वि० सं० १०५९) में भी इसे अत्रि पुत्र चन्द्रात्रेय से उत्पन्न बताया गया है।^१ बटेश्वर लेख (वि० सं० १२५२) से ज्ञात होता है कि अत्रि की आंख से चन्द्र और चन्द्र से चन्द्रात्रेय की उत्पत्ति बतायी गयी है।^२ धंग और जयवर्मदेव के खजुराहो लेख (वि० सं० १०५६) में इस वंश को महावंश (पंक्ति ८) कहा गया है। इसी लेख में इसके पहले इस वंश की महानता के विषय में बताया गया है कि चंद्र से लेकर अत्रि के तेज से युक्त चन्द्रात्रेयवंश के राजाओं ने पृथिवी का उपभोग अपनी प्रचण्ड और अक्षत भुजाओं द्वारा किया। सन्मार्ग के प्रिय चन्द्रात्रेय वंशजों ने पृथिवी को पवित्र कर दिया। वे सत्यव्रत के पालन करनेवाले थे। उन्होंने कभी भी किसी से अपने प्राणों की भीखमांग कर अपने मनको दुःखी नहीं किया था। दुर्विनीत सामन्तों की स्त्रियाँ विधवा कर दी गई थीं अर्थात् उद्धत और विद्रोही सामन्तों को नष्ट कर दिया गया था। इस वंश के राजाओं के आधीनस्थ सीमान्त शासक भी विजयी थे। इस प्रकार कुछ काल बाद इस महावंश में सूर्य और मुक्तामणि के समान (उज्ज्वल चरित्र वाला) नन्नुक राजा हुआ।^३ यहां पर इस प्रकार, चन्द्र^४ से उत्पन्न चन्द्रात्रेयवंश का न केवल उदय ही बताया गया है, प्रत्युत इस वंश के गौरव और उन गुणों का उल्लेख किया गया है जिनसे यह वंश इतिहास में महान् बन गया। यशो-वर्मन् के खजुराहो लेख में भी इस वंश की प्रशंसा करते हुए बताया गया है कि 'इस चन्द्रात्रेय के प्रशंसास्पद वंश में कोई ऐसा शासक नहीं हुआ था कि जिनमें चाटुकारिता या शक्ति की दुर्बलता ही थी; उनमें दृढ़ता भी कम न थी; और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उनसे दूसरों का अहित अथवा अपकार नहीं किया गया। इस वंश के राजाओं का मन भयभीत लोगों की रक्षा करने में

१—खजुराहो लेख (नं० ४९—डा० पांडे हिस्टारिकल ऐन्ड लिटरेरी इन्स-क्रिप्शन्स) श्लोक ८, ६, १०, ११ : ब्रह्मा ब्रह्मनिधीन् पुत्रान् मरीच्य... मुखान्मुनीन् । श्लोक ८

मध्ये तेषां.....श्रीमान् अत्रिः..... ।

चन्द्रात्रेयः समजनि मुनिस्तस्य पुत्रः पवित्रः ॥ श्लोक ९

ततः समभवद् वंशोऽयमत्यद्भुतः ॥ श्लोक ११

२—एपी० इण्डि०, भाग १, पृ० २०८-२०६

३—धंग और जयवर्म देव का खजुराहो लेख, श्लोक १२-१४

४—महोबा लेख-एपी० इण्डि०-भाग १, पृ० २१७ : तस्मादजनि रजनीवल्लभाद् विश्वकान्तः । विशेष विवरणों के लिये देखिये एपी० इण्डि०, भाग १, २,

तत्पर रहता था; और इस तरह से सभी सम्पत्तियों और साधनों से राष्ट्र को सम्पन्न कर चन्द्रात्रेयवंशजों ने मानो पृथ्वी पर सतयुग की ही स्थापना कर दी हो। इस वंश के ऐसे धवलकीर्ति वाले राजाओं की प्रशंसा ही क्या की जाय। उनमें सम्पूर्ण धरा को पालन करने तथा नष्ट करने की क्षमता थी। उसी यशस्वी वंश में उत्पन्न वे कसौटी पर कसकर खरे सोनेके समान शुद्ध क्षत्रिय थे (तत्र क्षत्रसुवर्ण सार निकष ग्रावा)।^१ यद्यपि इन तथ्यों में आधुनिक विद्वान को अतिरंजना का आभास मिलेगा। परन्तु इन्हीं बातों को उस युग की राजनीति और ऐतिहासिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में आंके तो प्रत्येक शब्द किसी न किसी तथ्य का निरूपण करता है। इन ऊपर उल्लिखित अभिलेखों में पुराणों के आधार पर ही सृष्टि का वर्णन करते हुए चन्द्र से वंशोत्पत्ति बतायी गयी है। अनुश्रुति भी ऐसा ही कहती है। चन्द्रात्रेयवंश ही इतिहास में चन्देल वंश के रूप में प्रसिद्ध हुआ।^२ विदेशी मूल की विचारधारा निर्मूल और निरी काल्पनिक अटकल है जिसे विदेशी इतिहासकारों ने जन्म दिया था। वंशोत्पत्ति का प्रमाण तो उनके क्षत्र-कसौटी पर शुद्ध होने—

क्षत्र सुवर्ण सार निकषग्रावा

से ही स्पष्ट मिलता है कि वे क्षत्रिय थे, क्योंकि क्षत्रियों का ही कर्तव्य त्रस्तों को त्राण देना था और इसीलिये वे शस्त्र धारण करते थे—

क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रमात्तानां त्राणकारणात् ॥ मार्कण्डेय पुराण १२७-१६

उनका यही स्वधर्म था जिसका पालन करना भी अभीष्ट था (स्वधर्मः परिपाल्यो, मार्कण्डेय पुराण, १२३-१८)।

अभिलेख स्पष्ट कहता है कि चन्द्रात्रेयवंशज शासक-सदैव इस स्वधर्म-पालन का ध्यान रखते थे। इसीलिये वे यशस्वी क्षत्रिय थे:—

त्रस्तत्राणप्रगुणमनसां.....अमलयशसां भूभुजां.....तत्रक्षत्र सुवर्णसारनिकषग्रावा.....॥

यशोवर्मा का खजुराहो लेख, श्लोक ९-१०

१—यशोवर्मन् का खजुराहो पाषाण लेख, श्लोक ८, ६, १०

२—प्रो० कील्हार्न का मत है कि चन्द्रात्रेय चन्द्रेल्ल (चन्द्र + इल्ल) का संस्कृत स्वरूप ही था। देवलब्धि के दुदही लेख में भी चन्द्रेल्ल शब्द का उल्लेख मिलता है (इन्डि० एन्टी०, १८, पृ० २३६-२३७)।

द्रष्टव्य-मित्रा-अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो

अपने पूर्ण राजत्व काल में चन्देलों ने विदेशियों के आक्रमणों से तत्त देश और यहां के निवासियों को बचाने का अथक प्रयत्न किया। उनके अभिलेख प्राचीन पुराण-साहित्य की परंपरा से संबलित हैं। उनके मन्दिर कला-सौष्ठव के उत्कृष्ट प्रमाण हैं जिनसे 'विलक्षण रूपा शुक्लाभा भारती' और उसका गौरव प्रस्फुटित होता है। संक्षेप में ये ही प्रमाण-साहित्य, काव्य-सौष्ठव और कला की कमनीयता तथा धर्म-धरा-भक्ति इस देश से ही सम्बद्ध करती है। परन्तु अभिलेखों और उनके सारगर्भित तथ्यों का मूल्यांकन किये बिना ही डा० बोस (हिस्ट्री आफ दि चन्देलाज़-पृ० ३-९) स्मिथ और रसल के ही मतों की पुनरावृत्ति करते हुए चन्देलों को गोंड या भारों से ही सम्बद्ध करते हैं। वे कहते हैं—

"Modern scholars do not place any reliance upon the conception of the Chandellas with the lunar race of Kshatriyas.....Smith thought that the Chandellas were in origin a non-Aryan people, associated with the aboriginal Gonds and Bhars.....Mr. R. V. Russel supports the view of Smith and takes the Chandellas to be a section of one of the indigenous tribes which rose to power. But while Smith is inclined to the view that the Chandellas were originally Gonds, Russell thinks that they sprang from the aboriginal Bhars... ...Whatever may be the weakness of Smith's arguments, his assumption that the Chandellas sprang from aboriginal Gonds and Bhars seems quite feasible.....We are inclined to agree with Russel that the Chandellas probably sprang from the Bhars and not from the Gonds. Not only are Russell's arguments more convincing, but even Smith agrees that, 'it is, however, well known that the Bhars were once numerous in Banda, and the information which I have collected proves that in former times they lived in every part of the Hamirpur district, and were even found in the Jhansi district west of the Dhasan River.'"

इस प्रकार स्मिथ और रसल के विचारों को मान्यता दी गयी है। परन्तु प्रश्न होता है कि वि० सं० १०११ (६५३-५४ ई०) का यशोवर्मन् का खजु-

राहो लेख और उसके तथ्यों को प्रामाणिक साक्ष्य मानना चाहिये या इन विदेशी विद्वानों की आधुनिक अटकलों को। उत्तर स्पष्ट है। अभिलेख के तथ्यों का विवेचन करना तो दूर शायद डा० बोस साहब ने उस पर बिल्कुल ध्यान ही नहीं दिया। संभवतः मूल-अभिलेख भी न देखा हो तो आश्चर्य ही क्या। डा० रे (डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग २—पृ० ६६६) ने जो लिखा था—

“Nannuka is described as a touchstone to test the worth of the gold of the regal order.....like a garland.”

उसको वैसा ही नकल कर रख दिया। यह शायद सोचने की जरूरत नहीं समझी गई कि ‘रीगल आर्डर’ की ‘वर्थ’ को ‘टेस्ट’ करने का अभिप्राय क्या है। इस प्रकार इतिहास, अनुश्रुति, और संस्कृत से अनभिज्ञ अनारी ही स्मिथ और रसेल के मतों की भी पुष्टि कर सकता है। परन्तु फिर कांपता हुआ लिखता है कि सत्यतः कोई निश्चयात्मक और विश्वस्त प्रमाण नहीं है जिससे हम कोई अन्तिम निर्णय दे सकें। ये विचार तो अपरिपक्व ही हैं। लेकिन “अन्त में स्मिथ के मत में ही सत्यता है।”^१ परन्तु यह स्पष्ट सत्य तो ऊपर उल्लिखित अभिलेखों के उद्धरणों में ही पाया जा सकता है जहाँ क्षात्र-धर्म के पालन करने और उस परीक्षा में उत्तीर्ण निष्कलंक यश का वर्णन किया गया है। इससे अधिक स्पष्ट क्या हो सकता है कि वे शुद्ध क्षत्रिय थे जैसा कि ६५४ ई० के वंश-लेख से ज्ञात होता है। “आशस्त्रग्रहणादखण्डित महावीरव्रतप्रक्रियै”^२ (शस्त्र धारण द्वारा सम्पूर्ण वीरव्रत का पालन करने वाले) और ‘सवर्णा विधिनोवाह चाहमानकुलोद्भवा’^३ (सवर्ण विवाह विधि चाहमान कुलपुत्री से विवाह कथनों से भी उनका क्षत्रियत्व ही सिद्ध होता है।

चन्देलों के उदय और वंश परम्परा पर विभिन्न विद्वानों के मत—

१—स्मिथ

(इण्डियन ऐण्टीकेरी १९०८, भाग ३७, पृ० १३६-१३७) जैसा कि ऊपर बताया गया है स्मिथ महोदय चन्देलों की उत्पत्ति गोंडों से मानते हैं। इसका आधार यह है कि खजुराहों के चन्देल ठाकुर अपने आपको मनियागढ़ का मूल निवासी मानते हैं। मनिया देवी चन्देलों की अधिष्ठात्री देवी भी थीं। वे

१—Nemai Sadhan Bose, History of the Chandellas. p. 9;

२—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख श्लोक ३२

३—वही, श्लोक २१

गोडों की भी कुल देवी हैं। स्मिथ साहब यह भी मानते हैं कि चन्दबरदाई के अनुसार मनियागढ़ गोडों का एक गढ़ था। अतः उन्होंने बताया कि चन्देल निश्चित रूप से गोड या भार नामक आदिवासियों की संतान हैं।

१—रसल और बोस—इन महोदय ने चन्देलों को भारों से सम्बन्धित बताया है।

३—श्री सी० बी० वेंच

वेंच (हिस्ट्री ऑफ हिन्दू मेडेवेल इण्डिया, भाग २) ने स्मिथ के मत का खण्डन कर बताया है कि चन्देल तो इस वंश का गोत्र नाम ही है। यह चन्द्रावैद्य गोत्र से निकला है।

४—डा० सिसिरकुमार मित्रा

डा० मित्रा (अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, पृ० १२-२०) सभी तथ्यों का आकलन करते हुए कहते हैं कि “वे अपने राजत्वकाल में ही चन्द्रवंशीय मान लिये गये थे। प्रारम्भ में ही इस भारतीय जाति ने आर्यत्व प्राप्त कर लिया था (अर्ली रूलर्स आफ खजुराहो, पृ० २०)।

५—डा० हेमचन्द्र रे

डा० रे (डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, भाग २) का विचार है कि, “अनुश्रुति और अभिलेखों से इस वंश का मूल सम्बन्ध चन्द्र से बताया गया है। वंश का संस्थापक खजुराहो में प्रतिष्ठित किया गया था जिसकी पुष्टि अभिलेखों और विदेशी इतिहासकारों से भी होती है। चन्देलों के प्रारम्भिक लेख खजुराहो से प्राप्त हुए हैं और अरब लेखक कामिल के अनुसार भी इस वंश का सम्बन्ध खजुराहो से था। कनिंघम द्वारा धंग के राज्यकाल की प्रारम्भिक तिथि ६५४ ई० से प्रत्येक शासन-काल के २०-२५ वर्ष के हिसाब से पीछे गिनते हुए नन्नूक की तिथि अनुमानतः नवीं शताब्दी के प्रथम चरण में निर्धारित की गयी। पुनः सम्वत् २२५ को जो कि चन्देलों की परम्परागत स्थापना की तिथि थी, हर्ष संवत् का मानकर $(२२५ + ६०६ = ८३१ \text{ ई०})$ उपर्युक्त तिथि के समीप ही पहुँचे। इसके अतिरिक्त भी अनुश्रुति और अभिलेखों में एकमत्य है यदि हम चन्द्रवर्म को नन्नूक की विरुद्ध ही मानें” (डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया पृ० ६६७)।

१—हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज पृ० २८-३८

६—महोबा खण्ड के आधार पर चन्द्रवर्मन् की उत्पत्ति

काशी के गहरवार राजा इन्द्रजीत के पुरोहित हेमराज की हेमावती नामक कन्या से ही चन्द्र के सम्पर्क द्वारा ही चन्द्रवर्मा की उत्पत्ति बतायी गई है ।

वह सोलह वर्ष की अवस्था में ही विधवा हो गई और जब वह सरोवर में स्नान करने गई तो चन्द्रमा ने उसका आलिंगन कर लिया । परन्तु हेमावती दोष से विक्षुब्ध होकर चन्द्रमा को शाप देने के लिये उद्यत हुई । चन्द्रमा ने उसे समझाते हुते बताया ।

“देवि ! इससे उत्पन्न पुत्र पृथ्वी का सम्राट् होगा और उससे कई वंश शाखाएँ निकलेंगी । तुम भयातुर और चिन्तित न हो । यह यशस्वी पुत्र कर्णावती (केन) नदी के तट पर उत्पन्न होगा । तुम उसे खजुराहो में ले जाकर एक यज्ञ करना । यह वहीं का शासक बन जायगा । कालंजर पर यह एक दुर्ग की स्थापना करेगा । परन्तु १६ वर्ष की आयु होने पर तुम एक भाण्ड यज्ञ करना जिससे यह कलंक भी नष्ट हो जायगा । उसी समय काशी को छोड़कर कालंजर पर्वत पर चली जाना ।”

इस भविष्यवाणी के अनुसार हेमावती के गर्भ से पुत्र पैदा हुआ । मानो वह दूसरा चन्द्र ही हो । उसका नाम भी चन्द्रवर्मा रखा गया । १६ वर्ष की अवस्था में उसने एक सिंह का बध किया । चन्द्रदेव ने ही प्रगट होकर प्रसन्नता के साथ उसे मणि दी और राजनीति की शिक्षा भी दी । चन्द्रवर्मा ने कालंजर में किला बनाकर खजुरपुर (खजुराहो) में यज्ञ की और वहीं पचासी मन्दिरों का निर्माण कराया । अंत में महोत्सव नगर या महोबा ही राजधानी बन गयी ।

अतः इस जनश्रुति से भी कई सत्य घटनाओं का ज्ञान होता है । खजुराहो आज भी अपने मंदिरों के लिये प्रसिद्ध है । जैसा कि डा० रे मानते हैं चन्देलों की शक्ति का उदय भी कालिंजर और खजुराहो से ही हुआ ।

नन्नुक

खजुराहो से प्राप्त लेखों के आधार पर नन्नुक नृप या महीपति ही इस वंश का प्रारम्भिक शासक था । अभिलेखों में प्राप्त वर्णन से ज्ञात होता है कि वह वीर पराक्रमी और विजेता था । वह धीरे धीरे इस महावंश का

प्रतापी शासक बन गया—

कालेनेह महावंशे प्रशंसा प्रांशुरंशुमान् ।

मुक्तामणिरिव श्रीमान्नन्नुकोभून्महीपतिः ॥^१

उसने अपने पराक्रम से विद्वेषियों और वैरियों का दमन किया :

तेन विक्रमधनेन धन्विना क्रामता युधि वधायविद्विषाम् ।

धुन्वताधनुरधिज्यमर्जुनं स्मारिता दिविविमान गामिनः ॥^२

इस प्रकार निस्सन्देह वह भी अन्य वंश-प्रस्थापकों की भाँति महान् व्यक्तित्व वाला क्षत्रिय था जिसने त्वस्तों को त्राण देकर क्षात्रधर्म का पालन किया । इससे ऐसा ज्ञात होता है कि प्रतिहार शासक रामभद्र की उसने सहायता की होगी, क्योंकि कालंजर मण्डल में ही प्रतिहारों की शक्ति क्षीण होने लगी थी । डा० रे का मत है कि नन्नुक प्रतिहारों का करद शासक था ।^३ नृप और महीपति की उपाधियों से उसे स्वतन्त्र शासक नहीं माना जा सकता । तत्कालीन युग में सामन्त भी इन उपाधियों को धारण करते थे । डा० बोस भी उसे प्रतिहारों का सामन्त ही मानते हैं ।^४

वाक्पति

नन्नुक का पुत्र वाक्पति भी यशस्वी और पराक्रमी शासक था जिसने विन्ध्य और उसके आस पास रहने वाले किरातों, सम्भवतः गोंड और भारों, को भी आधीनस्थ किया । उसका यश तीनों लोकों में फैल गया था ।^५ उसे भी 'क्षितिप'^६ और पृथ्वी का भूषण^७ कहा गया है । इससे ज्ञात होता है कि अभी यह भी सामन्त शासक ही था । उसने भी वंश की प्रतिष्ठा को बढ़ाया ।

जयशक्ति व विजयशक्ति

वाक्पति के जयशक्ति और विजयशक्ति नामक दो बोर पुत्र थे ।^८ श्रीमान् विजय तो विश्व विजय के लिए ही पैदा हुआ था । उसने सुन्दर और

१—जयवर्म देव और धंग का खजुराहो लेख, श्लोक १४

२—वही, श्लोक १५

३—डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादने इण्डिया भाग दो, पृ० ६६८-६६९

४—यशोवर्मन का खजुराहो लेख, श्लोक १२

५—धंग और जयवर्म देव का खजुराहो लेख, श्लोक १६

६—वही, श्लोक १८

७—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक १४

८—धंग और जयवर्मन देव का खजुराहो लेख, श्लोक १८

श्रेष्ठ घोड़ों की सेना से दक्षिण दिशा को रौंद डाला ।^१ जयशक्ति वाक्पति का ज्येष्ठपुत्र था जो सिंहासनावृद्ध हुआ । दोनों ही वीर थे जिन्होंने शत्रुओं का दमन किया था (तयों द्योरप्यमितप्रतापदावाग्निदग्धाहितकाननानि)^२ । अतः स्पष्ट है कि जयशक्ति और विजयशक्ति दोनों ही इस वंश के महान् उन्नायक थे ।

जयशक्ति को जय, जेजा और जेजाक भी कहा गया है । उसके नाम से ही उसका अधिकार क्षेत्र जेजाक मुक्ति-जजाहुति अथवा जझौती भी कहा गया है । स्कन्द पुराण के अनुसार जहाहुति भारत के ७२ प्रदेशों में से एक देश था जिसमें ४२ हजार गांव सम्मिलित थे ।^३ इससे यह सिद्ध होता है कि मिहिर भोज के समय तक अभी जहाहुति एक छोटा ही राज्य था । अलबरूनी (सचाऊ, भाग १, पृ० २०२) के अनुसार जेजाहुति की कीराजधानी खजुराहो थी ।

जयशक्ति के बाद उसका अनुज विजयशक्ति ही शासक हुआ ।

जयशक्ति और विजयशक्ति भी अभी स्वतन्त्र शासक न होकर सामन्त ही थे । परन्तु वे अपने सैन्य-बल से सत्ता जमाने का बराबर प्रयत्न कर रहे थे ।

राहिल

विजयशक्ति के व्यक्तित्व और शक्ति की प्रशंसा अभिलेखों में की गई है । उसकी शक्ति का स्मरण करते ही उसके शत्रुओं की नींद अथवा शान्ति दूर हो जाती थी ।^४

वह अपनी तलवार (असि, कृपाण) की शक्ति के लिये प्रसिद्ध था । उसके धनुष की टंकोर से भी शत्रु भाग जाते थे । इस प्रकार वह भी वंश के उत्थान में बाधक शत्रुओं का दमन करता रहा । वह नीतिज्ञ भी था क्योंकि

१—धंग और जयवर्मन देव का खजुराहो लेख, श्लोक १०

प्रवरहरिचभूमिः क्रान्त पर्यन्तभूमिः ।

सुहृदुपकृति दक्षो दक्षिणाशां जिगीषुः ॥

२—यशोवर्मन् का खजुराहो, लेख-श्लोक १५

३—स्कन्द पुराण, १-२-३६-१४२,

४—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख श्लोक १६ :

तन्नानुजन्मा तनयं राहिलाख्यमजीजनत् ।

निद्रादरिद्रतायान्ति यन्मिचिन्त्य निशिद्विषः ॥

वह अमित्रों का दण्ड-विधान और मित्रों का आदर करता था। अतः स्पष्ट है कि उसने चेदि शासक कोवकल के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर राजनीतिक मित्रता को भी बढ़ाया, क्योंकि इस समय तक चेदि के राजाओं का भी तत्कालीन राजनीति में यथेष्ट महत्व जम चुका था। इस प्रकार राहिल ने भी चन्देल-राज्य के उत्थान में यथेष्ट वृद्धि की। अभिलेखों में, इसीलिये उसका भी उसी तरह गुणगान किया गया है, जिस प्रकार अन्य वंश निर्माताओं की प्रशंसा मिलती है। राहिल ने भी अपने वंशोन्नति के बाधकों और विद्वेषियों को पशुओं की भांति यज्ञ की अग्नि में आहुति की भांति झोंक दिया—

भीमभ्राम्यदसिस्तुचिस्त्रवदसृक्संपादिताज्यक्रिये ।

ज्यानिर्घोषवषटपदे क्रमचरत्सरब्धयोधात्विज ॥

अश्वान्तः समराध्वरे प्रतिहत क्रोधानिलोद्दीपिते ।

वैरोर्दचिषि यः पशुनिव कृती मन्त्रैर्जुहाव द्विषः ॥

यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक १७

यह राष्ट्र यज्ञ ही थी जिसके सम्पादन में राहिल ने अपनी शक्ति और शस्त्रों को जुटा कर शत्रुओं को नष्ट किया। इसीलिये उसके अभ्युदय की प्रशंसा की गई है। उसके उदय से अंधकार मिट गया था—

तस्मान्नृपतिसमुद्रादुदपादि नरेन्द्रचंद्रमाः सुनुः ।

श्री राहिलनामा विहृततमा वंदिताभ्युदयः ॥

उसकी राजसभा में सुहृद सभासदों का उल्लेख इस राज्य के अभ्युदय का ही परिचायक है। अतः स्पष्ट है कि राहिल की कीर्ति भी शत्रुदमन और राज्य-प्रतिष्ठा पर आधारित थी।^१

राहिल की विजयों का वर्णन चन्द बरदाई ने भी दिया है। रासो के अनुसार राहिल ने रासन (परगना बदौसा) की स्थापना की थी। रासन की पहाड़ी पर आज भी खंडहर मिलते हैं। अजय गढ़ के एक मन्दिर में उसका नाम कई स्थानों पर अंकित पाया गया है। महोबा में राहिल-सागर आज भी उसकी स्मृति बनाये हुए हैं।

अतः सिद्ध होता है कि राहिल एक महान विजेता, शासक, और निर्माता था जिसने चन्देल वंश की कीर्ति में वृद्धि की। यहीं से चन्देलों के इतिहास का एक नया युग प्रारम्भ होता है, जब चन्देल सत्ता की स्वतन्त्र प्रतिष्ठा हुई।

अतः यदि प्रारम्भ में चन्द्र अथवा चन्द्रवर्मा से लेकर (आचन्द्र) राहिल तक चन्देल राजाओं (चंद्राक्षेय वंशजाः क्षितिभुजः)^१ के चरित्र-व्यक्तित्व तथा उनके चतुर्दिक राजनीतिक वातावरण तथा विभिन्न विघटन-शक्तियों पर दृष्टि पात करें तो चन्देलों का उदय-उत्थान स्पष्टतः समझ में आ सकता है—

१. प्रतिहार वंश और उसके शासकों की स्थिति,
२. राष्ट्रकूटों के उत्तरी अभियान,
३. दोनों शक्तियों के मध्य में स्थित कालंजर-मण्डल की दशा और चन्देलों का उत्थान तथा

४. चेदि के कलचुरि और शाकम्भरी में चाहमानों का उदय ।

प्रत्येक व्यक्ति और वंश का जीवन चढ़ाव और उतार-उत्थान और पतन-की काल-चक्रिका पर घूमता है । प्रतिहार वंश की भी जरा (बुढ़ापा) अवस्था के लक्षण महेन्द्रपाल के बाद से ही दिखलाई पड़ने लगे । राज्य-शरीर के भिन्न भिन्न अंगों के जोड़ ढीले पड़ गये । द्वेष, ईर्ष्या और कलह के साथ ही साथ शक्ति दौर्बल्य भी बढ़ता ही गया । कई वंशधर उत्तराधिकार के लिए लड़ते हुए अपनी वंश सत्ता को स्वयं ही खोखला बनाने लगे । स्वाभाविक है कि हमारी कमजोरी से ही हमें रोग भी घेरते हैं और शत्रु तथा स्वार्थी मित्र भी पतन का मार्ग बना देते हैं । राजनीति में कोई किसी का मित्र या शत्रु नहीं होता है । स्वार्थ से ही प्रेरित होकर मित्र या शत्रु बनते तथा बिगड़ते रहते हैं । प्रतिहारों की पतनोन्मुख दशा में जो कभी उनके साथी, सहायक और सामन्त थे वे ही स्वयं सम्राट बन बैठे । आखिर कब तक इन्तजार भी करते ।

इस प्रकार आन्तरिक दोषों और दौर्बल्य से प्रतिहारों की शक्ति में ह्रास होता गया और अन्य पड़ोसी तथा दूरस्थ प्रान्तों में सामन्त स्वतन्त्र होते गये । नयी वंश सत्ताएं भी बनने लगीं ।

इस दृष्टि कोण से प्रतिहारों और चन्देलों के पारस्परिक सम्बन्धों पर दृष्टिपात करना सापेक्ष है । डा० रे का मत है कि “इसमें शायद ही संदेह है कि जमुना के दक्षिण चन्देल शक्ति का उत्कर्ष ही उत्तरी भारत में गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण था ।”^२ परन्तु डा० रे यह भी मानते हैं कि “इस कथन को, कि चन्देल वंश के संस्थापक (चन्द्रवर्मा-नन्नुक)

१—धंग और जयवर्मन देव का खजुराहो लेख-श्लोक १२

२—डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, भाग दो, पृ० ६६५

ने परिहारों के स्थान पर अपना राज्य स्थापित किया" नहीं माना जा सकता^१ । नन्नुक के समय (लगभग ८३१ ई०) से लेकर १०वीं (ईसा) शताब्दी के प्रारम्भ तक गुर्जर प्रतिहारों की शक्ति अपने शिखर पर थी और यह नहीं माना जा सकता कि इस युग में उन्हें जमुना के दक्षिणी प्रदेश से बाहर खदेड़ने में चन्देलों को सफलता मिली होगी । अधिक सम्भव यही है कि नन्नुक चन्देल नागभट द्वितीय (लगभग ८१५-३३ई०) के सामन्त रूप में ही खजुराहो के आस-पास छोटे से भू भाग पर शासन करता रहा ।^२

इस प्रकार स्मिथ महोदय के विचार को, "कि ८३१ ई० के आस पास नन्नुक चन्देल परिहार सरदार को हटाकर जेजाकभुक्ति के दक्षिणी भाग का स्वामी बन गया,"^३ नहीं मानते हैं । डा० रे मानते हैं कि नन्नुक ने प्रभुता का स्वतन्त्र रूप से ज़रा भी भोग न किया होगा । यह सत्य ही है कि नृप या मही-पति की उपाधियों से ही हम उनको स्वतन्त्र शासक नहीं मान सकते हैं ।^४

डा० बोस का विचार है कि प्रतिहारों की कई छोटी छोटी शाखाएँ विभिन्न भागों पर शासन कर रही थीं और ऐसी ही किसी एक महोबा की परिहार शाखा का उन्मूलन चन्देलों ने महोबा या उसके आस पास किया । परन्तु वे कनौज के प्रतिहारों के आधिपत्य को मानते रहे ।^५ इस प्रकार डा० बोस, स्मिथ साहब की भी बात मानते हैं और डा० रे के भी मत की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि 'महीपति और नृप की साधारण उपाधियों से यही ज्ञात होता है कि 'नन्नुक एक सामन्त ही था । निस्सन्देह, वह गुर्जर प्रतिहारों का आधीनस्थ ही था । भोजदेव के बराह ताम्रपत्र लेख (८३६ ई०) से ज्ञात होता है कि उस समय कालञ्जरमण्डल प्रतिहार साम्राज्य का एक भाग ही था । नन्नुक पहले नागभट द्वितीय का सामन्त था ।.....नन्नुक ने सामन्त रूप से ही रामभद्र की भी उसके शत्रुओं के विरुद्ध सहायता की ।... ..अधिक संभव यही है कि नन्नुक प्रतिहारों का प्रबल सामन्त ही बना रहा ।'^६

१—डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, भाग दो, पृ० ६६७

२—वही, पृ० ६६७-६६८

३—स्मिथ, अली हिस्ट्री आफ इण्डिया, (१९२४) पृ० ४०५

४—रे-डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया भाग, दो, पृ० ६६८

५—नेमई साधन बोस, हिस्ट्री ऑफ दि चन्देलाज़, पृ० १६

६—बोस, हिस्ट्री आफ दि चन्देलाज़, पृ० १७-१८

परन्तु डा० मित्रा का विचार है कि उसी क्षेत्र की किसी जाति के सरदार नन्तुक ने प्रतिहारों को पालों और राष्ट्रकूटों के साथ युद्ध में फंसा देखकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता की प्रतिष्ठा की।^१

डा० मित्रा तत्कालीन राजनीतिक दशा का चित्र खींचते हुए मानते हैं कि प्रतिहारों की इतनी शक्ति नहीं बढ़ी हुई थी जितना डा० रे मानते हैं। साथ ही, डा० आर० सी० मजूमदार के आधार पर जैनग्रन्थ प्रभावक चरित को वह अविश्वस्त मानते हुए नागभट द्वितीय का कनौज में शासन ही नहीं मानते हैं।^२ यह विचारधारा बहुत पुरानी और बेजान हो गई है। नागभट द्वितीय कनौज का ही राजा था।^३ इस प्रकार डा० मित्रा के मत में सत्यता नहीं है। डा० रमाशंकर त्रिपाठी का विचार है कि “अनुवृत्तों और अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इस राजकुल के प्रारम्भिक राजा कनौज के प्रतिहार सम्राटों के सामन्त थे। परन्तु हर्षदेव चन्देल ने प्रतिहारों के गृह-कलह के समय भोज द्वितीय के विरुद्ध उसके सौतेले भाई महीपाल (क्षितिपाल) की सहायता की और फलतः उसे गद्दी देकर कुल की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ाई। यशोवर्मन् के राज्य-काल में चन्देलों ने पर्याप्त मात्रा में स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली.....।”^४ डा० पुरी के अनुसार ‘चन्देलों और प्रतिहार शासकों में तीन प्रकार के सम्बन्ध थे—अधीनस्थ सामन्तरूप, नाम मात्र की स्वतन्त्रता का उपभोग करते हुए सहायक स्वरूप और समानता का सम्बन्ध जिसमें आधिपत्य की छाया मात्र बच गई थी। निस्सन्देह हर्ष के पूर्व चन्देल प्रतिहारों के सामन्त ही थे।’^५

हर्ष

इस प्रकार अनेक उद्धृत शत्रुओं के विजेता (भुजविजितानेक दृष्टारि-वृन्दाः)^६ हर्ष प्रतिहार शासक क्षितिपाल देव को गद्दी पर बिठाने से ही इस वंश का उन्नायक माना गया है। अतः उसके सत्तारूढ़ होते ही (९१५ ई०) इस वंश का एक नया दौर ही शुरू होता है।

१—डा० सिसिर कुमार मित्रा, दि अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, पृ० २९-३०

२—वही, पृ० ३०

३—पीछे देखिये अ० ५

४—डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २७९

५—डा० पुरी, ‘हिस्ट्री आफ दि गुर्जर प्रतिहाराज’, पृ० ८९

६—एपी. इण्डि०, भाग १, पृ० १२२, श्लोक ७

७—वही, पृ० १२२, पंक्ति १० : “पुनर्येन श्रीक्षितिपालदेवः नृपतिः सिंहासने स्थापितः।”

अभिलेखों में उसे राजाओं में श्रेष्ठ (भूमिभृताम्बरिष्ठः)^१ कहा गया है। उसकी यह श्रेष्ठता उसके राजगुणों पर आधारित थी। ये गुण निम्नलिखित हैं—

सत्त्व—

हर्ष ने जो उपर्युक्त कार्य किये उनसे उसकी अपार शक्ति का पता चलता है। यशोवर्मन् का खजुराहो लेख भी यही बताता है कि उसमें महान् संजीवनी शक्ति, सत्त्व, था।

श्री हर्ष भूपमथ भूमिभृताम्बरिष्ठः

सोसूत कल्पतरुकल्पमनल्पसत्त्वः।

अद्यापि यस्य सुविकासियशः प्रसून—

गन्धाधिवास सुरभीणि दिगन्तराणि ॥^२

स्पष्ट है कि हर्ष बड़े जीवट का पुरुष था जिसका यश वंशशक्ति के विकास पर ही आधारित था।

इसीलिये वह भूप (नाम रूप में सामन्त) होता हुआ भी “भूमिभृताम्बरिष्ठ” था।

सत्त्वगुण के अतिरिक्त उसमें विद्या, धन, बल, बुद्धि, तेज, क्षान्ति, सन्तोष, विजेता के गुण, विनय, स्वाभिमान, और शुद्धाचारण आदि अनन्त गुण विद्यमान थे—

यत्न श्रीश्च सरस्वती च सहिते नीतिक्रमो विक्रम-

स्तेजः सत्त्वगुणोज्ज्वलं परिणता क्षान्तिश्च नैसर्गिकी

सन्तोषो विजिगीषुता च विनयो मानश्च पुण्यात्मन—

स्तस्यानन्तगुणस्य विस्मयनिधेः किन्नाम वस्तुस्तुमः ॥^३

वह धर्म या मर्यादा का उल्लंघन करने में भीरु, कृष्णभक्त, पाप का विनाशक, अपने गुणों के विषय में सौम्य, दुष्टता से रहित, झूठ बोलने में पैदायशी गूंगा और इसीलिये अपने स्वभाव के लिये प्रथित था—

भीरुर्धर्मापराधे मधुरिपुचरणाराधने यः सतृष्णः

पापालापेऽनभिज्ञो निजगुणगणना प्रक्रमेष्वप्रगल्भः।

१—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक १८, पंक्ति १.

२—वही, श्लोक १८

३—वही, श्लोक १८

शून्यः पैशुन्यवादेऽनृतवचनसमुच्चारणे जातिभूकः

सर्वत्रैवं स्वभावप्रथितगुणतया नाम कः स्तूयतेऽसौ ॥^१

उसकी नीतिज्ञता और धार्मिकता उसके और चाहमान कुलजा कन्या के साथ वैवाहिक सम्बन्ध से ज्ञात होती है। यह विवाह सवर्ण-विधि पर आधारित राजनय से संवलित था—

सोनुरूपां सुरुपाङ्गः कञ्चुकाख्यामकुण्ठधीः

सर्वणाम्बिधिनोवाह चाहमानकुलोद्भवां ॥^२

धंग और जयवर्मदेव के खजुराहो लेख में भी हर्ष के शारीरिक स्वरूप, चरित्र, गुणों और पत्नी की साधुता का सुचित प्रस्तुत किया गया है। हर्ष न केवल 'नृपतिगुण निकेतः' ही था प्रत्युत उसमें मानवी उदात्त भावनाओं और राजर्षि-जीवन की द्विवेणी का संगम था (यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक २४-२६)।

हर्ष के समय चन्देल राज्य और पुर की प्रतिष्ठा हो चुकी थी (यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक २६)। परन्तु वह शील और स्वभाव के कारण मर्यादा का उल्लंघन करने से डरता था। संभवतः यहाँ उसका और गुर्जर सम्बन्धों का न तोड़ना ही अभिप्रेत है। उसकी शासकीय स्वतन्त्रता तो उसके कलचुरियों और चाहमानों के साथ होने वाले वैवाहिक सम्बन्धों से भी ज्ञात होती है। हर्ष के नन्यौर ताम्रपत्र लेख में अपनी सैनिक शक्ति से राजाओं को करदीकृत बनाते हुए बताया गया है। इस प्रकार यदि गुर्जर-प्रतिहारों को नाममात्र प्रभु मानते हुए हर्ष चन्देलराज्य को सशक्त बनाता रहा तो यह उसकी नीति ही थी जिससे गुर्जर प्रतिहार भी उसके शत्रु नहीं बन गये। वंशोत्थान के शीघ्रकाल में यही अभीष्ट भी था और था पुण्यात्मा हर्ष के चरित्र के अनुरूप भी।

यशोवर्मन्

नृपकुलतिलकः श्रीयशोवर्मराजः

क्षितिधरतिलकः श्रीयशोवर्मराजः ।

हर्ष के बाद उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी यशोवर्मन् (उपनाम लक्ष्मवर्म) राजा हुआ। राष्ट्रकूटों के उत्तरी अभियानों का चन्देलों की प्रभुता पर बहुत

१—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक २०

२—वही, श्लोक २१

अधिक प्रभाव पड़ा ।^१ राष्ट्रकूटों के आक्रमणों, अरब शासकों का भय और पाल राजाओं के साथ प्रतिहारों के लगातार युद्धों का परिणाम उत्तरी भारत की राजनीति पर बहुत ही बुरा पड़ा । इसके अतिरिक्त बहुशासन का युग ही चल पड़ा । उत्तरी भारत की प्रभुता के लिये महान टूर्नामेन्ट ही शुरू हो गया जिसमें विभिन्न देशों और दिशाओं की टीमें संघर्ष करने लगीं । अपनी-अपनी होड़ में दूसरों ने ही वाजी मार ली । चन्देल शासक यशोवर्मन् भी इस रणक्षेत्र में अदम्य उत्साह और अतुल पराक्रम से असीम महात्वाकांक्षा को लेकर उतर पड़ा ।

नृपकुल-तिलक श्री यशोवर्मन् का वसुधा पर अवतरण ही वीर शक्ति (क्षेत्रतेज) का युग था । उसके तेज से अंधकार ही मिट गया । इस प्रकार पृथ्वी पर एक अनुपम चित्रकर्म की रचना हुई (धात्रीतलंसितसुधाधवलत्व-चित्रम्) जो संस्कृत भाषा, काव्य तथा कला के उत्कर्ष में आज भी देखा जा सकता है । इस साहित्य और कला का मूलाधार पृथ्वी-पालन, त्रयीधर्म का उन्नयन, गो-द्विजों की प्रसन्नता और प्रजा-सुख पर आधारित था । यही यशोवर्मन् देव की शासन भित्ति भी थी, जिस पर चन्देल गौरव की चित्रणा की गई :

पाताद्भूमिपाता पृथ्वीं त्रयीधर्मः प्रवर्द्धतां ।

नन्दन्तु गोद्विजन्मानः प्रजा प्राप्नोतुनिर्बवृत्तिम् ॥

अतः फिर एक बार उत्तरी भारत में नवयुग-निर्माता यशोवर्मदेव या श्री लक्ष्मवर्म (श्री लक्ष्मवर्माभिधः) का उदय हुआ ।

चरित्र और व्यक्तित्व

किसी भी शासक के शासन में उसके व्यवित्व तथा चरित्र का विशेष महत्व है ।

पतृक गुण

पुत्र में माता-पिता के गुणों का होना स्वाभाविक है । यशोवर्मन् की माता परमसाध्वी-सती और चाहमान कुल की क्षत्राणी थी, जिसका नाम कञ्चुका देवी था ।^२ पिता हर्ष भी साधुता, शीलता, सत्यता, शौर्य, नीति तथा त्याग के गुणों से युक्त था । अतः उन दोनों का पुत्र भी दानी, पराक्रमी, यशस्वी,

१—रे, डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ६७१

२—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक २१-२२

धंग और जयवर्मदेव का खजुराहो लेख, श्लोक २६-३१

धार्मिक, शूर, विनम्र और प्रथित महिमा वाला था—

स दाता राधेयः स च शुचिवचाः पांडुतनयः

स शूरः पार्थोपि प्रथित महिमानः किमपि ते ।

व्यतीताः किं ब्रूमो यदि पुनरिहस्युः स्वचरिते

ह्रिया नम्री कुर्युर्वदनमवलोक्यैनमधुना ॥^१

यशोवर्मन् की महिमा कर्ण, युधिष्ठिर और अर्जुन के समान थी । ये सभी गुण हर्ष में विद्यमान थे । पिता के समान ही यशोवर्मन् त्रस्तों की रक्षा के लिये शस्त्र ग्रहण करता था (त्रस्तत्वातरित तत्र भूभृति नृणां क्लेशाय शस्त्रग्रहः) ।^२

राजगुण (महावीर द्रुती) पराक्रम

उसमें असीम राजोचित गुण थे ।^३ उसकी शरदकालीन चन्द्रमा के समान कान्ति (शारदेन्दुद्युति)^४ प्रजा को सुखद थी । उसका जन्म ही प्रजा के सन्तोष के लिये हुआ था जिसने कीर्ति को अपनी भुजाओं के आश्रित बनाया—

सन्तोषाय प्रजानामजनि निज भुजाश्रान्त विभ्रान्त कीर्तिः ॥^५

युद्ध भूमि में उसकी भुजाओं में तलवार तथा क्रुद्ध नेत्र और भयानक मुख मुद्रा को देखकर ही शत्रु लोग डर जाते थे—

यं दृष्ट्वैव कृपाणपाणिमकृतव्यापारभारं युधि

क्रोधाक्रान्त विलोचनोत्पलदलध्रुभंगभीमाननम् ॥^६

और यशोवर्मन् के आतंक से शत्रुओं के हृदय से उत्साह, हाथ से धनुष, मुख से प्रसन्नता, और दिशाओं से यश नष्ट होकर उनके शरीर में कम्पन उत्पन्न कर देता था ।^७ जब से उसने शस्त्र ग्रहण की दीक्षा ली थी उसने 'महावीर-

२—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक २४

३—वही, श्लोक २५

४—धनंजयवर्मन देव का खजुराहो लेख श्लोक, ३६-३९

५—वही, श्लोक ३९

६—वही, श्लोक २४

७—वही, श्लोक २५

८—वही, श्लोक २५

व्रत' का पालन किया था (आशस्त्यग्रहणादखण्डित महावीरव्रत प्रक्रियै) ।^१ इस महावीरव्रत को ही बराह पुराण में शौर्य व्रत कहा गया है । इस प्रकार उसकी अनिन्दित कीर्ति उसके पौरुष पराक्रम पर निर्भर थी^२ ।

अतः शौर्य, उदारता और नय (नीतिज्ञता) आदि गुणों के आधार पर उसका यश फैल रहा था ।

यशः प्रसरं (यश का विस्तार)

शरदकालीन सुखद चन्द्र के समान कान्ति वाले यशोवर्मन् (लक्षवर्म) का यश-प्रसार उसकी दिग्विजयों और शत्रुओं के विनाश से हुआ—

यो लक्षवर्म नृपतेः शरदिन्दुकान्त-

माख्यातुमिच्छति यशः प्रसरं वचोभिः ।

लोकालोक शिरः शतप्रतिहत ज्योतिर्विवस्वान्नय-

त्तस्य क्रामति तन्निशाकर महा श्रीस्पृद्धि शुभ्रं यशः ॥

धीरो दिग्विजयेषु केलिसरसीन्तीव्र प्रतापं दधद्...

यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ३७-३६

कालंजर-विजय

उसकी दिग्विजय-वर्णन के बाद कालंजर विजय का उल्लेख है । परन्तु इस दुर्ग पर अधिकार करने के बाद ही वह अपने को सुरक्षित कर दिग्विजय के लिये निकला होगा । कालंजर के पहाड़ी दुर्ग की विजय यशोवर्मन् की सबसे बड़ी उपलब्धि है । परन्तु निश्चित रूप से यह नहीं ज्ञात होता है कि उसने कालंजर को किससे छीना । अल्टेकर, त्रिपाठी, बोस, जैदेव, मित्रा, रे और मीराशी प्रभृति विद्वानों की विभिन्न धारणाएँ हैं । डा० अल्टेकर के अनुसार यशोवर्मन् ने कालंजर और चित्तकूट के दुर्गों को ९५३ ई० के पूर्व राष्ट्रकूटों से छीना ।^१ डा० मीराशी,^२ बोस,^३ जैदेव^४ और मित्रा^५ के अनुसार यह विजय कलचुरी सम्राट से सम्पन्न हुई ।

१—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ३२

२—वही, श्लोक ३३

३—अल्टेकर, राष्ट्रकूटों का इतिहास पृ० ११३

४—कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इन्डोकेरम्, भाग ४, पृ० ५८-६९ (भूमिका)

५—नेमई साधन बोस, चन्देलों का इतिहास, पृ० ३०

६—डा० जैदेव : प्रबोध चन्द्रोदय—शोध प्रबन्ध (डा० बोस द्वारा उद्धृत—

पृ० ३०)

७—डा० यस० के० मित्रा, अर्ली खजुराहो कूलर्स, पृ० ३७-४२

कालंजर-माहात्म्य

बहुत प्राचीन काल से ही कालंजर शिव का पवित्र स्थान रहा है। हिमालय के दक्षिण और कालंजर के उत्तर का भूखण्ड पुण्य देश था जो रुद्रप्रासादों (शिव-मन्दिरों) से सुशोभित था।^१ कालंजर नीलकण्ठ का अधिष्ठान था (कालंजरे नीलकण्ठम्)।^२ इस श्रेष्ठ और महान् दुर्ग को सहज ही यशोवर्मन् ने प्राप्त कर लिया (जग्राह क्रीडया यस्तिलकमिव भुवः किञ्च कालंजराद्रि)^३

इससे यशोवर्मन् की रण-दक्षता, शक्ति और नीतिनिपुणता ही प्रगट होती है। यह प्रतिहारों, राष्ट्रकूटों, चन्देलों और मुसलमानों के आधिपत्य में क्रम से जाता रहा। परन्तु कालंजर पर कलचुरियों के अधिकार की घटना बहुत दिनों तक प्रसिद्ध रही, क्योंकि दक्षिण के कलचुरियों को उनके लेखों में बड़े गर्व के साथ कालंजरपुरवराधीश्वर—कालंजर के उत्तमनगर के स्वामी—की उपाधि का उल्लेख किया गया है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि कलचुरियों का भी कालंजर पर अधिकार था। सोढढल के काल्ल ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि कलचुरि वंश का यशस्वी राजपुत्र कालंजर में स्वयं ही प्रतिष्ठित हो गया था। वि० सं० १०११ (सन् ९५४ ई०) के कलचुरि नरेश युवराज देव प्रथम यशोवर्मन् चन्देल से पराजित हुआ था। खजुराहो लेख से ज्ञात होता है कि यशोवर्मन् ने युद्ध में उस चेदि के राजा को पराजित किया था जिसके पास असंख्य सेना थी और जिसने अपने चरण कमलों को अनेक प्रसिद्ध राजाओं की मौलि-मणियों पर चढ़ाया था।^४

इन घटनाओं और यशोवर्मन् के खजुराहो लेख से ऐसा ज्ञात होता है कि क्षितिपाल (=महीपाल) गुर्जर और यशोवर्मन् चन्देल ने मिलकर कलचुरि सम्राट युवराज प्रथम और उनके मित्र राष्ट्रकूटों को पराजित कर ही कालंजर पर अधिकार प्राप्त किया।

भोज के बराह ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि कालञ्जर मण्डल कान्य-कुब्ज भुक्ति में सम्मिलित था। महेन्द्रपाल के भी राज्यकाल में यह प्रतिहारों के ही आधीन बना रहा। परन्तु महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद जब इन्द्र तृतीय

१—वामन पुराण ६-५५ (ii)-५६ (i); ७६.१४

२—वही, ६०-२७ पद्मपुराण १/३०-३२; कृत्यकल्पतरु, ८, पृ० ११८

३—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ३१

४—का० इ० इ०, भाग ४, भूमिका, पृ० ८३-८४

राष्ट्रकूट ने कालपी होते हुए यमुना को पार कर कनौज को ध्वस्त किया, उसी समय यह क्षेत्र-कालंजर मंडल-राष्ट्रकूटों के अधिकार में चला गया होगा। इसी आयति के समय चन्देल सामन्त-नृप ने महीपाल को पुनः सिंहासन पर बिठलाया। डा० रे का मत है कि यशोवर्मन् ने कालंजर को राष्ट्रकूटों से जीता न कि गुर्जर प्रतिहारों से। सी० वी० वैद्य और कनिंघम के अनुसार यशोवर्मन् ने कालंजर कलचुरि शासक से छीना।

राजशेखर के अनुसार महीपाल (प्रथम) ने मेकल प्रदेश (चेदि राज्य) को जीता था। कान्यकुब्ज का शासक कालंजर पर अधिकार किये हुए बिना मेकल की विजय नहीं कर सकता। अतः कालंजर मंडल पर महीपाल प्रथम का अधिकार बना रहा। उसकी मृत्यु के बाद ही प्रतिहारों के क्षीण युग में यशोवर्मन् ने गुर्जर-प्रतिहारों से ही कालंजर जीता, क्योंकि उसे 'संज्वरो गुर्ज-राणाम्' (गुर्जरों को ज्वर के समान संताप देने वाला) कहा गया है। यशोवर्मन् ही ने प्रतिहार शासक देवपाल को भी वैकुण्ठ की मूर्ति भी उसे देने के लिये दिवश किया था।

राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय ने भी कालंजर और चित्रकूट को जीता था। डा० अल्टेकर के मत से यशोवर्मन् ने ६५० ई० के पहले इसी से कालंजर जीता (राष्ट्रकूटाज, पृ० ११३)।

दिग्जय

उसके खजुराहो लेख (श्लोक ३३-३४) में बताया गया है कि (दिग्जयों में) बराबर घूमते रहने के कारण उसे कभी शान्ति ही नहीं मिलती थी और उसके अमानवी पराक्रम से संसार में समुद्र तक उसका अनिन्दित यश फैल गया था। इसी कारण एक ही पुत्र को जन्म देकर भी उसकी मां का शिर भी उसी प्रकार ऊँचा उठ गया था जिस प्रकार देवकी भी मधु आदि दुष्ट राक्षसों और शत्रुओं के विनाशक कृष्ण को जन्म देकर यशस्विनी हो गई थी—

निन्दामुपैमि पुरुषान्तरसङ्गमेत

शान्तिं न जातु सततभ्रमणक्रमेण

यस्यातिपीरुषनिरस्तमनुष्यभावे

लोके समुद्रगत कीर्तिरनिन्दितैव ॥ यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, ३३

एकैवोवाह लोकेऽस्मिन्पुत्रजन्मोन्नतं शिरः

कच्छुका (कञ्चुका) येन धीरेण देवकीव मधुद्विषा ॥ वही, ३४

इस प्रकार यशोवर्मन् का भी यश दुर्घर्ष शत्रुओं और दुष्ट राक्षसों के पराभव तथा त्रस्तों की त्राण देने से ही संबलित हुआ। जिस उत्कर्ष-कथा का

वर्णन उसके खजुराहो लेख के ३३-३४ श्लोकों में किया गया है, उसका ही वर्णन २८-३१ श्लोकों में मिलता है ।

उसका प्रताप 'मत्तकरीन्द्र' नामक शत्रुओं के समाप्त करने^१ (वही, श्लोक, ३६) पर भी आधारित था ।

साथ ही त्रस्तत्राता (श्लोक २५) यशोवर्मन् ने विख्यात क्षितिपाल की रक्षाक्रिया करते हुए बलपूर्वक चेदिराज को पराजित किया था (खजुराहो लेख, श्लोक २८) । इसी कारण लक्ष्म-छाया (लक्ष्मवर्म-अर्थात् यशोवर्मन की छाया यानी आश्रय से क्षितिपाल अर्थात् प्रतिहार शासक महीपाल की रक्षा करते हुए) यशोवर्मन् ने इन्दु (अर्थात् राष्ट्रकूट कुल) की कान्ति और मद को दूर कर उसके शरीर को कलुषित कर दिया था ।

लक्ष्मच्छाया कलुषवपुषः कान्तिमदद्वर्गमिन्दो
(यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक २९)

इन्दु का प्रयोग राष्ट्रकूट वंश के लिये हुआ है । देखिये राष्ट्रकूट वंशीय करहड ताम्रपत्र लेख में बताया गया है कि "आकाश का एक मात्र भूषण, तीनों लोकों के नेत्रों का आनन्द, कामदेव का सखा, कुमुदिनीनाथ और सुधासिन्धु चन्द्रमा, जो अपने सम्पूर्ण शरीर को देव-तर्पण द्वारा क्षीण कर चुका है, उसकी शशिकला को शम्भु शिर पर धारण करते हैं । उसी तिमिर नाशक चन्द्र से इस राजवंश का जन्म हुआ । उसी क्षितिपालवंश से यदुवंश का जन्म हुआ और उसी का वंशज रट्ट राजा था जिसका पुत्र राष्ट्रकूट, राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक हुआ ।"^१

राष्ट्रकूट वंशीय देउली ताम्रपत्र लेखों (I)^२ में भी इन्हीं तथ्यों को दुहराया गया है । नवसारी ताम्रपत्र लेखों में भी इसे इन्दु से प्रवर्तित वंश (... इन्दुस्ततोपि । तस्माद्वंशो यदूनां.....^३) बताया गया है राष्ट्रकूट राजाओं को 'पूर्णेन्दुबिम्बद्युति',^४ तथा 'शशाङ्क' कान्ति' उपाधियाँ दी गई हैं । जगत्तुंग

१—कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ सर आर. जी. भण्डारकर, भाग ३, पृ० २८०-२८१

२—वही, पृ० २६८-२९९; पृ० ३१२-३१३, श्लोक ३-७

३—वही, पृ० ३२१.

वही, पृ० ३२६-नवसारी ताम्रपत्र लेख

४—वही, पृ० ३२२, (II-First Side); पृ० ३२६ (III-First Side)

५—वही, पृ० ३२३, पंक्ति २; पृ० ३२७ (III-First Side) पंक्ति २

देव को भी “यदुकुलकुमुदेन्दुः”^१ कहा गया है ।

अभूजगत्तुंग इति प्रसिद्धस्तदंगजः स्त्रीनयनामृतांशुः^२

अतः स्पष्ट है कि खजुराहो लेख की उपर्युक्त पंक्ति का ‘इन्दु’ राष्ट्रकूट सम्राट का परिचायक है जो यशोवर्मन् का प्रतिद्वन्दी था । इस प्रतिद्वन्दिता का भी सुन्दर वर्णन काव्यात्मक ढंग से व्यक्त किया गया है ।

लक्ष्मच्छाया कलुषवपुषः कान्तिमद्दूरमिन्दो.

राष्ट्रकूट (इन्द्र तृतीय) और चेदिसम्राट उस भागे हुए तथा शरणार्थी गुर्जर-नरेश क्षितिपाल (महीपाल) — का पीछा कर रहे थे ।^३ भागे हुए क्षत्रिय का बुरी तरह पीछा करना निस्सन्देह राष्ट्रकूट-इन्दु के चरित्र पर कलंक था । यशोवर्मन् के युग में परस्पर दलबन्दी चल रही थी । डा० अल्टेकर कहते हैं : ८८८ ई० से कुछ पूर्व कृष्ण द्वितीय और भोज प्रथम के बीच वैर बढ़ गया । इसका युद्ध क्षेत्र मालवा था । भावनगर अजायबघर के लेख (एपी० इन्डिका १६-पृ० १७४-७) से ज्ञात होता है कि भोज ने कृष्णराज पर आक्रमण किया था और गुजरात शखाके कृष्ण के बेगुमर ताम्रपत्र लेख (८८८ ई०) से विदित है कि दान देने वाले सामन्त ने शत्रुओं को उज्जयिनी में पराजित किया, जबकि वल्लभ सम्राट सैनिक अभियान पर निगाह बनाये रहा । इन्द्र तृतीय के बेगुमर लेखों से ज्ञात होता है कि ९१४ ई० में भी (जिस समय यह लेख लिखा गया था) पुराने लोगों में गुर्जरों और राष्ट्रकूटों के बीच होने वाले युद्धों की स्मृतियाँ बनी हुई थीं । युवराज जगत्तुंग ने भी चेदि शासक के साथ इन युद्धों में भाग लिया था ।^४ इन कथनों से यशोवर्मन् के खजुराहो लेख की सत्यता स्पष्ट सिद्ध होती है ।

डा० रे ने बताया है कि “यह सत्य है कि प्रतिहार सम्राट को खोये हुए राज्य को पाने में उनके सामन्तों ने सहायता की । उदाहरण के लिये, खजुराहो के एक खण्डित लेख में बताया गया है कि हर्ष या उसके पुत्र यशोवर्मन् ने क्षितिपाल देव को फिर से सिंहासन पर बिठलाया (पुनर्नयेन श्रीक्षितिपालदेव-

१—क० व० आर० जी०, पृ० ३२३, पंक्तियाँ ३-४ (II-Second Side).

वही, पृ० ३२६, अन्तिम पंक्ति (III-First Side)

२—वही, पृ० २८२, २६६, ३१३ (पंक्ति २२),

३—‘राष्ट्रकूटाज एन्ड दियर टाइम्स’ पृ० १०१

४—वही, पृ० ९७

नृपतिः सिंहासने स्थापितः)''' कीलहार्न ने क्षितिपाल देव को पुनः प्रतिष्ठापित करने का श्रेय हर्ष को दिया है। डा० त्रिपाठी^१ डा० बोस^२ डा० मित्रा^३, और डा० पुरी^४ यह श्रेय हर्ष को ही देते हैं।

परन्तु डा० रे और होर्नले ने यशोवर्मन् को भी श्रेय दिया है। इस प्रकार यशोवर्मन् के श्रेय-कार्य की उपेक्षा की गई है जबकि उसका खजुराहो लेख (श्लोक २८) स्पष्टतः कहता है :

कृध्यदुद्धरधन्विभार्गणगणप्रारब्ध रक्षाक्रियं
विख्यात क्षितिपाल मौलिरचना विन्यस्त पादाम्बुजं
संख्ये संख्य बलं व्यजेष्ट गतभीर्यश्चेदि राजं हठात् ॥

ऊपर यशोवर्मन् द्वारा चेदिराज की पराजय का उल्लेख है। यही बात उसकी दिग्जय-वर्णन में भी बतायी गई है (सीदत्सावद्यचेदिः)^५

अर्थात् अपराधी और कलंकित (सावद्य) चेदि राज अपने प्रयत्नों और दुराक्रम में विफल होकर दुखी है (सीदत्)। चेदियों ने राष्ट्रकूटों का साथ देकर ही चन्देल वंश का अपकार किया था, क्योंकि राष्ट्रकूटों की भाँति ही चन्देलों से भी कलचुरियों का वैवाहिक सम्बन्ध था। परन्तु यह अपराध गुर्जर शासक पर आक्रमण करने और उसके प्राणों के लिये भागने पर भी पीछा करते हुए राष्ट्रकूटों की सहायता करना अवश्य ही एक कलंक था जिससे राष्ट्रकूटों की इन्दु कान्ति भी कलंकित हो गई थी। अतः स्पष्ट है कि इस युग की राजनीति में भी दो दल हो गये थे। राष्ट्रकूट और कलचुरी गुर्जरों को आतंकित कर रहे थे।

राष्ट्रकूट शासक (कृष्ण III) द्वारा सभी दक्षिण के किलों को जीत लेने के कारण गुर्जरों के हृदय से कालिंजर और चित्तकूट की विजय की आशा चली गई थी।^६ परन्तु चन्देल सम्राट हर्ष और उसका यशस्वी पुत्र यशोवर्मन्

१—डायनेस्टिक हि०, ना० इ०, भाग २, पृ० ६७२

२—हि० क०, पृ० २५३

३—हिस्ट्री आफ दि चन्देलाज, पृ० २३

४—अ० ख० रू०, पृ० ३५

५—हि० गु० प्र०, पृ० ९०

६—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक, ३२

७—राष्ट्रकूट करहड प्लेट्स (क० व० आर० जी०, भाग ३, पृ० २८३, पंक्ति ४४)

देउली प्लेट्स, पृ० ३००, ३१३

अपने स्वामी की रक्षा के लिये शत्रुओं का दमन करने लगे। हर्ष तो स्वयं ही बिना किसी मित्र की सहायता से ही अपने सम्राट (धात्री धर) की रक्षा करने में समर्थ थे (अपक्षधात्रीधररक्षणक्षमः) और पापियों के पक्षों (दलों) को नष्ट करने वाले (सदैव दोषाकर संग भंगुरः) थे। इस प्रकार हर्ष ने 'क्रूर भुजंग के संग' को विफल कर लिया।^१ पितृभक्त यशोवर्मन्^२ ने, अपने पिता को भी स्वामी-धर्म के पालन करने (प्रतिहार सम्राट की रक्षा) में सहायक हुआ था। यशोवर्मन् त्रस्त की रक्षा करने वाले (त्राण-त्राता थे)।^३ अतः अभिलेख में क्षितिपाल को त्राण देने तथा उस पर छाया करने से (लक्ष्म-च्छाया) से ही इस वंश के राजाओं का विक्रम अकलंकित था (अकलंकित विक्रमेण)। भयार्त्त क्षितिपाल की छाया करते हुए गंगा और घाघरा नदियों से ध्वनित क्षेत्र तक यशोवर्मन् की अश्व सेना रौंदती चली गई।^४

अतः उसने इस प्रदेश में भी बसे हुए शत्रु-कलचुरियों का दमन किया।

इस वंश प्रारम्भिक शासक—नन्नुक, वाक्पति, जयशक्ति-विजयशक्ति, राहिल और हर्ष-शत्रुओं के साथ संघर्ष करते रहे। यद्यपि इन वैरियों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। यशोवर्मन् के समय में कलचुरि और राष्ट्रकूट तो शत्रु थे ही। अब गुर्जरो के साथ भी सम्बन्ध बिगड़ने लगे। कालिंजर पर यशोवर्मन् का अधिकार होना गुर्जरो के लिये सुख की बात न थी। साथ ही चन्देलों के लिये भी इस दलबन्दी के युग में अपनी शक्ति के स्थायित्व के लिये कालिंजर पर अधिकार करना आवश्यक हो गया। वे चारों ओर शत्रुओं से घिरे हुए थे अतः उन्हें अपना दुर्गिकरण करना भी आवश्यक था। कालिंजर से बढ़कर प्रकृति-रक्षित अन्य कोई दुर्ग नहीं था। अतः शील और स्वामिधर्म के बन्धन जो अभी तक चन्देलों को प्रतिहारों से बांधे रहे थे, बहुत ही शिथिल पड़ गये।

१—धंग और जयवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक २७

२—वही, श्लोक ३१-३२

३—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक २४, यशोवर्मन् के विषय में कहता है :

त्रस्तत्रातरि तत्रभूभृति नृणां क्लेशाय शस्त्रग्रहः ॥

वही, श्लोक—६ में बताया गया है कि 'त्रस्त-त्राण' का गुण इस वंश का एक लक्षण ही था।

४—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख श्लोक २६-३० :

सम्प्रान्ताभिः कथमपि मुखं वीक्ष्य वैरि प्रियाभिः ॥ २६

गंगानिर्झरघरं ध्वनिभयभ्राम्यत्तुरङ्गवजाः ॥ ३०

वे किसी भी समय ज़रा से झटके में टूट सकते थे। कालंजर के हाथों से निकल जाने और अपने सामन्त की शक्ति बढ़ने से गुजराती का हृदय तो जलता ही था। इसीलिये यशोवर्मन् गुजराती के लिये ज्वर के समान संताप (संज्वरो गुर्जराणां) था।

अन्तर्वेदी (मध्यदेश)

कालंजर की विजय के बाद उसके उत्तर स्थित पुण्यदेश-मध्यदेश-की ओर निगाह थी। उसके खजुराहो लेख में बताया गया है कि श्री लक्षवर्म (यशोवर्मन्) ने क्रम से धीरे-धीरे यमुना और गंगा (अर्थात् उनके मध्य स्थित भूखण्ड-अन्तर्वेदी) पर अपना अधिकार जमाया :

श्री लक्षवर्माभिधश्चक्रेशक्रसमः कलिन्दतनयां जह्नोः सुतां च क्रमात् ।

यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ३९

यशोवर्मन् ने ही उसे कन्नौज के सिंहासन पर बिठलाया था। यह तथ्य भी यशोवर्मन् द्वारा क्षितिपाल का आश्रयी होना सिद्ध करता है। धर्मपाल ने भी कन्नौज में चक्रायुध को राजा बनाया था। अतः इन तथ्यों के आधार पर अभिलेख के इस कथन पर कि यशोवर्मन् ने कालंजर पर अधिकार करने के बाद मध्य देश पर अधिकार कर लिया था, सन्देह नहीं होना चाहिए।

दिग्जय—

इस प्रकार मध्य देश का स्वामित्व पाने के बाद उसने दिग्जय—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम—में जय प्राप्त किया। इसके लिये उसके पास सुदृढ़ सेना और कुशल सेना नायक भी थे। साथ ही दक्षिण पश्चिम और दक्षिण पूर्व के प्रतिद्वन्दी कलचुरी और राष्ट्रकूट दबा दिये गये थे। अतः विजय क्षेत्र उसकी महत्वाकांक्षा के अनुरूप ही था। उसके खजुराहो लेख (श्लोक २३) में बताया गया है :

गौडक्रीडालतासिस्तुलित खसवलः कोशलः कोशलानां ।

नश्यत्कश्मीरवीरः शिथिलितमिथिलः कालवन्मालवानां ॥

सीदत्सावद्यचेदिः कुरुतरुषु मरुत्संज्वरोर्गुर्जराणाम् ।

तस्मात्तस्यां स जज्ञे नृपकुलतिलकः श्रीयशोवर्म राजः ॥

हर्ष और कञ्चुका देवी का पुत्र यशोवर्मन्^१ गौड़ों को लता के समान सहज ही काटने वाली तलवार के समान था; उसने खसों के बल को भी तोल लिया; कोशलों के कौश को ढोने वाला (लूटने वाला), काश्मीर के वीरों की नष्ट होते हुए देखने वाला, मैथिलों (विदेह राज्य, उत्तरी बिहार) को भी शिथिल कर तथा मालवों के लिये काल (यम) के समान था। वह कलंकित

चेदियों को दुःखी करने वाला, कुरु-जांगल के लिये आंधी और गुर्जरों को सन्तप्त करने वाला ज्वर था ।

इसी लेख के ३० वें श्लोक में बताया गया है कि उसकी सेनाएं उमा के उद्यान (कैलास) के निकट हिमालय की चोटियों पर भी धीरे-धीरे जैसे-तैसे दिग्जय करती हुई गई थीं :

यत्सैन्यैः प्रतिकल्पपादपमुमालून प्रसूनोच्चयाः ।

प्रालेयाचल मेखलाः कथमपि क्रान्ताः शनैर्दिग्जये ॥

इसी पार्वत्य-प्रदेश में निकट ही भोट, भूटान, (तिब्बत) और कीर देश भी स्थित थे । संभवतः इस अभियान में चन्देल सेनाओं के साथ ही उपकृत क्षितिपाल का पुत्र देवपाल भी था जिसे हयपति (अश्व सेना नायक) की पदवी दी गई है । उस हयपति देवपाल ने ही कीर (कांगड़ा) के शाही राजा से वैकुण्ठ की मूर्ति शत्रुओं के विजेता यशोवर्मन् को भेंट की :

कैलाशाद्भोटनाथः सुहृदिति च ततः कीरराजः प्रपेदे ।

साहिस्तस्मादवापद्विपतुरग बलेनानु हेरम्बपालः ॥

तत्सूनोर्देवपालात्तमथ हयपतेः प्राप्य निन्ये प्रतिष्ठां ।

वैकुण्ठं कुण्ठितारिः क्षितिधरतिलकः श्री यशोवर्मराजः ॥

यशोवर्म का खजुराहो लेख, श्लोक ४३

खस (खख, काश्मीर के दक्षिण में स्थित) और काश्मीर भी हिमालय में पर्वतीय देश हैं । मार्कण्डेयपुराण में खस देश को कूर्म के मुख में कोशल और मैथिलों के साथ रखा गया है ।^१ ऊपर बताया गया है कि यशोवर्मन् ने कोशल के कोशल को लूटा और मिथिला को शिथिल कर दिया था । सरयू नदी के उस पार कोशल (पूर्व कोशल) देश है और उससे मिला हुआ ही मिथिला भी स्थित था ।^२

पूर्व देश को मार्ग हिमवत् के पार्श्व से होकर कोशल, मिथिला होता हुआ मगध और गौड देश को जाता था । यशोवर्मन् ने भी पूर्व-दिग्जय में इसी मार्ग का अनुसरण किया होगा ।

प्राच्य में स्थित कोशल, मिथिला और गौड देशों की विजय की । कोशल की पहचान, प्रायः दक्षिण कोशल (महाकोशल—रायपुर बिलासपुर सम्बलपुर) से की गई है । परन्तु जैसा पहले बताया गया है कि यशोवर्मन् ने गंगा और

१—मार्कण्डेय पु०, ५८. १२-१४

२—महाभारत सभा पर्व, २०-२६-२८

घर्षर से अभिसिचित क्षेत्र की भी विजय की थी। यहाँ भी कलचुरियों की शाखा शासन करती थी जिसका सम्बन्ध सरयूपार क्षेत्र से था। ऊपर बताया गया है कि सरयूपार ही पूर्व कोशल देश था। इन उपर्युक्त देशों की विजय ही की गई थी। उनको राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया। इसी प्रकार मालवा विजय भी थी यशोवर्मन् के पुत्र कृष्णप और उसके पुत्र देवलब्धि मालव विजय के उत्तरदायी माने जा सकते हैं। कृष्णप (कण्हप) ही मालव-चन्देल सीमाओं पर सीमान्त शासक भी नियुक्त किया गया था।^१

इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन राज-चक्र में यशोवर्मन् ऐसा तेजस्वी और पराक्रमी शासक था जिसने अपने चतुर्दिक स्थित राज्यों को अपने प्रताप से आतंकित कर दिया और चन्देल वंश की उन्नति की। उसी के राज्य काल से इस वंश का वास्तविक उत्कर्ष प्रारम्भ होता है। 'मत्तकरीन्द्र' अथवा मातंग म्लेच्छों के पराभव करने में ही उसने काश्मीर खस तक विजय यात्रा की थी। उसका प्रयत्न था कि प्रतिहारों के स्थान पर मध्य देश में एक सुदृढ़ सत्ता स्थापित हो जो इसकी रक्षा कर सके। हिमालय से लेकर चेदि और मालवा की सीमाओं तक तथा मध्य देश के गंगा-यमुना द्वाब में चन्देलों की प्रभुता स्थापित हो गयी। उसने अपने यशस्वी पुत्र धंग के साम्राज्यवादी प्रसार की भूमिका बना दी। यशोवर्मन् न केवल एक महान् विजेता और कुशल शासक था, प्रत्युत् वह महान् निर्माता भी था जिसकी कीर्ति खजुराहो के वैकुण्ठनाथ मन्दिर में अक्षुण्ण बनी हुई है। प्रजा में भी उसने अपना स्थान बना लिया था।

“राजाओं के समाज में, मुनियों के निवासों में, सत्संगों में, ग्रामों में, पामर वृन्दों में, व्यवसायियों की श्रेणी में, वीथियों और चौराहों पर, जहाँ कहीं राजमागों पर लोग बाते करते हैं और वनवासियों की कुटियों में—सभी जगह सभी लोग निरंतर आश्चर्य के साथ यशोवर्मन् के गुणों की ही चर्चा करते रहते हैं—

आस्थानेषु महीभुजां मुनिजनस्थाने सतां संगमे
ग्रामे पामरमण्डलीषु वणिजां वीथीपथे चत्वरे ।
अध्वन्यध्वगसं कथासु निलयेऽरण्यौकसां विस्मया-
न्नित्यं तद्गुणकीर्त्तनैक मुखराः सर्वत्र सर्वे जनाः ॥”

१—दुर्घई लेख (एपी० इण्डि० १-पृ० १४६)

२—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ४०

धंगदेव

(लगभग ९५०-१००२ ई०)

यशोवर्मन् का यशस्वी पुत्र और उत्तराधिकारी धंगदेव विक्रम सं० १०११ (६५४ ई०) के पहले सिंहासन पर बैठे। उनके राज्य-काल की पहली तिथि वि० सं० १०११ है जिसे खजुराहो (खर्जूरवाहक) के लक्ष्मण मन्दिर के शिलालेख में उल्लिखित पाते हैं। उसके राज्यकाल की अन्तिम तिथि वि० सं० १०५६ (=१००२ ई०) है जिसका उल्लेख भी खजुराहो के विश्वनाथ मन्दिर के शिलालेख में हुआ है। इसी लेख का वि० सं० ११७३ (१११६ ई०) में जयवर्मन् ने पुनरुद्धार किया था। अतः उसका राज्यकाल ५० वर्ष से ऊपर (५२ वर्ष) ही था।

स्वतन्त्र चन्देल सत्ता

किन्हीं कारणों से हर्ष और यशोवर्मन् सशक्त होते हुए भी प्रतिहारों की प्रभुता मानते रहे। धंग भी ९५४ ई० तक अपने को प्रतिहार शासक का आधीनस्थ, चाहें वह नाममात्र की ही हो, मानते रहे। यशोवर्मन् के खजुराहो लेख में वसुधरा के पालक (सम्राट) श्री विनायकपाल देव का उल्लेख मिलता है।^१ परन्तु आगे चल कर धंग को इन दुर्बल सम्राटों का प्रभुत्व सह्य न था और उसने प्रतिहारों से सम्बन्ध तोड़ दिये। उसने अपने आपको स्वतन्त्र सम्राट घोषित कर दिया। डा० रे का विचार है—

“But it is significant that the names of the Gurjara Pratihara rulers do not occur again in any Chandella document after this date, indicating that after 954-55 Dhanga became a sovereign ruler de facto and de jure.”^२

राजधानी परिवर्तन—(कालंजराधिपति धंग)

नन्नुक ने खजुराहो से राजधानी बदल कर महोबा (महोत्सव-नगर) कर दी थी। परन्तु खजुराहो का महत्व कम न था। जितने भी प्रारम्भिक चन्देल अभिलेख मिले हैं वे खजुराहो में ही मिलते हैं। धंग के अभिलेख (वि० सं० १०५६) में खर्जूरवाहक का उल्लेख महत्वपूर्ण है (श्री खर्जूरवाहके राजश्री धंगदेव राज्ये)। कालंजर पर यशोवर्मन् ने अधिकार कर लिया था और कालंजर की स्थिति महत्वपूर्ण होने के कारण धंग ने

१—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्री विनायकपालदेवे पालयति वसुधा वसुधा नधिगता निर्दग्ध वैरिभिः।

२—डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ६७६

कालंजर को ही राजधानी बनाया तथा कालंजराधिपति की उपाधि ग्रहण की, जैसा कि वि० सं० १०५५ के एक लेख से ज्ञात होता है।^१ इस दुर्ग पर अधिकार करने से धंग ने चन्देलों को आक्रमणों से सुरक्षित बना लिया और राजनैतिक दृष्टिकोण से कालंजर पर अधिकार होना पूर्व मध्य युग में शौर्य का एक महान कार्य माना जाता था। ऊपर देख चुके हैं कि इस दुर्ग पर अधिकार करने की महत्वाकांक्षा प्रतिहारों, कलचुरियों और राष्ट्रकूटों में भी थी।

विजयें

धंग ने अपने पिता की उग्र युद्ध नीति का अनुसरण कर विजयों द्वारा चन्देल साम्राज्य का विस्तार किया। धंग के खजुराहो लेख (वि० सं० १०११) में उसके राज्य का विस्तार दिया गया है। इसके अनुसार धंगदेव ने अपने पराक्रम से सहज में ही कालंजर से मालव नदी पर स्थित भास्वत (भिलसा) तक और कालिन्दी (यमुना) नदी के तट से चेदि देश की सीमा तक तथा वहाँ से गोपगिरि (ग्वालियर) तक विजित क्षेत्र पर स्थापित किया था।^२ इस राज्य विस्तार से स्पष्ट सिद्ध होता है कि यशोवर्मन् की विजयें विजय मात्र थीं। यह वास्तविक राज्य था जिसे धंग ने अपने पिता से प्राप्त कर सुरक्षित और संगठित किया था।

उसके खजुराहो अभिलेख (श्लोक ४५-४६) से ज्ञात होता है कि काञ्ची, राठ, आन्ध्र और अंग देश की रानियाँ उसके कारागार में थीं और कोशल, ऋथ, सिंहल तथा कुंतल नरेश उसके आज्ञा पालक थे। इस प्रकार समर-विजेता धंग द्वारा इन राज्यों की विजय हुई थी।

काञ्ची

काञ्ची दक्षिण भारत का प्रसिद्ध राज्य था, जहाँ पल्लवों के पतन के बाद चोलों ने अपना राज्य स्थापित किया था। धंग चोल सम्राट राजराज महान का समकालीन था। राजराज पराक्रमी शासक था। अतः इस कथन में अतिशयोक्ति और कवि कल्पना ही है कि काँची की रानियाँ उसके यहाँ बन्दी थीं।

१—इण्डियन ऐन्टीकरी, भाग १६, पृ० २०३, पंक्ति ७

२—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ४५ :

आकालंजरमाच मालवनदीतीरस्थिते भास्वतः ।

कालिन्दी सरितस्तटादित इतोप्या चेदिदेशावधेः ॥

आ तस्मादपि विस्मयैकनिलयाद् गोपाभिधानाग्दिरे- ।

यैः शास्ति क्षितिमायतोर्जित भुजव्यापार लीलाजितां ॥

आन्ध्र

यह भी चोल सम्राट के प्रभाव क्षेत्र में सम्मिलित था, क्योंकि राजराज चोल ने आन्ध्र नरेश भीम को पराजित किया था ।

सिंहल

चोल राज्य के उस ओर समुद्र पार सिंहल विजय भी कवि कल्पना ही प्रतीत होती है ।

संभव है कि वह पराक्रमी चन्देल शासक अपनी सेना से आन्ध्र, कांची और सिंहल को विजय करता हुआ चला गया हो और वापस होने पर उसने कुन्तल और क्रथ (बरार प्रन्त, विदर्भ का एक भाग) देश की भी विजय की हो । परन्तु इस दक्षिण विजय से साम्राज्य विस्तार न होकर धंग का नाम एक महान विजेता रूप में अवश्य हो गया था ।

पूर्व देश**कोशल**

यशोवर्मन द्वारा विजित कोशल की पहचान हमने सरयू पार पूर्वी कोशल से की है । धंग ने भी इसी पूर्वी कोशल को जीता जहाँ कलचुरियों की एक शाखा राज्य कर रही थी । अधिकांश लोग कोशल की पहचान दक्षिण कोशल से करते हैं ।

अंग

यह प्राचीन प्रसिद्ध पूर्व देश का जनपद (मुंगेर—भागलपुर प्रान्त, बिहार प्रदेश) है; जहाँ पालों का प्रभुत्व शिथिल हो चुका था । कलचुरि शासकों ने भी बंगाल पर आक्रमण किया था ।

राठ (या मुह)

समुद्र के निकट दक्षिण पूर्व बंगाल में ताम्रलिप्ति के आसपास स्थित प्रसिद्ध देश था । यह भी पालों के ही आधीन था । प्रबोध चन्द्रोदय के अनुसार राठापुरी को गौड राष्ट्र का नगर कहा गया है ।^१ राठ जनपद भी था, जो गंगा के निकट बसा था ।^२ दुर्बल पाल शासकों को धंग की साम्राज्यवादिनी शक्ति से दबना पड़ा होगा ।

गोपाद्रि दुर्ग (ग्वालियर) विजय

चन्देलों के इतिहास में कालंजर के समान ही गोपगिरि (ग्वालियर) के

१—प्रबोध चन्द्रोदय, २/७ : गौड राष्ट्रमनुत्तमम् निरुपमा तत्रापि राठापुरी ।

२—अवस्थी, प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० ४४

दुर्ग का महत्व था और ऊपर कहा गया है कि धंग ने इसकी विजय की। यहाँ कच्छपघात (कछवाहा) शासक वज्रदामन धंग का सामन्त ही था जिसने चन्देलों की ग्वालियर विजय में सहायता की थी।

अन्तर्वेदी (गंगा-यमुना द्वाब)

अन्तर्वेदी (गंगा-यमुना के मध्यस्थ भूखंड) पर धंग का अधिकार बना रहा और संगम के पुण्य स्थल पर उसने अपना प्राण-त्याग (एक प्रचलित धार्मिक कृत्य) किया। उसके राज्य में काशी भी सम्मिलित था जैसा कि उसके नन्धोरा ताम्रपत्र लेख (वि० सं० १०५५—६९८ ई०) से सिद्ध होता है कि काशिका (काशी) उसके राज्य में सम्मिलित थी।

तुरुष्क-म्लेच्छ—आंतक और धंग

यशोवर्मन् के युग से ही मध्यकालीन भारतीय संघर्ष का भी दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। पहला अध्याय तो अरबों का आक्रमण और उससे देश की रक्षा का प्रश्न था। इसी प्रश्न के उत्तर में देश-द्वार के रक्षकों—प्रतिहारों—का इतिहास में अवतरण भी हुआ था। परन्तु उनकी शक्ति के क्षीण होते ही देश के द्वारों की रक्षा भी न हो सकी। यह तजिक-युग ही था। प्रतिहारों के पतन के बाद चन्देलों ने इस विरोध-परम्परा को बनाये रखा। यह दूसरा अध्याय उत्तरी पश्चिमी द्वार पर तुरुष्क-म्लेच्छों का सशक्त होकर हमारे द्वार का खट-खटाना था। बार बार के धक्कों और धोखों से देश द्वार की अर्गला (सांकल) ही टूट गई जिससे वे दुर्बल और कलह से ग्रस्त मध्यदेश और पश्चिमी भारत तक आक्रमण कर लूटते हुए नष्ट नष्ट भ्रष्ट करते रहे। यह गजनवी राज्य का आंतकमय शासन था। इन गजनवियों को गर्जनक, गज्जणक और गज तथा मातंग भी कहा गया है। पृथ्वीराज विजय स्पष्ट रूप से इन मातंग-गर्जनकों का उल्लेख करता है।^१ यशोवर्मन् के खजुराहो लेख में भी इनका उल्लेख है—

मज्जन्मत्तकरीन्द्र पंकिल जलां श्री लक्ष्मवर्मा मिध-।

श्चके शक्रसमः कलिनन्दनयां जह्लोः सुतां च क्रमात् ॥^२

मत्तमातंगों के गंदले जल-प्रवाह (कीचड़) में डूबती हुई (गंगा-यमुना के बीच स्थित पवित्र भूमि) अन्तर्वेदी की नाव को श्री लक्ष्मवर्मन् (यशोवर्मन्)

१—देखिये, अवस्थी, इण्डियन नेशनलिज्म, वाल्यूम वन, पृ० ७४, ७४

२—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ३९

ने बचाया। ये ही तुषार (तुखार) देश के दैत्य थे।^१ ये तुर्क लोग ही थे जो उत्तरी पश्चिमी भारत में छा गये थे।

राजतरंगिणी (४/१६६-१६७) से ज्ञात होता है कि ललितादित्य मुक्तापीड ने इन्हीं तुखारों को तीन बार पराजित किया था।

ये मत्त-मातंग (म्लेच्छ रूपी हाथी) तुरन्त ही सोकर उठे हुए सिंह (रूपी) यशोवर्मन् से दुःखी थे (सद्यः सुप्त विबुद्ध केसरि रवत्रस्यत् करीन्द्राकुलाः)।^१ इस प्रकार प्रशस्ति कार ने गज-सिंह के प्रचलित प्रसिद्ध प्रतीक द्वारा यशोवर्मन् के साथ ही तुर्क युद्ध की भूमिका बना दी है।

धंग के समय स्थिति और बिगड़ गयी। खजुराहो लेख में कलिकाल के प्रकोप का भी उल्लेख किया गया है।^१ धंग ने भी इन मत्त-मातंगों को पददलित किया (मत्तद्विपतां पदैद्वौताः)।^२ महोबा के एक खंडित शिला लेख से ज्ञात होता है कि धंग ने अपने भुजबल से शत्रुओं का उन्मूलन कर उस शौर्यशाली हम्वीर की समता प्राप्त की जो पृथ्वी पर आंतक बन गया था।^३ यह हम्वीर (हम्वीर) या मुस्लिम अमीर या नेता था जिसने अपने आक्रमणों से आंतक उत्पन्न कर दिया था। यह गजनवी सुल्तान सुबुक्तगीन या महमूद गजनवी था।

काश्मीर और पंजाब के शाही नरेश जयपाल का संघर्ष इस बढ़ते हुए गजनी राज्य के सुल्तान सुबुक्तगीन से हुआ। परन्तु जयपाल ने लमगन के युद्ध में पराजित होकर उसके साथ सन्धि कर ली (६७६-८० ई०)। परन्तु कुछ समय बाद यह सन्धि टूट गयी और दोनों शक्तियों में पुनः संघर्ष छिड़ गया। इसी समय हिन्दू राजाओं का संघ बना और अन्य राजपूत राजाओं के साथ चन्देल शासक ने सक्रिय भाग लिया। वह आक्रमक था, न कि रक्षात्मक, जैसा कि फ़रिश्ता का विचार है। किन्तु राजपूतों की पराजय हुई।

यद्यपि इस युद्ध में शाही सम्राट की प्रतिष्ठा न बच सकी, परन्तु धंग ने अपने शौर्य और रणा-दक्षता से सबको प्रभावित किया। इसीलिये उसकी तुलना हम्मीर (अमीर) से की गई है। यह उसकी शक्ति का प्रभाव ही था कि इन विजेता मुस्लिम अमीरों ने मध्यदेश में बढ़ने का साहस नहीं किया

१—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ४२ (१)

२—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ३० (१)

३—वही, श्लोक ४६ : अस्मादकालकलिकालविरामशंका

४—धंग का खजुराहो लेख, श्लोक ६३ (१)

इस वर्णन का अधिकांश साक्ष्य हमें मुस्लिम लेखकों के विवरण से प्राप्त होता है।

उसके खजुराहो लेख से ज्ञात होता है कि उसकी प्रशंसा के गीत सभी दिशाओं में दिक्पालों द्वारा गाये जाते थे। रणभूमि में उसके शत्रुओं की सेनाएं तितर बितर हो जाती थीं तथा उसके पैरों पर वे प्रणाम करते थे।^१ उसकी यश-श्री सभी जगह फैल गयी थी।^२

धंग दीर्घ जीवी था। इस घरा की रक्षा करते हुए जब उसकी आयु सौ वर्ष से अधिक हो गयी तब उसने ध्यान में शंकर का स्मरण करते हुए प्रयाग के संगम में देह त्याग दी :

रक्षित्वा क्षितिमंबुराशिरशनामेतामनन्यायति ।
जीवित्वा शरदां शतं समधिकं श्रीधंग पृथ्वी पतिः ॥
रुद्रं मुद्रितलोचनः स हृदये ध्यायन्जपन् ज्ञान्द्वी ।
कालिन्धोः सलिले कलेवर परित्यागादगान्निर्वृति ॥^३

डा० रे ने भी इसकी प्रशंसा में लिखा है—

“Dhanga's reign was a long and distinguished one, probably unmarred by defeats at the hands of the Turushkas. The temples of Khajuraho, the finest group of temples in Northern India,.....bear evidence to the splendour of the victories of the Chandellas in the domain of peace.”^४

उसके खजुराहो लेख से ज्ञात होता है कि वह शिव का परमभक्त था। वह महान् उदार और दानी था। उसने भक्ति के साथ पत्थर के विशाल शिव-मंदिर का निर्माण करवाया था।^५ इस प्रकार धर्म और कला के क्षेत्र में भी वह महान् था। उसके शासन काल के दो सुन्दर मन्दिर-विश्वनाथ और पार्श्वनाथ-आज भी दर्शकों और कलाविदों को मुग्ध कर देते हैं।

प्रमिति

पुराणों-वायु, ब्रह्मांड, मत्स्य-में प्रमिति नामक एक महा पराक्रमी शासक

१—यशोवर्मन् का खजुराहो लेख, श्लोक ४४

२—धंग का खजुराहो लेख, श्लोक ४७

३—वही, श्लोक ५५

४—डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, वाल्यूम टू, पृ० ६८३.

५—धंग-जववर्म देव खजुराहो लेख, श्लोक ५०

का उल्लेख मिलता है जिसने गंगा यमुना की घाटी को म्लेच्छों (मुस्लिम आक्रान्ताओं) से बचाया था । स्कन्द पुराण में दी हुई तिथियों के अनुसार उसका समय लगभग १००२ ई० आता है और उसने भी गंगा-यमुना संगम में अपने शरीर को समाधि द्वारा छोड़ा । हमने उसकी पहचान चन्देल धंग से की है ।^१

गंड देव

गंड देव लगभग सन् १००२ ई० और १००३ के बीच गढ़ी पर बैठा । उसका कोई अभिलेख अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है । अन्य अभिलेखों में उसके उल्लेख मिलते हैं । मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा उल्लिखित 'नन्द' नामक राजा वास्तव में गण्ड ही है और 'विदा' गण्ड का पुत्र विद्याधर है ।

द्वितीय हिन्दू-संघ

गंड देव ने अपने पिता की युद्ध नीति का अनुसरण किया । मुस्लिम आक्रमण-कारियों के प्रति उसने दृढ़ नीति का पालन किया । सन् १००८ ई० में महमूद गजनवी ने शाही सम्राट आनन्दपाल पर आक्रमण किया । वह सिंधु नदी को पार कर पंजाब में आ घुसा । यदि राष्ट्र के रक्षक राजपूत शासक उसको वहीं सिंधु पर रोक लेते और देश के अन्दर घुसने न देते, तो भारतीय स्वतन्त्रता खतरे में न पड़ती । अतः स्पष्ट है कि क्षत्रियों ने जागरूकता से काम नहीं लिया । सत्य ही कहा गया है कि यदि हम जागते रहें तो चोर हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं (जाग्रतः खलु किम् चौराणां) । परन्तु आनन्दपाल ने जब महमूद को भेरा राज्य जीत कर इधर आया हुआ देखा तो उसने विपत्ति को अपने सर पर मंडराते पाया । उसने प्रमुख हिन्दू राजाओं से सहायता की अपील (अनुरोध) की । सूचना मिलते ही कालंजर, ग्वालियर, कनौज, अजमेर और मालवा के राजा लोग अपनी-अपनी सेनाएं लेकर पश्चिमोत्तर सीमा पर आ डटे । देश में रक्षा और संघ-प्रवृत्ति थी । मुस्लिम लेखकों के अनुसार देशकी रक्षा के लिये स्त्रियों ने अपने आभूषण भी उतार कर अर्पित कर दिये । परन्तु अभी देश में इतनी धन की कमी न थी जो स्त्रियों को आभूषण उतारने की आवश्यकता पड़ती । फरिश्ता लिखता है कि भारतीय शक्तियाँ मुसलमानों को भारत से बाहर निकालना परम् कर्तव्य समझती थीं (तारीख-ए-फरिश्ता, ब्रिग्स, भाग १, पृ० ४६) ।

हिन्दू सेना बड़े उत्साह और बल से युद्ध कर रही थी। परन्तु दुर्भाग्य से आनन्दपाल का हाथी बिगड़ा और युद्ध से भाग निकला। यही भारतीय भाग्य पर वज्रपात था। भगदड़ मच गयी और जीत हार में बदल गयी। गंड देव भी इस युद्ध में सम्मिलित हुआ था।

कनौज

इस विजय के बाद महमूद गजनवी ने उत्तरी भारत के विभिन्न राज्यों पर आक्रमण किये। १०१८ ई० में उसने कनौज पर आक्रमण किया। यहां का प्रतिहार शासक राज्यपाल बिना युद्ध किये हुए ही भाग गया। क्षुद्र क्षत्रिय के इस कार्य को अन्य क्षत्रिय नरेशों ने निन्दित कर्म कहा और गंड देव ने उसे दंड देने के लिये कनौज पर विद्याधर के नेतृत्व में आक्रमण किया तथा युद्ध में कच्छ-पघात नरेश अर्जुन ने राज्यपाल का बध कर दिया। डा० रे का अनुसरण करते हुए डा० बोस का विचार है कि १०१७ ई० में महमूद ने आक्रमण कनौज पर किया और राज्यपाल को सन्धि करने पर विवश किया, जिसके अनुसार उसने मुस्लिम आधिपत्य स्वीकार कर लिया। परन्तु ज्यों ही महमूद वापस गया विद्याधर ने राज्यपाल को मुस्लिम आक्रमणकारी की आधीनता स्वीकार करने के लिये दंडित किया।^१ परन्तु यह घटना गंडदेव के राज्य-काल में हुई। गंड की अवस्था अधिक रही होगी। अतः सैन्य संचालन का कार्य उसके पुत्र विद्याधर के ही हाथों में था। विद्याधर ने ही राज्यपाल के सर को अपने बाण से उड़ा दिया।^२

परन्तु जब महमूद ने यह सुना तो उसने पुनः नन्द (गण्ड) राज्य पर आक्रमण किया। गण्ड ने युवराज विद्याधर को विशाल सेना के साथ उसे रोकने के लिये भेजा। राहिव (रामगंगा) के तट पर मुस्लिम सेना का सामना बारू जयपाल से हुआ। बारू जयपाल की पहचान राज्यपाल के पुत्र त्रिलोचन-पाल से की गयी है। वह विद्याधर का सहायक था। परन्तु बारू जयपाल मुस्लिम सेना का मुकाबला न कर सका। वह युद्ध से भाग निकला।

१—हिस्टरी ऑफ दि चन्देलाज़, पृ० ५४

२—एपिग्रेफिया इंडिका, २, पृ० २३७.

श्री विद्याधर देव कार्य निरतः श्री राज्यपालं हठात् ।

कण्ठास्थिच्छिदनेक बाणनिबहैर्हत्वा महत्याह्वे ॥

फिर मुस्लिम सेना और विद्याधर में बराबर की टक्कर थी तथा दोनों में कोई निश्चित निर्णयात्मक परिणाम न निकला। विद्याधर अपनी सेना लेकर बिना युद्ध किये हुए ही वापस लौट गया।

ग्वालियर पर महमूद का आक्रमण

इसके बाद ही महमूद ने ग्वालियर के दुर्ग पर आक्रमण कर उसे घेर लिया। कई दिन तक घेरा पड़ा रहा और अन्त में किलेदार ने ३५ हाथी देकर महमूद की आधीनता स्वीकार कर ली। यहां चन्देलों का सामन्त शासन कर रहा था।

महमूद का कालंजर पर आक्रमण

ग्वालियर के बाद ही महमूद ने कालंजर दुर्ग पर आक्रमण किया। इसका घेरा भी कई दिनों तक चलता रहा। अन्त में बाध्य होकर नन्द (गण्ड) ने महमूद की प्रशंसा में कुछ छंद लिखकर भेजे। सुलतान ने १५ किले और अन्य भेंट चन्देल राजा को भेजी तथा चन्देल राजा नन्द (गण्ड) ने भी सुलतान को एक कोप और कुछ बहुमूल्य मणियाँ भेजीं। इस प्रकार सुलतान विजयी होकर वापस चला गया।

गण्ड का मूल्यांकन

इस प्रकार स्पष्ट है कि गण्ड भी एक पराक्रमी शासक था। चन्देलों के एक खण्डित लेख में (जो कीर्तिवर्मन्, वि० सं० ११५४, के शासन काल के बाद लिखा गया था) गण्डदेव को एक सार्वभौम राजा कहा गया है जिसने अपनी भुजाओं पर धरणी के समस्त भागों को धारण किया था।^१ मदनवर्मन् के मऊ लेख में भी बताया गया है कि वह शत्रुओं को नष्ट करने में दक्ष था।^२ वह युद्ध में अजेय और एक वीर (अद्वितीय वीर) था।

विद्याधर

(लगभग १०२५ ई०—१०३५ ई०)

“Vidyadhara was the most powerful ruler of his time and his reign marked the zenith of Chandella supremacy.” Bose

गण्डदेव के बाद उसका सुयोग्य पुत्र विद्याधर गद्दी पर बैठा। वह भी वीर और यशस्वी शासक था जिसका यश सिंहासन पर बैठने के पहले ही फैल चुका था। अपने पिता के राज्यकाल में ही वह अपनी सुयोग्यता और शक्ति का परिचय दे चुका था। युवराज विद्याधर ने कई महत्वपूर्ण युद्धों में सफल

१—एपी० इ०, १, पृ० २१९-२२, श्लोक १९

२—वही, पृ० १९७, श्लोक ४.

सैन्य संचालन किया था। जब प्रतिहार राजा राज्यपाल को उसके नीच कर्म के लिये दंड देने के लिये क्षत्रिय सेनाएं गईं तो उनका नेतृत्व विद्याधर ही कर रहे थे। अस्तु १०१९ ई० के बाद ही विद्याधर राज्य सिंहासन पर १०२५ ई० में बैठा इब्न-उल-अतहर के अनुसार ४०९ हिजरी संवत् (या ४१० हि०) में महमूद गज़नवी खजुराहो नरेश बीदा से राज्यपाल के बंध का बदला लेने चला। इससे यह ज्ञात होता है कि ४१० हि० अथवा १०१६ ई० में बीदा या विद्याधर राज्य करता था। परन्तु महमूद गज़नवी के द्वितीय आक्रमण ४१४ हि० (= १०२३ ई०) में चन्देल शासक गंड ही राज्य कर रहा था। अतः गंड का राज्यकाल लगभग १०२५ ई० तक रहा जब उसका युवराज विद्याधर सम्राट बना।

उसकी उपलब्धियाँ—

धर्म और गंड का वंशज विद्याधर एक यशस्वी और देश-भक्त सम्राट था। वह इतना भी नहीं सह सका कि कनौज का राजा भीरता से मुसलमानों के सामने नत मस्तक होकर दासत्व स्वीकार करे। उसने क्षत्रिय राजाओं का संघ बना कर ऐसे राजा का बंध करवा दिया।

कीर्तिवर्मन् के देवगढ़ लेख में विद्याधर की चारों दिशाओं में फैली हुई ख्याति चन्देल वंश के विकास का कारण थी। उसके चरण-कमलों में “अनेक राजा नत मस्तक थे।”

चन्देल और प्रतिहार

इस प्रकार विद्याधर के समय चन्देलों और कनौज में शत्रुता हो गयी। परन्तु अन्तर्बन्दी (दोआब) में चन्देलों की शक्ति की धाक जम गयी। दोआब—काशी, प्रयाग, कनौज—पर चन्देलों की प्रभुता स्थापित हो गयी।

चन्देल और कलचुरि

वह कलचुरि शासक गांगेय देव का समकालीन था जिसने उसकी आधी-नता स्वीकार की थी। “कलचुरिचन्द्र (गांगेय देव) भयभीत होकर विद्याधर की उपासना गुरु की भांति करता था। राज्यपाल पर कनौज-आक्रमण में वह विद्याधर के साथ एक सामन्त की भांति था।

गण्डदेव के बाद चन्देलों और कलचुरि शासक में संघर्ष छिड़ गया। कलचुरि शासक भी उत्तरी भारत की प्रभुसत्ता पाने के लिये प्रयत्नशील था। उसने पूर्व में तिरहुत तक आक्रमण किये। इस क्षेत्र-कोशल (सरयूपार) और मिथिला—पर चन्देल भी आँख लगाये बैठे थे। इतना होने पर भी गांगेयदेव अपने को चन्देलों से मुक्त न कर सका।

चन्देल और परमार

परमार नरेश भोज उसका समकालीन था। कलचुरि शासक की भांति ही भोज भी शिष्य की भांति व्याकुल होकर विद्याधर की पूजा करता था। चन्देल शासक ने भोज की बढ़ती हुई शक्ति को रोक दिया। इस कार्य में विद्याधर को ग्वालियर के कच्छपघात राजा कीर्तिराज से भी सहायता मिली जैसा कि सास बहू (ग्वालियर का मंदिर) लेख से ज्ञात होता है कि कच्छपघात नरेश भी उसका सामन्त था।

विद्याधर का राज्य विस्तार ठीक ठीक किसी भी लेख से ज्ञात नहीं होता है। जो राज्य उसे उसके पिता से मिला था उसमें कमी न हुई। गोपाद्रि (ग्वालियर) और कालंजर उसके ही राज्य में सम्मिलित थे।

मदनवर्मन् के मऊ लेख में बताया गया है कि उसके मंत्री शिवनाग ने विद्याधर की शक्ति को अपने चरित्र से ऐसा उठा दिया कि पृथिवी के सभी राजाओं ने उसके स्वामित्व को स्वीकार कर लिया। वह लोक प्रिय शासक था। यद्यपि विद्याधर ने थोड़े ही समय तक शासन किया, परन्तु फिर भी उसने भोज और गांगेय देव ऐसे शासकों का एक संघ बनाकर तुर्क आक्रमणों को रोका। उसकी सैन्य शक्ति, सुशासन और प्रभाव से ही बुन्देल खंड मुसलमानी विध्वंसाग्नि से बच सका।

क्षीण युग**चन्देलों का पतन**

विद्याधर की मृत्यु के बाद चन्देल वंश भी राज रोग—दुर्बल शासक, सामन्तों की प्रभुता और बाह्य आक्रमण—से ग्रस्त हो गया। आगे के लगभग २५ वर्षों तक विजयपाल और देववर्मन् के दुर्बल शासन-काल में कलचुरियों और परमारों का प्रभुत्व बढ़ता गया। चन्देल-कलचुरि संघर्ष ने इस वंश को और भी खोखला कर दिया। चालुक्यों की भी शक्ति बढ़ रही थी। परमार तथा चालुक्य भी अपनी अपनी शक्ति बढ़ाना चाहते थे जिससे चन्देलों की शक्ति क्षीण होती गयी।

विजयपाल

(लगभग १०३५—१०४५ ई०)

विद्याधर की मृत्यु के बाद लगभग १०३५ ई० में विद्याधर का पुत्र विजयपाल राज सिंहासन पर बैठा। निश्चित रूप से नहीं मालुम है कि उसने कब तक राज्य किया। उसका नाम और चरित्र कई अभिलेखों में उल्लिखित मिलता है। “उसने दुष्टों का दमन कर कलियुग के दुर्गुणों को नष्ट कर दिया”। वह शान्ति प्रिय और धार्मिक राजा था।

देववर्मन् देव

विजयपाल के दो पुत्र—देववर्मन् और कीर्तिवर्मन्—थे। ज्येष्ठ पुत्र देववर्मन् ही गद्दी पर बैठा। उसका राज्यकाल लगभग १०५० ई० में प्रारम्भ हुआ और उसने दस वर्ष तक शासन किया। उसके चरित्र की तुलना युधिष्ठिर, और कर्ण से की गयी है। अतः उसमें बहुत से गुण थे। वह शिवभक्त (परम माहेश्वर कालंजराधिपति) था। उसके समय का नन्योरा लेख प्राप्त हुआ है। वह भी धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था और उसमें अपने पूर्वजों की सी वीरता न थी।

कीर्तिवर्मन्

(लगभग १०६०—११०० ई०)

चन्देल पुनरुत्थान

विजयपाल और देववर्मन् के समय चन्देल वंश का गौरव लुप्त हो गया था। कच्छपघात राजा स्वतन्त्र हो गये थे; और कलचुरि लक्ष्मीकर्ण ने उत्तरी भारत में चन्देलों के स्थान पर अपनी धाक जमा ली थी। उसने चन्देलों को बहुत ही क्षति पहुँचायी थी। चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम की सेनाएं चन्देलों के राज्य से होकर कनौज तक चली गयीं। परमारों ने भी चन्देलों की दुर्बलता से लाभ उठाया।

कीर्तिवर्मन् के राज्यारोहण से चन्देल शक्ति का फिर उत्थान हुआ। कीर्तिवर्मन् ने खोई हुई कुल-लक्ष्मी की फिर से स्थापना की। उसने कलचुरियों को पराजित किया। वह विद्या और कला का भी उन्नायक था। उसके राज-कवि कृष्ण मिश्र ने प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटक लिखकर उस युग में 'नवचेतना' का संचरण किया। उसकी विजयों में गोपाल ने बहुत बड़ी सहायता की थी जैसा कि प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटक से ज्ञात होता है। उसने महावराह की भांति डूबती हुई पृथिवी का उद्धार किया। अतः संकट के समय गोपाल ही संरक्षक था। प्रबोध चन्द्रोदय से ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मन् ने दिग्विजय की थी।

कीर्तिवर्मन् और कलचुरी नरेश लक्ष्मीकर्ण

महोबा के एक शिला लेख में कहा गया है कि जिस प्रकार विष्णु भगवान् ने समुद्र-मंथन के बाद लक्ष्मी को प्राप्त किया, उसी प्रकार गोपाल ने चेदि नरेश लक्ष्मीकर्ण की सेना रूपी समुद्र को मथकर विजय लक्ष्मी का वरण किया। प्रबोध चन्द्रोदय की प्रस्तावना में कीर्तिवर्मन् के गोपाल नामक ब्राह्मण सेनापति

द्वारा लक्ष्मीकर्ण पर विजय का उल्लेख है। अजयगढ़ के शिला लेख में कीर्तिवर्मन् को कर्णरूपी समुद्र का पान करने वाला अगस्त्य कहा गया है। इन अनेक उल्लेखों से इस बात की स्पष्ट कल्पना हो जाती है कि तत्कालीन इतिहास में लक्ष्मीकर्ण एक सशक्त शासक था जिसे पराजित कर कीर्तिवर्मन् ने खोए हुए चन्देल राज्य को वापस लिया। विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार यह विजय १०६० ई० के आसपास हुई। अतः स्पष्ट है कि कीर्तिवर्मन् ने सिंहासन पर आते ही चन्देल-राज्य की क्षति पूरी करने के लिये कलचुरियों को पराजित किया।

देवगढ़ (कीर्तिगिरि) विजय—

देवगढ़ शिला लेख से ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मन् ने बेतवा नदी की घाटी को जीता था। इस विजय में उसका अमात्य (मन्त्री) वत्सराज सहायक था।

उसने कच्छपघात के शासकों का भी दमन किया। जो स्वाधीन होने का प्रयत्न कर रहे थे।

मृत्यांकन

कीर्तिवर्मन एक विजेता और विद्या तथा कला का उन्नायक था। विद्या और कला की उन्नति के लिये आवश्यक शान्ति और समृद्धि भी उसके सुशासन का परिणाम था। उसके शासन में कुशल मंत्रियों का महत्वपूर्ण योगदान था।

कीर्तिवर्मन के काल से ही चन्देल सिक्कों की भी उपलब्धि होती है जो कलचुरियों के सिक्कों के अनुकरण पर ही बने थे।

सल्लक्षणवर्मन्

(लगभग ११००-१११०)

कीर्तिवर्मन की मृत्यु के बाद कीर्तिवर्मन का योग्य पुत्र सल्लक्षणवर्मन राजा हुआ उसके सिक्कों पर हल्लक्षणवर्मन नाम मिलता है। उसने अपनी शक्ति से शत्रुओं को दबाया। उसने अन्तर्वेदी (दो आब) में भी विजय प्राप्त की। भोजवर्मन के अजयगढ़ शिलालेख में बताया गया है कि उसने अपनी कृपाण से मालवों और चेदियों का गौरव हर लिया। मालवा का शासक संभवतः मारवर्मन और चेदि राजा यशकर्ण था।

अस्तु स्पष्ट है कि वह एक वीर और उदार शासक था। उसके सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति मिलती है।

जयवर्मन्

(लगभग १११०-११२० ई०)

सल्लक्षण वर्मन के बाद उसका पुत्र जयवर्मन शासक हुआ। उसने धंग के खजुराहो लेख का उद्धार (सं० ११७३ = १११७ ई०) करवाया था। वह शान्तिप्रिय, अतः दुर्बल, शासक था। कालंजर शिलालेख के अनुसार शासन से

परेशान होकर उसने राज्यत्याग दिया और उत्तराधिकारी को सिंहासन पर बिठा कर गंगा का आश्रय लिया ।

पृथ्वीवर्मन्

(लगभग सन् ११२०-११२८ ई०)

जयवर्मन् का पितृव्य (चाचा) पृथ्वीवर्मन् भी प्रभावशाली शासक न था । उसके तांबे के सिक्के मिलते हैं जिन पर हनुमान की मूर्ति है ।

मदनवर्मन्

(लगभग सन् ११२८-६४ ई०)

पृथ्वी वर्मन् का पुत्र मदनवर्मन् यशस्वी और प्रभावशाली सम्राट था जो इस वंश के महान शासकों में गिना जाता है । उसका शासन-काल चन्देल वंश के इतिहास में एक नया युग था । मदनवर्मन् ने अपने पतनोन्मुख वंश को पुनः ऊपर उठाया ।

वह एक कुशल योद्धा था जिसने चन्देल साम्राज्य का विस्तार किया । कालंजर, खजुराहो, अजयगढ़ और महोबा उसके राज्य के चार प्रसिद्ध केन्द्र थे । ओगसी और मऊ लेखों से ज्ञात होता है कि बांदा और झांसी के आस-पास का भू भाग उसके राज्य में सम्मिलित था । मदनवर्मन् के एक दान पत्र वि० सं० ११६० (= ११३३ ई०) में उसे विजेता कहा गया है जिसने अपने शत्रुओं का संहार किया था ।

मालवा

मऊ लेख (श्लोक १५) में मालवा के शासक पर उसकी विजय का उल्लेख है । उसके ओगसी लेख (भिलसा) से ज्ञात होता है कि उसकी राज्य-सीमा बेतवा पार मालवा में चली गयी थी ।

गुजरात

गुजरात के पुरावृत्तकारों ने मदनवर्मन् देव और सिद्धराज जयसिंह के बीच एक युद्ध की चर्चा की है । मदनवर्मन् के कालंजर लेख से प्रकट होता है क्षण-मात्र में उसने गुजरात के शासक को उसी प्रकार पराजित किया जैसे कृष्ण ने कंस को । कुमारपाल चरित से मालुम होता है कि सिद्धराज को मदनवर्मन् से सन्धि करनी पड़ी थी । पृथ्वीराज रासो से भी मदनवर्मन् द्वारा गुजरात विजय का ज्ञान होता है ।

चेदि

मऊ लेख से ही ज्ञात होता है कि उससे चेदि का कलचूरि नरेश भी पराजित हुआ था । यह कलचूरि राजा यशकर्ण था ।

गहड़वाल

मदनवर्मन की गहड़वाल शासक काशिराज, (गोविन्द चन्द्र) के साथ मैत्री थी ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मदनवर्मन एक शक्तिशाली शासक था जिसने सम्पूर्ण राजमंडल में अपनी धाक जमा दी थी । वह कुशल योद्धा, उदार शासक और कला-प्रिय निर्माता था । मदन सागर (महोबा का एक सरोवर) आज भी विद्यमान है जिसके तट पर कई मन्दिर हैं । यहीं पर चण्डी देवी की विशाल मूर्ति खड़ी है । उसके सिक्के भी प्राप्त होते हैं ।

यशोवर्मन द्वितीय

[(लगभग सन् ११६४-६५ ई०)]

मदनवर्मन के उत्तराधिकारी के विषय में विद्वानों में मतभेद है । मदनवर्मन का "तत्पादानुध्यात परमर्हिदेव" सिद्ध करता है कि मदनवर्मन के बाद परमर्हिदेव ही शासक हुआ । परन्तु बघरी लेख (एपि० ई०, १, पृ० २०७-१४) से यशोवर्मन के अस्तित्व का पता चलता है । इस लेख में मदनवर्मन और परमर्हिदेव के बीच यशोवर्मन का उल्लेख है । डा० रे का विचार है कि उसने राज्य नहीं किया और उसके पुत्र परमर्दि ने ही सिंहासन छीन लिया । किन्तु बघरी शिलालेख से पता चलता है कि यशोवर्मन ने राज्य किया । उसने बहुत ही थोड़े समय तक राज्य किया ।

परमर्हिदेव

(लगभग सन् ११६५-१२२३ ई०)

अपने पिता के अल्प शासनकाल के बाद परमर्हिदेव गद्दी पर बैठा । उसके राज्यारोहण से पुनः इस वंश के इतिहास में एक नये युग का जन्म हुआ । सेमरा लेख से ज्ञात होता है कि वह वि० सं० १२२० (= ११६३ ई०) के पश्चात् राज्य पर आया और ५९९ हि० = १२०२-३ ई० तक हि लगभग ४०, वर्ष राज्य किया । यह दीर्घ काल घटनाओं और शक्तिओं के उतार-चढ़ाव से भरा हुआ है । उसकी तथा उसके राज्य के साथ जुड़े हुए आल्हा-ऊदल के चरित्रों ने उसे लोक-प्रिय बना दिया । उसके मंत्री वत्सराज द्वारा रचित 'रूपक षटकम्' (छः रूपकों का संग्रह) महत्वपूर्ण ग्रंथ है । ग्रंथ को बिना देखे हुए ही यह कहना कि "रूपक शतकम् में ऐतिहासिक सामग्री नहीं है" अज्ञता

१—डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, (चन्देल कालीन बुन्देल खण्ड का इतिहास,

ही है।^१ इसमें परमर्द्धिराज (त्रिपुरदाह, पृ० ७५, श्लोक ४) का उल्लेख है। कालंजराधिपति परमर्द्धिदेवामात्यकविवत्सराज प्रणीत रूपकषटकम् में उसे सभी कामनाओं को पूरा करनेवाला उदार-मनोरथ समुद्र भी कहा गया है—

सर्वकामार्थं सिद्धये परमर्द्धि नरेन्द्रो वा समुद्रो वा निषेव्यताम्।

परमर्द्धि देव एव पूरिताशेष मनोरथः समुद्रो भविष्यति।^२ वह विद्वान भी था—

एष श्री परमर्द्धिदेव नृपति निस्सीम विद्यानिधिर्नूनं वाग्धिदेवता भगवती भगवती पुम्भावमभ्यागता।^३

इस प्रकार चन्देल सम्राट परमर्द्धिदेव एक महान शासक था। परन्तु उसे चाहमानों और तुर्कों से युद्ध करना पड़ा था। यहीं से चन्देल वंश का पराभव भी प्रारम्भ हो जाता है।

चाहमानों से संघर्ष

पृथ्वीराज रासो में चौहानों और चन्देलों के संघर्ष का विस्तार से वर्णन किया गया है। चन्देलों को कलचुरियों के साथ युद्ध में फंसा देखकर चाहमानों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। जब उनका विस्तार दक्षिण की ओर भी होना प्रारम्भ हुआ तो चन्देलों से संघर्ष अवश्यभावी हो गया।

मदनपुर शिलालेख के अनुसार वि० सं० १२३६ (=११८२ ई०) में पृथ्वीराज (तृतीय) ने जेजाकभुक्ति पर आक्रमण किया था।

परमर्द्धिदेव ने गहडवाल राजा जयचन्द से सन्धि की और जयचन्द पृथ्वीराज (तृतीय) का शत्रु था। फिर भी बढ़ती हुई चाहमान शक्ति के सामने चन्देलों को झुकना पड़ा। चन्देलों के कई दुर्गों पर चाहमानों का अधिकार हो गया। परमर्द्धिदेव ने कालंजर में शरण ली। अन्त में पृथ्वीराज

१—प्रोसीडिंग्स इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९६५, अलाहाबाद, पृ० १०७-१०९, A. B. L. Awasthi-रूपक षटकम् ऐज अ सोर्स ऑफ चन्देल हिस्ट्री-
“Rupak-Shatakam.....is an important work for the study of Indian history and culture on the eve of the Turkish conquest of India. It throws valuable light on the political, social, economic and religious life of the country.”

२—रूपक षटकम्, समुद्र मन्थन, पृ० १५०

३—वही, पृ० २३

(तृतीय) ने कालंजर को भी घेर लिया। जिससे परमर्हि को चाहमानों से सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि से चन्देलों की शक्ति को ठेस पहुँची। इस युद्ध से उत्तरी भारत की दो प्रमुख रक्षिका शक्तियों के अनेक अनुभवी योद्धा युद्ध में काम आये और धन-जन की हानि हुई।

कलचुरि-युद्ध

चन्देलों की इस क्षति से लाभ उठा कर कलचुरि शासकों ने बघेल खंड (चेदि) के मार्गों पर और कैमूर की पहाड़ियों तक का प्रदेश चन्देलों से छीन लिया।

मुस्लिम आक्रमण

तराइन के द्वितीय युद्ध (११९२ ई०) में पृथ्वीराज की पराजय के बाद चन्देलों को मुस्लिम आक्रमणों का सामना करना पड़ा। सूर्यास्त हो चुका था और रजनी-पराभव का प्रारम्भ हो गया।

चन्देल सत्ता के पतनके कारण

इस प्रकार हिन्दू स्वाधीनता के मिटते ही चन्देलों का भी गौरव लुप्तप्राय होने लगा; यद्यपि चन्देल शासक अब भी कालंजर दुर्ग के आस पास विद्यमान थे। परन्तु राष्ट्रीय संकट का प्रारम्भ और प्राचीन भारत अन्त हो गया।

पीछे हम इस वंश के पराभव के कारणों का उल्लेख कर चुके हैं। यहाँ पर भी उन पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है।

१. प्रमुख कारण दुर्बल चन्देल शासकों का व्यक्तित्व ही था। वे उन विषम परिस्थितियों में अपने साम्राज्य का संरक्षण न कर सके।
२. उनकी राजनीति और संसार के प्रति उदासीनता तथा धार्मिक प्रवृत्ति भी इस वंश के पतन में कम सहायक न थी।
३. राजाओं की विलासिता—महिला, मदिरा, मृगया और मदान्धता ने उनकी आंखों और अकल पर पर्दा डाल दिया।
४. पड़ोसी राजवंशों के साथ संघर्ष और परस्पर वैर का होना भी वंश-घातक था। इनमें चौहानों और कलचुरियों के साथ संघर्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय है।
५. मुस्लिम आक्रमण
६. जागरूकता का अभाव। प्रज्ञाशून्य पराक्रम का प्रदर्शन।

चन्देलों की उपलब्धियाँ

भारत के पूर्व मध्यकालीन इतिहास में चन्देलों का प्रमुख स्थान था। इस वंश के राजाओं ने हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा की। यशोवर्मन्, धंग, गण्ड, तथा विद्याधर ने आर्यावर्त को मुस्लिम आक्रमण कारियों से बचाने का प्रयत्न किया। तदर्थ राज-संघ भी बने और सीमान्त रक्षक शाही राजाओं को सहायता दी। परन्तु इस देश को अपने ही दोषों के कारण बुरे दिन देखने थे। इससे हिन्दू राजाओं के संघ सफल न हो सके। इस असफलता का कारण चुने हुए नेता के प्रति भक्ति का न होना ही है।

चन्देलों ने देश को सुशासन से व्यवस्थित और समृद्ध किया। इस समृद्धि ने विद्या और कला का उन्नयन किया। आज भी कालंजर, खजुराहो और महोबा उनकी कीर्ति का बखान करते हैं। शिव, और विष्णु के इन भक्त-सम्राटों ने सुन्दर मन्दिरों का निर्माण कराया। चन्देल युग के कुछ प्रबुद्ध मंत्रियों—कृष्णमिश्र और वत्सराज-ने अपनी लेखनी द्वारा भी राष्ट्र-प्रबोध किया। उन्होंने अपने नाटकों द्वारा राष्ट्रीय दोषों को दिखा कर उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया। बुन्देलखण्ड वीर प्रसू भूमि थी जहाँ इन चन्देलों ने स्वाधीनता और मर्यादाओं को बनाये रखने का प्रयत्न किया।

ब्राह्मण गौरव

उन राजाओं ने ब्राह्मणों का आदर किया और उन्हें भूमिदान तथा अन्य दान दिये (घन धान्यधेनुवसुधा-दानेन संमानिताः)। ब्राह्मणों का एकत्र निवास ऐसा लग रहा था कि मानों दूसरा कल्पग्राम (कलापग्राम, एक प्राचीन प्रसिद्ध ब्राह्मण बस्ती जो हिमालय के उत्तर में स्थित थी) हिमालय (तुषाराद्रि) के दक्षिण चन्देल राज्य में स्थित था।^१

निर्माण-कार्य

चन्देल सम्राट केवल सुशासक और ब्राह्मण-पोषक ही न थे, वे कला के महान् उन्नायक भी थे। खजुराहो के मन्दिरों की भव्यता के साथ चन्देलों की प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है। ६५० ई०—१०५० ई० में खजुराहो के मन्दिरों का निर्माण तत्कालीन प्रासाद-वास्तु (टेम्पल-आर्किटेक्चर) में विशिष्ट स्थान रखता है। इन मन्दिरों के अतिरिक्त पुर दुर्ग, वापी, कूप, तडाग, भवन आदि भी बनते रहे जो अधिकांशतः विध्वंसक विदेशी तुर्कों के आक्रमणों से नष्ट हो गये हैं।

खजुराहो-शिल्प-सौष्ठव

खजुराहो की शिल्पकला में धार्मिक एकता और चन्देल शासकों की उदारता का दर्शन होता है। जिस प्रकार कृष्णमिश्र ने जैन, बौद्ध, पाशुपत (शैव) आदि धाराओं को भक्ति-प्रवाह में मिलाकर एक हो जाने की कल्पना की, उसी प्रकार इन मन्दिरों में भी एक मूल स्रोत से निकली विविध विचार धाराएं एक होती हुई दृष्टि गोचर होती हैं। शासक स्वयं शैव थे, परन्तु उन्होंने अन्य सम्प्रदायों के प्रति सराहनीय सहिष्णुता का परिचय दिया। विविध भारतीय धर्मों का संगम इन मन्दिरों में देखने को मिलता है। यह अति महान् आदर्श था जिसे शिल्पी ने मूर्त रूप दिया।

निनोरा ताल, खजुराहो गांव और शिव सागर झील के आस पास फैले हुए प्राचीन काल में ८५ मन्दिर बने थे जिनमें अब केवल ३० ही शेष रह गये हैं। इनमें निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं—

१. चौसठ योगिनियों का मन्दिर

यह आयताकार मन्दिर ऊंची जगती (चबूतरा) पर बना हुआ है। यह शाक्त मन्दिर था जहां योगिनियों की मूर्तियाँ मिलती हैं।

२. कण्डरीय (कन्दरीय) महादेव—यह यहाँ का सर्व श्रेष्ठ मन्दिर है। इस विशाल मन्दिर में अर्द्ध-मंडप, मंडप, महामंडप, अन्तराल तथा गर्भगृह हैं और इन सभी अंगों के ऊपर आमलक शिखर हैं। इन शिखरों का क्रम सिंह-द्वार के शिखर से प्रारम्भ होकर क्रमशः गर्भगृह के उच्चतम शिखर तक जाता है। यहां वांछालंकरण और मूर्ति-कला अपुपम है। सुर-प्रतिमाएं दिव्य हैं।

३—लक्ष्मण मन्दिर

यह पचायतन शैली पर बना हुआ सान्धार (प्रदक्षिणापथ युक्त) वैष्णव मन्दिर है। इसमें भी अलंकरण और मूर्ति-कला दर्शनीय है।

४—मत्तेश्वर महादेव

इसमें चमकदार पत्थरों का प्रयोग हुआ है। यह सादा और अलंकरण-हीन है।

५—हनूमान मन्दिर

६—जवारि मन्दिर

इसमें चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति है।

७—दूलादेव मन्दिर

यह सबसे बड़ा मन्दिर है। इसमें मूर्तिकला की भी विशेषता है।

८—विश्वनाथ मन्दिर

खजुराहो शैली

इस प्रकार स्पष्ट है कि छतरपुर (मध्य प्रदेश) प्रान्त में स्थित खजुराहो के मन्दिर अपनी भव्यता और कला सौष्ठव के लिये जगत प्रसिद्ध है। उत्तरी भारत की मन्दिर-निर्माण कला में इनकी अपनी विशिष्टता है। प्रथमतः ये मन्दिर किसी प्राकार के अन्दर स्थित न होकर स्वतन्त्र ऊँची जगती पर खड़े हुए शोभायमान हैं। मन्दिर के विभिन्न अंग—अर्द्धमंडप, महामंडप, मण्डप, अन्तराल और गर्भगृह—परस्पर संयुक्त संस्थित है जिनकी एक रथाकार भव्यता है। कुछ विकसित मन्दिरों के प्रदक्षिणापथ, अलंकृत और उच्च शिखरों की भव्यता भी इनका विशिष्ट स्वरूप है। यहाँ के शिखर बहुत ही सुन्दर है। यहाँ के मन्दिरों में प्रायः पूर्वाभिमुखी एक ही द्वार है। इन मन्दिरों में अलंकरण और उत्कीर्ण मूर्ति-सम्पदा भी इनकी प्रमुख विशिष्टता है। मूर्तियों के विन्यास और वेश-भूषा सामाजिक सज्जा पर प्रकाश डालती हैं। अलंकरण की गहनता और विविधता भी चित्र-विचित्र है। कहीं-कहीं, विशेषकर, विश्वनाथ और कन्दरीय महादेव की छतें भी अत्यन्त मनोरम और सुसज्जित हैं। सुर, नर, नाग, यक्ष, किन्नर आदि की प्रतिमाएँ जग प्रसिद्ध हैं।

विद्या और शिक्षा

अभिलेखों और नाटकों—प्रबोध चन्द्रोदय तथा रूपकषटम्—से ज्ञात होता है कि विद्वानों, विद्या और संस्कृत को राजाश्रय प्राप्त था। वेद, व्याकरण, काव्य, आयुर्वेद का अध्ययन होता था। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग में विद्या का विशेष महत्व था।

कोदण्डवेदविद्या^१, धनुर्विद्या^२, अथवा धनुर्वेद विद्या^३, गदाविद्या^४ आदि प्रसिद्ध शास्त्रास्त्र विद्याएँ^५ और दण्डनीति विद्या^६ ब्राह्मण मन्त्रियों और क्षत्रियों द्वारा पढ़ी जाती थीं। विभिन्न दर्शनशास्त्र भी पढ़े पढ़ाये जाते थे जैसा कि प्रबोध चन्द्रोदय के अध्ययन से ज्ञात होता था।

आश्रमों मन्दिरों और मठों में भी विद्याध्ययन होता है।

१—रूपकषट्कं, पृ० ३

२—वही, पृ० १६

३—वही, पृ० १६

४—वही, पृ० १९

५—वही, पृ० ४४

६—प्रबोध चन्द्रोदय पृ० ७९

अध्याय ८

हैहय (कलचुरि) राजवंश

प्राचीन भारत के इतिहास में हैहय राजवंश एक प्रथित राजकुल रहा है जो मध्ययुग में कलचुरि राजवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हैहय वंश में कार्तवीर्य अर्जुन महाप्रतापी और चक्रवर्ती सम्राट था। अभिलेखों में भी उसे ही पूर्वज बताया गया है। यदु के पाँच या चार पुत्र थे जिनमें केवल दो ही, सहस्रजित और क्रोष्टु प्रसिद्ध थे। इनसे ही यादवों की दो शाखाएँ हो गई। सहस्रजित के वंशज उसके पौत्र (हैहय) के नाम पर हैहय कहलाये। पुराणों से हैहय वंश के प्रारम्भिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। हैहयों की पाँच शाखाएँ थीं—

- (१) वीतिहोत्र
- (२) शर्यात
- (३) भोज
- (४) अवन्ति
- (५) तुंडिकेर

कार्तवीर्य अर्जुन को परशुराम ने बहुत उग्र दंड दिया था। माहिष्मती इनकी वंश-परम्परागत राजधानी थी।

अभिलेखों और सिक्कों से भी उनके इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इनके लेखों में कलचुरि संवत् (= २४८-२४६ ई०) का प्रयोग किया गया है। कलचुरियों की तीन वंश शाखाएँ प्राप्त होती हैं—

- १—गोरखपुर के कलचुरि
- २—डाहल (चेदि) के कलचुरि और
- ३—तुम्माण के कलचुरि

हैहयों की उत्पत्ति

देवी भागवत पुराण में हैहय वंशीय राजाओं की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए उन्हें क्षत्रिय (क्षत्रिया हैहयाश्च ते) कहा गया है।^१ जिस प्रकार यदु से

से यादव और भरत से भारत क्षत्रिय राजवंश हुए, उसी प्रकार हैहय नामक राजा से ही यह हैहयवंश कहलाया (हैहयः कोऽपि राजाऽभूत्तेषां वंशे प्रतिष्ठितः) ।^१ इसके बाद इसी पुराण में हैहयों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एकवीर नामक महापुरुष से हैहयवंश पृथ्वी पर बढ़ेगा ।^२ नारायण और लक्ष्मी के संयोग से कालिदी (यमुना) और तमसा संगम के निकट एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।^३ ययाति का पुत्र तुर्वसु था जिसे उसका पिता हरिवर्मा कह कर पुकारता था और वह इसी नाम से लोक-प्रसिद्ध हुआ ।^४ वह पुत्र प्राप्ति के लिये तपस्या कर रहा था । उसी ययाति-पुत्र हरिवर्मा के लिये भगवान ने कालिन्दीतमसा संगम पर इस दिव्य बालक को जन्म दिया था जो पृथ्वी पर एकवीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ (एकवीरेति नाम्नाऽयं ख्यातः स्यात् पृथ्वीतले) । उधर तपस्या से प्रसन्न भगवान ने राजा हरिवर्मा के सामने प्रकट होकर वरदान दिया—

ययातिसूनो ब्रज तेज्ज तीर्थे कलिदकन्यातमसा-प्रसंगे ।

मयाऽद्य पुत्रस्तु यथेप्सितस्ते तन्नैव मुक्तोऽस्त्यमितप्रभावः ॥^५

“हे राजन ! जाओ और उस तेजस्वी पुत्र को प्राप्त करो ।” हरिवर्मा वहाँ गया और उसे लेकर अपने घर चला गया । राजा ने उसे ही अपना राज्य सौंप दिया । उत्सवादि के बाद ही उस विष्णु-अंश तथा महासत्त्व वाले पुत्र का नाम उसने एकवीर रखा ।^६

उसके संस्कारों को करते हुए धनुर्वेद और राजधर्म आदि की शिक्षा देने के बाद उसका अभिषेक कर सिंहासन पर बिठा दिया (एकवीरं नृपं कृत्वा) । इस प्रकार हैहय-एकवीर राजा हुआ । उसने दुराचारी और परायी स्त्रियों तथा कन्याओं का अपहरण करने वाले राक्षसों का संहार किया । यशोवती नामक राजकन्या से विवाह किया जिससे कृतवीर्य नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसी का पुत्र कार्तवीर्य था ।^७

१—देवी भागवत पुराण, ६. १७. ४७

२—वही, ६. १८. ५६

३—वही, ६. १९. ३९-४०

४—वही, ६. १६. ५१

५—वही, ६. २०. ३५

६—वही, ६. १०. ५२

७—वही, ६. अ० २३

कलचुरि अभिलेखों में भी इस वंश के संस्थापक श्री कार्तवीर्य देव का उल्लेख मिलता है ।^१ कुछ विद्वान इस वंश को भी विदेशी मानते हैं । किन्तु डा० मीराशी ने सत्य ही कहा है कि उनके इस मत में लेशमात्र भी आधार नहीं है ।^२ विष्णु पुराण को बिना पढ़े ही विदेशीपन का मत चला दिया । विष्णु पुराण के अनुसार यदुवंशी सहस्रजित का पौत्र हैहय था और हैहय के वंश में ही माहिष्मान उत्पन्न हुआ जिसने माहिष्मती की स्थापना करायी ।^३ उसके कई पीढ़ियों बाद कृतवीर्य का पुत्र कार्तवीर्य अर्जुन महाप्रतापी और कुशल सम्राट हुआ । वह यज्ञ, दान, तप, विनय और विद्या में अत्यधिक बढ़ा हुआ था । उसने ही रावण को जीत कर बन्दी बनाया था ।^४ माहिष्मती उनकी कुल राजधानी थी । इस प्रकार स्पष्ट है कि विदेशीपन की बात अटकल ही है ।

डाहल के कलचुरि

डाहल^५ भारत के ७२ देशों में एक प्रसिद्ध राज्य था जिसमें ९ लाख ग्राम सम्मिलित थे ।^६ वह तत्कालीन राजमंडल में प्रसिद्ध राज्य था । चेदि देश को ही डाहल मंडल कहते थे । इसकी स्थिति गंगा और नर्मदा के बीच (भागीरथीनर्मदयो मध्ये डाहल मंडलं) ।

वामराज देव

सागर और कारीतलाई (मुरवारा तहसील, प्रान्त जबलपुर) के शिलालेखों से इनके प्रारंभिक राजाओं का परिचय मिलता है । शंकरगण के सागर लेख से ज्ञात होता है कि इस वंश के प्रारम्भ में परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री वामराज देव (वामदेव) और उसके पादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री शंकरगण देव थे । डा० मीराशी के अनुसार वामदेव का समय ईसा की ७वीं शताब्दी का अन्तिम भाग था । प्रारम्भ में वे चालुक्यों के सामन्त थे । ईसा की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब चालुक्य दक्षिण की ओर फसे थे, कलचुरियों को उत्तर में अपनी शक्ति बढ़ाने

१—कलचुरि नरेश और उनका काल, पृ० ४, नोट १ ।

२—वही, पृ० ५ ।

३—विष्णु पु०, ४. ११. ५-९ ।

४—वही, ४. ११. ११-१९ ।

५—अग्नि पुराण १३०. १० ।

६—स्कन्द पुराण, १. २. ३९. १३१ ।

का सुअवसर मिला। हर्ष की मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इसी अराजक युग में वामदेव का उत्कर्ष हुआ। उसने बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड को रौंद कर कालंजर पर अधिकार कर लिया। यद्यपि कालंजर पर प्रतिहारों, राष्ट्रकूटों और चन्देलों का अधिकार रहा, परन्तु कलचुरियों के इतिहास में कालंजर पर अधिकार करने की घटना का विशेष महत्व माना गया। कलचुरि सम्राट अपने आपको 'कालञ्जरपुरवराधीश्वर' की उपाधि से विभूषित करते रहे। वामदेव उत्तर में गोमती से लेकर नर्मदा तक विस्तृत राज्य पर शासन करता रहा।

वामराज ने ही माहिष्मती को बदल कर त्रिपुरी (आधुनिक तेवर, जबलपुर से ६ मील पश्चिम) को अपनी राजधानी बनाया।

शंकरगण प्रथम

वामदेव के बाद शंकरगण (प्रथम) उल्लेखनीय कलचुरि शासक हुआ। उसे भी परमभट्टारक महाराजाधिराज और परमेश्वर की उपाधियाँ दी गई हैं।

लक्ष्मणराज प्रथम

निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है शंकरगण प्रथम के उत्तराधिकारी कौन थे। लक्ष्मणराज प्रथम का नाम कारीतलाइ शिलालेख से ज्ञात होता है। इसी लेख से ज्ञात होता है कि वह राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय का सामन्त था। इस लेख का समय ८४१-४२ ई० (क० सं० ५६३) है।

कोकल्ल प्रथम

लक्ष्मणराज प्रथम के बाद ही कोकल्ल प्रथम शासक हुआ, जो संभवतः उसका पुत्र ही था। युवराज के समय बिल्हरी शिलालेख और कर्ण के बनारस ताम्रपत्र लेखों से भी उसकी उपलब्धियों का ज्ञान होता है। कोकल्ल प्रथम ने वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा अपनी शक्ति सुदृढ़ कर ली। उसने स्वयं चन्देल राजकुमारी नट्टा देवी के साथ विवाह किया। कैम्बे ताम्रपत्र लेखों से ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट अकालवर्ष (कृष्ण द्वितीय) ने कोकल्ल की पुत्री के साथ विवाह किया था।

बिल्हरी शिला लेख और बनारस ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि कोकल्ल प्रथम ने अपने कई समकालीन शासकों की सहायता की थी। बिल्हरी लेख से ही ज्ञात होता है कि कोकल्ल ने संपूर्ण पृथिवी को जीत कर दो

जयस्तंभों की स्थापना करवाई। एक दक्षिण में कृष्णराज था और उत्तर में भोज देव। इससे यही सिद्ध होता है कि कोकल प्रथम ने इन राजाओं को प्रतिष्ठित किया। बनारस लेख से भी ज्ञात होता है कि उसने भोज, वल्लभराज श्री हर्ष, (चित्तकूट के स्वामी) और राजा शंकरगण को अभय किया। कृष्णराज राष्ट्रकूट शासक कृष्ण द्वितीय ही था। उसे ही वल्लभराज भी कहा गया है। डा० मीराशी के अनुसार भोज प्रतिहार शासक भोज प्रथम था। परन्तु कुछ लोग इसे भोज द्वितीय मानते हैं।^१ श्री हर्ष और चित्तकूट का राजा एक ही थे और वह हर्ष चन्देल था। परन्तु डा० मीराशी के अनुसार चित्तकूट (चित्तौड़) का शासक हर्ष गुहिल था। इस प्रकार प्रथम कोकल ने उत्तर और दक्षिण भारत में अपना प्रभाव फैलाया। उसने सन् ८५० से ८६० ई० के लगभग राज्य किया होगा।

इसके बाद द्वितीय शंकरगण और तदनन्तर उसका पुत्र बाल हर्ष गद्दी पर बैठा। शंकरगण के राज्यकाल में दक्षिण कोशल जीता गया और वहाँ कलचुरियों की एक शाखा की स्थापना की गई। लेकिन वह अधिक समय तक न टिक सकी।

प्रथम युवराजदेव

परन्तु इसके बाद प्रथम युवराजदेव प्रसिद्ध शासक था। उसके शत्रुओं के लेखों में भी उसका वर्णन 'विख्यातक्षितिपालमौलिरचनाविन्यस्तपादाम्बुजः' (जिसने अपना पद-कमल प्रख्यात नरेशों के शीर्ष पर स्थापित किया) के रूप में हुआ है। उसने गौड़, मालव, और दक्षिण कोशल के राजाओं को पराजित किया था। जब राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय ने कन्नौज पर चढ़ाई की थी, तब युवराज देव ने उसे सहायता पहुँचाई थी। इन्द्र तृतीय के बाद अमोघ-वर्ष ने भी गंकट के समय भागकर त्रिपुरी में युवराजदेव का आश्रय लिया। अमोघवर्ष युवराजदेव का दामाद था। युवराजदेव ने पयोष्णी के युद्ध में विरोधी राष्ट्रकूट सेना को पराजित कर अमोघवर्ष को फिर गद्दी पर बिठलाया।

इस विजय से युवराजदेव की चक्रवर्ती होने की महत्वाकांक्षा पूरी हुई। इस अवसर पर राजशेखर ने (जो प्रतिहार दरबार से भागकर त्रिपुरी आ गया था) विद्धशाल भंजिका नामक नाटक की रचना की। इस नाटक में

पञ्चोष्णी युद्ध का वर्णन मिलता है। अमोघवर्ष अपने पुत्र तृतीय कृष्ण को राज्य सौंप कर पुनः त्रिपुरी चला आया, जहाँ उसने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। उसके अन्तिम राज्यकाल में चन्देल शासक यशोवर्मन् ने उसे पराजित किया।

उसने शैव सम्प्रदाय को राजाश्रय देकर शैव मठों की स्थापना की। भेड़ाघाट के निकट योगिनी-देवालय बनवाया जो गोलकी मठ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका मंत्री भाकमिश्र विद्वान और धार्मिक था। उसका अमात्य गोल्लाक वैष्णव था। उसने बांधवगढ़ में मत्स्य, कूर्म, वराह, परशुराम और हजधर की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ बनवायीं।

द्वितीय लक्ष्मण राज

प्रथम युवराजदेव के बाद उसका पुत्र द्वितीय लक्ष्मणराज गद्दी पर बैठा। पिता की भाँति वह भी प्रतापी राजा था। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने बंग, पांड्य, लाट, गुर्जर, कश्मीर आदि देशों के राजाओं को पराजित किया था। उसने भी दक्षिण कोशल (वर्तमान छत्तीसगढ़) पर आक्रमण किया था। उसने उड़ीसा के राजा को भी पराजित किया।

वह भी शिव भक्त था और उसने शैवों को राजाश्रय दिया। उसका मंत्री सोमेश्वर अत्यन्त विद्वान ब्राह्मण था।

तृतीय शंकरगण

लक्ष्मणराज के बाद उसका पुत्र शंकरगण तृतीय गद्दी पर बैठा। उसने कनौज के प्रतिहारों और महोबा के चन्देलों से युद्ध किया। वह विष्णुभक्त था। कारी तलाई शिलालेख में उसे परम वैष्णव कहा गया है।

द्वितीय युवराज देव

शंकरगण तृतीय के बाद युवराजदेव द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसी समय परमार शासक मुंज ने कलचुरि राज्य पर आक्रमण किया और युवराजदेव को पराजित कर त्रिपुरी पर अधिकार कर लिया। परन्तु शीघ्र ही यह कलचुरि नरेश से सन्धिकर अपनी राजधानी को वापस गया।

गजनवी आक्रमण में शाही राजाओं की सहायता के लिये बने हिन्दू राज-संघ में कलचुरियों का उल्लेख नहीं मिलता।

द्वितीय कोकल्ल

द्वितीय युवराजदेव के बाद द्वितीय कोकल्ल गद्दी पर बैठा। उसने कनौज के राज्यपाल, गोंड देश के (पाल वंशी) महीपाल और कुन्तलाधिपति चालुक्य नरेश पंचम विक्रमादित्य को पराजित किया।

गांगेयदेव विक्रमादित्य

शिरसि कुलिशपातो वैरिणां वीर लक्ष्मी—

पतिरभवदपत्यं यस्य गांगेयदेवः ॥

द्वितीय कोकल के बाद सन् १०१५ ई० के लगभग उसका पुत्र गांगेयदेव गद्दी पर बैठा वह महत्वाकांक्षी और महाप्रतापी शासक था। उसने थोड़े ही समय में अपने वंश की प्रतिष्ठा स्थापित कर तत्कालीन राजमंडल में उसकी कीर्ति बढ़ा दी। प्रारम्भ में वह चन्देलों का सामन्त था, परन्तु आगे चलकर गांगेयदेव ने अपनी शक्ति बढ़ाकर चन्देलों की शक्ति कम कर दी। उसने परमार भोज और चोल राजेन्द्र से मित्रता कर ली तथा तीनों राजाओं ने कुन्तल नरेश जयसिंह पर चढ़ाई कर दी। कलचुरि लेख में कहा गया है कि कुन्तल नरेश को गांगेयदेव के सामने झुकना पड़ा। चालुक्य लेख में बताया गया है कि जयसिंह ने मालव नरेश के आधिपत्य में रहनेवाले राजाओं को हराया था। ऐसी स्थिति में, जब दोनों पक्ष अपने को विजयी कहते हैं, किसकी विजय हुई कहना कठिन है।

परमार-कलचुरी

कलचुरि-परमार मैत्री भी अधिक समय तक न टिक सकी। 'पारिजात-मंजरी' नामक नाटक की प्रस्तावना में धाराधिपति भोज द्वारा गांगेयदेव की पराजय का उल्लेख है। इस वर से दोनों ही वंशों की क्षति हुई।

त्रिकर्लिगाधिपति

इसके बाद ही दक्षिण कोशल के कलचुरि राजा कमलराज की सहायता से गांगेयदेव ने उत्कल (उड़ीसा) पर आक्रमण कर पूर्वी समुद्र तट पर अपना विजयस्तंभ स्थापित किया। इस विजय के बाद ही उसने त्रिकर्लिगाधिपति की उपाधि धारण की। आगे चलकर त्रिपुरी के सभी कलचुरि शासकों ने इस उपाधि को धारण किया।

उत्तरी विजय

उत्तर में प्रतिहारों की सत्ता समाप्त हो चुकी थी। इसका लाभ उठाकर गांगेयदेव ने गंगा-यमुना द्वाब को अपने राज्य में मिला लिया तथा प्रयाग में अपनी दूसरी राजधानी स्थापित की। उसने बाद में बनारस पर भी अपना अधिकार जमाया। मुस्लिम इतिहासकार ने तारीख-ए-बैहाकी में लिखा है कि जब पंजाब के गवर्नर अहमद नियालतगीन ने बनारस पर आक्रमण किया तो वहां गांगेय का अधिकार था।

अल्बरूनी ने भी डाहलाधिपति गंग अर्थात् गांगेयदेव का उल्लेख किया है जिसकी राजधानी 'तिओरी' या त्रिपुरी थी ।

गांगेयदेव के राज्य-काल के अन्तिम दिनों में उसके पुत्र कर्ण ने मगध पर आक्रमण किया जहाँ पाल राजा नयपाल राज्य करता था । गया के अनेक बौद्ध मठों को लूटा गया । अन्त में संधि हो गयी ।

इसी समय (१०४१ ई०) गांगेयदेव की मृत्यु हो गयी । वह शिवभक्त था और प्रयाग में अक्षयवट के निकट ही उसने देह त्यागी । उसकी रानियाँ सती हो गयीं ।

मूल्यांकन

डा० मीराशी के अनुसार 'कलचुरि वंश में गांगेय की गणना अत्यन्त बलशाली राजाओं में होती है । उसके शत्रुओं के लेखों में भी उसे 'जितविश्व' (जगज्जेता) कहा गया है । उसने विक्रमादित्य की पदवी धारण की थी । जब वह गद्दी पर बैठा, कलचुरि वंश ह्लासोन्मुख था, लेकिन उसने अपने पराक्रम से उसे प्रतिष्ठ दिलायी । स्वयं शिवभक्त होने से उसने काशी और प्रयाग-जैसे हिन्दुओं के अत्यन्त पवित्र शिवधामों को मुसलमानों से संरक्षणार्थ अपने अधिकार में ले लिया । उसकी मृत्यु के समय उत्तर प्रदेश का काफी भाग उसके कब्जे में था ।"^१

वह विद्या और कला का भी उन्नायक था । कलाकारों और विद्वानों को राजाश्रय प्राप्त था । काशी में उसने मेरु (प्रासाद-राज)—सर्वश्रेष्ठ मन्दिर—नामक शिवालय बनवाया था । उसने अपने नाम के सोने के सिक्के भी चलाये थे जिनके अग्र भाग पर तीन पंक्तियों में राजा का नाम और पृष्ठ भाग पर आसनबद्ध चतुर्भुज लक्ष्मी की आकृति मिलती है । डा० रे का कहना है—

"The success of Gangeya as a ruler is probably better illustrated by the evidence of his coins.....His coins in gold, silver, and copper form, in the opinion of Cunningham, a perfect monetary system."^२

लक्ष्मीकर्ण

(महाप्रतापीकर्ण)

"According to Indian tradition and epigraphic evidence

१—कलचुरि नरेश और उनका राजत्व काल, पृ० २२.

२—डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ७७४-७७५.

Lakshmikarna was one of the greatest Indian conquerors”^१ अर्थात् भारतीय अनुश्रुति और अभिलेखों के अनुसार लक्ष्मीकर्ण एक महान् भारतीय विजेता था ।

गांगेयदेव के बाद उसका पुत्र कर्ण (लक्ष्मी कर्ण) १०४१ ई० में सम्राट बना । वह कलचुरि वंश का सर्वश्रेष्ठ सम्राट था । १०४१ ई० से १०७२ ई० तक के दीर्घ शासन काल में वह उत्तरी भारत के इतिहास का प्रमुख शासक बना रहा । उसके लेखों और संस्कृत तथा प्राकृत ग्रन्थों के आधार पर उसके राज्य काल की बहुत सी घटनाओं का ज्ञान होता है । भारतीय अनुश्रुति और अभिलेखों के अनुसार लक्ष्मीकर्ण एक महान् भारतीय विजेता था ।

पूर्व देश

रेवा शिला लेख (क० सं० ८०० = १०४८-४९ ई०) से ज्ञात होता है कि अपने शासनकाल के प्रारम्भिक ७ वर्षों में कर्ण ने पूर्व, दक्षिण, और पश्चिम में महान् विजयों को प्राप्त किया । कर्ण के शक्ति-समुद्र में पूर्वदेश के सम्राट की नाव ही डूब गई । नरसिंह के भेराघाट लेख से ज्ञात होता है कि कर्ण के पराक्रम से वंग और कलिंग कापने लगे । इससे ज्ञात होता है कि उसने वंग देश (पूर्वी बंगाल) की विजय की थी । यह राजा पाल वंश का नहीं हो सकता । डा० मीराशी के अनुसार यह चन्द्रवंशीय शासक था । कर्ण ने चन्द्र-वंशी राजा गोविन्दचन्द्र या उसके पुत्र को हटाकर वज्रवर्मन को वहाँ का राजा बनाया और अपनी लड़की वीरश्री का विवाह उसके पुत्र जातवर्मन के साथ कर मित्रता को पुष्ट कर दिया ।

दक्षिण पल्लव

पुनः कर्ण ने दक्षिण की ओर ध्यान दिया । रेवा लेख के २५वें श्लोक से ही कर्ण की दक्षिण विजय का विस्तृत वर्णन मिलता है । इससे ज्ञात होता है कि उसने कांची, कुन्तल और पल्लवों को पराजित किया । इन तथ्यों में कहाँ तक सत्यता है निश्चयतः नहीं कहा जा सकता ।

चोल

इस समय दक्षिण में पल्लवों के स्थान पर चोलों का प्राधान्य था, क्योंकि चोलों ने पल्लवों की शक्ति को ८६० ई० में आत्मसात कर लिया था । कांची विजय से कर्ण द्वारा चोलों का पराभव ही ज्ञात होता है । जयसिंह के कर्णबेल

लेख से भी चोल राजा पर कर्ण की विजय का ज्ञान होता है। प्रो० आर० डी० वनर्जी के अनुसार पराजित चोल सम्राट वीर राजेन्द्र राजकेसरी वर्मन (१०६२-१०६७ ई०) ही ज्ञात होता है। रेवा लेख में उल्लिखित कर्ण की चोल-विजय में ऐतिहासिक सत्यता है। यह विजय १०४८-४९ ई० में की गई थी। अतः पराजित चोल सम्राट राजेन्द्रचोल का पुत्र और उत्तराधिकारी राजा-धिराज प्रथम ही था।

कुन्तल

कुन्तल पर कल्याणी उत्तर कालीन चालुक्यों का शासन था। बिल्हण के विक्रमांक देव-चरित से ज्ञात होता है कि आह्वमल्ल (सोमेश्वर प्रथम) ने कर्ण की शक्ति को इतना ध्वस्त कर दिया था, कि पुनः डाहल का गौरव न प्रतिष्ठापित हो सका।

गुर्जर

रेवा लेख से ज्ञात होता है कि कर्ण ने गुर्जर देश पर भी विजय प्राप्त की। अपभ्रंश ग्रन्थ प्राकृत पैंगल से भी इस घटना का अनुमोदन होता है।

इस प्रकार, यद्यपि कर्ण ने प्रारम्भिक सात वर्षों में विभिन्न देशों की विजय की थी परन्तु उन्हें वह अपने राज्य में न मिला सका।

मालवा (परमार)

आगे के दो-तीन वर्षों में उसने अधिक सफलता प्राप्त की। इस समय मालवा में भोज राज्य कर रहा था, जिसने विभिन्न राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। गांगेय-पराजय की बात कर्ण के मन में चुभ रही थी। अतः उसने गुजरात के शासक भीम के साथ सन्धि कर मालवा पर पूर्व और पश्चिम से आक्रमण कर दिया।

इसी समय भोज की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु से उत्पन्न अव्यवस्था ने मालवा और उसकी राजधानी धारा को ध्वस्त कर दिया। मेरुतुंग के विवरण से ज्ञात होता है कि कर्ण ने पूरे मालवा को अपने राज्य में मिला लिया। इससे भीम अप्रसन्न हो गया और उसने चेदि पर आक्रमण कर दिया। परन्तु कर्ण ने उसके साथ सन्धि कर भीम को भेंटोपहार से प्रसन्न कर दिया।

जजहोति (चन्देल)

कर्ण ने पुनः चन्देल राज्य पर आक्रमण किया और दुर्बल चन्देल शासक देववर्मेन ने कर्ण के समक्ष आत्म समर्पण किया। कर्ण ने जजहोति को अपने राज्य में मिला लिया।

पाल

कर्ण ने उत्तर-पश्चिमी बंगाल पर भी आक्रमण किया। संभवतः पाल शासक विग्रहपाल तृतीय ने कर्ण के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार १०५२ ई० के आस-पास कर्ण देश का सार्वभौम सम्राट बन गया था। चन्देल, परमार, पाल आदि शासक उससे पराभूत हो चुके थे। दक्षिण और पश्चिम में भी उसका प्रभाव फैल चुका था। वह एक चक्रवर्ती सम्राट था। डा० मीराशी के अनुसार “इस प्रकार सन् १०५२ ई० के लगभग कर्ण ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँच चुका था। उसने परमार और चन्देल के राज्य अपने राज्य में मिला लिये थे। उत्तर में उसके साम्राज्य की सीमा कीर (कांगड़ा) देश तक फैली थी पूर्व में पाल और वर्मन राजाओं से उसका कौटुम्बिक सम्बन्ध होने से वे उसके पक्के मित्र बन गये थे। पश्चिम में गुजरात के राजा भीम से उसका मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था।.....इस प्रकार उसे उत्तरी भारत का चक्रवर्तित्व प्राप्त था।”

अस्थायी विजय श्री

इन देशव्यापी विजयों के कारण ही उसे भारतीय नैपोलियन कहा गया है और यह सच है कि नैपोलियन की भाँति ही उसका अन्तिम काल उसके पराभव का युग था जब उसके जीते हुए प्रदेश उसके हाथों से निकलने लगे। मालवा के परमार राजा जयसिंह ने चालुक्य शासक सोमेश्वर आहवमल्ल की सहायता में अपनी गद्दी प्राप्त कर ली। इस प्रकार मालवा उसके हाथों से निकल गया। महोबा के एक शिलालेख के अनुसार कीर्तिवर्मन चन्देल ने लक्ष्मीकर्ण को पराजित कर राज्य लक्ष्मी प्राप्त की। प्रबोध चन्द्रोदय भी इस विजय का उल्लेख करता है। आजमगढ़ लेख से भी कीर्तिवर्मन द्वारा लक्ष्मी कर्ण की पराजय का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार १०५२ ई० तक कर्ण शक्ति के शिखर पर पहुँच गया था। सम्पूर्ण मध्य प्रदेश, जिस पर प्रतिहारों, परमारों और चन्देलों का अधिकार था, कर्ण के अधिकार में आ गया था। पूर्व में पाल और वर्मन वंशीय राजा भी उसके प्रभाव में आ चुके थे। उत्तर में कांगड़ा की घाटी तक उसका अधिकार फैल चुका था। पश्चिम में गुजरात के भीम के साथ भी उसकी मित्रता ही थी। दक्षिण में उसने चोल और चालुक्यों को पराजित कर दिया था। उत्तरी भारत में तो वह सार्वभौम

और चक्रवर्ती सम्राट था और इसीलिये क० सं० ८०४ (१०५२-५३ ई०) में उसका पुनराभिषेक हुआ था ।

विजयों के कारण ही उसे भारतीय नैपोलियन कहा गया है । नैपोलियन की भाँति ही उसे अपने अन्तिम जीवन काल में कई बार पराजित होना पड़ा । मालवा भी अधिक समय तक उसके अधिकार में नहीं रहा । चालुक्य सम्राट सोमेश्वर प्रथम आहवमल्ल की सहायता से जयसिंह ने मालव सत्ता और सिंहासन पर अधिकार कर लिया ।

चन्देल राज्य भी कर्ण के हाथों से निकल कर कीर्तिवर्मन चन्देल के हाथों में चला गया । कीर्तिवर्मन की लक्ष्मी कर्ण पर विजय महोबा के लेख से ज्ञात होती है । चन्देल वीरवर्मन के अजयगढ़ लेख और प्रबोध चन्द्रोदय से भी कीर्तिवर्मन द्वारा लक्ष्मीकर्ण पर विजय का प्रमाण मिलता है ।

उसने, पुनः, राज्य काल के अन्त में मालवा पर अधिकार करने का प्रयत्न किया । आहवमल्ल की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर द्वितीय ने कलचुरि सम्राट के साथ सन्धि कर ली और उसके साथ मालवा पर आक्रमण किया । इस आक्रमण से मालव देश पर महान विपत्ति आ पड़ी । परन्तु उदयादित्य ने वराह के समान कर्ण-समुद्र में डूबी हुई पृथ्वी (मालवा) का उद्धार किया ।

मालवा, गुजरात और जजहोति के शासक कर्ण के प्रबल विरोधी थे । इसी कारण उसने राज्य त्याग कर अपने पुत्र को राज-सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया । संभवतः उसका राज्यकाल १०७३ ई० में समाप्त हुआ ।

कर्ण अपने वंश का सबसे बड़ा शासक था । अपने प्रारम्भिक काल में वह अप्रतिरथ चक्रवर्ती सम्राट बन गया । उसने परमभट्टारक, महाराजाधिराज परमेश्वर के अतिरिक्त विकर्णलगाधिपति और 'निजभुजोपाजिताश्वपति गजपति राजत्रयाधिपति की उपाधियाँ भी धारण कीं । इस उपाधि से मालूम होता है कि उसने गुर्जर प्रतिहारों, कर्णिक के गांगों और बंगाल के पालों पर आधिपत्य स्थापित किया था । प्रबन्ध चन्द्रोदय में उसे रुद्र और कालाग्नि कहा गया है ।

वह केवल रण दक्ष विजेता ही न था । वह धर्म और साहित्य का आश्रय भी था । उसने काशी में कर्ण मेरु नामक १२ भूमिका का शिव मन्दिर बनवाया था । वह स्वयं शैव था । उसे परम माहेश्वर कहा गया है । उसने प्रयाग में एक घाट कर्णतीर्थ बनवाया था । उसने कर्णावती नामक ब्राह्मण

बस्ती को बसाया था। इसे अब कर्णबेल कहते हैं। यद्यपि वह ब्राह्मण धर्मावलम्बी था, परन्तु वह कट्टर न होकर धार्मिक-सहिष्णु था। सारनाथ शिलालेख (क० सं० ८१०) से ज्ञात होता है कि उसके शासन काल में बौद्ध विहार बने रहे।

कर्ण ने काशी को अपनी राजधानी भी बनाया। यहीं बिल्हण से उसकी भेंट हुई। आज भी बनारस में कर्ण डहरिया अपनी उदारता के लिये प्रसिद्ध है। उसके दरबार में कई संस्कृत के प्रसिद्ध कवि विद्यमान थे।

यशकर्ण

कर्ण ने हूण राजपुत्री श्रावल्ला देवी के साथ विवाह किया था, जिससे उसके पुत्र और उत्तराधिकारी यशकर्ण का जन्म हुआ। यशकर्ण १०७३ ई० के आस-पास सम्राट बना।

उसके राज्यकाल के दो अभिलेख—खैरहा और जबलपुर दानपत्र लेख—प्राप्त होते हैं। इन लेखों से उसके आन्ध्र देश पर आक्रमण का ज्ञान होता है। आन्ध्र का पराजित राजा पूर्वी चालुक्य वंशीय सम्राट विजयादित्य सप्तम् था।

कर्ण की मृत्यु के बाद ही कनौज और उसके आसपास का क्षेत्र यशकर्ण के हाथों से निकल गया। इसका कारण चन्द्रदेव गहड़वाल का उत्कर्ष था जिसे पृथ्वी (भारत) ने भोज और कर्ण की मृत्यु के बाद अपना पति (रक्षक) चुना था। गहड़वालों के उत्कर्ष से क० सं० ८३६ (१०८४ ई०) के बाद से काशी से भी उसका अधिकार हट गया। अन्तराल या अन्तर्वेदी में गहड़वालों का प्राबल्य बढ़ रहा था।

अपने शासन काल के अन्तिम भाग में उसने उत्तर की ओर ध्यान दिया और चम्पारण्य (चम्पारन) तक देशों पर आक्रमण किया। परन्तु वह किसी प्रदेश पर अधिकार न कर सका।

यशकर्ण के समय कलचुर साम्राज्य सिकुड़ कर डहल मण्डल तक सीमित रह गया और अब त्रिपुरी ही उनकी राजधानी रह गयी। नागपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस नगर पर परमार शासक लक्ष्मदेव (१०८६-९४ ई०) ने आक्रमण किया था।

यशकर्ण को चन्देल शासक सल्लक्षणवर्मन से भी पराजित होना पड़ा। उसे चालुक्य सम्राट विक्रमादित्य षष्ठ के विरुद्ध भी असफल होना पड़ा। उसने लगभग १०७३ ई० से १११३ ई० तक राज्य किया।

उसने कर्ण की ही साम्राज्यवादी उपाधियाँ धारण की थीं। परन्तु न तो अब कलचुरि साम्राज्य ही था और न यशकर्ण में साम्राज्यवादी शक्ति ही थी। उसने अपने पूर्व मित्रों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसने उत्तर और दक्षिण में आक्रमण भी किये। परन्तु इन हमलों से राज्य विस्तार न हो सका। उसके राज्य काल में कलचुरि राज्य से कनौज, प्रयाग और काशी निकल गये थे। परमार आक्रमण से यह वंश लड़खड़ाने लगा।

गयाकर्ण

यशकर्ण के बाद उसका पुत्र गयाकर्ण लगभग ११२१ ई० में गद्दी पर बैठा। चन्देल नरेश मदनवर्मन् ने उसे पराजित किया था। इसी समय रत्नपुर के कलचुरि भी स्वतन्त्र होने लगे। गयाकर्ण उनके इस विरोध और स्वतन्त्र होने के प्रयत्न को न रोक सका। त्रिपुरी के कलचुरियों का महत्व अब कम होने लगा था।

गयाकर्ण ने गुहिल नरेश विजय सिंह की कन्या अल्हण देवी से विवाह किया। वह परमार नरेश उदयादित्य की पुत्री श्यामल देवी की कन्या थी। इस वैवाहिक सम्बन्ध से कलचुरियों और परमारों में बैर दब गया।

नरसिंह और जयसिंह

गया कर्ण के नरसिंह और जयसिंह नामक दो पुत्र थे। उसके बाद वे क्रम से राजा हुए। इनमें जयसिंह उत्साही शासक था जिससे गुर्जर तुरुष्क और कुन्तल के राजा घबड़ाते थे। उसने दक्षिण कोशल पर चढ़ाई की। परन्तु यहां उसे सफलता न मिली। चन्देल शासक परमर्ही ने भी उसे पराजित किया। ये दोनों शासक भी शैव थे।

विजय सिंह

त्रिपुरी के कलचुरि वंश का यही अन्तिम राजा माना जाता है। इस समय तक तुरुष्क भी बघेलखण्ड में घुस चुके थे। इस प्रकार इस कलचुरि वंश का अन्त हो गया।

अध्याय ६

परमार वंश

राष्ट्रोद्धारक परमार

नवसाहसाङ्क-चरित परमार-युग का संस्कृत-काव्य ग्रन्थ है जिसका प्रणयन पद्मगुप्त-परिमल ने उस समय किया था जब उत्तरापथ में तुरुष्क छा गये थे । अतः स्वाभाविक ही था कि इस युग में वे पृथिवी का उद्धार करते, क्योंकि राजा का कर्तव्य ही उसकी रक्षा करना था और परमार वंश का उदय भी इसी उद्देश्य से हुआ था । जब 'धेनु' का बलपूर्वक अपहरण हो रहा था तभी अथर्वण के साथ सम्पादित यज्ञ वेदी से धर्नुधर वेश में स्वयं प्रभु ही प्रकट हो गये—

ततः क्षणात् स कोदण्डः किरीटी काञ्चनाङ्गदः ।

उज्जगामाग्नितः कोऽपि सहमेक वचः पुमान् ॥

नव साहसाङ्क चरित, ११-६८

राजा पृथिवी की रक्षा पत्नी की भांति करते थे ।^१ उनकी भुजाएं सदा पृथिवी की रक्षा करने में तत्पर थीं—भूजः सदा रक्षण दीक्षितः क्षितेः ।^२

वे शत्रु-गज को नष्ट करने वाले सिंह तुल्य ही थे—वैरिद्विपघटासिंहः ।^३

यह शत्रु-गज प्रथित असुर-कुञ्जर^४ (मत्त म्लेच्छ मातङ्ग) ही था जिसने 'पृथिवी-संकट' उपस्थित कर दिया था ।^५ उनके आततायी स्वरूप, आघातों और अत्याचारों के कारण ही इन तुरुष्कों को भी हूणों की संज्ञा दी गई है ।^६ इन

१—वडजेत्यभवद्देवी कलत्रं यस्य भूरिव ॥ नव साहसाङ्क चरित, ११-६६

श्री मद्भान्पति राजोऽभूदग्रजोऽस्याग्रणीस्सताम् ।

सगरापत्यदत्ताब्धि परिखायाः पतिर्भुवः ॥ वही, ११-६२

२—वही, १३-६

३—वही, १६-७०

४—वही, १६-६२

५—वही, १६-६४

६—वही, ११-६० हूणान्नरोध, वैधव्य दीक्षाव्यघ्नता यः ॥

हूण-हस्तियों के हृदयों में सिंहों ने इतना भय भर दिया था कि वे अपकार करने का साहस नहीं करते थे—

अपकर्तुमत्र समये तवात्तभीः ।
मनसापि हूणन्पतिन वाञ्छति ॥
इभ कुम्भभित्ति दलनोद्यमे हरेः ।
न कपिः कदाचन सटां विकर्षति ॥

नव साहसांस चरित, १०-१४

इन हूणों को श्री सिधुराज ने पराजित किया था—

तस्यानुजो निर्जित हूणराजः श्री सिधुराजो विजयार्जित श्रीः^१
परमार शासक भोज ने भी तुरुष्कों को पराजित किया था ।^२ इस प्रकार
मालवेन्द्र-परमार शासक भी देव-शत्रु असुरों के विनाश के लिये महान
संघर्ष करते रहे—

अथ वदति शनैः समेत्य तस्मिन्
अमररिपोंवचनानि तानि तानि
असुर पति विनाश कालरात्रिम्
भृकुटी भूवाह मुखेन मालवेन्द्रः ॥

नव साहसांक चरित, १६-१२०

इस प्रकार सतत क्षात्र व्रत का पालन करते हुए धरणी-वराह की भाँति
उन्होंने पृथ्वी का उद्धार किया था ।^३ कवि इसे वराहलीला की संज्ञा
देता है—

सहेलमभ्युद्धरता धरित्री ।
मगनां द्विषद्वारिनिघावगाधे ॥

१—मालव राज की उदयपुर प्रशस्ति श्लोक १६

२—वही, श्लोक १९ :

चेदीश्वरेन्द्ररथ तोगल भीममुख्या- ।
न्कर्णाट लाटपति गुर्जरराट तुरुष्कान् ॥
यद्भृत्यमात्र विजितान वलोक्य मौला ।
दोष्णां बलानि कलयति न योदधु लोकान् ।

३—वही, पृ० २२४, श्लोक २२ :

येन धरणीवराहः परमारेणोद्धृतो निरायासात् ।
तस्यैतस्या भू मेरुद्वारो वत क्रियन्मात्रः ॥^{१३}

येनात्र नीता पृथु विक्रमेण ।

व्यक्ति जगत्यादि वराह लीला ॥

नव साहसार्क चरित १-५६

परमार

परमार-वंश का संस्थापक परमार (शत्रुनाशक) ही था—

यां हरस्याष्टमीमार्हुमूर्तिमाहुति लेहिनीम् ।

तत्सूतिः प्रागभूद्भर्ता परमार इति क्षितेः ॥

कृतावतारं तद्वंशे बधाय विबुधद्विषाम् ।

किमादिदेवं कंसारिं धिङ् मर्त्यं इति मन्यसे ॥^१

परमार नाम का दिव्य और पुरातन पुरुष (विष्णु) देवताओं के शत्रुओं का विनाश करने के लिये ही अवतरित हुआ था । वह तो कंस-घाती कृष्ण रूप ही था । उसे मर्त्य-मरणशील साधारण मनुष्य-मानना भूल है । यह एक ऐतिहासिक सत्य है । सत्य यह है कि हारे हुए मनुष्य का दुर्जय शत्रुओं से बचाने वाला भगवान ही होता है । इतिहास के विश्वस्त प्रमाणों-साहित्य, अभिलेखों और मुस्लिम लेखकों-से ज्ञात होता है कि मालवा, उज्जयिनी और अर्बुद प्रदेश पर मुसलमानी हमले होते रहे । प्रतिहारों का उत्कर्ष भी इसी तुरष्क-बाढ़ को रोकने के लिये हुआ । प्रतिहार-राष्ट्रकूट संघर्ष में भी मालव प्रदेश को बहुत आघात सहने पड़े । राष्ट्रकूट-शासक (वल्लहराय) विदेशी आततायी शक्ति के मित्र थे और प्रतिहार थे उनके शत्रु । मालव-लोग विदेशी आक्रामक शक्ति को किस दृष्टि से देखते थे उनके पुराने इतिहास से स्पष्ट ज्ञात होता है । सिकन्दर महान को भी दुर्घर्ष मालवों (मल्लवाय) के साथ युद्ध करना पड़ा था । शकों और हूणों को भी मालवों से टक्कर लेनी ही पड़ी थी । अस्तु स्पष्ट है कि मालव विदेशियों के आक्रमण रोकने और शत्रु-विनाश में अभ्यस्त थे । अतः आश्चर्य ही क्या कि उन्हीं मालव-वीरों की परमार संज्ञा परमारण (शत्रु-विनाश) पर आधारित थी । उनको यह नयी संज्ञा नयी परिस्थितियों में ही मिली थी । इस युग के इतिहास में मालव नाम की नयी व्याख्या की गयी है जिसमें कहा गया है कि मल के आधिक्य के कारण ही यह क्षेत्र मालवा कहलाया ।^२

१—नव साहसार्क चरित, १६.१०७-१०८

२—अवस्थी, स्टडीज इन स्कन्द पुराण पार्ट वन, १६.१०७-१०८ पृष्ठ ६१

वंशोत्पत्ति

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

जब जब होइ धर्म की हानी । बाढ़इ असुर अधम अभिमानी ॥
करहि अनीति जाइ नहि बरनी । सीर्दाहि बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभुधरि विविध सरीरा । हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

ग्वालियर लेख में असुरों का उल्लेख है और पुराणों में भी इस समय के देवासुर संग्राम का वर्णन मिलता है । प्रतिहारों के पतन होने पर इस तुर्की बाढ़ को रोकने के लिये ही परमार का अवतरण हुआ ।

पर-चक्र भय पृथ्वी को त्रस्तकर रहा था और पीड़ित पृथ्वी आर्तनाद करती हुई अपने रक्षक को बुला रही थी । अस्तु भू-वैष्णवी के 'पाहि माम्' शब्द को सुनकर विष्णु ही पृथ्वी पर अवतरित होते रहे । प्रतिहार, परमार, चौहान और चालुक्य वंशों का उदयवृत्त यही बताता है ।

आज जब वर्षा न होने के कारण दुर्भिक्ष-दुकाल आने लगता है, ऋषि-मुनि यज्ञ करने लगते हैं; महामारी अथवा 'अष्टग्रह' के प्रकोप से बचने के लिये भी यज्ञ किये जाते हैं और विषवशान्ति के लिये भी यज्ञ किये ही जाते हैं । यज्ञ की प्रथा ती वैदिक युग से प्रचलित थी और ऋषि-मुनियों ने दानवों से त्राण पाने के लिये भी यज्ञों की थीं । अतः पर-चक्र भय से बचने के लिये यज्ञ करना और राष्ट्र-रक्षक वीर का आह्वान करना भी अस्वाभाविक नहीं था ।

अर्बुदारण्य अत्यन्त पवित्र और प्रसिद्ध क्षेत्र था । प्रसिद्ध उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यहीं विश्वामित्र ने बलपूर्वक वशिष्ठ की गाय का अपहरण किया । उसके ही प्रभाव से शत्रुओं को नष्ट करने के लिये अग्निकुण्ड से एक वीर की उत्पत्ति हुई । उसने अकेले ही शत्रुओं को मारकर (मारयित्वा परान्)

दृष्टव्य-अर्बुदारण्य माहात्म्य-स्कन्दपुराण का एक उपखंड

१—उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक ५

अस्त्युवीध्रः प्रतीच्यां हिमगिरितनयः सिद्धदंपत्यसिद्धेः ।

स्थानं च ज्ञानभाजामभिमतफलदोऽर्खवितः सोऽर्बुदाख्यः ॥

गाय को उनसे छीन कर वापस ले लिया । इस पर वशिष्ठ ने कहा “कि तुम परमार नामक नृपेन्द्र होगे ।”

नवसाहस्रांक चरित भी वशिष्ठाश्रम की घटना का वर्णन करता है:—

अति स्वाधीन नीवार फलमूल समित कुशम् ।

मुनिस्तपोवनं चक्रे तत्रैश्वाकु पुरोहितः ॥

हृता तस्यैकदा धेनुः कामसूयाधसूनुना ।

कार्तवीर्याजुर्नैनैव जमदग्नेरनीयत् ॥

स्थूलाश्रुधारासन्तानस्त पितस्तनवल्कला ।

अमर्षपावकस्यादभूद् भर्तुस्समिदरुन्धती ॥

अथाथर्बविदामाद्यस्समन्त्रमाहुति ददौ ।

विकसद्विकटज्वालाजटिले जातवेदसि ॥ नवसाह०, ११. ६४-६७

अबुर्दारण्य में वशिष्ठ का मनोरम तपोवन था । एक बार विश्वामित्र उनकी कामधेनु हर ले गये । इससे क्रुद्ध होकर वशिष्ठ ने अथर्वण मन्त्रों को पढ़कर अग्नि में आहुति दी । फिर उसी क्षण अग्नि-ज्वालाओं के मध्य एक वीर धनुर्धर पुरुष (पुमान्) प्रकट हो गया:—

ततः क्षणात् सकोदण्डः किरीटी काञ्चनाङ्गदः ।

उज्जगामाग्नितः कोऽपि सहमेक वचः पुमान् ॥

दूरं सन्तमसेनव विश्वामित्रेण सा हृता ।

तेनानिन्ये मुने धेनुर्दिन श्रीरिवभानुना ॥

ततस्तापस कन्याभिरानन्दाश्रुलवाङ्कितः ।

कपोलः पाणिपर्यंकात् साश्रुलेखादपास्यत् ॥ वहीं

परमार इति प्रापत स मुनेनाम चार्थवत् ।

मीलितान्य नृपच्छत्रमातपत्रं च भूतले ॥ नवसाह० ११. ६८-७१

विश्वामित्र से गाय छीनकर उसने वशिष्ठ को दे दी । इससे प्रसन्न होकर वशिष्ठ ने उसे पृथ्वी पर राजा होने का वर दिया । यही शत्रुनाशक परमार पृथ्वी पर उसकी रक्षा के लिये ही (आतपत्रं च भूतले) प्रकट हुआ

१—उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक ५-६:

विश्वामित्रो वशिष्ठादहरत वलतो यत्रगा तत्रभावा—

ज्जज्ञे वीरोऽग्निकुंडाद्रिपुबलनिघनं यश्चकारैक एव ॥ ५

मारयित्वा परान्धेनुमानिन्ये स ततो मुनिः ॥

उवाच परमाराख्यः पार्थिवेन्द्रो भविष्यसि ॥ ६

शम। परमार अभिलेखों से भी इस कथा की पुष्टि होती है। उदयादित्य (लगभग १०७२ ई०) की उदयपुर प्रशस्ति (एपि० इ०, १, पृ० २३६), नाग-पुर शिलालेख (एपि० इ० २, पृ० १८०), पूर्णपाल के वसंतगढ़ लेख (१०४२ ई०, एपि० इ० १, पृ० ११) आबू पर्वतशिला, लेख नं० १-२ (एपि० इ० ८, पृ० २००), अचलेश्वर लेख (एपि० इ०, ४७, पृ०, १६३, नोट २), पाटनारायण शिलालेख (एपि० इ० ४५, पृ० ७७), परमार चामुंडराज का अर्थुना शिला-लेख (एपि० इ० १४, पृ० २६५) और आबू पर्वत शिलालेख (एपि० इ०, ६, पृ० १४८) में भी यही वंशोत्पत्ति वर्णन मिलता है।

परन्तु हरसोल लेख में बप्पईराज या वाक्पतिराज प्रथम को राष्ट्रकूट वंश से सम्बद्ध किया गया है। दीक्षित और दिसल्कर महोदय (एपी० इन्डिका १९, पृ० २३९-४०) इस मत की पुष्टि करते हैं। परन्तु डा० रे (डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्द० इ०, द्वितीय भाग पृ० ८४१-८४२) इस पर सन्देह करते हैं। डा० गांगुली का विचार है कि “उपर्युक्त दान पत्र से प्रत्यक्ष है कि परमार राष्ट्रकूट जाति के अंग थे। परमारों की राष्ट्रकूट उत्पत्ति इस तथ्य से और भी प्रमाणित है कि सीअक द्वितीय के पुत्र वाक्पति मुंज ने अमोघवर्ष, श्रीवल्लभ और पृथ्वीवल्लभ राष्ट्रकूट-उपाधियाँ धारण की थीं। इस दिशा में प्रकाश डालनेवाला इस वंश कोई अन्य शिलालेख अभी तक नहीं मिला है।... परमारों का मूल आवास अवश्य ही दक्षिण में रहा होगा जो किसी समय चक्रवर्ती राष्ट्रकूटों का निवास स्थान तथा राज्य था।” पुनः डा० गांगुली इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि “उपेन्द्र और उसके उत्तराधिकारी राष्ट्रकूट राजवंश के वंशज थे। आइने-अकबरी में लिखा है कि मालव में परमार वंश का संस्थापक-वीर दक्षिण से आया था।”

स्पष्टतः प्रतिहारों के पतन के बाद आर्यावर्त की सुरक्षा असुरों की बढ़ती हुई शक्ति के कारण संकट में पड़ गई। पुनः क्षात्रशक्ति देश की रक्षा के लिए प्राचीन अवन्ति महाजनपद में प्रकट हुई। पूर्व मध्यकालीन इतिहास में इन शत्रुनाशक (परमार) सम्राटों ने न केवल देश की रक्षा की वरन् संस्कृति और साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिससे परमारों का राजत्वकाल भी एक नया युग ही सजकर सामने आया।

१—परमार राजवंश का इतिहास, पृ० ६-७

२—वही, पृ० १३-१४.

उपेन्द्र

परमार वंश का प्रथम ऐतिहासिक पुरुष उपेन्द्र था जिसका वंश के उत्थान में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। नवसाहसांक चरित में परमार वंश का वर्णन करते हुए पद्मगुप्त (परिमल) उसे सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजस्वी तथा पृथु (आदिराज) के समान प्रतापी बताते हैं, जिसने पृथ्वी को अनेक यज्ञ-यूपों द्वारा अलंकृत किया। उसने शत्रुओं का भी दमन किया और इसीलिये उसने यज्ञों की^१ इसी को अभिलेखों का कृष्णराज माना गया है। उदयपुर प्रशस्ति से भी ज्ञात होता है कि उपेन्द्रराज ने अनेक यज्ञों द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया था। इस प्रकार कीर्ति प्राप्त करने के बाद शौर्य द्वारा उच्चराज पद (तुंगनृपत्व) को प्राप्त किया था।^२ इन कथनों के आधार पर डा० ब्यूलर ने निष्कर्ष निकाला कि उपेन्द्र ने मालवा को विजय कर अपने आपको ८०० ई० के बाद सिंहासन पर बिठलाया। डा० रे० ने भी इस तिथि को स्वीकार किया है परन्तु वे मालवा विजय पर संदेह करते हैं।

बाद के तीन राजाओं वैरिसिंह प्रथम, सीयक प्रथम और वाक्पति प्रथम के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। उदयपुर प्रशस्ति में इनके नाम दिये गये हैं परन्तु नवसाहसांक चरित में वैरिसिंह प्रथम और सीयक प्रथम का उल्लेख नहीं है।

वैरिसिंह प्रथम

उपेन्द्र राज का पुत्र श्री वैरिसिंह अत्यन्त वीर था जिसने शत्रुओं को पराजित कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर जय स्तम्भ की प्रतिष्ठा की।^३

उसका पुत्र सीयक भी महान विजेता और वीर था जिसने शत्रुओं का संहार किया था। उसे अवन्ति का शासक बताया गया है।^४ सीयक पुत्र वाक्पति भी वीर शासक था जिसने गंगा सागर तक (बंगाल की खाड़ी) विजय की थी।^५ नवसाहसांक चरित के अनुसार भी वाक्पति राज को पार्थि-

१—नवसाहसांक चरित, ११. ७६-७६

२—उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक ६

३—वही, श्लोक ८

४—वही, श्लोक ६

५—वही, श्लोक १०

वेन्दु (चद्रमा के समान प्रजा को सुखद राजा) कहा गया है जिसने राजलक्ष्मी को दीर्घ दृष्टि से अर्थात् नीति कौशल से भोगा ।^१

वैरिसिंह द्वितीय

श्री वाक्पति का पुत्र वैरिसिंह द्वितीय था जिसे वज्रट स्वामी भी कहा गया था । उसने अपनी तलवार की धारा से शत्रु वर्ग को काटकर धारा के महत्व को प्रकट किया—

जातस्तस्माद्वैरिसिंहोन्य नाम्ना लोको ब्रूते (वज्रट) स्वमिनं यं ।

शत्रोर्वर्गं धारणासेन्निहत्य श्रीमद्वारा सूचिता येन राजा ॥^२

यह धारा परमार राजधानी ही थी जिसका उत्कर्ष असिधारा (कृपाण) पर आधारित था ।

श्री हर्षदेव (सीयक द्वितीय)

परमारों के उत्थान में हर्ष का विशेष महत्व है इसे सीयक द्वितीय भी कहा गया है । हर्ष—सीयक द्वितीय ८४६ ई० के पहले राजसिंहासन पर बैठा । उन्हें 'महाराजाधिपति, महामाण्डलिक चूड़ामणि' कहा गया है । मेरुतुंग के प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रबन्धचिन्तामणि में 'सिंहदत्त भट' कहा गया है । यह अत्यन्त महत्वपूर्ण उपाधि है जिसका महत्व अभी तक पूर्ण रूप से विद्वानों द्वारा आंका नहीं गया है । स्पष्टतः सिंहदन्त भट का शुद्ध रूप सिंहदन्ति-भट होना चाहिए, जिसका अर्थ यही होगा कि हर्षदेव दन्ति (हाथी) को नष्ट करने के लिए सिंह के समान वीर था ।

डा० ब्यूलर का विचार है कि श्रीयक सिंहक का ही प्राकृत रूप है परन्तु डा० गांगुली इस मत से सहमत नहीं हैं इसलिए कि इसके पहले ही हमें परमार शासकों में श्रीयक नाम मिलता है परन्तु उस स्थान पर भी श्रीयक सिंहक का प्राकृत रूप स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है । नवसाहसांक चरित से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय शासक को "वैरद्विपघटासिंहः" (अर्थात् शत्रु-हाथियों को नष्ट करने वाला सिंह) कहा गया है । यही हमें सिंह दन्तिभट से भी ज्ञात होता है । इस प्रकार हर्षदेव का 'गर्जद गजेन्द्रों से' युद्ध तत्कालीन

१—नव साहसांक चरित, ११/८२

२—उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक ११

३—वही, श्लोक १२ (१)

४—नव साहसांक चरित, १६/७०

मुस्लिम शासकों के साथ संघर्ष का परिचायक है। हर्ष-सीयक द्वितीय ने भी तुरुष्कों (गर्जद् गजेन्द्रों) को पराजित करने में अपना यश को कमाया था।

राष्ट्रकूट सामन्त

ई३६ ई० में हर्षोल दानपत्र के समय सीयक द्वितीय राष्ट्रकूटों का सामन्त था। इस लेख के अनुसार उसने 'महाराजाधिराजपति' और 'महामाण्डलिक-चूड़ामणि' कहा गया है। उसे 'नृप' भी कहा गया है। इसी समय उसने मही तट पर भूमिदान दिया था। डा० गांगुली का विचार है कि, "सबसे पहले उसने अपना ध्यान सौराष्ट्र की ओर दिया जहाँ प्रतिहारों के सामन्त चालुक्य शासन कर रहे थे। सीयक द्वितीय अपने अभियान के समय मही नदी के तट पर रुका और ब्राह्मणों को भूमिदान दिया।"^१

हूण

कुछ समय बाद सीयक द्वितीय ने एक हूण राजकुमार को पराजित किया।

चन्देल

इस समय तक चन्देलों ने अपना राज्य भिलसा तक फैला लिया था और उनको सीयक द्वितीय से युद्ध करना पड़ा। यशोवर्मन के खजुराहो लेख में बताया गया है कि वह मालवों का काल (यम) ही था (कालवन्मालवानां)।

राष्ट्रकूट युद्ध

दक्षिण में इस समय राष्ट्रकूटों की शक्ति भी पतनोन्मुख थी। इस परिस्थिति ने सीयक द्वितीय को दक्षिण में प्रभाव बढ़ाने का सुअवसर दिया। उसने राष्ट्रकूट राज्य पर चढ़ाई कर दी। इस अभियान में बागड़ देश के मांडलिक कंक ने उसकी बहुत ही सहायता की। कृष्ण तृतीय के भाई और उत्तराधिकारी खोट्टिग (९७१ ई०) ने उसका सामना किया, किन्तु युद्ध में उसकी पराजय हुई। पराजित राष्ट्रकूट सम्राट का पीछा करता हुआ सीयक उसकी राजधानी मान्यखेट तक पहुँचा। खोट्टिग अपनी राजधानी की रक्षा न कर सका। विजेताओं ने नगर को लूटा। उदयपुर प्रशस्ति से भी सीयक द्वारा खोट्टिग की पराजय का उल्लेख है। इसके अनुसार हर्षदेव (सीयक) ने राष्ट्रकूट शासक से युद्ध में राजलक्ष्मी छीन ली।^२ इस प्रकार हर्षदेव-सीयक ने अपने

१—परमार राजवंश का इतिहास, पृ० २८

२—उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक १२ (२) : श्री हर्षदेव इति खोट्टिगदेवलक्ष्मी।

आपको राष्ट्रकूटों से मुक्त कर स्वतन्त्र बना लिया । “सीयक परमार राज्य का वास्तविक संस्थापक तथा अपने वंश का प्रथम चक्रवर्ती शासक था । एक हीन स्थानीय राजा के पद से उसने अपनी विचक्षणता और रणदक्षता से वह अपने युग के अग्रतम शासकों में स्थान पाने में सफल हुआ । उसने अपने पीछे एक विशाल साम्राज्य छोड़ा जिसका विस्तार उत्तर में बांसवारा राज्य तक, पूर्व में भिलसा तक दक्षिण में गोदावरी तक और पश्चिम में मही तक था ।”^१

उसने ९६० ई०-६७३ ई० तक राज्य किया । वाक्पति के अतिरिक्त सिधुराज एक अन्य पुत्र था । मेरुतुंग के अनुसार मुंज (वाक्पति) सीयक का पुत्र था । एक बार मुंज (मूँज, वास) में पड़े हुए एक बालक को उसने देखा और उसे लाकर उसका पालन-पोषण करने लगा । इससे उसमें पुत्र-स्नेह हो गया । आगे चलकर उसकी रानी से भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो सिधुराज कहलाया । परन्तु मुंज पर अब भी उसका स्नेह बना रहा और उसी को उसने अपना युवराज बना कर अपना राज्य सौंपा ।

संभवतः दक्षिण विजय से लौटते ही उसने अपने पुत्र वाक्पति को सिंहासन पर बिठाकर राज्य त्याग दिया । पद्मगुप्त के अनुसार सम्राट अपने अन्तिम जीवन-काल में माला लेकर सन्यासी होकर तपस्या में मग्न हो गया ।^२

वाक्पति द्वितीय (मुंज)

पुत्रस्तस्यविभूषिताखिलधराभोगो गुणैकास्पदं ।

शौर्याक्रान्तसमस्तशत्रुविभवाधिन्याय्य वित्तोदयः ।

वक्तृत्वोच्चकवित्त्वतर्ककलनप्रज्ञातशास्त्रागमः ।

श्रीमद् वाक्पतिराजदेव इति यः सद्भिः सदा कीर्त्यते ॥

श्री हर्षदेव का पुत्र गुणों का घर था । विक्रम-विद्या-बाणी से मुग्ध सत्पुरुष उसकी प्रशंसा करते हैं । उसका प्रारम्भिक अभिलेख वि० सं० १०३१ (=६७४ ई०) है जिससे यह सिद्ध होता है कि वह ६७४ ई० या इसके कुछ पूर्व ९७३ ई० में राज सिंहासन पर आया । उसके निम्नलिखित लेख प्राप्त हैं—

१—वर्मपुरी (इन्दौर) दानपत्र लेख—ताम्रपत्र लेखों के ऊपर नाम को मक्षण करते हुए गहड़ को दिखाया गया है । इसमें श्रीकण्ठ (शिव) और

१—परमार राजवंश का इतिहास, पृ० ३२

२—नवसाहसांक च०, ११. ८८ :

वशीकृताक्षमालो यः क्षमाम् अत्यायताम् दधन् ।

राजाश्रमम् अलं चक्रे राजपिः कुशचीवरः ॥

मुरारी (कृष्ण-वासुदेव) का स्तवन किया गया है। वंशावली के अतिरिक्त नर्मदा तट स्थित क्षेत्र का दान दिया गया है। इसमें धनिक पंडित का उल्लेख है जो अहिच्छत्र (पांचाल) से आकर यहां बस गया था।

२—उज्जैन दानपत्र लेख—उज्जैन के निकट ही इसकी प्राप्ति हुई है। इसमें वि० सं० १०३६ (=६७६ ई०) प्राप्त है।

३-४, नरवर (ग्वालियर प्रान्त) दानपत्र—वि० सं० १०३८ (९८१ ई०) और वि० सं० १०४७ (६६० ई०)

धरमपुरी और उज्जैन लेखों से वाक्पति द्वितीय के कई विरुद्ध प्राप्त होते हैं—अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ, और श्रीवल्लभ—ये उपाधियाँ राष्ट्रकूट शासकों ने धारण की थीं और वाक्पति II द्वारा उनका अपनाना राष्ट्रकूटों से उनका सम्बन्ध बताते हुए यह भी सिद्ध करता है कि वाक्पति ही अमोघवर्ष-नृपतुंग-कक्कल (कर्क II) का उत्तराधिकारी भी था। इसी कारण उसका कल्याणी के चालुक्यों के साथ बैर और तैलप को अपने पूर्वजों के राज्य से हटाने के लिये प्रयत्न तथा युद्ध हुए थे।^१

इनके अतिरिक्त वह उत्पलराज^२ और मुंजराज (नागपुर प्रशस्ति में) कहलाया। “दोनों ही, साहित्यिक और आभिलेखिक, साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि वाक्पति द्वितीय महान् विजेता था।”^३

“वाक्पति के सिंहासनासीन होने पर मालवा में एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ। जीवन के हर क्षेत्र में नई स्फूर्ति का संचार हुआ और देश में धन और साधनों की वृद्धि हुई। साम्राज्य सशक्त किया गया और प्रशासन एक दृढ़ नींव पर आधारित किया गया। इस समय से आगे परमार राजाओं ने अपने कार्यों को केवल विजय के लिये सामरिक अभियानों तक ही सीमित न रखा बल्कि अपनी जनता के सांस्कृतिक विकास और सामाजिक कल्याण की ओर भी उन्होंने ध्यान दिया। आगे चलकर सशक्त राजत्वकाल में मालवा की जनता एक दृढ़ राष्ट्र में परिवर्तित हुई।”^४

१—डा० रे, DHNI., II, p. 854

२—नवसाहसांक च०, ११.९२

३—DHNI., II, p. 854

४—परमार राजवंश का इतिहास, पृ० ३५

विजय और राज्य-विस्तार

सिंहासन पर आने के बाद सबसे पहले उसका ध्यान राज्य-विस्तार की ओर गया। उसके राज्य के चारों ओर सशक्त राज्य थे जिनके विरुद्ध उसने विजय अभियान किये।

परमार-कलचुरि

पूर्व की ओर चेदि मंडल में कलचुरियों का आधिपत्य था जिनकी राजधानी त्रिपुरी थी। वहाँ वाक्पति द्वितीय का समकालीन शासक युवराज द्वितीय (९७५ ई०-१००० ई०) था। वाक्पति की प्रमुख सफलता कलचुरियों पर विजय थी। इस समय कलचुरि राज्य अशक्त था। युवराज ने परमार शासक का सामना किया परन्तु उसकी पराजय हुई। उसका सम्पूर्ण राज्य परमारों के आधीन हो गया। त्रिपुरी पर भी आधिपत्य जमाया। उदयपुर प्रशस्ति में वाक्पति द्वारा युवराज की पराजय का उल्लेख है^१ चालुक्य विक्रमादित्य पंचम के कौथेम दानपत्र में भी कहा गया है कि उत्पल ने चेदियों की शक्ति को नष्ट किया।^२

गुहिल-पराभव

उसने उत्तर में मेदपाट (मेवाड़) के गुहिलों को भी पराजित किया और इनकी राजधानी आघाट (वर्तमान आहार, जो उदयपुर स्टेशन के निकट ही स्थित है) को भी लूटा। यहाँ इस समय नरवाहन का पुत्र और उत्तराधिकारी शक्ति कुमार राज्य कर रहा था जिसे मुंज ने सिंहासन से हटा कर भागने के लिये विवश किया।

चाहमानों पर आक्रमण

इस विजय से प्रभावित होकर वाक्पति ने पश्चिम में चाहमानों पर आक्रमण किया। चाहमानों का अधिकार आबू पर्वत तक फैल गया था। मुंज ने चाहमानों को पराजित कर आबू और दक्षिण भाग को जीत लिया। चालुक्य विक्रमादित्य पंचम के कौथेम दानपत्र से भी उत्पल द्वारा मारवाड़ विजय का ज्ञान होता है। उसने अपने पुत्र अरण्यराज को अबुंदा या आबू में स्थापित किया।

१—उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक १५

युवराजं विजित्याजौ हत्वा तद्वाहिनीपतीन् ।

खड्गमूर्द्धाकृतं येन त्रिपुर्यां विजिगीषुणा ॥

२—इंडियन ऐन्टीकरी, १६, पृ० २३, पंक्ति ४१-४२

फिर उसने चाहमानों की राजधानी नड्डल (नडोल) विजय करने का प्रयत्न किया। परन्तु यहाँ मुंज की पराजय हुई।

हूण-विजय

वाक्पति मुंज ने हूणों को भी पराजित किया।

चालुक्य-संघर्ष

वाक्पति-मुंज गुजरात के चालुक्यों के साथ भी युद्ध में फँस गया। मूलराज प्रथम (६४१-६४७ ई०) उसका समकालीन गुजरात का शासक था। परमारों की सेना से चालुक्य भयभीत हो गये। मूलराज ने शत्रुओं को रोकने का प्रयत्न किया। परन्तु युद्ध में हार कर मारवाड़ की ओर भाग गया।

लाट विजय

इसके बाद उसने लाट प्रदेश (दक्षिण गुजरात) पर आक्रमण किया। चालुक्य वंशज बारप्प, जो कर्णाट नरेश तैलप का सेनापति था, उस समय यहाँ का शासक था। वाक्पति ने विजय उस पर प्राप्त की (उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक १५)।

कर्णाट-युद्ध

उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वाक्पति ने कर्णाट, लाट, केरल, और चोल राज्यों की विजय की थी (कर्णाटलाटकेरलचोलशिरोरत्नरागिपदकमलः)।

समसामयिक चोल नरेश मधुरान्तक-उत्तम चोल (९६९-९८५ ई०) और राजराज प्रथम (९८५-१०१२ ई०) थे। ब्यूलर ने उसकी केरल और चोल राज्यों की विजय पर सन्देह प्रकट किया है। उनका विचार है कि वाक्पति ने कर्णाट नरेश तैलप के साथ युद्धों में इन लोगों के विरुद्ध युद्ध किया।

मेरुतुङ्ग बताते हैं कि वाक्पति ने तैलप (द्वितीय) को छः बार पराजित किया था। उदयपुर प्रशस्ति में भी ऊपर उसके द्वारा कर्णाट विजय का उल्लेख है। परन्तु वह चालुक्यों की शक्ति तोड़ न सका। तैलप के बारबार छापामार-आक्रमणों से परेशान होकर मुंज ने उसके राज्य पर आक्रमण किया। उसके मंत्री रुद्रादित्य ने उसे गोदावरी नदी के उस पार न जाने का अनुरोध किया। परन्तु मंत्री की बात न मान कर मुंज ने गोदावरी के उस पार अपना शिविर स्थापित किया। परन्तु मंत्री रुद्रादित्य ने यह सुनकर अपने स्वामी के पराभव होने के पूर्व ही अपने प्राण दे दिये। युद्ध में मुंज की पराजय हुई और तैलप II द्वारा वह बन्दी बनाया गया। बन्दी होकर भी बड़ी दयनीय दशा में उसका

बध करवा दिया गया । इस प्रकार पराक्रमी मुंज तैलप II की माया और इन्द्रजाल का शिकार हुआ । स्त्रियों द्वारा किसका नाश नहीं हुआ !!! कर्मगति विषम है । यह घटना, संभवतः, ९९३-९४ ई० के लगभग घटित हुई ।

मूल्यांकन

डा० रे ने कहा है—

“Tradition also records that Vakpati II was not only a successful military leader but also a poet and a generous patron of letters.”

अर्थात् वाक्पति द्वितीय न केवल एक सफल सेना नायक ही था बल्कि वह एक कवि और विद्या का उदार उन्नायक था । सत्य ही समर-विजयी वाक्पति मुंज महान विद्या रसिक और विद्वानों के आश्रय दाता थे । वह स्वयं सुकवि थे और उनके यहाँ कई अच्छे अच्छे कवि रहते थे जिनमें धनंजय और धनिक प्रधान थे । साहित्य-सेवियों को उपहारों से प्रोत्साहित करता था ।^१ उदारता, उन्नयन और अगाध सरस्वती भक्ति से परमार राजसभा संस्कृत साहित्य और विद्या का अमूल्य आगार बन गया । पद्मगुप्त उसका मुख्य राजकवि था । धनपाल, धनंजय, धनिक, हलायुध, शोभन तथा अन्य कवि उसके कृपापात्र थे । वह महान निर्माता भी था जिसने मालवा में अनेक सरोवर, मुंज सागर आदि, और मन्दिरों का निर्माण करवाया । इस प्रकार उसने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से जीवन के सभी पक्षों—रणविद्या, काव्य, कला और शिक्षा पर अपने वंश की कीर्ति स्थापित की । उदयपुर प्रशस्ति में कहा गया है कि उसने अपने शौर्य से सभी शत्रुओं को कुचल कर सम्पदाओं की वृद्धि की थी ।^१ वक्त्रता, कवित्व और शास्त्रागमों में निष्णात प्रज्ञावान् वाक्पति सज्जनों का स्तुत्य बन गया था ।^२ परन्तु उसके न रहने से सभी पर विषाद छा गया था ।

सिन्धुराज

वाक्पति-मुंज के बाद उसका छोटा भाई सिन्धुराज राजा हुआ जिसने हूण-राज को पराजित कर विजय द्वारा श्री की प्राप्ति की ।^३ ऐसी अनुश्रुति है

१—उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक १४

यस्य प्रणयिगणार्थितदाता कल्पद्रुमप्रख्यः ॥

२—वही, श्लोक १३

३—वही, श्लोक १६ (१)

कि मुंज और सिन्धुराज में मनोमालिन्य तथा बैर था। परन्तु नवसाहसांक चरित से ज्ञात होता है कि वाक्पति ने अपना राज्य इस छोटे भाई को सौंपा था। डा० मुंशी का विचार है कि जिस समय मुंज ने कर्णाटक पर आक्रमण किया, उसने सिन्धुराज को राजधानी में नियुक्त कर गया होगा। मान्यखेट में मुंज की मृत्यु के बाद सिन्धुराज ने धारा में अपने आपको सम्राट घोषित कर दिया और मुंज के पुत्रों को विभिन्न प्रान्तों में नियुक्त किया। उसने कुमार नारायण और नवसाहसांक की उपाधियाँ धारणा कीं।

उपलब्धियाँ

सिन्धुराज न तो अपने भाई के समान योग्य और वीर ही था और न उसके समान सिन्धुराज का व्यक्तित्व ही था। उसकी उपलब्धियों में उसके द्वारा विरोधी सामन्तों का दमन ही उल्लेनीय है।

नवसाहसांक चरित के अनुसार उसने नाग राजा शंखपाल को पराजित किया और उसकी पुत्री शशिप्रभा से विवाह कर लिया।

सिन्धुराज ने बागड़ (बांसवारा और डूंगरपुर प्रान्त) के परमार सामन्त का भी दमन किया। मुरल, कोशल और हूण राजाओं को भी हराया। पद्मगुप्त के अनुसार ही उसने लाट के शासक को भी हराया। यहाँ संभवतः बारप्प का पुत्र (या पौत्र) था। कोशल में संभवतः कलचुरि कोकल्ल द्वितीय था। मुरल और केरल की विजयों पर सन्देह है। उसने गुजरात के चालुक्यों पर भी आक्रमण किया किन्तु सफलता न मिली। बडनगर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि चामुण्डराज ने उसे पराजित किया था। इस पराजय का उसके राज्य पर बुरा प्रभाव पड़ा।

सिन्धुराज ने अधिक समय तक शासन नहीं किया। उसके बाद उसका पुत्र भोज का राज्यारोहण लगभग ६६६ ई० के प्रारम्भ में हुआ।

कविराज-भोज महान्

महाप्रतापी, सुसंस्कृत और कविराज भोज भारतीय इतिहास का प्रसिद्ध सम्राट है जिसने धारा (कृपाण) और सरस्वती से उसने धारा (नगरी) को भी प्रसिद्ध बना दिया। कहावत सी बन गयी है कि भोजराज के उदय से धारा (नगरी) और सरस्वती आश्रय युक्त थे तथा पण्डितों (विद्वानों) का मान था—

अद्य धारा सदाधारा सदालंबा सरस्वती।

पण्डिता मंडितास्सर्वे भोजराज भुवंगते ॥

उसके राज्यकाल के निम्नलिखित अभिलेख मिले हैं—

१. बांसवारा दानपत्र (वि० सं० १०७६=१०१६ ई०) यह दो ताम्रपट्टों में ३२ पंक्तियों का लेख है। दूसरे ताम्रपट्ट में लेख के अन्त में बायें ओर नागग्राही गरुड का चित्र है। शिव वन्दना के साथ सीयक से भोजदेव तक परमार वंशावली दी गयी है। इसमें कोंकण विजय का उल्लेख है।

२. बेतमा (इन्दौर) दानपत्र (वि० सं० १०७६=१०१९ ई०) इसमें भी नागारि गरुड को अंकित पाते हैं। इसमें भी कोंकण विजय का उल्लेख है।

३. उज्जैन दान पत्र (वि० सं० १०७८=१०२१ ई०) इसमें भी नागारि गरुड को मूर्त पाते हैं।

४. देपालपुर (इन्दौर) दानपत्र (वि० सं० १०७९=१०२२ ई०) इसमें भी हम नागारि गरुड को मूर्त पाते हैं।

५. कलवन ताम्रपत्र लेख (यशोवर्मन् का) इसमें सीयक द्वितीय से भोज तक परमार वंशावली दी गयी है और भोज की प्रशंसा की गयी है।

६. ब्रिटिश म्युजियम-सरस्वती प्रतिमा-लेख (वि० सं० १०८१=१०३४) भोजदेव ने इस सरस्वती (वाग्देवी) प्रतिमा का निर्माण शिल्पकार सीहर के पुत्र मूर्तिकार मन्थल से कराया।

७. तिलकवाड दानपत्र (वि० सं० ११०३=११४६ ई०)।

अल्बरूनी भी लिखता है कि १०३० ई० में कालवा की राजधानी धारा का शासक भोज देव था।

“The Paramara inscriptions are unanimous in praising Bhoja's great military talents.”^१

चक्रवर्ती नृप (वसुधाधिपत्यं) परमार अभिलेख एक मत से भोज महान् के सामरिक गुणों की प्रशंसा करते हैं। उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कैलास से मलय तक और उदयाचल से अस्ताचल तक सम्पूर्ण पृथ्वी को

१—DHNI., II, pp. 861—865

२—वही, P. 876

पृथु के समान ही अन्य राजाओं को अपने धनुष से मिटाकर भोगता था ।^१ यहाँ, इस प्रकार, सम्पूर्ण चक्रवर्ती-क्षेत्र (भारत) पर शासन करने वाले भोज को भी आदिराज पृथु के समान् चक्रवर्ती सम्राट कहा गया है जिसने उस युग में भी भारत मर्यादा की स्थापना की । इससे धरती भी प्रसन्न हुई ।

दिग्विजय

राजाओं को 'क्षिप्ता दिक्षु'—दिशाओं में अपने धनुष से उखाड़ फेंका-उसकी दिग्विजय का परिचायक है । उदयपुर प्रशस्ति ही बताती है कि उसने चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोमगल, भीम, तथा कर्णाट, गुर्जर देशों के राजाओं और तुरुष्कों को भी पराजित किया ।^२ अर्जुनवर्मन् की धार प्रशस्ति में भी भोज को सार्वभौम कहा गया है और उसने त्रिपुरी के कलचुरि नरेश गांगेय देव, (लगभग १०३०-४१ ई०) को पराजित किया ।^३ इन विजयोल्लेखों में अतिशयोक्ति होते हुए भी कुछ सत्यता भी है ।

कर्णाट

तैलप द्वितीय द्वारा मुंज के बध के बाद मुंज की हत्या का बदला लेने की इच्छा अवश्य ही भोज के मन में उठी होगी । मेरुतुंग ने लिखा है कि एक बार गुजरात के शासक भीम ने परमार सम्राट को गुजरात पर आक्रमण करने से रोकने के लिये डामर को दूत रूप में भेजा । डामर ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये धारा की राजसभा में एक नाटक का अभिनय किया जिसमें तैलप द्वारा मुंज-बध का इतना मर्मस्पर्शी प्रभाव भोज के मन पर पड़ा कि उसने कर्णाट पर ही सर्व प्रथम चढ़ाई कर दी । कुछ विस्तार के साथ यही कथा

१—उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक १७

आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयादा ।
भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन ॥
उन्मूल्योर्वी भरगुरुगणा लीलया चापयज्या ।
क्षिप्ता दिक्षु क्षितिरपिपरां प्रीतिमापादिता च ॥

२—वही, श्लोक १६ :

चेदीश्वरेन्द्ररथ तोमगल भीममुख्या- ।
न्कर्णाट लाट पति गुर्जरराट तुरुष्कान् ॥
यद्भृत्यमात्रविजितानवलोक्य मौला ।
दोष्णां वलानि कलयति न योद्धृलोकान् ॥

भोज चरित में भी बतायी गई है। इसमें बताया गया है कि भोज ने तैलप को बन्दी बनाकर उसके साथ वही व्यवहार किया जो उसने मुंज के साथ किया था। सर आर० जी० भण्डारकर मत है कि इस समय तैलप मर चुका था और उसका उत्तराधिकारी विक्रमादित्य पंचम ही रहा होगा, जिसका बध भोज ने किया। विद्वान् भण्डारकर के इस मत से सहमत हैं। किन्तु ओझा भोज द्वारा पराजित चालुक्य राजा को जयसिंह द्वितीय मानते हैं। परन्तु इतना निश्चित है कि १०१६ ई० के पहले भोज को कल्याणी के चालुक्यों पर अवश्य ही विजय प्राप्त हुई।^१ डा० गांगुली कहते हैं की दक्षिण की अपनी सामरिक विजय यात्रा में भोज की चालुक्य जयसिंह से मुठभेड़ हुई थी। उसने चालुक्य राज्य पर आक्रमण करने के लिये कलचुरि गांगेय और चोल राजेन्द्र प्रथम से मैत्री की उसने कुछ प्रारम्भिक सफलताएं प्राप्त कीं। कल्वन लेख और उदयपुर प्रशस्ति दोनों ने कर्णाटों पर उसकी विजय का उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्खिन पर प्रभुत्व जमाने के लिये उसने जो अन्तिम प्रयास किया वह असाधारण रूप से असफल रहा। जयसिंह के एक लेख (१०१६ ई०) में लिखा है कि उसने मालवसंघ को ढूँढा, घेरा, पीछा किया, पीसा और खदेड़ दिया। इसी राजा के कुलेनुर अभिलेख के अनुसार चालुक्य राजा ने चोल, गांगेय और भोजराज के गज-दलों को पराजित किया।^२ डा० रे के अनुसार यह केवल प्रशस्ति ही है जिसमें यह कहा गया है कि जयसिंह ने भोज को पराजित किया। भोज के दानपत्र लेखों से (१०१९ ई०, १०२० ई०) कोंकण की विजय पुष्ट होती है। अतः भोज पर विजय का उल्लेख डींग मात्र है।^३

कुछ समय तक दोनों वंशों में शान्ति रही। किन्तु जयसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी सोमेश्वर प्रथम (सन १०४४-६८ ई०) ने मालवा पर आक्रमण किया। परन्तु भोज भाग गया। बिल्हण के विक्रमांकदेव चरित से ज्ञात होता है कि जब आहवमल्ल ने धारा पर आक्रमण किया तो भोज भाग गये और चालुक्यों ने नगर पर अधिकार कर लिया। अन्य लेखों से भी ज्ञात होता है कि सोमेश्वर ने धारा और उज्जैन को नष्ट-भ्रष्ट किया। डा० गांगुली का मत है कि "सोमेश्वर प्रथम ने अपने सहायकों.....के साथ ग्वारहवीं शती के मध्य में मालवा पर आक्रमण किया, और इस विशाल सेना को पीछे

१—डा० रे, डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया, भाग २, पृ० ८६७

२—परमार राजवंश का इतिहास, पृ० ६७

३—डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ८६८

ढकेलने में असमर्थ होने के कारण भोज अपनी राजधानी से भागा । चालुक्य सेनाओं ने मालवा को रौंद डाला और इसकी राजधानी धारा को खूब लूटा । किन्तु सोमेश्वर शीघ्र ही शत्रु देश से हट गया तब भोज ने वापस आकर वहाँ अपनी सत्ता स्थापित की ।^१ इस पराजय से उसके राज्य का दक्षिणी भाग उसके हाथ से निकल गया ।

चेदीश्वर युद्ध

उदयपुर प्रशस्ति में चेदीश्वर की पराजय का उल्लेख है । ऊपर कहा गया है कि चेदीश्वर (कलचुरि नरेश) गांगेय के साथ मैत्री कर भोज ने दक्षिण में कर्णट पर आक्रमण किया था । इसके बाद यह मैत्री समाप्त हो गयी और परमारों तथा कलचुरियों की पुरानी शत्रुता ताजी हो गयी । भोज ने त्रिपुरी पर चढ़ाई की और गांगेयदेव को पराजित किया । कल्वन लेख और पारिजात-मंजरी से भी कलचुरि नरेश की भोज द्वारा पराजय सिद्ध होती है । आगे चल कर गांगेयदेव के पुत्र कर्ण ने गुजरात के भीम के साथ मिलकर एक ही समय में मालवा पर आक्रमण किया—पूर्व से कर्ण ने और पश्चिम से भीम ने । परन्तु जब तक भोज जीवित रहा, कर्ण उसका कुछ बिगाड़ न सका ।

इन्द्ररथ पराजय

उदयपुर प्रशस्ति में ही भोज द्वारा इन्द्ररथ की पराजय का उल्लेख मिलता है । यह एक शक्तिशाली राजकुमार था, जिसकी पहचान आदिनगर (वर्तमान मुखल्लिगम, गंजाम प्रान्त) के इन्द्ररथ से की गई है । यह कलिंग के गंगों की राजधानी थी ।

लाट युद्ध

उदयपुर प्रशस्ति में भोज द्वारा लाट नरेश की पराजय का उल्लेख मिलता है । दक्षिण पर आक्रमण करने के पहले उसने लाट देश की विजय की होगी । इस समय लाट का शासक कीर्तिराज था ।

कोंकण विजय

भोज के कई अभिलेखों में कोंकण विजय का उल्लेख मिलता है । लाट विजय के बाद ही भोज ने कोंकण विजय की होगी । यहाँ शिलाहारों का राज्य था । कोंकण-विजय के उपलक्ष्य में मालवा में विजयोत्सव भी मनाया गया था (कोंकण-ग्रहण-विजय-पर्वणि) ।

चन्देल युद्ध

दक्षिण अभियान के बाद ही भोज ने अपने राज्य की पूर्वोत्तर सीमा पर स्थित चन्देल-राज्य पर आक्रमण किया। चन्देलों के महोवा लेख में विद्याधर को भोज का युद्ध-विद्या का गुरु कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि चन्देलों और परमारों के सम्बन्ध ठीक नहीं थे।

कच्छपघात

विद्याधर के कनौज पर आक्रमण करने के समय डुबकुण्ड के कच्छपघात वंशीय अर्जुन ने राज्यपाल का बध किया था, उसका पुत्र अभिमन्यु भोज का सहायक था। परन्तु कनौज पर आक्रमण करने के समय ग्वालियर की शाखा के कच्छपघात राजा कीर्तिराज के साथ उसका युद्ध हुआ था। इसमें परमारों की पराजय हुई। फिर भी किसी प्रकार परमार सेनाएँ कनौज पहुँची और वहाँ के शासक यशपाल को पराजित किया।^१

उदयपुर प्रशस्ति में गुर्जर-नरेश की पराजय का उल्लेख है। यह गुर्जर-नरेश गुर्जर प्रतिहार राजा ही था, न कि गुजरात का शासक। यहीं पर जिस भीम नामक राजा का उल्लेख है, वह ही गुजरात का चालुक्य नरेश था।

गुजरात के चालुक्यों के साथ संघर्ष

गुजरात के चालुक्यों के साथ भोज का संघर्ष दीर्घ काल तक चलता रहा। भोज के पिता सिधुराज के साथ चालुक्य चामुंड राज ने उचित व्यवहार न किया। हेमचन्द्र (द्वयाश्रय, सर्ग ७, पृ० ५२१ और उसके आगे) बताते हैं कि एक बार चामुंडराज ने राज्य भार अपने पुत्र को सौंप कर तीर्थयात्रा पर काशी जा रहा था। मार्ग में मालवा के राजा ने उसको समस्त राजचिन्हों को त्यागने के लिये विवश किया। उसने भिक्षु वेष धारण कर तीर्थयात्रा की। वहाँ से वापस आने पर उसका पुत्र वल्लभराज एक बड़ी सेना लेकर मालवा की ओर चल दिया। परन्तु मार्ग ही में मालवा पहुँचने के पूर्व उसकी मृत्यु हो गयी।

उदयपुर प्रशस्ति का भीम गुजरात का चालुक्य भीम प्रथम ही है जिसे भोज ने पराजित किया था। मेस्तुंग ने भीम प्रथम और भोज के युद्ध का वर्णन कई कथाओं में किया है। जैन ग्रन्थों के आधार पर जब भीम प्रथम और डाहल के कर्ण (कलचुरि) ने मिलकर भोज पर आक्रमण किया, उसी युद्ध में भोज का देहान्त हो गया।

तुरुष्क संघर्ष

उदयपुर प्रशस्ति में भोज द्वारा तुरुष्कों की पराजय का उल्लेख है (तुरुष्कान् यद्भृत्यमात्रं विजितान्) ।

डा० रे के अनुसार जब महमूद गज़नवी ने ग्वालियर और बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया, तभी इस क्षेत्र में भोज और तुरुष्कों की मुठभेड़ हुई ।^१ इस समय उत्तरी भारत में तुरुष्कों (तुर्कों) के आक्रमण से अत्यंत संकटमय स्थिति उत्पन्न हो गयी थी । इन आक्रमणों से तत्कालीन राजाओं को भी अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया था । भोज ने अपने राज्य की उत्तरी सीमा को सुरक्षित रखा । इसी कारण महमूद का मालवा पर आक्रमण नहीं हुआ । आनन्दपाल की सहायता के लिये जो हिन्दू संघ बना था, उसमें उज्जैन का राजा सम्मिलित था । संभवतः यह परमार शासक ही था ।

फरिश्ता ने लिखा है कि अन्य राजाओं के साथ दिल्ली के राजा ने १०४३ ई० में हांसी, थानेश्वर और उनके आधीनस्थ प्रदेशों को उन राज्यपालों से छीना जिनको माहूद ने उन्हें सौंपा था । हो सकता है कि भोज ने मुसलमानों के विरुद्ध दिल्ली के राजा की सहायता में सैनिक टुकड़ी भेजी हो ।^२

अन्तिम जीवन

भोज का अन्तिम जीवन दुःखद था । पड़ोसी राज्यों से निरन्तर युद्ध करते करते उसकी सामरिक शक्ति और सैन्यबल क्षीण हो गयी थी । वृद्धावस्था से उसका भी शारीरिक बल कम हो गया था । गुजरात और चेदि के शासकों के हमलों से राज्य छिन्न-भिन्न हो गया । इसी समय उसने शरीर छोड़ दिया । इस प्रकार तत्कालीन इतिहास का एक महान नायक इतिहास के रंग मंच से हट गया और उसके हटते ही श्री और सरस्वती कुण्ठित हो गई तथा धारा निराधारा थी—

अद्या धारा निराधारा निरालंबा सरस्वती ।

पंडिताः खंडिताः सर्वे भोजराज दिवं गते ॥

डा० रे का विचार है—

“Apart from all these military campaigns Bhoja is probably best remembered by his achievements in the domain of art and letters.”^३

१—डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ८७०

२—परमार राजवंश का इतिहास, पृ० ७३-७४.

३—डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया, भाग २, पृ० ८७१

डा० गांगुली भी यही कहते हैं—

भोज की सामरिक सफलताएं तो महान् ही थीं, शान्तिपूर्ण कलाओं में उसकी निष्पत्तियाँ और भी अधिक श्लाघनीय थीं । उसके बहुमुखी मस्तिष्क ने अपने क्रिया-कलापों को केवल युद्ध कार्य तक नहीं सीमित रखा, उसने इसका उपयोग मालवा में एक आदर्श राज्य निर्माण करने की ओर भी लगाया, अपनी प्रजाओं की उचित शिक्षा के लिये उसने पाठशालाएँ स्थापित कीं ।^१ उसने उन लोगों की, जो साहित्य, कला और विज्ञान की उन्नति में लगे थे, आर्थिक सहायता की । वह स्वयं एक उच्चकोटि का कवि था और उसने अपना समय विद्वानों की गोष्ठी में व्यतीत किया ।

वह एक महान् निर्माता था जिसने वास्तु कला की उन्नति करवायी । उदयपुर प्रशस्ति में उसे देवालियों को बनवाने का श्रेय दिया गया है—

सुराश्रयैव्याप्य च यः समन्ताद्यथार्थं संज्ञां जगतीं चकार ॥^२

आज उसके बनवाये हुए मन्दिर तो आततायियों द्वारा धराशायी करवा दिये गये, परन्तु उसकी साहित्यिक और बौद्धिक प्रतिभा बहुत से ग्रन्थों की उपलब्धि से सिद्ध होती है । अलंकार, काव्य, दर्शन, ज्योतिष, और शिल्प शास्त्रों पर भोज नाम की मुद्रा अंकित है । इस प्रकार यह सत्य है कि भोज विजेता के रूप में, कवि रूप में, और भवन-निर्माण के कुशल निर्माता के रूप में वह महान् सम्राट् था ।

जर्यासिंह

चालुक्यों और कलचुरियों के धारा पर आक्रमण के समय ही भोज का देहान्त हो गया था और मालवा इन दोनों वंशों के अधिकार में था । भोज के उत्तराधिकारी जर्यासिंह ने इस पराभव और विपत्ति को उत्तराधिकार में पाया था । जब भोज स्वर्ग लोक को चला गया, पृथ्वी और धारा अधकार तथा शत्रुओं से भर गयी थी; तथा उसके योद्धा दुर्बल हो गये थे, एक सूर्य, जिसका नाम उदयादित्य देव था, उदित हुआ ।^३ इस उदयादित्य ने महाबराह की भांति पृथ्वी का उद्धार किया ।^४ नागपुर प्रशस्ति से भी ज्ञात होता है कि उदयादित्य

१—परमार राजवंश का इतिहास, पृ० ८८

२—उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक २०

३—वही, श्लोक २१

४—वही, श्लोक २२

ने ही भोज के बाद राष्ट्र की रक्षा की।^१ इस प्रकार इन अभिलेखों से सिद्ध होता है कि उदयादित्य ही भोज का उत्तराधिकारी था। परन्तु जयसिंह के मान्धाता और पन्हेरा अभिलेखों द्वारा स्पष्ट सिद्ध होता है कि वि० सं० १११२-१११६ (१०५५ ई०-१०५९ ई०) के बीच जयसिंह ही मालवा का शासक था, न कि उदयादित्य।

जयसिंह की उपलब्धियों के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। नागपुर प्रशस्ति के अनुसार जयसिंह ने कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण के स्वामित्व को स्वीकार कर लिया था। देश शत्रुओं से भरा था। संभवतः ऐसी संकट की स्थिति में उदयादित्य ने कल्याणी के चालुक्यों की सहायता से शत्रुओं को भगा कर मालवा को संकटों से बचाया। परन्तु विजय-सम्पति के बंटने पर कलचुरियों और चालुक्यों में मतभेद होने पर शत्रुता बढ़ गयी। जिससे इन मित्रों में ही परस्पर युद्ध आरम्भ हो गया। इसीलिये चालुक्यों ने मालव नरेश की सहायता की तथा जयसिंह ने चालुक्यों की सहायता से सिंहासन प्राप्त किया।

जब चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठ ने वेंगि पर आक्रमण किया, तो जयसिंह ने भी विक्रमादित्य की सहायता की, क्योंकि जयसिंह विक्रमादित्य की सहायता का ऋणी था। प्राथमिक विजय के बाद जब चोल सेनाएं भी वेंगि की सहायता को आगईं तो परमार और चालुक्य दोनों की पराजय हुई।

पुनः जयसिंह चालुक्यों के साथ तत्कालीन दलबन्दी का शिकार हुआ। अपने राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में जयसिंह को महान संकट का सामना करना पड़ा, और उसे फिर सिंहासन से हाथ धोना पड़ा। चालुक्य सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र भुवनैकमल्ल सोमेश्वर द्वितीय १०६९ ई० में सिंहासन पर बैठा। वह अपने भाई विक्रमादित्य से लड़ बैठा। जयसिंह ने सोमेश्वर द्वितीय के विरुद्ध विक्रमादित्य का साथ दिया। इससे रुष्ट होकर सोमेश्वर द्वितीय ने गुजरात के भीम के उत्तराधिकारी कर्ण के साथ मालवा पर आक्रमण कर दिया। कर्ण और सोमेश्वर द्वितीय ने जयसिंह को बुरी तरह पराजित कर मालवा पर अधिकार कर लिया। इसी समय जयसिंह की भी मृत्यु हो गयी।

उदयादित्य

इस विपत्ति काल में मालव-भूमि में उदयादित्य का उदय हुआ। उदयपुर प्रशस्ति में उसे त्राण देने वाला तथा अंधकार को दूर करने वाला सूर्य कहा गया है जिसकी तलवार की चिनगारियों ने शक्तिशाली शत्रुओं के अंधकार को नष्ट

कर दिया। वह मालव-उद्धारक महावराह ही था। नागपुर प्रशस्ति से भी यही ज्ञात होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उदयादित्य एक प्रवीर था जिसने मालवा की संकट काल में रक्षा की। भिलसा के एक लेख में भी उसकी शूरता और शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि वह पूर्वी मालवा की एक परमार शाखा का शासक था। जब कर्णाट और चालुक्यों की सेनाओं ने मालवा पर अधिकार कर लिया और जयसिंह की भी मृत्यु हो गयी तब उसने आकर मालव के मध्यदेश पर अधिकार कर लिया।

उदयादित्य के शासन काल के कई लेख प्राप्त हुए हैं। उसके अभिलेख उदयपुर (भिलसा), नीमाड़ प्रान्त और झलरा पटन (राजस्थान) में मिले हैं। इन लेखों के साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि उसका राज्य विस्तृत था और उसने संपूर्ण प्रदेश को पुनः प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी। कलचुरि नरसिंह के भेड़ाघाट लेख में उदयादित्य को मालवा का राजा कहा गया है। कलचुरि जयसिंह के कन्बेल लेख में 'धाराधीश उदयादित्य' (धारा के अधीश्वर उदयादित्य) का उल्लेख है। वह एक रणदक्ष शासक था जिसने मालवा में पुनः शान्ति स्थापित की।

उदयादित्य ने भी विद्या, कला और शिक्षा को प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाया। भोज द्वारा धारा में स्थापित पाठशाला उसके संरक्षण में बढ़ती रही। उसने पाठशाला की दीवारों पर और नीमाड़ के चौबेरदेरा मन्दिर में भी वर्णमाला और व्याकरण नियमों से युक्त रेखाचित्रों को उत्कीर्ण कराया। उसने घोषित किया कि कवियों और राजकुमारों की प्रसन्नता के लिये वे उत्कीर्ण किये गये हैं।

उदयादित्य ने निर्माण-कार्य भी किया और वास्तु तथा शिल्प की उन्नति की। उसने भिलसा (वर्तमान विदिशा) में उदयपुर को नींव डाली और नीलकण्ठेश्वर के विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया। देश में यह एक विशिष्ट प्रासाद माना जाता था। उदयपुर, उदयेश्वर और उदय-समुद्र (सरोवर) को भी उसने बनवाया। ब्राह्मणों को भी दान दिये गये। उसने स्वर्ण मुद्राएँ भी चलायीं। इस प्रकार उदयादित्य एक महान शासक था। उसने मुंज और भोज की भांति ही मालव-कला और विद्या का उन्नयन किया।

रासमाला के अनुसार उसके दो रानियाँ थीं। एक सोलंकी राजकन्या थी और दूसरी बघेलों की राजपुत्री। सोलंकी रानी से जुगदेव (जगद्देव) और बघेला रानी से रिघुवुल (रणछवल) पुत्र थे। उदयादित्य ने रिघुवुल को अपना उत्तराधिकारी बनाया। जुगदेव मालवा से चला गया। उसने गुजरात

में सिद्धराज की सैनिक सेवा स्वीकार ली। वहाँ वह बहुत ही जल्दी अपनी वीरता के कारण राजप्रिय हो गया। परन्तु जब सिद्धराज मालवा पर आक्रमण करना चाहता था, वह मालवा चला गया। पिता ने उसका स्वागत किया। और उसे अपना उत्तराधिकारी बना लिया। इसके बाद ही जब उदयादित्य की मृत्यु हो गयी, जुगदेव मालवा के सिंहासन पर बैठा और उसने ५२ वर्ष तक राज्य किया।

परन्तु गुजराती इतिहास की इस कथा पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। उसने ५२ वर्ष तक राज्य नहीं किया होगा। उदयादित्य के दूसरे पुत्र नरवर्मन ने १०९४ ई० के कुछ पहले राज्य प्रारंभ किया होगा।

उदयादित्य का राज्य १०८६ ई० कुछ बाद ही समाप्त हुआ। अभिलेख के अनुसार लक्ष्मदेव उसकी मृत्यु के बाद मालवा का राजा हुआ। डा० गांगुली के अनुसार जगद्देव और लक्ष्मदेव एक ही व्यक्ति के दो नाम थे।^१

लक्ष्मदेव

वह रण-दक्ष विजेता और कुशल शासक था। इसका नागपुर दानपत्र लेख सिद्ध करता है कि नागपुर के आस-पास का क्षेत्र भी परमारों के आधीन था। यहाँ पहले राष्ट्रकूटों का अधिकार था। परन्तु राष्ट्रकूटों की शक्ति कम होने पर ही परमारों ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया।

विजय

नागपुर लेख में ही उसके अभियानों का भी वर्णन मिलता है। वह एक विशाल सेना लेकर दिग्विजय के लिये निकला। उसने दुर्बल और पतनोन्मुख पाल राज्य पर आक्रमण कर गौड़पति के नगर में प्रवेश किया। (यथाविशद् गौड़पतेः पुरंदरः)।^२

त्रिपुरी के कलचुरियों ने भी ईसा की ११वीं शताब्दी में मालवा को क्षति पहुँचाई थी। लक्ष्मदेव ने कलचुरियों से बदला लेने के लिये चेदि देश पर आक्रमण किया। इस समय वहाँ यश-कर्ण शासक था जो एक साहसी योद्धा था। परन्तु युद्ध में उसकी पराजय हुई। लक्ष्मदेव ने त्रिपुरी को लूटा।

संभवतः उसने अंग और कलिंग पर भी विजय प्राप्त की। उसने पाल साम्राज्य पर आक्रमण के समय ही अंग की विजय की थी।

१—परमार राजवंश का इतिहास, पृ० १०४

२—एपि० इ० २, पृ० १८६, श्लोक ३४

लक्ष्मदेव ने दक्षिण भारत पर भी आक्रमण कर होयसल राज्य (मैसूर) पर चालुक्य विक्रमादित्य की सहायता से आक्रमण किया। परन्तु लक्ष्मदेव को पीछे हटना पड़ा।

लक्ष्मदेव की चोल राज्य पर भी विजय का उल्लेख है। कहा गया है कि वह ताम्रपर्णी नदी तक (पांड्य देश) चला गया और उसके पार रामेश्वरम् होता हुआ लंका तक चला गया और उसी द्वीप को आधीन किया। यह केवल कवि-प्रशस्ति ही मालुम पड़ती है।

उसने कुछ बर्बर राक्षसों को भी पराजित किया। संभवतः ये तुरुष्क जातियाँ ही थीं। कीरों के साथ ही उसकी तुरुष्कों पर विजय और उनसे अश्वों की भेंट का उल्लेख है। ये पंजाब के मुस्लिम आक्रमणकारी ही थे जिन्होंने परमारों पर आक्रमण किया। लक्ष्मदेव ने उन्हें पीछे ढकेल दिया। नागपुर प्रशस्ति में मुसलमानों के विरुद्ध लक्ष्मदेव की विजय का उल्लेख है।

लक्ष्मदेव एक वीर और महत्वाकांक्षी शासक था जो अल्पकाल ही में अपनी कीर्ति को चमकाकर क्षितिज में विलीन हो गया। लक्ष्मदेव का शासन लगभग १०६४ ई० में समाप्त हो गया।

नरवर्मन्

यह १०९४ ई० में गद्दी पर बैठा। उसके अभिलेखों में उसकी कृतियों और उपलब्धियों का उल्लेख मिलता है। वह उदार दाता, निर्माता, कवि और विद्वानों का आश्रयदाता था। धारा स्थित भोजशाला के एक लेख में उसे धर्म रक्षक कहा गया है।

संभवतः चन्देल मदनवर्मन् ने उसे हराया था, जैसा कि अजयगढ़ लेख से ज्ञात होता है।

चोलों से भी उसकी पराजय हुई गुजरात के चालुक्यों से भी उसका संघर्ष हुआ। जब जगमिह सिद्धराज तीर्थयात्रा पर आया था, उसकी अनुपस्थिति में मालवधति यशोवर्मन् ने उसके राज्य पर आक्रमण कर वहाँ के चालुक्य मंत्री को अपमानजनक शर्तों को मानने के लिये बाध्य किया। सिद्धराज ने लौटने पर चढ़ाई कर दी और यशोवर्मन् को बन्दी बनाकर छोड़ दिया।

इन पराजयों से बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मालवा का पतन ही ज्ञात होता है।

नरवर्मन स्वयं एक कवि था जिसने कई स्तोत्र और श्लोक रचे। उसने अनेक मंदिर बनवाये।

यशोवर्मन

नरवर्मन के बाद उसका पुत्र यशोवर्मन गद्दी पर बैठा। उसके राज्य-काल में परमार राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया था। सामन्त विजयपाल देवास में स्वतन्त्र हो गया; मदनवर्मन चन्देल ने भिलसा पर हमला किया; और शाकम्भरी के चाहमानों ने भी आक्रमण कर मालवा में आतंक फैला दिया। गुजरात के चालुक्यों की सेनाओं ने सिद्धराज के नेतृत्व में मालवा में प्रवेश किया। अवन्तिनाथ बन्दी बना और ११३८ ई० तक बंधन-बद्ध रहा। मालवा के राज्य पर सिद्धराज का हमला अभियान मात्र न था। उसने परमार सत्ता को पूर्ण रूप से उखाड़ कर मालवा को अपने राज्य में मिला लिया। ११३८ ई० में यशोवर्मन चाहमानों की सहायता से गुजरात के कारावास से भाग आया। संभवतः अजयसिंह सिद्धराज की शर्तें मान कर वह उसके मांडलिक रूप में धारा में राज्य करता रहा।

जयवर्मन

यशोवर्मन के पुत्र जयवर्मन ने सिद्धराज के अन्तिम राज्यकाल में मालवा पर पुनः परमारों का अधिकार स्थापित कर लिया। परन्तु सिद्धराज के उत्तराधिकारी कुमारपाल के राज्यकाल में उसे फिर मालवा खोना पड़ा। बीस वर्ष तक परमार सामन्त शासक रूप में 'महाकुमार' होकर शासन करते रहे।

परन्तु जयवर्मन के पुत्र विन्ध्यवर्मन ने १२वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चालुक्य मूलराज द्वितीय की पराजित कर मालवा पर पुनः अधिकार जमाया।

परन्तु चालुक्यों, होयसलों और यादवों के आक्रमणों के कारण वह शान्ति से न रह सका। विन्ध्यवर्मन ने शत्रुओं को खदेड़ दिया। वह ११९३ ई० में मर गया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी सुभटवर्मन ने चालुक्य राज्य पर आक्रमण कर जैन मन्दिरों को लूटा। उसे यादव राजा जैतुंगि ने पराजित किया।

उसके बाद उसका पुत्र अर्जुनदेव १२१० ई० में शासक हुआ। उसे भी यादवों ने पराजित किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि भोज के बाद परमारों की शक्ति क्षीण होने लगी। पड़ोसियों, चालुक्यों, चेदि और यादवों से लगातार

युद्धों में फंसे रहने के कारण मालवा की शक्ति कम होती गयी और अन्त में मुसलमानों ने इसे जीत कर इसका स्वरूप ही बदल दिया ।

परमारों के पतन के कारण

१—भोज के बाद दुर्बल और दार्शनिक शासकों ने उस सैन्य युग में वंश को गिरा दिया ।

२—विभिन्न पड़ोसी राज्यों में संघर्ष और दलबन्दी का होना भी पतन का मुख्य कारण था । दूर देशों की विजय व्यर्थ ही थी जब उन पर दृढ़तापूर्वक अधिकार स्थापित नहीं किया जा सका ।

३—विदेशियों और विध्वंसक तुर्कों के आक्रमणों ने शक्ति को खोखला कर दिया

४—राजवंश में बहु-विवाह और विभिन्न रानियों से उत्पन्न राजपुत्रों में राज्य पाने की महत्वाकांक्षा तथा उत्तराधिकार युद्धों ने वंश को गिरा दिया ।

सिंहावलोकन

यह महान वंश, “पारस्परिक विनाशकारी युद्ध की ज्वालाओं में मुर्झा गया और सूख गया, किन्तु इसने अपने पीछे एक महान चिरस्थायी सभ्यता और संस्कृति छोड़ी । राजनीति के क्षेत्र में इसकी सफलताएं भव्य थीं; सरस्वती की वेदी पर इसकी देन अपरिमित थी; स्थापत्य कला के क्षेत्र में इसकी क्रियाएं अभूतपूर्व थीं; दीर्घकाल तक मुसलमान आक्रमणों की वेगवती धाराओं के विरुद्ध दक्खिन के लिये यह बाँध स्वरूप था ।.....इनके पतन से दक्खिन का अवरोध टूटा; मुसलमान सेनाओं की बाढ़ को रोकने वाला कोई न रह गया और यह बाढ़ दक्षिण के समस्त हिन्दू साम्राज्यों को बहा ले गई ।”^१

परमार संरक्षण में विद्या और कला का विकास

प्रतिहार वंश के पतन के बाद अवन्ति या मालवा में परमारों का जो राजवंश स्थापित हुआ उसने उत्तरी भारत के इतिहास में कुछ विशेष कार्य किये । इस वंश का एक राजा-भोज-तो विक्रमादित्य ही की भांति कला और साहित्य के इतिहास में अति प्रसिद्ध हो गया । प्रायः सभी परमार सम्राट महान् निर्माता थे । उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने बहुत से मन्दिरों का निर्माण कराया था । उसने धारा नगरी का निर्माण कराया । प्रसिद्ध शिल्प-शास्त्र, समरांगणसूत्रधार, की भी रचना भोज ही ने की, ऐसा

माना जाता है। भोज की अधिकांश इमारतें नष्ट हो गयी हैं। संभवतः स्कन्दपुराण में वर्णित आवन्त्य खंड-अवन्तिक्षेत्र-माहात्म्य, लोगों (मन्दिरों) की भी स्थापना-का प्रणयन भी भोज के ही समय में हुआ था। धारा नगरी में जो भी भवन बचे हैं, वे अब मुस्लिम इमारतें हैं। स्थानीय लोगों का ऐसा विश्वास है कि भोज के बनवाये मन्दिर अब भी मालवा के जंगलों में छिपे पड़े हैं। भोज ने अपने राज्य में प्रासाद-रचना की नयी शैली चलायी। इन मन्दिरों की भित्तियों (दीवारों) पर उत्कीर्ण देवमूर्तियाँ और अलंकरण एक प्रमुख विशिष्टता है। परमार शासकों की धार्मिक नीति सहिष्णु और उदार थी। उन्होंने पास ही पास हिन्दू और जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया। ब्राह्मण धर्मविलम्बी आचार्यों और कवियों के साथ ही साथ जैन विद्वानों को भी उदार प्रोत्साहन मिला।

नगर वास्तु

भूपाल (मध्य प्रदेश) से २० मील दूर भोजपुर नामक एक विशाल सरोवर—है जिसका निर्माता भोज माना जाता है। राजा उदयादित्य ने भिलसा से ३० मील उत्तर उदयपुर नगर की स्थापना की थी। यहीं उसने उदयेश्वर और उदयसागर का भी निर्माण करवाया था। इस समय यहाँ केवल प्राचीन खंडहर ही प्राचीन वैभव की कहानी बताते हैं। राजा देवपाल ने देवाल-पुर नामक नगर का निर्माण करवाया। यह इन्दोर से लगभग ३० मील दूर उत्तर पश्चिम में एक गाँव है। यहाँ भी देवपाल-सागर का निर्माण करवाया गया था। उदयपुर प्रशस्ति में लिखा है कि भोज ने केदारेश्वर, सोमनाथ, सुंडीर (मुंडीर), काल, अनल और रुद्र के लिये मन्दिरों का निर्माण कर संसार को मंदिरों से भर दिया। डा० गांगुली का विचार है कि इन मन्दिरों का निर्माण मालवा में हुआ था।

उदयपुर का नीलकण्ठेश्वर एक अति प्रसिद्ध मंदिर है जिसका निर्माण १०५९ ई० हुआ। इसे एक अभिलेख में भारत का सर्वाधिक भव्य मंदिर कहा गया है। यह उत्तर भारत के मंदिरों की वास्तुकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह लाल बलुआ पत्थर का बना हुआ है। भव्य स्तंभ शिखर, सोपान (सीढ़ियाँ) और उत्कीर्ण नारी-प्रतिमाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संपूर्ण रचना अत्यंत मनोरम है। श्री बेरलर ने लिखा है “कि पुष्पीय उत्कीर्ण अलंकरणों के निष्पादन की उत्कृष्टता के कारण ही यह मन्दिर शेष अन्य मन्दिरों से बढ़-चढ़कर है।”^१ फर्गुसुन के अनुसार “इस मन्दिर का प्रत्येक अंश अति विशुद्धता और

सूक्ष्मता से उत्कीर्ण किया गया है, ” यहाँ वेदों का अध्ययन और अध्यापन भी होता था ।

ऊन का मन्दिर-समूह

इन्दौर के निकट नीमाड़ प्रान्त में ऊन खरगांव से १८ मील पश्चिम है । परमार शासन काल में यह एक प्रसिद्ध कला केन्द्र था, जहाँ अनेक हिन्दू और जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ था । खजुराहो के अतिरिक्त ऊन के ही मन्दिर एक साथ मिलते हैं । इनका निर्माण १०५६ ई०-१०८६ के बीच हुआ था ।

इस मन्दिर समूह में चौबारा देरा मन्दिर सबसे विस्तीर्ण मन्दिर है । इसमें उत्कीर्ण प्रतिमाएं और स्तम्भों में उत्कीर्ण नारी-प्रतिमाएं रूप-कला-शिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है । यहाँ के महाकालेश्वर, वल्लभेश्वर, नीलकण्ठेश्वर, गुप्तेश्वर, गोअलेश्वर आदि अन्य प्रसिद्ध मंदिर हैं ।

नेमवर (इन्दौर, प्रान्त) में सिद्धनाथ महादेव का प्रसिद्ध और भव्य मंदिर है ।

साहित्य

परमारों के राजत्व काल में वास्तु और शिल्प तथा मूर्तिकला के अतिरिक्त साहित्य का भी यथेष्ट विकास हुआ । इसका मुख्य कारण परमार शासकों की उदारता तथा विद्या-विचार और शिक्षा-प्रेम ही था । वे सरस्वती के महान् उपासक थे । इसीलिये साहित्य की विशेष प्रगति हुई । इस वंश के कई शासक स्वयं महान् कवि थे । उनकी सहानुभूति और प्रोत्साहन से दूसरे कवियों और चिन्तकों ने भी साहित्य-सृजन में अपना जीवन लगाया । वाक्पति को उच्च कवित्व, ओजस्वी भाषण, तर्क, कला और शास्त्रों तथा आगमों का अध्येता बताया गया है । उत्पल कविसम्राट था । धनिक ने अपने ग्रन्थ दशरूपक की टीका में वाक्पति-मुंज का उल्लेख किया है । काश्मीरी कवि ओमेन्द्र ने भी अपनी पुस्तकों में उत्पलराज द्वारा रचित श्लोकों को उद्धृत किया है । ‘रसिकसंजीवनी’ में अर्जुनवर्मन् ने मुंज के एक श्लोक को उद्धृत किया है मेरुतुंग ने प्रबन्धचिन्तामणि में कुछ श्लोक दिये हैं जिन्हें उसके अनुसार राजा ने दक्षिण में अपने बंधन काल में रचा था । कहा जाता है कि वाक्पति राज ने ‘मुंज-प्रतिदेश-व्यवस्था’ (भारत का भौगोलिक वर्णन) लिखा था । इस प्रकार मुंज ने साहित्यिक उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान दिया । चालुक्य-राज-

धानी में जब वह बध-स्थान पर ले जाया गया, तो उसके मुख से ये उद्गार निकले—

“लक्ष्मी गोविन्द के पास जायगी; श्री और वीरता वीर के घर जायगी; किन्तु उस यशः पुंज मुंज के मरने पर सरस्वती निरालंबा हो जायगी।”

सिन्धुराज भी प्रबुद्ध सम्राट था जिसने साहित्य की अभिवृद्धि में अमूल्य योगदान दिया। कवियों और विद्वानों को उपहार मिले। उसके पुत्र भोज की साहित्यिक कार्यों में विशेष रुचि थी। कल्हण के अनुसार काश्मीर के शासक कलश और भोज दोनों ही विद्वान और कवि-मित्र थे। ‘आइने अकबरी’ में लिखा है कि “भोज ज्ञान का आदर करता था; विद्वानों का सम्मान करता था; और ज्ञान-पिपासुओं को सहायता कर प्रोत्साहन देता था। पाँच सौ विचारवान् पुरुष जो अपने समय के प्रखर विद्वान थे, उसकी राजसभा के संचित ज्ञान के रूप में देदीप्यमान थे, उनकी प्रतिष्ठा और गुण के अनुरूप ही उनका सत्कार किया जाता था।”

उदयपुर प्रशस्ति में भोज को कविराज कहा गया है। उसके रचे हुए बहुसंख्यक ग्रन्थ थे जिनमें निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं—

(१) आदित्य प्रताप सिद्धान्त (ज्योतिष शास्त्र), (२) आयुर्वेद सर्वस्व, (३) चम्पू रामायण, (४) चाणक्य नीति, (५) चारुचर्या, (६) तत्त्व प्रकाश, (७) नाममालिका (८) युक्तिकल्पतरु, (९) राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति, (१०) राजमृगांक योगसूत्र वृत्ति, (११) विद्याविनोद काव्य, (१२) विद्वज्जन वल्लभ प्रश्न ज्ञान, (१३) विश्रान्त विद्याविनोद, (१४) व्यवहार समुच्चय, (१५) शब्दानुशासन, (१६) शालिहोत्र, (१७) शिवतत्त्ववर्तनकलिका, (१८) समरांगण सूत्रधार, (१९) सरस्वती कण्ठाभरण, (२०) सिद्धान्त संग्रह, (२१) सुभाषित प्रबन्ध, (२२) प्रश्न चिन्तामणि विद्वज्जन वल्लभ, (२३) भोजराज वार्त्तिक (२४) शृंगारमंजरीकथा (२५) राजमार्तण्ड (ज्योतिष), (२६) राजमार्तण्ड (वेदान्त)। इनके अतिरिक्त कूर्मशतक नाम की दो प्राकृत कविताएँ हैं जिनमें प्रत्येक कविता में १०६ श्लोक हैं।^१

कुछ लोग सन्देह करते हैं कि भोज ने इतने ग्रन्थ लिखे होंगे।

उदयादित्य और नरवर्मन् भी विद्या के उन्नायक थे। नरवर्मन् स्वयं कवि था। उसने नागपुर प्रशस्ति की रचना की थी। उसकी राजसभा अनेक कवियों से सुशोभित थी।

अन्तिम परमार राजा अर्जुनवर्मन में काव्यप्रतिभा थी। वह काव्य और संगीत का निधि था। उसने सरस्वती को पुस्तक और वीणा के भार से मुक्त किया। उसने रसिक-जीवनी-काव्य और रसिक-संजीवनी, अमरुशतक-टीका, नामक ग्रन्थों की रचना की थी। भोज द्वितीय भी अपने पूर्वज भोज की भाँति कवियों का संरक्षक था।

जनता के बौद्धिक उत्थान के लिये अनेक शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित की गयीं। इनमें धारा की पाठशाला (वर्तमान कमाल मौली मसजिद) सर्व प्रसिद्ध है। इसकी दीवारों के चित्रों से भी व्याकरण और वर्णमाला का बोध होता है। इससे तत्कालीन शिक्षापद्धति पर प्रकाश पड़ता है।

धनपाल

इसके अतिरिक्त तिलकमंजरी कथा का लेखक कवि धनपाल भी मालवा में मध्यदेश से आकर बस गया था। इसने अन्य भी कई ग्रन्थ लिखे थे।

धनंजय

यह इस काल का महान् विद्वान् था जिसका दशरूपक नामक ग्रन्थ अत्यंत प्रसिद्ध है।

धनिक

धनिक धनंजय का ही भाई था। उसने दशरूपक पर दशरूपालोक नामक टीका लिखी।

पद्मगुप्त (या परिमल)

यह भी प्रसिद्ध राजकवि था जिसने नवसाहस्रांक चरित की रचना की।

मट्ट हलायुध

यह विख्यात कवि था। उसने कविरहस्य की रचना की। उसने पिगल-छन्द-सूत्र पर भी मृतसंजीवनी टीका लिखी।

अमितगति

यह एक यशस्वी जैन कवि था जिसने कई ग्रन्थ लिखे।

इनके अतिरिक्त परमार युग में अनेक कवियों और चिन्तकों ने इस युग को अपनी प्रतिभा से प्रभासित किया। इससे सिद्ध होता है कि इस युग में परमार शासकों ने विद्या और कला के क्षेत्र को कितना उन्नत कर भारती भंडार भरा था।

अध्याय १०

गहडवाल वंश

प्रतिहार साम्राज्य के पतन के बाद पवित्र मध्यदेश विशेष कर अन्तर्वेदी अरक्षित हो गयी। विभिन्न देशों और दिशाओं से विभिन्न जातियों ने कनौज पर आक्रमण किये। महमूद गज़नवी और उसके बाद पंजाब के मुस्लिम (गज़नवी) शासकों ने मध्य देश में आतंक फैला दिया। चन्देल और कलचुरि सम्राट तो कनौज पर आँख ही लगाये बैठे थे। कलचुरि शासकों ने प्रयाग और काशी पर अधिकार भी कर लिया था। पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर प्रान्त में भी कलचुरियों का आधिपत्य था। इसी समय, १०३३ ई० में पंजाब के मुस्लिम शासक अहमद नियलतिगीन ने काशी पर हमला किया।^१ बसही पत्रलेख के एक महत्वपूर्ण श्लोक से प्रमाणित है कि भोज परमार ने कनौज पर हमला किया। इस प्रकार जब पृथ्वी विध्वंसक आक्रमणों से आक्रान्त हो उठी, तब त्राता चन्द्रदेव नामक एक गहडवाल कुल के व्यक्ति का उदय हुआ। उसने ही प्रजा के दुख का अन्त किया।^२ चन्द्रदेव के चन्द्रावती दानपत्र लेख में भी बताया गया है कि उसने अपने पराक्रम से प्रजा के उपद्रव को शान्त कर गाधिपुर (कनौज) राज्य प्राप्त किया।^३ इससे यह सिद्ध होता है कि चन्द्रदेव ही इस नये कान्यकुब्ज राज्य का संस्थापक था।

गहडवाल वंश

यह प्रसिद्ध क्षत्रिय वंश (गहडवालेक्षत्रवंशप्रसिद्धे) था। इस वंश के मूल के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। ऐसा कहा जाता है कि ययाति वंश में उसके सबसे छोटे लड़के के वंशजों में देवदास पैदा हुआ था जिसने काशी के आस-पास शासन किया। वह शनि से पीड़ित था। परन्तु उसने (दुष्ट) ग्रह की दुष्कृतियों और पीड़ाओं को टाला। इसीलिये वह 'ग्रहवार' (ग्रहों का निवारण करने वाला) कहलाया। इसका बिगड़ा हुआ रूप ही गहरवार प्रसिद्ध हो

१—ईलियट ऐन्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, जिल्द २, पृ० १२३-१२४

२—हि० क०, पृ० २६४

३—चन्द्रदेव का चन्द्रावती लेख, पंक्ति ४

४—कुमारदेवी का सारनाथ लेख, श्लोक १४

गया ।^१ डा० त्रिपाठी का मत है कि पहले यह एक अज्ञात गणजाति थी जो कालान्तर में धर्म रक्षक होकर इतिहास में प्रसिद्ध हो गयी । कुछ विद्वानों ने इन्हें राष्ट्रकूटों (राठौर) से सम्बद्ध किया गया है ।^२ पृथ्वीराजरासो में कनौज को 'रठौरपुर' (राठौरों का नगर) कहा गया है ।^३ भविष्यपुराण में भी इन्हें राष्ट्रपालान्वय कहा गया है ।

इस वंश का प्रारम्भिक इतिहास अधिक ज्ञात नहीं है । चन्द्रदेव का पितामह यशोविग्रह ही इस वंश का संस्थापक था । उसका पुत्र और उत्तराधिकारी महीचन्द्र था । यशोविग्रह और महीचन्द्र को कोई राजत्व-सूचक उपाधि नहीं दी गयी है । इससे ऐसा अनुमान किया गया है कि वे राजा भी न थे । परन्तु महीचन्द्र को यशस्वी कहा गया है—

यशोविग्रह

महीचन्द्र (येनव्यापारितं यशः)

परमेश्वर परममाहेश्वरः

परमभट्टारकमहाराजाधिराज चन्द्रदेव

पृथ्वीराजरासो (५८/२५५) में जयचंद के आस-पास रहने वाले राजा, सामंत और ग्रह—मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि आदि—के समान तथा जयचंद इनके बीच ध्रुव के समान कहा गया है ।

काशिराज चन्द्रदेव

महीचन्द्र का पुत्र चन्द्रदेव एक महान् (परमभट्टारक महाराजाधिराज), नीतिज्ञ (नयैकरसिकः) और विजयी (श्रीचन्द्रदेवो विजयी) सम्राट था, जिसने शत्रुओं को पराजित कर (क्रांतद्विषन्मंडलो) अपनी भुजाओं से ही कान्यकुब्ज राज्य को प्राप्त किया था (श्रीमद् गाधिपुराधिराज्यम् दौर्विक्रमेणार्जितं) । कान्यकुब्ज राज्य पर अधिकार करने के बाद वह काशि, कुशिक और उत्तर-कोसल का रक्षक बन गया ।

काशी

यह प्रसिद्ध और विख्यात काशी राज्य ही था, जो बहुत बड़ा तीर्थ स्थान भी था ।

१—हि० क०, पृ० २६७

२—वही, पृ० २६७-२९८

३—पृथ्वीराजरासो, ५८. २००

कुशिक

इसकी पहचान डा० त्रिपाठी और रोमा नियोगी कनौज से करते हैं। परन्तु कनौज का उल्लेख इसके ऊपर ही किया जा चुका है। अतः इसकी पहचान कनौज से करना ठीक नहीं है। कुशिक की पहचान कौशिक अर्थात् कौशिकी (कोसी नदी, बिहार) के तटवर्ती भूखंड से करना ठीक है। मत्स्य (१२०-५४) और पद्म पुराण (आदि खंड, ६-४७) में कुशिक जनपद का उल्लेख है और यह पांचाल जनपद या कान्यकुब्ज देश नहीं है। स्कन्द पुराण में भी कौशिक (कौशिकी तटवर्ती पवित्र क्षेत्र) का उल्लेख है। रामायण में इसे वंग और कलिंग के साथ (वंगान् कलिंगांश्च कौशिकांश्च)^१ उल्लेख है। महाभारत में भी कुशिक आश्रम को कौशिकी के तट पर चम्पारण्य (चम्पारन, बिहार) के पास स्थित बताया गया है।^२ कौशिक-कुंड भी कौशिकी तट पर स्थित था।^३ अतः कुशिक की पहचान कनौज से नहीं हो सकती।

उत्तरकोसलेन्द्रस्थानीयक

डा० त्रिपाठी और रोमा नियोगी इस पद को 'उत्तरकोसल' और 'इन्द्रनगर' मानते हैं। उत्तर कोसल की पहचान अयोध्या से करते हैं और इन्द्रनगर की पहचान इन्द्रप्रस्थ से करते हैं। परन्तु यह मान्य नहीं है। यहाँ यह पद उत्तरकोसल + इन्द्रस्थानीयक में नहीं तोड़ा जा सकता है। यह सीधा पद है—उत्तर कोसलेन्द्र (भगवान राम) का स्थान यानी अयोध्या। यह पवित्र वैष्णव स्थान था जहाँ लोकनाथ (राम) परम पूज्य देवता थे (लोकनाथमयोध्यायां)।^४ इन लोकनाथ को ही वैष्णव लेखक ने 'उत्तरकोसलेन्द्र' कहा है। 'स्थानीयकानि' (बहुत से स्थान) काशी और कुशिक के भी साथ हैं। गर्गाचार्य संहिता में भी अयोध्या को राघवपुरी बताया गया है—

अयोध्याराघवपुरी कौशिकी-रघुवंशजा।^५

इस प्रकार चन्द्रदेव ने कान्यकुब्ज महादेश—कनौज से काशी-कुशिक तक क्षेत्र—पर अपनी भुजाओं की शक्ति से आधिपत्य स्थापित किया—

१—किष्किंश्वा कांड, ४१. ११

२—महाभारत, वनपर्व, ८४. १३१-१३३

३—वही, ८४. १४२-१४३

४—कृत्यकल्पतरु, भाग ८, पृ० २५२

५—गर्गाचार्य संहिता, ४/१६/११६ (२)

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वरः निजभुजोपार्जितश्री कान्यकुब्जाधिराजाधिपत्य श्रीचन्द्रदेवो विजयी ।^१

इसके राज्य में बावन पत्तल भी सम्मिलित था^२ जिसकी पहचान हरदोई प्रान्त (हलदोय पत्तल) में परगना बावन से की जानी चाहिये । उसने इस विस्तृत भूमिखंड को अपनी उदारता (दानधर्म), शक्ति और शासन से व्यवस्थित कर अन्तर्वेदी में फैले हुए प्रजा के उपद्रवों को शान्त किया ।^३ इसीलिये बसही ताम्रपत्र लेख में उसे देश को मुस्लिम आक्रमणों से बचाने वाला कहा गया है ।

चन्द्रावती ताम्रपत्र लेख (वि० सं० ११५०=१०६३ ई०) से ज्ञात होता है उसने नरपति, गजपति, गिरिपति और त्रिशंकुपति को पराजित किया था—

सोऽयम् नरपतिमुकुटमकरिकामरकटप्रभापटलपल्लवितपादपीठगजपतिगल गजित-प्रलय पंचाननत्रिशंकुपति कपट-पाटन-ऋकचपातः

डा० त्रिपाठी के अनुसार इन शब्दों—नरपति, गजपति गिरिपति और त्रिशंकुपति—के अर्थ स्पष्ट नहीं हैं । शायद वे कोई सामन्त थे ।^४ डा० रोमानियोगी के अनुसार नरपति और गजपति से चन्द्रदेव का कलचुरि नरेशों से संघर्ष का होना सिद्ध होता है ।^५

संभवतः पूर्व में पालवंशीय राजा रामपाल से भी इसका युद्ध हुआ और इस युद्ध में उसे सफलता न मिली ।

इसी प्रतापी चन्द्रदेव को स्कन्द पुराण में काशिराज चन्द्रदेव कहा गया है । इसे यहाँ ऐल (ऐलस्य चन्द्रदेवस्य काशिराजस्य)^६ कहा गया है । अतः स्पष्ट है कि अन्तर्वेदी को बचाने वाला कान्यकुब्ज का स्वामी चन्द्रदेव काशिराज

१—चन्द्रदेव का चन्द्रावती ताम्रपत्र लेख, पंक्ति ५-६

२—वही, पंक्ति ७

३—वही, पंक्ति ४

पश्चिम में विनशन (जहाँ सरस्वती बालू में लुप्त हो गयी—

कर्नाल प्रान्त) से लेकर पूर्व में प्रयाग तक, और गंगा तथा यमुना के बीच का प्रदेश अन्तर्वेदी कहलाता था । इस क्षेत्र में महोदय (कान्यकुब्ज) मुख्य था (काव्यमीमांसा ६४/२३-२२) ।

४—हि० क०, पृ० ३०३

५—हिस्ट्री ऑफ़ गहड़वाल डायनेस्टी, पृ० ४७-४८

६—स्टडीज इन स्कन्दपुराण, पार्ट वन, पृ० १९६

था, जिसने कनौज से काशी तक एक बार फिर सशक्त सत्ता की स्थापना की ।
इससे आर्यावर्त में पुनः आर्य संस्कृति की प्रतिष्ठा बढ़ी ।

मदनपाल (मदनचन्द्र)

(११०४-१११३ ई०)

नृपतिमदनचन्द्रश्च चण्डभूपालचूड़ामणिः ।

चन्द्रावती लेखों से ज्ञात होता है कि वि० सं० ११५६ (= १०६६ ई०) चन्द्रदेव के राज्य की अन्तिम तिथि थी और मदनपाल ११०४ ई० (वि० सं० ११६४) में सिंहासन पर विराजमान थे ।^१ अतः मदनपाल ११०० ई० और ११०४ ई० के बीच राजसिंहासन पर आया होगा ।

कुमारदेवी के सारनाथ लेख में उसे राजाओं में श्रेष्ठ और प्रचण्ड (चण्ड-भूपालचूड़ामणिः) कहा गया है, जिसने सम्पूर्ण देश को एक छत्र के नीचे स्थापित किया (विभ्रदेकातपत्रम् धरणितलम्) ; उसकी दृढ़ तेजग्नि की गरिमा (प्रौढतेजोनलश्रीः) या राजश्री इन्द्र की तेज-श्री से भी महान् थी ।^२ उसकी इस प्रशंसा से उसकी शक्ति का परिचय मिलता है । कि वह एक दृढ़ और तेजस्वी शासक था । अन्तर्वेदी की संस्कृति सुरक्षित थी और वह देवताओं का रक्षक था । जिन देवताओं की रक्षा इन्द्र भी नहीं कर सके, मदनपाल उन्हीं देवताओं का विध्वंस होने से रक्षक था । इसी कारण उसका तेज और बल इन्द्र से भी महान् था । संभवतः उसका समय तुरुष्कों के साथ युद्ध करने में ही बीत गया । उसके सिक्कों पर वृष (बैल) की मूर्ति सिद्ध करती है कि वह परममाहेश्वर था ।

डा० रोमानियोगी ने सिद्ध करने की चेष्टा की है कि मदनपाल के अधिकार से कान्यकुब्ज निकल गया था ।^३ परन्तु यह सत्य नहीं सिद्ध होता है ।

इसी प्रकार मदनपाल ने कान्यकुब्ज से राजधानी का परिवर्तन भी नहीं किया था, जैसा कि डा० नियोगी सिद्ध करती हैं ।^४ यह सत्य है कि तुरुष्कों के आक्रमण हो रहे थे और सम्राट को उनसे युद्ध भी करना पड़ा । इन युद्धों में युवराज गोविन्दचन्द्र ने अपनी योग्यता—गुण, शक्ति और शौर्य—का

१—गोविन्दचन्द्र का बसही ताम्रपत्र लेख

२—कुमारदेवी का सारनाथ लेख, श्लोक १५

३—हिस्ट्री ऑफ गहड़वाल डायनेस्टी, पृ० ५७

४—वही, पृ० ५७

परिचय इन युद्धों में दिया। उसने युद्ध किये और शत्रु-दमन किया। यह उसका धर्म ही था। कुमारगुप्त प्रथम के राज्यकाल में स्कन्दगुप्त ने भी युद्ध किया था। उसने अपने पिता को तुरुष्क विजय में सहायता दी थी।

मुस्लिम इतिहास लेखक के 'मल्ही' या 'मल्हीर' की मदनपाल से पहचान करने में डा० नियोगी को भी सन्देह है।^१ सलमान द्वारा उल्लिखित 'मल्ही की पराजय' को यदि हम मदनपाल की पराजय मनलें, तो उसके अभिलेख में वर्णित उसकी उपलब्धि, पृथ्वी (अन्तर्वेदी) में एक छत्र शासन स्थापित कर अपने तेज बल से इन्द्र को भी मात कर दिया, व्यर्थ ही लिखा गया। क्या मुस्लिम इतिहासकार द्वारा वर्णित मासूद की विजय पूर्ण सत्य है? यह कहना ठीक नहीं लगता है कि "मदनपाल ने आक्रमणकारी को धन देकर छुटकारा प्राप्त कर लिया।"^२ इस कनौज विजय का लेखक अपने मुस्लिम शासक के समक्ष गिड़गिड़ा कर उसकी प्रशंसा करता हुआ कह रहा था—

"I sing thy praises like a nightingale....."^३ इस कथन को भी, जो बहुत बाद का है, अभिलेख के सामने सत्य मानना ठीक नहीं लगता। तत्कालीन अभिलेखों में मदनपाल की अत्यंत प्रशंसा की गयी है। वहां बताया गया है कि उसने अनेक युद्धों में भाग लिया और उसने कलि के दोषों को मिटा कर धरती पवित्र कर दी।^४ वह एक विजेता शासक था। उसे 'दन्ति सिंह' (हाथियों के लिये सिंह के समान) की उपाधि दी गयी है।^५

गोविन्दचन्द्र

लगभग ११०६ ई० और १११४ ई० के बीच मदनपाल के बाद उसका सुपुत्र गोविन्दचन्द्र गद्दी पर बैठा।

युवराजत्व-काल—

अपने पिता के राज्य-काल में ही गोविन्दचन्द्र के कंधों पर राज्य भार आ पड़ा था। एक दानपत्र (११०५ ई०) में उसकी मां के साथ उसका नाम मिलता है। अतः स्पष्ट है कि युवराजत्वकाल में ही उसको अपने राज्य के शासन और संरक्षण में सक्रिय रूप से कार्य करना पड़ा। रहन लेख में बताया

१—हि० ग० डा०, पृ० ५६

२—स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ० ५२

३—ईलियट ऐन्ड डाउसन, हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द ४, पृ० ५२६-५२७

यह बहुत ही बाद का लेखक है।

४—गोविन्दचन्द्र का कमौली ताम्रपत्र लेख, श्लोक ६७.

५—गोविन्दचन्द्र का बनारस ताम्रपत्र लेख (वि० सं० ११६२), श्लोक ४

गया है कि उस राजपुत्र ने दाशरथि राम के समान ही यश प्राप्त किया । उसने गौड (पालवंशी) राजा को परास्त किया तथा युद्ध भूमि में मुस्लिम शासक (जिसे हम्मीर-अमीर-कहा गया है,) को बैर त्याग कर (मैत्री-सन्धि) करने के लिये विवश कर दिया था ।^१ इस प्रकार गोविन्दचन्द्र ने युवराज होने पर ही पिता के साथ युद्ध करते हुए तुरुष्कों और पालों को पराजित किया था ।

इन्हीं वीर कार्यों पर सम्राट होने के पूर्व ही उसका यश स्थापित हो चुका था ।

राजत्वकाल तुरुष्क-आक्रमणकारी को पराजित कर उसने लोक-रक्षा की थी । इसीलिये उसकी रानी के सारनाथ लेख में कहा गया है कि एकमात्र वह ही वाराणसी (काशी) और संसार की रक्षा करने में कुशल था । दुष्ट तुरुष्क-सिपाहियों से काशी को बचाने के लिये शंकर भगवान् (काशी और विश्व के स्वामी-विश्वेश्वर) के कहने पर ही विष्णु भगवान् ने यहां फिर अवतार लेकर गोविन्दचन्द्र का नाम ग्रहण किया ।^२

उसके राज्यकाल की प्रमुख घटनाएं

उसके राज्यकाल की प्रमुख घटनाएं निम्नलिखित हैं—

१—गौड-विजय,

२—चेदि संघर्ष,

३—चन्देल सम्बन्ध,

४—तुरुष्क-आक्रमण तथा देश-रक्षा ।

१—रहन लेख,

गोविन्दचन्द्र इति कांतिभराभिरामः ।

राजात्मजेन भवता समुपार्जितानि

रामेण दाशरथिनेव यशांसि येन

दुर्वारिस्फार गौडद्विरदवरघटा

कुंभनिभेद भीमो हम्मीरं न्यस्तवैरं

मुहुरसमररणक्रीडया यो विधत्ते ॥

२—कुमारदेवी का सारनाथ अभिलेख, श्लोक १६:

वाराणसी भुवन रक्षण दक्ष एको

दुष्टात्तुरुष्कमुभटादवितुं हरेण ।

उक्तो हरिस्स पुनरत्र बभूव तस्माद्

गोविन्दचन्द्र इति प्रथिताभिधानः ॥

गौड-विजय

अभिलेखों और लक्ष्मीधर के ग्रन्थ कृत्यकल्पतरु से सिद्ध होता है कि गोविन्दचन्द्र ने गौड राज्य पर विजय प्राप्त की थी ।

१—बिहार प्रदेश के मानेर लेख (११२६ ई०) में पडली ग्राम (पटना जिला) का दानोल्लेख सिद्ध करता है कि मगध में उसका आधिपत्य था ।

२. लार ताम्रपत्र लेख (११४६ ई०) से मुद्गगिरि (मुंगेर, बिहार प्रदेश) पर उसका अधिकार सिद्ध होता है ।

३. रहन ताम्र पत्र लेख से भी ज्ञात होता है कि गोविन्दचन्द्र ने गौड-सेना को पराजित किया ।^१

४. गोविन्दचन्द्र के महासान्धिविग्रहिक मंत्री ने अपने ग्रन्थ कृत्य कल्पतरु में भी गौड विजय का उल्लेख किया है । यहाँ बताया गया है कि राजा गौडों के गरजते हाथियों से उत्पन्न भय को रोकने वाला स्तम्भ ही था ।^२

परन्तु, गया से प्राप्त पाल अभिलेखों (जयनगर अभिलेख और गदाधर-अभिलेख) से सिद्ध होता है कि बाद को किसी समय पालों ने कुछ भागों (गया) पर अधिकार प्राप्त कर लिया ।^३

चेदि संघर्ष

करण्ड अभिलेख (११२० ई०) में एक ग्राम दान का उल्लेख है जिसे पहले यशकर्ण ने दिया था । यशकर्ण की पहचान कलचुरि शासक से की गयी है । इस आधार पर ऐसा विचार किया गया है कि गोविन्दचन्द्र और कलचुरियों में संघर्ष हुआ था ।^४

दशार्ण-विजय

नयचन्द्र-रचित रंभामंजरी के आधार पर गोविन्दचन्द्र की दशार्ण (पूर्वी-मालवा) पर विजय सिद्ध होती है ।^५

१—रहन लेख—दुर्गारस्फारगौडद्विरदवरघटाकुंभनिर्भेदभीमो ।

२—कृत्यकल्पतरु, जिल्द १, पृ० २, श्लोक ४

क्रीडातर्जित गौडगर्जितभय स्तंभीभवत्पार्थिवः ।

३—हि० क०, पृ० ३१०

४—वही, पृ० ३११

५—वही, पृ० ३११

चन्देल

सल्लक्षण वर्मन् के मऊ लेख से विदित होता है कि गोविन्दचन्द्र और चन्देलों में भी अन्तर्वेदी में कुछ हुआ था। अभिलेख इतना खंडित है कि उससे ठीक ठीक सूचना स्पष्ट नहीं है।

तुरुष्क-आक्रमण

विश्व के इतिहास में यह युग तुर्कों के आक्रमणों और उनसे उत्पन्न आपत्ति की कहानी से भरा है। भारतीय साहित्य और अभिलेखों में इस संकट का वर्णन विभिन्न प्रतीकों द्वारा किया गया है। प्रतिहारों, चन्देलों, कलचुरियों और परमारों ने इस बाढ़ को रोकने की कोशिश की थी परन्तु यह बांध इतना कमजोर था कि तुर्कों की बाढ़ से बह गया।

‘घुष्ट तुरुष्क-सुभट’

तुरुष्क मध्य एशिया की एक लड़ाकू जाति थी, जो अपने देश के उत्तम घोड़ों पर सवार होकर युद्ध करते थे और युद्ध से मुंह नहीं मोड़ते थे। वे उत्तर में पर्वतीय क्षेत्रों में छा गये थे। वे दुराचारी और सभी कुछ खाने वाले थे; तथा वे बध करने और बांधने (बन्दी बनाने) में लगे रहते थे।^१ ऐसे साहसी और युद्ध से मुंह न मोड़ने वाले घुड़सवारों के साथ युद्ध करने के लिये उतनी ही लगन और सुमति वाले वीरों की आवश्यकता थी। राजपूत राजाओं के मन में भी महमूद गजनवी ने भय उत्पन्न कर दिया था।^२ इस भय और संकट के कारण ही राजपूतों में संघ भी बने। महमूद गजनवी के बाद गजनवियों की शक्ति क्षीण होने लगी। परन्तु राजपूत शासक सशक्त होते हुए भी आपस में लड़ते रहे और पंजाब में बसी हुई मुस्लिम सत्ता को न हटा सके। पंजाब के सशक्त मुस्लिम गवर्नरों ने अन्तर्वेदी (दोआब) पर आक्रमण किये। पहले ही बताया जा चुका है कि चन्द्रदेव के राज्यकाल के पहले प्रजा में उपद्रव था। इस उपद्रव का एक कारण तुरुष्क-अभियान अवश्य थे। इन आक्रमणों के विवरण मुस्लिम लेखकों से ही प्राप्त होते हैं। आधुनिक इतिहासकारों ने इन विवरणों को ही पूर्ण रूप से सत्य मान लिया है। परन्तु इन लेखकों ने अपने मुस्लिम स्वामियों की प्रशंसा की है। ऐसी स्थिति में, जैसा

१—गरुड़ पुराण, १.२०१.४ : उत्तमोऽश्वस्तुरुष्कजः (=तुरुष्क देश का घोड़ा उत्तम होता था।)

२—पद्म पुराण, ५/४४/७४-७५

३—ईलियट-डाउसन, हि० इ०, जिल्द १, पृ० ४८

ऊपर हम लिख लिख चुके हैं, ऐतिहासिक साक्ष्यों का ध्यान पूर्वक परीक्षण करना आवश्यक है ।

सल्मान का दीवान

हम मदनपाल के राज्य-काल के वर्णन में इसका उल्लेख कर चुके हैं । इस विवरण में कई दोष हैं । सल्मान बन्दी था और इसी हालत में उसने यह विवरण गजनवियों की प्रशंसा में लिखा है ।^१ वह कहता है कि अलाउद्दौला मासूद ने कनौज पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा मल्ही को पराजित किया । इस पराजित राजा मल्ही की पहचान मदनपाल से की गयी है । परन्तु युवराज गोविन्दचन्द्र ने इस आक्रमण को विफल कर दिया जैसा कि रहन लेख से ज्ञात होता है ।

कृत्यकल्पतरु

लक्ष्मीधर ने कृत्यकल्पतरु में गोविन्दचन्द्र की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि बड़े-बड़े शत्रु उसकी सेना के भेरी-घोष से ही घबड़ा जाते थे ।^२ सभी अभिमानी (मत्त) क्षत्रियों रूपी नक्षत्रों की लक्ष्मी का हरण करनेवाला सूर्य वह सभी से बन्दित था, जिसने युद्ध में वीर तुरुष्क-नेता (हम्मीर) को भी युद्ध में पराजित किया और जो छोटे-छोटे शासकों के साथ युद्ध में विजय-लक्ष्मी का कामुक (लम्पट) था :—

स किल सकल दृष्ट क्षत्रनक्षत्रलक्ष्मी—

हरण किरण माली कस्य न स्यान्नमस्यः ।

असमसमरसम्पल्लम्पटः शौर्यभाजा—

मवधिरवधि युद्धे येन हम्मीरवीरः ॥^३

संभवतः इस युद्ध का ही उल्लेख बदायूँ अभिलेख में भी किया गया है । इस लेख के अनुसार बदायूँ के सामन्त-शासक मदनपाल ने गोविन्दचन्द्र की सहायता की थी । इस लेख में बताया गया है कि “उसके पौरुष (पराक्रम) के कारण ही हम्मीर के गंगा तट पर आने की कथा फिर नहीं सुनायी दी (यत् पौरुषात् प्रवर्तः सुरसिन्धु तीर हंवीर (हम्मीर) संगम-कथा न कदाचिदासीत् ।^४)

१—इलियट-डाउसन, जिल्द ४, पृ० ५२१

२—कृत्यकल्पतरु, जिल्द १, पृ० २, श्लोक ६ : यस्योद्योगे द्रवन्तेऽसमसमर-समारंभगंभीरभेरीभांकाराकीर्णकर्णज्वरभरतरलप्रेक्षिताः शात्रवेक्षाः ॥

३—वही, श्लोक ७

४—हि० क०, पृ० ३०९; एपि० इ०, १, पृ० ६२, ६४, पंक्ति ४

लक्ष्मीधर ने इस विजय के कारण को अपने ग्रन्थ (कृत्यकल्पतरु) के राजधर्म काण्ड में अपनी मंत्र महिमा बताया है। अपने इस मंत्री की मंत्र-शक्ति द्वारा ही गोविन्दचन्द्र ने (मत्त) हाथियों के समान राजाओं को पराजित किया।^१ यहाँ हाथियों का उल्लेख मातंग-गजों (गर्जनकों, गज तुकों) के लिये किया गया है। दुष्ट-तुरुष्कों को ही 'गजाः'^२ कहा गया है। गोविन्दचन्द्र के बनारस ताम्रपत्र लेख (श्लोक ५-६) में भी मत्त-दन्तियों पर गोविन्दचन्द्र की विजय का उल्लेख किया गया है—

क्षोणीपतीन्द्रतिलको रिपुरंग भंगी गोविन्द्रचन्द्र इति विश्रुत नामकीर्तिः ।
तिष्ठतो यस्य दोःस्तम्भे मत्तशौर्यैकदन्तिनः धनुर्गूणकिण श्रेणीमदराजीव लक्ष्यते ।

शत्रुओं को नष्ट करनेवाले श्रेष्ठ भारतीय सम्राट गोविन्दचन्द्र का नाम और उसकी कीर्ति अत्यन्त प्रसिद्ध हो गयी थी, क्योंकि क्षोणी (पृथ्वी) इसकी भुज-स्तम्भ पर टिकी थी (देखिये वराह मूर्ति) जिस भुजा ने मत्त-मातंगों (गजों) के धनुष की डोरी को काट-काट कर इस प्रकार गिरा दिया था जैसे मत्त हाथी का मद चूता हो। यहाँ धनुष लिये हुए 'मत्त-दन्ती' दुष्ट तुरुष्क ही हैं जिनको गोविन्दचन्द्र ने बुरी तरह पराजित किया था। इसी ऐतिहासिक घटना का समर्थन लक्ष्मीधर भी करते हैं। इसीलिये मदनपाल को भी दन्ति-सिंह (दन्तियों को नष्ट करने वाला सिंह) भी कहा गया है।

नवराज्यगजो नरेन्द्र

मातंग देश भी था। मातंग और गज पर्यायवाची शब्द है। अतः मातंग विषय (मातंग देश) या गज देश गजनवी देश (गजन देश) ही था।^३ मातंग शैल या गज पर्वत भी था। इस पर्वतीय प्रदेश को देश भी कहते थे। पृथ्वी-राजविजय (१/४९-५०) में मातंग-म्लेच्छों को ही 'गर्जनान् मत्तान् मातंगान्' (पृथ्वीराज विजय, ५/११३) कहा गया है। मुस्लिम इतिहासकार भी इन्हें 'गज' तुर्क कहते थे। उन्होंने 'मुस्लिम हाथियों' (मुस्लिम एलीफैंट्स) का भी

१—कृत्यकल्पतरु, राजधर्मकाण्ड, मंगल श्लोक—

न्याये वर्त्मनि यज्जगद्गुणवतां गेहेषुयदन्तिनो ।

राज्ञां मूर्धनि यत्पदं व्यरचयद् गोविन्दचन्द्रो नृपः ॥

तत्सर्वं खलु यस्य मन्त्रमहिमाऽश्चर्यं स लक्ष्मीधरः ।

काण्डे शंसति राजधर्मनिचयानेकादशे पुण्यधीः ॥

२—गोविन्दचन्द्र का कमौली ताम्रपत्र लेख, पंक्तियां १०

३—देखिये, अवस्थी, प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० १०३

उल्लेख किता है। अतः स्पष्ट है कि यहाँ 'गज-नरेन्द्र' गजनवी-मुस्लिम शासक का परिचायक है।

'नव राज्य' का अर्थ डा० त्रिपाठी^१ और उनका अनुकरण करते हुए डा० रोमा नियोगी^२ जम्बूद्वीप बताते हैं। कुछ विद्वान इसका अर्थ कान्यकुब्ज भी बताते हैं।^३ डा० नियोगी 'नवराज्यगज' के महत्व को मानती हुई घर्घर (घाघरा) नदी पार देश की नई विजय बताती हैं।^४ यह नितान्त अज्ञता ही है। यहाँ 'नव राज्य' से जम्बूद्वीप अर्थ लगाना बिल्कुल मूर्खता है। भारतवर्ष के भी नव खंड (नौ भाग)^५ थे और इसी को चक्रवर्ती क्षेत्र भी कहा गया है जो हिमालय और सेतु, तथा पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच स्थित था।^६ परन्तु यहाँ न जम्बूद्वीप से तात्पर्य है न भारत से ही कोई मतलब है। नव राज्य का अर्थ है 'नया राज्य' जिसे गज तुर्कों ने स्थापित किया था।

स्पष्ट कहा गया है कि इस तुरुष्क-पराभव का भूल कारण मंत्रीश्वर महासान्धिविग्रहिक लक्ष्मीधर की मंत्रमहिमा ही थी। उनके मतानुसार क्षत्रिय राजा का परम धर्म था कि वह क्षत्रिय सम्राट प्रचण्ड रूप से हाथों में शस्त्र लिये हुए प्रजा का पालन करे और शत्रुओं की सेनाओं को जीतकर देश का धर्मानुसार पालन करे।^७ यहाँ 'प्रचण्ड' का अर्थ लक्ष्मीधर वीर पुरुष (प्रचण्ड-वान् वीरपुरुषोपेतः) बताते हैं।^८ वीर या शूर पुरुष वही है जो अपने देश की रक्षा करे। अस्तु स्पष्ट है कि धर्मरक्षक और धरापालक गोविन्दचन्द्र ने लक्ष्मीधर के मन्त्रबल से ही दुष्ट तुरुष्क को पददलित किया था।

१—हि० क०, पृ३१२

२—हि० ग० डा०, पृ० ६६-७१

३—वही, पृ० ६६

४—वही, पृ० ७१

५—अवस्थी, प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० २८, ६०

पृथ्वीराजरासो (पृथा विवाह २३) में भी नव खंड का उल्लेख है—

‘धनि धनि धन नवखंड हुआ’

६—धारावर्ष ध्रुवराज का भोर संग्रहालय ताम्रपत्र लेख (७८० ई०), पंक्ति

१२-१४; प्रथम अमोघवर्ष का संजन ताम्रपत्र लेख, श्लोक ८

७—कृत्यकल्पतरु, जिल्द २, पृ० २५१-२५२

८—वही, पृ० २५२,

इस तुरुष्क-पराजय में सन्देह की कोई गुंजायश नहीं है। इस समय पंजाब में गजनवियों की सत्ता निर्बल थी। कर्णसुन्दरी नामक नाटक से भी ज्ञात होता है कि इसी युग में राजपूत सेनाओं ने गजनी (गज्जण नगर) की विजय की थी।^१

इस प्रकार स्पष्ट है कि गोविन्दचन्द्र एक महाप्रतापी सम्राट था जिसने शत्रुओं को पराजित कर गंगा-यमुना द्वाब में शान्ति-सुरक्षा तथा व्यवस्था द्वारा मध्य देश और आर्य संस्कृति की रक्षा की। इसीलिये उसके मंत्री लक्ष्मीधर ने अपने विशाल ग्रन्थ-रत्नाकर में भारतीय संस्कृति के रत्नों सुरक्षित बनाया।

जीवन की संध्या में गोविन्दचन्द्र ने सन्यास ग्रहण किया। योग-ध्यान और अद्वैत धर्म का पालन करते हुए देह त्याग दी। निस्संदेह गोविन्दचन्द्र एक महान् विजेता, कुशल शासक और धर्म-विद्या-कला का उन्नायक था।

लक्ष्मीधर और कृत्यकल्पतरु

लक्ष्मीधर ने कृत्यकल्पतरु नामक विशाल ग्रन्थ, १४ वृहत् खण्डों (कांडों), में लिखा था जिसमें समाज-वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, गृहस्थधर्म, दान, व्रत, पूजा, शुद्धि यज्ञ, श्राद्ध, तीर्थ,—राजधर्म, व्यवहार (न्याय-व्यवस्था) और मोक्ष धर्मों का प्रतिपादन कर तत्कालीन जीवन के उन आदर्शों की रक्षा की है जिनको मिटाने के लिये तुर्क कटिबद्ध थे। गहडवाल वंश के शोधकर्तियों—त्रिपाठी, रोमा नियोगी ने इस साहित्य-रत्नाकर की उपेक्षा की। गहडवाल शासक ब्राह्मण धर्मावलम्बी होते हुए भी उदार और सहिष्णु थे। इतना बड़ा ब्राह्मण धर्म का संरक्षक लक्ष्मीधर बौद्ध धर्म के प्रति उदार था। लक्ष्मीधर के अनुसार बिहार (बौद्ध बिहार) बनवाना एक पुण्य कर्म था।^२ गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी के सारनाथ लेख से ज्ञात होता है कि उसने भारत का सर्व-श्रेष्ठ बिहार (बिहारो नवखंडमंडल महीहारः कृतोऽयं तथा)^३ बनवाया था। अशोकबिहार और श्रीधर्मचक्र की रक्षा का भी उल्लेख है।^४ बुद्ध द्वादशी व्रत को रखने के लिये बुद्ध की प्रतिमा का पूजन किया जाता था। यहाँ

१—कर्णसुन्दरी, अंक ४, पृ० ५३, ५४, ५५, ५६

२—कृत्यकल्पतरु, जिल्द ५, पृ० २७५, पंक्ति ३-४

वही, पंक्ति ७, उसने सभी प्रकार की हिंसा को वर्जित किया है।

३—कुमारदेवी का सारनाथ अभिलेख, पंक्ति २३

४—वही, पंक्ति २५-२६

शुद्धोदन के पुत्र बुद्ध को विष्णु का अवतार मानकर उनकी महिमा बतायी गयी है ।^१ बुद्ध का वर्णन दशावतार में भी किया गया है ।^२

बुधाय शान्ताय नमो ललाटं^३

इस प्रकार गोविन्दचन्द्र का महामंत्री विद्वान और वीर, शासक तथा शास्त्रज्ञ था—

विद्यावल्लिविलास भूरुहवरो वीरस्य विप्रोत्तमः ।

श्री लक्ष्मीधर इत्यचिन्त्यमहिमा तस्यास्ति मन्त्रीश्वरः ॥

उसने काशीपति गोविन्दचन्द्र का राजराजत्व प्रतिष्ठित किया—

हुत्वा लक्ष्मरातिभूपतिशिरः पद्मानिशौर्यनिने ।

पृथ्वीं साधयता समुद्रवसनां श्रीदेवकाशीपतेः ॥^४

गोविन्दचन्द्र—मूल्यांकन

विजेता

गोविन्दचन्द्र एक महान विजेता (श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेवो विजयी)^५ था, जिसने अपने शत्रुओं का दत्तन किया था^६ (रिपु रंग भंगी) ।^७ लक्ष्मीधर भी कहते हैं कि विजयी गोविन्दचन्द्र मनुष्य रूप में इन्द्र ही था—

श्रीमन्मानववासवस्स विजयी गोविन्दचन्द्रोऽस्ति यः

उसने गौड भय को दूर कर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर अपने ऊपर भी (इन्द्रिय जय) प्राप्त कर शान्ति (मोक्ष श्री) प्राप्त की थी—

क्रीडातजितगौडगजितभयस्तम्भीभवत्पार्थिवः ।

सर्वोर्वीन्द्रजयप्रतिश्रुति वियतसंकोचनाशंकिना

येनात्मापिजितस्ततश्शमभृता मन्ये किमन्ये परे ॥^८

१—कृत्यकल्पतरु, जिल्द ६, पृ० ३३१-३३२

२—वही, पृ० ३३३

३—वही, पृ० ४०२

४—वही, जिल्द १, पृ० २

५—गोविन्दचन्द्र का कमौली लेख, पंक्ति १४

६—वही, श्लोक ८

कुमारदेवी का सारनाथ लेख, श्लोक १८

७—गोविन्दचन्द्र का बनारस ताम्रपत्र लेख, पंक्ति ५

८—कृत्यकल्पतरु, १, पृ० २, श्लोक ४

जिसके सैनिक अभियानों से शत्रुओं का हृदय कांप जाता था, और जिसने दुष्ट क्षत्रियों को पराजित कर लक्ष्मी (राजश्री) का अपहरण किया था, उसी शौर्य से उस महाविजयी ने हम्मीरवीर को भी युद्ध में पराजित किया^१ तथा उस पराजित तुरुष्क वीर को भी अपना करद बनाकर छोड़ दिया। उससे प्राप्त कर ही तुरुष्क दंड^२ था। अतः स्पष्ट है कि ऐसा कौन बचा था जिसने उसके सामने अपना सर न झुकाया (कस्य न स्यान्नमस्यः)^३। यही बात उसके अभिलेख भी कहते हैं—

सोयं समस्तराजचक्रसंसेवितचरणः परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वर^४
नरेश्वरवृन्दवन्द्यपादारविन्दयुगलोज्ज्वलितप्रतापः ।^५

विद्वान्—‘गोविन्दचन्द्र को उसके कमौली ताम्रपत्र लेख (पंक्ति १४) में विविधविद्याविचारवाचस्पति (बृहस्पति के समान) बताया गया है। कुमार-देवी लेख का लेखक आठभाषाओं का जानने वाला था। लक्ष्मीधर भी कितना विद्वान् था, स्पष्ट ही है। सभा में अन्य विद्वान् भी थे। अतः यह सत्य है कि गोविन्दचन्द्र स्वयं बहुत बड़ा विद्वान् और विद्वानों का आश्रय दाता था।

वह स्वयं धार्मिक नृप और दार्शनिक चिन्तक था जो कोश, सेना, मित्र, परिवार, दुर्ग, और अन्तःपुर को छोड़ कर पवर्तों पर योगी हो गया था—

कोशान् गेहेष्वमुञ्चन् पथिकरितुरगान् बान्धवानर्धमार्षे
दुर्गे ह्यन्तःपुराणि प्रतिरव चकिताः पर्वतेभ्यो निवृत्ताः ॥^६

१—कृत्यकल्पतरु, १, पृ० २, श्लोक ६-७

२—गोविन्दचन्द्र का बनारस अभिलेख, पंक्तियाँ १५-१६

पृथ्वीराजरासो से भी ज्ञात है कि तुरुष्क शासक को पराजित करने के बाद पृथ्वीराज तृतीय ने दंड-कर लिया था—

(सुरतान दंड लीनौ सुकर; पृथा विवाह, १०)। तुर्क शासक को पराजित कर दंड के रूप में उससे घोड़ों का लेना उचित ही था (दंड हय मंगिय सुदौ)। सुलतान ने भी ईराकी घोड़े दिये—

असलमोल नवसहस सत्त सै दीन ऐराकी

३—कृत्यकल्पतरु, १, पृ० २, श्लोक ७ (२)

४—गोविन्दचन्द्र का कमौली ताम्रपत्र लेख, पंक्ति ११

५—गोविन्दचन्द्र का बनारस ताम्रपत्र लेख, श्लोक ५

६—कृत्यकल्पतरु, जिल्द १, पृ० २, श्लोक ६. १-२

ऐसा शासक गोविन्द चन्द्र निस्सन्देह ज्ञान और पराक्रम का निवास स्थान था; काम, माया, आदि के पाशों को काट कर कुछ ही दिनों में उस कृतकार्य (कृती) सम्राट ने अद्वैत (ब्रह्ममय जगत) ज्ञान को प्राप्त कर लिया—

एष ज्ञानपराक्रमैकवसतिर्गोविन्दचन्द्रः परं
कन्दर्पस्य च वैरिणां च विशिखैः रक्तोभितः शोभते ।
मायामप्यवनीशमण्डलमपि स्वच्छन्दमुच्छिन्दता
येनात्मा कृतिना दिनैः कतिपयैरद्वैतमारोपितः ॥^१

विजयचन्द्र

(लगभग ११५५-११६९ ई०)

“Like his father, Vijayachandra also stood as a bulwark against the Moslems.” Dr. R. S. Tripathi

गोविन्दचन्द्र ने लगभग ४० वर्ष या इससे कुछ अधिक तक शासन किया । इसके बाद उसका पुत्र विजयचन्द्र शासक हुआ । पृथ्वीराजरासो में उसकी दिग्विजयों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है । हरिश्चन्द्र (जयचन्द्र पुत्र) के ताम्रपत्र लेख में जयचन्द्र के पिता, विजयचन्द्र, को एक नरेश बताया गया है ।^२ रासो में चन्द ने विजयपाल (विजयचन्द्र) का चित्रण अत्यन्त प्रशंसा के साथ किया है । वह उत्तरी भारत का पराक्रमी योद्धा था जिसने दिग्विजय की इच्छा से दिल्ली-पति अनंगपाल तोमर पर आक्रमण किया—

दिल्ली वै अनंग, राजराजगं अभंग ।

ता ऊपर कमध्वज सेन, सज्जी चतुरंग ॥

अग आतस आभूत, पुट्टि वद्यै गजपत्तं ।

ता पुट्टै विजपाल, समर सज्जै रन मत्तं ॥

अजनैज भोज नीसान दल, मनुवसंत रज्जिय बिपिन ।

करि कूय कूप उप्परधरा, वैध अंतर सपन ॥^३

परन्तु चाहमान नरेश सोमेश्वर की सहायता से अनंगपाल ने विजयपाल की सेना का दमन किया और विजयपाल को वापस जाना पड़ा ।^३ संभवतः इस युद्ध के बाद ही अनंगपाल ने अपनी दोनों पुत्रियों को सोमेश्वर और विजय-

१—कृत्यकल्पतरु, जिल्द १, पृ० २, श्लोक ५

२—अजनि विजयचन्द्रो नाम तस्मान्नरेन्द्र ।

सुरपति इव भूभृत पक्ष विच्छेद दक्षः ॥

३—पृथ्वीराज रासो (ना० प्र० स० काशी संस्करण), छ० ६१४, समय १

चन्द्र को व्याह दीं। अनंगपाल की पुत्री चन्द्रकांति (चन्द्रलेखा) का विजयचन्द्र से विवाह होना भविष्य पुराण से भी सिद्ध होता है।

इस समय बिहार में सेन वंशीय लक्ष्मणसेन राज्य कर रहा था। एक अभिलेख में बताया गया है कि उसने काशि-राज को पराजित किया। इस काशीराज की पहचान विजयचन्द्र से की गयी है। एक अन्य लेख से ज्ञात होता है कि लक्ष्मणसेन ने प्रयाग और काशी में अपने विजय स्तम्भ स्थापित किये थे।

परन्तु दक्षिण बिहार में सासाराम के निकट उपलब्ध तारा चण्डी अभिलेख (वि० सं० १२२५=११६९ ई०) से मगध पर विजयचन्द्र का प्रभाव सिद्ध होता है।^१ युवराज जयचन्द्र के कमौली दान पत्र (११६४ ई०) से उसका काशी पर अधिकार सिद्ध होता है। जयचन्द्र के बोधगया अभिलेख से जयचन्द्र और उसके पिता का अधिकार गया में सिद्ध होता है।

पिता की भाँति उसे भी तुरुष्कों के साथ युद्ध करना पड़ा। उसने हम्मीर (तुरुष्क नेता) को पराजित कर दिया।^२ संभवतः पंजाब के गजनी गर्वनर ने ही आक्रमण किया था।

संभवतः चाहमान सम्राट विग्रहपाल चतुर्थ (वीसलदेव) के साथ भी उसका संघर्ष हुआ। देहली-शिवालिक अभिलेख (वि० सं० १२२०=११६४ ई०) से ज्ञात होता है कि विग्रहराज ने हिमालय और विन्ध्य के मध्यस्थ प्रदेश को अपना करद राज्य बना लिया।^३ विजयचन्द्र एक पराक्रमी सम्राट था। उसे त्रिविक्रम के समान बताया गया है। वह विद्वानों का भी आश्रय था। उसने विविधविद्याविचारवाचस्पति की उपाधि धारण की थी।

जयचन्द्र

चन्द्रलेखा या चन्द्रकान्ति से उत्पन्न विजयचन्द्र का पुत्र जयचन्द्र राजा हुआ। वह पिता के राज्यकाल में ही युवराज था। वह लगभग ११७० ई० में गद्दी पर बैठा। उसके राज्यकाल के अभिलेख दानपत्र हैं जिनसे उसके इतिहास पर

१—हि० क०, पृ० ३१८

२—वही, पृ० ३१९ (इ० ऐ० १५, पृ० ७, द्, श्लोक ९):

भूवन दलन हेला हर्म्य हम्मीर नारी।

नयन जलधार धौत भूलोकतापः॥

३—वही, पृ० ३२०

प्रकाश नहीं पड़ता है। पृथ्वीराज रासो, और भविष्य पुराण से उसके व्यक्तित्व, चाहमान वंश के साथ वैर और युद्ध तथा तुरुष्क शिहाबुद्दीन गोरी के साथ युद्ध का विवरण मिलता है। पृथ्वीराज रासो के विवरणों को विद्वानों ने अति-हासिक और काव्य कह कर टाल दिया।^१ उसमें इतिहास है। तत्कालीन राजमंडल में जयचन्द्र (राजपूत) था, जिसने उस युग में युग तथा देश के कल्याण की बात न सोची। उसने अपने मंत्री का कहना न मान कर राजसूय यज्ञ तथा संयोगिता-स्वयंवर रचा। इससे उत्तरी भारत के रक्षकों-गहड़वालों और चाहमानों में पहले से जमे हुए वैर का बीजांकुर उग्र बन गया। तथा इस वैर की उग्रता ने इन दोनों को नष्ट कर भयानक म्लेच्छ राज्य की स्थापना की।

भविष्यपुराण

भविष्यपुराण के अनुसार अन्तर्वेदी (दो आब) के कान्यकुब्ज नगर में जयचन्द्र राजा था (अंतर्वेद्यां कान्यकुब्जे जयचन्द्रो महीपतिः)। इसी समय इन्द्रप्रस्थ में अनंगपाल तोमर राजा था।^२ इस समय देश में बहुत शासक थे।^३ अनंगपाल की दो पुत्रियाँ थीं—चन्द्रकांति और कीर्तिमालिनी—थीं। चन्द्रकांति बड़ी लड़की थी जिसका विवाह देवपाल के साथ और छोटी पुत्री कीर्तिमालिनी का विवाह अजमेर के चाहमान शासक सोमेश्वर के साथ हुआ।^४ चन्द्रकांति से जयचन्द्र का जन्म हुआ जो प्रसिद्ध पराक्रमी और जितेन्द्रिय शासक था—

त्यक्त्वा देहं स शुद्धात्मा चंद्रकांत्याः सुतोऽभवत् ।

जयचन्द्र इतिख्यातो बाहुशाली जितेन्द्रियः ॥^५

उसका छोटा भाई रत्नभानु था। उसने गौड़, वंग और मरु देश की विजय की।^६

१—डा० कृष्णचन्द्र अग्रवाल, पृथ्वीराजरासो के पाठों की ऐतिहासिकता, पृ० १२४,

“विद्वानों को यह भी दृष्टि में रखना चाहिये कि रासो एक काव्य ग्रन्थ है, इतिहास नहीं।”

२—भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, ३. ४. ४

३—वही, ३. ४. ५

४—वही, ३. ५, १-४

५—वही, ३. ५. ६

६—वही, ३. ५. ७

अनंगपाल अपने नाती (कीर्तिमालिनी के पुत्र) पृथ्वीराज (तृतीय) को राज्य देकर हिमालय पर तपस्या करने चला गया ।^१ जब यह समाचार कान्यकुब्ज में जयचन्द्र को मिला, उसने भी अपने आपको अपने नाना के आधे राज्य का अधिकारी समझकर सोचा कि पृथ्वीराज सम्पूर्ण राज्य क्यों भोगता है ।^२ इसी से दोनों में घोर बैर हो गया (तयोंघोरं बैरं चासीन्महीतले) ।^३ यह बैर ही अग्निकुल (के राजपूतों) के नाश का कारण बना ।^४

पृथ्वीराज रासो भी अनंगपाल की पुत्रियों के विजयपाल (विजयचन्द्र) और सोमेश्वर से विवाह को विनाश का कारण बताता है—

अनंगपाल पुत्री उभय, इक छत्री विजपाल;

इक छत्री सोमेश कौं, बीज बवन कलिकाल ।^५

संयोगिनी (संयोगिता) स्वयंवर

राजा जयचन्द्र के १६ रानियाँ थीं, और उनसे उसका कोई पुत्र न था । जयचन्द्र की महिषी 'दिव्यविभावरी' गौड़ राजा की पुत्री थी जिसकी एक दासी सुरभानवी से उत्पन्न पुत्री संयोगिनी थी । जब वह बारह वर्ष की हुई तो उसने उसके स्वयंवर में विभिन्न राजाओं को बुलवाया । परन्तु पृथ्वीराज को न बुलाकर उसकी स्वर्णनिर्मित मूर्ति कान्यकुब्ज की सभा में स्थापित करायी । पृथ्वीराज भी सेना लेकर वहाँ गया और संयोगिता का अपहरण कर अपनी राजधानी को भाग गया ।^६ पृथ्वीराज रासो भी इस कथा का अनुमोदन करता है । इस प्रकार इस घटना से भी दोनों राजपूत राजाओं में बैर बढ़ता ही गया ।

डा० त्रिपाठी इसे रोमाञ्चक कथा मात्र मान कर कहते हैं—

"It is, however, difficult to accept this romantic story as a historical fact, for at this time svayamvaras and rajasuya yajnas had become obsolete, and if they had been performed they must have found mention in inscriptions."^७

१—भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, ३. ५. ११

२—वही, ३. ५. १७-१६

३—वही, ३. ५. ३६

४—वही, ३. ५. ३८

५—पृथ्वीराज रासो, आदिकथा, ३८

६—भविष्य पु०, प्रतिसर्गपर्व, अध्याय ६

७—हि० क०, पृ० ३२६

डा० रोमा नियोगी का भी यही मत है। उनका विचार है कि दोनों में बैर होने का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है।^१ परन्तु डा० दशरथ शर्मा का विचार कुछ और है—

“Nevertheless we find it difficult to regard it as a mere romantic product of a bardic fancy.”^२

संयोगिता-कथा एक ऐतिहासिक सत्य था जिससे इनमें पहले से विद्यमान बैर बढ़ता ही गया।

नृप जयचंद पराक्रमी शासक था। उसकी सेना हमेशा विचरण करती रहती थी। इसीलिये उसे दल-पंगुल भी कहते थे। विजयपाल का वह पुत्र, जयचंद, देव तुल्य था। उसमें पृथ्वी को धारण करने की शक्ति थी और उसकी शरण में हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों ही रहते थे (सरण रहे ह्यंदू तुरक)।^३ उसकी तलवार की धार-वर्षा से दिशाएं डूब गयी (सु दिसि विदिसि वर बोरि, वीर कमधज्ज खगग्नर) और उसकी अथाह सेना की बाढ़ उमड़ पड़ती थी।^४

राजशेखर सूरी कृत प्रबन्धकोश (वि० सं० १४०५=१३४४ ई०) में हर्षकवि प्रबन्ध प्राप्त होता है। यद्यपि यह बाद का ग्रन्थ है, फिर भी हमें जयचन्द्र की विजय का उल्लेख मिलता है। इसमें कहा गया है कि काशिराज जयन्तचन्द्र^५ विजेता था और गंगा-यमुनाद्वाब तो उसका विशेष रूप से अधिकृत प्रदेश था। गोमती-तटवर्ती भूभाग (यस्य गोमती दासी) भी उसके अधिकार में थे।^६ इसी ग्रन्थ के लक्षणसेन के मंत्री कुमारदेव प्रबन्ध^७ में काशीपति जयन्तचन्द्र और सेनवंशीय लक्षणसेन (लक्ष्मणसेन) के बीच शत्रुता का उल्लेख मिलता है। एक बार जयन्तचन्द्र ने सेन-राजधानी लक्षणावती दुर्ग पर विशाल सेना लेकर चढ़ाई की। दुर्ग के बाहर ही वह सेना लिये पड़ा रहा। भयभीत राजा लक्षणसेन ने उसका सामना न किया। उसके मन्त्री की चातुरी से

१—हि० ग० डा०, पृ० १०७

२—अ० चौ० डा०, पृ० ७८

३—पृथ्वीराज रासी, सामंतपंग युद्ध, २५

४—वही, ३१

५—यहाँ इस प्रबन्ध में इसे गलती से गोविन्दचन्द्र का पुत्र कहा गया है। वह विजयचन्द्र का पुत्र था।

६—प्रबन्धकोश, ११ हर्षकवि-प्रबन्ध, पृ० ५४

७—वही, प्रबन्ध २०, पृ० ८८-९०

जयन्तचन्द्र कनौज वापस चला गया ।^१ पहले भी कहा जा चुका है कि सेन शासक लक्ष्मणसेन ने प्रयाग और काशी की विजय की थी । संभवतः इसी कारण जयचन्द्र ने भी राजा होते ही सेन-राज्य पर भी चढ़ाई की और वह दंड (कर) लेकर वापस चला आया ।

तुरुष्क युद्ध

इसी ग्रन्थ के वस्तुपाल प्रबन्ध (सं० २४) में बताया गया है कि ७०० या १०७ योजन भूमि (राज्य) का स्वामी (सप्तशतयोजन भूनाथो) जयन्तचन्द्र भी म्लेच्छों (म्लेच्छैः) द्वारा नष्ट कर दिया गया (जयन्तचन्द्रोऽपि क्षयं नीतः) और पृथ्वीराज (तृतीय) भी शहाबुद्दीन द्वारा बन्दी बनाया गया (पृथ्वी-राजोऽपि बद्धः) । म्लेच्छ दुर्जयं थे (दुर्जया अमी) ।^२

विद्यापति की पुरुष परीक्षा और रम्भामंजरी से ज्ञात होता है कि वह यवनों का नाश करने वाला (निखिल-यवन-क्षयकर्ता) था । परन्तु इतिहास यह बताता है कि मुस्लिम आक्रमण से कनौज का राज्य समाप्त कर दिया गया । पृथ्वीराज तृतीय के पराभव को वह हंसता हुआ चुप-चाप खड़ा-खड़ा देखता रहा । जब ११९४ ई० में उसकी बारी आयी तो चन्दवर के मैदान में वह भी गिरा और हाथी के हौदे से उसके जमीन पर गिरते ही आर्यावर्त की स्वतन्त्रता और आर्य मर्यादा भी धूल-धूसरित हो गयी । जयचन्द्र विलासी, विक्रमी तथा विद्वान् होते हुए भी दुर्बुद्धि था । 'कलह केलि...चावदिसि' (चारों ओर परस्पर कलह) ही मुख्य कारण था 'भारत अंत को' । यही हमारा प्रमाद था । सोते रहे और चोरी हो गयी । ठीक ही कहा गया है कि जब तक मनुष्य जाग्रत होकर सावधान नहीं होता है, उसकी कार्य-सिद्धि नहीं होती है—

जंत जीव जग्नैन, तंत क्रम्म सिद्धि न होई ।

पराभव

इतिहास की घटनाओं से न जयचंद ने ही सबक सीखा और न पृथ्वीराज ने ही । जयचंद के मंत्री ने उसे राजसूय यज्ञ करने को मना किया था । परन्तु उसने मंत्री की बात न मानी और पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिये प्रयत्न करता रहा । शक्ति (सैनिक बल) होते हुए भी बुद्धि से काम न लिया । परिणाम जयचन्द्र का अन्त और यही था अन्त गहड़वाल वंश के गौरव का भी । यही था भारत का दुर्भाग्य और दुर्भाग्य भी था ब्राह्मणों और विद्वानों का

१—प्रबन्धकोश, पृ० ८६

२—वही, पृ० ११७

जिन्हें अपनी शरण के लिये जंगलों (नैमिषारण्य) में भागना पड़ा। सत्य ही है—

भवितव्यं भवत्येव ललाट पटलाक्षरम् ।

इन राजपूत राजाओं से इतिहास कह रहा था—

न जानासि नृपश्रेष्ठ राजनीति शुभाशुभम् ।

राजनीति कहती है—

रिपुरत्नोऽपि शूरेण नोपेक्ष्यः शुभमिच्छता ।^१

शुभ चाहने वालों को छोटे से छोटे शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । जानते हुए मूर्ख हिन्दू राजा ग्रहण-मोक्ष की नीति अपना कर सुलतान को छोड़ते रहे—

मूर्खस्त्वमरिसंत्यागः कृतोऽयं जानता त्वया ।

नीति कहती है—

हंतव्या आततायिनः ।^२

नीति का अनुसरण न करने से ही राष्ट्र-भंग हुआ ।

भविष्यपुराण में वर्णित गहडवाल वंश

ब्रह्मावर्त (सरस्वती और दृषद्वती के बीच स्थित भूखंड)^१, जहाँ मनुधर्म (ब्राह्मण संस्कृति) की प्रतिष्ठा हुई थी^२, म्लेच्छों के आतंक से पीड़ित था ।^३ राष्ट्रपाल नामक राजा ने महावती पुरी (महोबा) बसाई । उसके दो पुत्र, विजय और प्रजय (=क्रमशः जयशक्ति और विजयशक्ति) थे । प्रजय पिता के पास से चला गया और गंगा-तट पर आकर (१२ वर्ष तक) तपस्या द्वारा शारदा देवी की पूजा की । तप से प्रसन्न हुई देवी से प्रजय ने एक नया नगर मांगा । देवी ने उसे एक सुन्दर घोड़ा दिया और आगे-आगे दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ी । फिर वह राजा प्रजय भी उस देवी के साथ-साथ पश्चिम की ओर चला । इसके बाद वह पूर्व की ओर चल कर कनौज आ पहुँचा । जयपाल (प्रजय) ने अपना राज्य स्थापित किया । उसके बाद महीपाल (वेणु) की पत्नी वीरवती के गर्भ से यशोविग्रह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । संभवतः महीपाल ही गोपाल का नामान्तर था जिसका उल्लेख बदायूँ अभिलेख में हुआ है ।

१—देवी भागवत पु०, ४/२१/५१-५२

२—वही, ४/१४/५५

३—भविष्य पु०, ४.३.१४

४—वही, ४.३.१६

यशोविग्रह

वह बलवान् और धार्मिक आर्यदेश (आर्यावर्त्त) का राजा था जिसने बीस वर्ष तक राज्य किया—

नृपाद्वै वीरवत्यां च यशोविग्रह आत्मजः ।

बभूव बलवान्धर्मी चार्यदेशपतिः स्वयम् ॥^१

अभिलेखों में भी उसे सूर्य के समान तेजस्वी और उदार शासक कहा गया है (साक्षाद्विवस्वानिव भूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्युदारः)^२ । पुराण में बताया हुआ बीस वर्षीय शासन काल^३ ठीक ही है और चारित्रिक गुणों का भी अनुमोदन अभिलेखों से होता है । अतः यह पौराणिक वृत्त महत्वपूर्ण ही है ।

महीचन्द्र

बीस वर्ष तक आर्यावर्त्त में राज्य करने के बाद यशोविग्रह का पुत्र महीचन्द्र राजा हुआ था जो पिता के समान ही गुणवान् और कुशल शासक था ।^४ अभिलेखों में भी उसे तेजस्वी और यशस्वी शासक कहा गया है ।^५

चन्द्रदेव

महीचन्द्र का पुत्र चन्द्रदेव था जिसने अपने पिता के समान ही राज्य किया^६ और यश बढ़ाया ।

मंदपाल

भविष्य पुराण के अनुसार चन्द्रदेव का पुत्र मंदपाल था ।^७ अभिलेखों में उल्लिखित मदनचन्द्र और मदनपाल तथा मंदपाल एक ही हैं । भविष्य पुराण के अनुसार मंदपाल (मदनचन्द्र) का राज्यकाल आपत्ति का समय था । उसके

१—भविष्य पु०, ४.३.६१

२—चन्द्रदेव का चन्द्रावती ताम्रपत्र लेख, पंक्ति २

गोविन्दचन्द्र का कमौली ताम्रपत्र लेख, पंक्ति २

३—भविष्य पु०, ४.३.६२ (१)

४—भविष्य पु०, ४.३.६२ : विशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राज्ञा महीतले ।

महीचन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥

५—चन्द्रदेव का चन्द्रावती लेख, पं० २-३; गोविन्दचन्द्र का कमौली ताम्रपत्र लेख, श्लोक ३

६—भविष्य पुराण, ४.३.६३ (१) : चन्द्रदेवस्तस्य सुतो राज्यं तेन पितुः समम् ।
कृतं तस्मात्सुतो जातो मंदपालो महीपतिः ॥

७—वही, ४.३.६३ (२)

समय चारों ओर सभी राजाओं-सामन्तों या पुत्रों ने उसे छोड़कर उसके दिये हुए घर में रहने लगे । पिता के राज्य को आधा कर कुंभपाल नामक राजा हुआ । इसी समय गजनीय म्लेच्छ-शासक महमूद ने बहुत देशों को नष्ट-भ्रष्ट कर उन्हें लूटा । कुंभपाल ने महमूद गजनवी की आधीनता स्वीकार कर ली महमूद भी गजनी को वापस चला गया । कुंभपाल ने बीस वर्ष तक राज्य किया उसके बाद उसका पुत्र देवपाल हुआ । देवपाल ने अनंग नृप की कन्या चंद्रकांति से विवाह किया । उससे देवपाल के दो पुत्र हुए एक का नाम था जयचन्द्र और दूसरे का नाम था रत्नभानु । देवपाल ने अनेक राजाओं पर विजय प्राप्त कर पिता के समान ही राज्य किया—

नृपाद्वै वीरवत्यां च यशोविग्रह आत्मजः ।
 बभूव बलवान्धर्मी चार्यदेशपतिः स्वयम् ॥
 विशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राज्ञा महीतले ।
 महीचन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥
 चंद्रदेवस्तस्य सुतो राज्यं तेन पितुः समम् ।
 कृतं तस्मात्सुतो जातो मंदपालो महीपतिः ॥
 तस्य भूपस्य समये सर्वे भूपाः समन्ततः ।
 त्यक्त्वा तं मंदपालं च तद्दत्तो संस्थिता गृहे ॥
 पितुरर्द्धं कृतं राज्यं कुम्भपालस्ततोऽभवत् ।
 गजनीया^१ च नगरे पिशाच विषये स्थितः ॥
 तत्पतिश्च महामोदो म्लेच्छ पैशाचधर्मगः ।
 स जित्वा बहुधां देशाल्लुंठयित्वा धनं बहु ॥
 म्लेच्छधर्मकरः प्राप्तः कुम्भपालो यतः स्थितः ।
 कुम्भपालस्तु तं दृष्ट्वा कलिना निमित्तं नृप ॥
 महामोदं समागम्य प्रणनाम स बुद्धिमान् ।
 तदा म्लेच्छपतिः शूरो दत्त्वा तस्मै धनं बहु ॥
 गजनीयां^२ च नगरीं प्राप्तवान्मूर्तिखंडकम् ।
 विशदब्दं कृतं राज्यं कुंभपालेन धीमता ॥
 तत्पुत्रो देवपालश्चानंगभूपस्य कन्यकाम् ।
 समुद्बाह्य विधानेन चंद्रकांतिं तया सह ॥

१—राजनीया अशुद्ध पाठ है

२—राजनीयां अशुद्ध पाठ है ।

कान्यकुब्जं गृहं प्राप्य जित्वा भूपाननेकशः ।
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्योभौ तनयौ स्मृतौ ॥
 जयचन्द्रो रत्नभानुदिशं पूर्वां तथोत्तराम् ।
 आर्यं देशस्य वै जित्वा वैष्णवो राज्यमाप्तवान् ॥
 रत्नभानोश्च तनयो लक्षणो नाम विश्रुतः ।
 कुरुक्षेत्रे रणं प्राप्य त्यक्त्वा प्राणान्दिवं गतः ॥^१

ऊपर के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि मंदपाल के दो पुत्र कुंभपाल और देवपाल, थे । कुंभपाल कान्यकुब्ज राज्य के किसी भाग का शासक (गवर्नर) था जिसने मुस्लिम आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था । कुंभपाल के इस नीच चरित्र के कारण ही मदनपाल के राज्यकाल में आपत्ति आयी और मुस्लिम शासक विजेता हुआ होगा ।

ऊपर से विदित है कि देवपाल जयचन्द्र का पिता था ।^२ अतः स्पष्ट है कि देवपाल विजयचन्द्र (या विजयपाल) का ही दूसरा नाम था । देवपाल को राष्ट्रपाल वंशीय (देवपालाय शुद्धाय राष्ट्रपालान्वाय च)^३ कहा गया है । अतः भविष्य पुराण के इस वृत्तान्त से गहडवाल वंश का मूल राष्ट्रकूट (राष्ट्रपाल) वंश से होना सिद्ध होता है । इस वृत्तान्त में इस वंश के सर्व-श्रेष्ठ सम्राट गोविन्दचन्द्र का उल्लेख नहीं मिलता है और कुंभपाल को देवपाल (विजयपाल) का पिता कहा गया है ।

अतः कुंभपाल ही गोविन्दचन्द्र का नामान्तर रहा होगा । पिता के राज्य काल में ही संभवतः तुरुष्कों से पराजित होकर उसने उन्हें कर देना भी स्वीकार कर लिया । यह उसका युवराजत्वकाल ही था । देवपाल ने अनंगपाल की दो पुत्रियों में से चन्द्रकांति नाम की एक राजपुत्री से विवाह किया था और इस चन्द्रकांति से ही जयचन्द्र का भी जन्म हुआ था । पृथ्वीराज रासो से भी ज्ञात होता है कि अनंगपाल तोमर की दो पुत्रियाँ थीं और इसमें से एक पुत्री का विवाह पृथ्वीराज तृतीय के पिता सोमेश्वर के साथ हुआ था और दूसरी कन्या का विवाह विजयपाल के साथ हुआ था ।^४ विजयपाल (=विजयचन्द्र)

१—भविष्य पु०, ४.३.६१—७३

२—वही, ३.५.३, ७

३—वही, ३.५.३

४—पृथ्वीराज रासो, आदिकथा, ३८ :

अनंगपाल पुत्री उभय, इक बह्नी विजपाल ।
 इक बह्नी सोमेश कौ, बीज बवन कलिकाल ॥

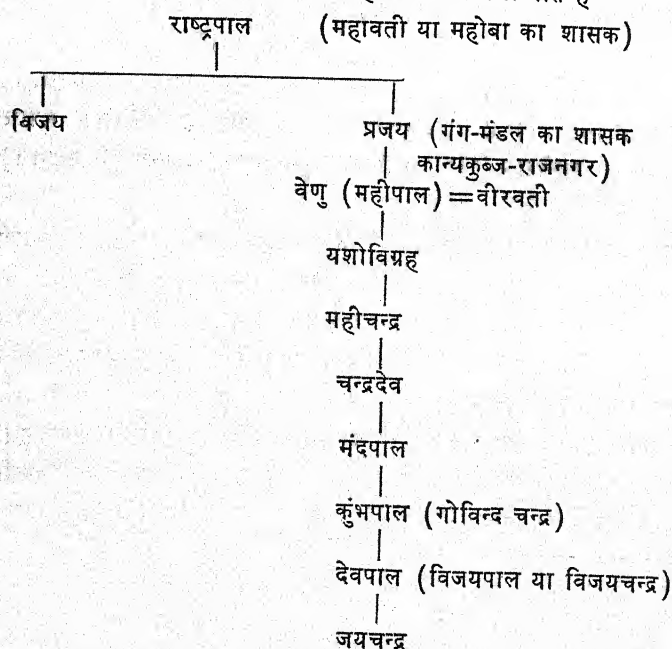
के पुत्र जयचन्द्र की माता का नाम सुरसुन्दरी दिया गया है ।^१ भविष्य पुराण में उसका नाम चंद्रकांति दिया गया है । नयचन्द्र रचित रंभामंजरी में जयचन्द्र की माता का नाम चन्द्रलेखा दिया गया है ।^२ अतः स्पष्ट है कि चन्द्रकीर्ति और चन्द्रलेखा एक ही हैं । इसी प्रकार देवपाल और विजयचन्द्र (या विजयपाल) एक ही हैं । देवपाल विजयचन्द्र का ही एक अन्य नाम था ।

कुंभपाल की पहचान गोविन्दचन्द्र से की गयी है जिसने बुद्धिमानी से बिनायुद्ध किये हुए ही तुरुष्क नरेश की आधीनता मान ली—

महामोदं समागम्य प्रणनाम स बुद्धिमान् ।

तदा म्लेच्छपतिः शूरो दत्त्वा तस्मै धनं बहु ॥^३

इस प्रकार म्लेच्छ शासक और कुंभपाल । (गोविन्द चन्द्र) में सन्धि हो गयी थी जिसके अनुसार उसने तुरुष्क दंड देना स्वीकार किया । अतः भविष्य-पुराण के आधार पर हम निम्नांकित गहड़वाल वंशावली पाते हैं—



१—पृथ्वीराज रासो, आदि कथा, ३९

२—हि० क०, पृ० ३२०

३—भविष्य पु०, ४.३.६८

अन्त में भविष्य पुराण बताता है कि राष्ट्रपाल के वंश में उत्पन्न राजा ही राष्ट्रपाल कहलाये—

राष्ट्रपालान्वये जाता राष्ट्रपाला नृपाः स्मृताः ।^१

जयचन्द्र के बाद ही कुरुक्षेत्र युद्ध (तराइन के द्वितीय युद्ध) में सभी क्षत्रिय-नरेश नष्ट हो गये । बाकी छोटे-छोटे वर्णसंकर राजा म्लेच्छों (तुर्कों) से दूषित होकर सामन्त रूप में बचे रहे । इस प्रकार भयानक म्लेच्छराज्य स्थापित हो गया ।^२

१—भविष्यपुराण, ४.३, ७६ (१)

२—वही, ४.३. ७६-७९

सेन वंश

ऊपर के विवरणों से स्पष्ट विदित होता है कि ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में भारत-भूमि बहु-नृप शासित थी। भोजराज के स्वर्ग जाने पर (स्वर्गते भोजरोजे) उसके वंशधर मन्द और अल्पायु थे। उसका साम्राज्य ही टूटकर विभिन्न प्रान्तीय राज्यों में बंट गया। इस प्रकार उत्तरी भारत में बहुत से शासक हो गये (बहुभूपवती भूमिः)।^१ इनमें भी परस्पर युद्ध हो रहे थे। अतः देश में अराजकता थी। इस राजनैतिक अवस्था, कलि-युग, को ही देख कर प्राचीन चिन्तकों ने कहा था—अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति अर्थात् अराजक राष्ट्र दस्युओं (चोर, लुटेरे साहसिकों) के वशीभूत होगा। इस वंश का इतिहास इसी सत्य की व्याख्या करता है।

पाल साम्राज्य के ध्वंसावशेषों पर ही सेन साम्राज्य की स्थापना हुई। इस वंश के राजाओं के नामान्त में 'सेन' शब्द मिलता है इसीलिये इसे सेन वंश कहते हैं। गहड़वालों का उत्कर्ष इनके विस्तार में बाधक हुआ और पाल शासकों की भाँति वे पश्चिम में मध्यदेश तक न पहुँच सके। इनका अधिकार क्षेत्र बंगाल-बिहार (गौड-मगध) ही रहा। ये ब्राह्मण धर्मावलम्बी सम्राट थे। इनके राजत्व-काल में विद्या, कला, साहित्य, और पौराणिक धर्म की विशेष उन्नति हुई। विजयसेन के देवपाड़ा लेख के प्रारम्भ में शिव (ओं नमः शिवाय) और हरिहर (प्रद्युम्नेश्वर) का गुणगान किया गया है। गंगा भी पवित्र थी। सौधों (महलों) और प्रासादों (मन्दिरों) का भी निर्माण किया गया था। परन्तु शक्ति और सद्गुणों के होते हुए भी इन्होंने म्लेच्छों के आतंक से अपने राज्य को बचाने का प्रयत्न नहीं किया।

सामन्तसेन

सेनों को दाक्षिणात्य कर्णाट, ब्रह्म-क्षत्रिय, और क्षत्रिय कहा गया है। विजयसेन के देवपाड़ा लेख से ज्ञात होता है कि सेन वंशीय सामन्तसेन ब्रह्म-वादी, ब्रह्म-क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न श्रेष्ठ और वीर पुरुष था, जिसकी युद्ध-गाथाओं की तुलना दाशरथि-राम के यशस्वी विजय-कार्यों से की गयी है। उसने अपनी

कृपाण से शत्रुओं का विनाश कर घर-घर, नगरों, वनों, पर्वतों और समुद्र तक अपना यश फैला दिया था। वह ही सेन-सत्ता का संस्थापक माना जाता है। सामन्तसेन एक धार्मिक व्यक्ति था जिसने अपना शेष जीवन गंगा-तट-वर्ती पुण्य आश्रमों और जंगलों में आत्म-ज्ञान की साधना में व्यतीत किया।^१

हेमन्तसेन

इसी आत्मज्ञानी और वीर सामन्तसेन से उत्पन्न उसका पुत्र हेमन्तसेन अपने पिता के अनुरूप गुणों से युक्त राजा हुआ। वह भी शिव-भक्त, सत्यवादी, विद्वान और विक्रमी था, जो वीर-युद्ध-तीर्थों में स्नान कर दिव्य शरीर वाला था (वीराणां रणतीर्थैवैभववशादिव्यं वपुर्विभ्रताम्)।^२ वह असि-कला (तलवार चलाना) में भी बहुत ही कुशल था; एक हाथ से शत्रु-बध करता था तो दूसरे हाथ से मित्रों को सुख देता था; और इसी प्रकार वह एक हाथ से शत्रु पर प्रहार करता था तो उसका दूसरा हाथ सुहृदों पर उपकार करता था।^३

ऐसा माना जाता है कि सामन्तदेव अथवा उसके पुत्र हेमन्तसेन ने कासी-पुरी (वर्तमान कासियारी) में एक छोटा राज्य स्थापित किया था (कसियारी इस समय मयूरभंज प्रान्त में है)। सामन्तसेन तथा हेमन्तसेन को दक्षिण के राज-वंशों से सम्बन्धित किया गया है। प्रो० आर० डी० वनर्जी के अनुसार सेनों का अभ्युदय चोलों के आक्रमण के ही कारण हुआ। आपका विचार है कि सेन लोग कर्णाट-क्षत्री थे। स्मिथ महोदय के अनुसार ये ब्रह्मक्षत्री थे।

ऊपर के विवरणों से स्पष्ट है कि सामन्तसेन और उसके पुत्र हेमन्तसेन ब्राह्मणों और क्षत्रियों के गुणों-शास्त्र और शस्त्र-में प्रवीण थे। इसीलिये उनको ब्रह्मतेज-युक्त क्षत्रिय कहा गया है।

विजयसेन

Vijayasena was the greatest king of the sena dynasty.”*

चतुर्जलधिमेखलावलयासीमविश्वम्भरा—

विशिष्टजयसान्वयो विजयसेनपृथ्वीपतिः ॥

हेमन्तसेन की साध्वी पत्नी से उत्पन्न पुत्र विजयसेन कुमार-कार्तिकेय के समान ही वीर-क्रीडा (युद्ध-क्रीडा) में लगे हुए (कुमारकेलिक्रमः) शत्रुओं का

१—विजयसेन का देउपारा लेख, श्लोक ५-९

२—वही, श्लोक १०-१२

३—वही, श्लोक १३

४—डा० डी० सी० गांगुली, स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ० ३६

नाश करते थे (अरातिबलशातन) । प्रतिदिन जितने शत्रु-राजाओं को युद्ध में जीता गया या मारा गया उनको कौन गिन सकता है—

गणयतु गणशः को भूपतीस्ताननेन
प्रतिदिनरणभाजा ये जिता वा हता वा ॥

वही इस वंश का पहला स्वतन्त्र राजा प्रतीत होता है—

इह जगति विषेहे स्वस्य वंशस्य पूर्वः ।

पुरुष इति सुधांशौ केवलं राजशब्दः ॥^१

शत्रु-जेता विजयसेन की सेना विशाल थी तथा राम और अर्जुन के समान पराक्रमी उस वीर ने अपनी भुजाओं से ही 'एक राज्य' (एक छत्र-सार्वभौम राज्य) की स्थापना की थी । कवि लोग उससे कहते थे कि तुम 'नान्य-वीर-विजयी' (त्वं नान्यवीर विजयीति गिरः कवीनां)^२ हो । नान्यवीरविजयी के दो अर्थ हैं—

१—नान्यवीर (मिथिला राज्य के शासक नान्यदेव) को जीतने वाला

२—उसके अतिरिक्त (न अन्य) अन्य कोई वीर विजयी न था ।

नान्यवीर विजयी

नान्यदेव मिथिला के कर्णाट वंश का संस्थापक था । उसने महासामन्ता-धिपति की उपाधि धारण की थी । वह १०६७ ई० में मिथिला (तिरहुत, उत्तरी बिहार) का राजा था । वह भी विक्रम और विद्या का रसिक था । उसने भरत के नाट्यशास्त्र पर भाष्य लिखा और मालव, सौवीर, बंग और गौड देशों को जीता था । मिथिला की अनुश्रुति से ज्ञात होता है कि विजयसेन के पुत्र वल्लालसेन ने मिथिला पर हमला कर नान्यदेव को बन्दी बनाया था । इस कार्य से प्रसन्न होकर विजयसेन ने अपने पुत्र-युवराज (वल्लालसेन) को 'निश्शक्र-शंकर' की उपाधि से विभूषित किया था । इसी प्रकार विजयसेन की 'नान्यवीरविजयी' उपाधि भी नान्यदेव पर उसकी विजय की साक्षी है ।

गौड विजय

उसने गौड देश को भी अपनी शक्ति से आक्रान्त किया । यहां पाल वंशीय शासक मदनपाल राज्य करता था । देउपारा प्रशस्ति और बैरकपुर (पौंड्रवर्धन भुक्ति के एक ग्राम-दान) लेख से भी प्रमाणित होता है कि विजयसेन ने उरीत्त बंगाल से पालों को भगाया था । विजयसेन के विक्रमपुर लेख (६२वें राज्य-

१—विजयसेन की देउपारा प्रशस्ति श्लोक १६

२—वही, श्लोक २०

वर्ष) से सिद्ध होता है कि उसने पूर्वी बंगाल पर भी अपना प्रभुत्व जमाया था । यहां उसने विक्रमपुर के भोजवर्मन को हटाकर अपना अधिकार जमाया था ।

कामरूप

देउपारा प्रशस्ति से ही ज्ञात होता है कि उसने कामरूप (आसाम में ब्रह्म-पुत्र की घाटी) को भी जीता था । यहां, संभवतः, कामरूप का राजा रायारि-देव उसका शत्रु था जिसने वंग की गजसेना का विरोध किया था । विजयसेन कामरूप पर अधिकार न कर सका ।

कलिंग-विजय

देउपारा प्रशस्ति से ही ज्ञात होता है कि उसने कलिंग देश को भी जीता । पहले कलिंग के शासक, अनन्तवर्मन चोडगंग, और विजयसेन में मैत्री थी । परन्तु अनन्तवर्मन की मृत्यु के बाद उसके वंश के साथ विजयसेन ने शत्रुता अपनायी । राजनीति में मित्रता का स्थायी मूल्य नहीं होता है । स्वार्थ और कार्यवश ही मित्र-शत्रु बनते हैं । अपने राज्य-काल के अन्तिम भाग में विजयसेन ने कलिंग पर आक्रमण कर वहां अनन्तवर्मन के पुत्र राजा राघव को पराजित कर दिया ।

इस प्रकार ने अपने पड़ोसी सशक्त राज्यों—गौड, कामरूप और कलिंग—को जीतकर पूर्व देश में अपनी शक्ति बढ़ाकर प्रभावशाली राज्य स्थापित किया—

गौडेन्द्रमद्रवदपाकृतकामरूप—

भूपं कलिंगमपि यस्तरसा जिगाय ॥^१

कलिंग शक्तिशाली राज्य होते हुए भी उससे पराजित हुआ । यह भी विजयसेन की शूरता का परिणाम था—

शूरं मन्य इवासि नान्य किमिह स्वं राघव श्लाघसे

स्पृद्धा वद्धेन मुंच वीर विरतो नाद्यापि दर्पस्तव ।^२

ऊपर की पंक्तियों में उल्लिखित 'नान्य' और 'राघव' क्रमशः मिथिला के नान्यदेव और कलिंग के राजा राघव ही थे जिनके दर्प को विजयसेन ने चूर-चूर कर दिया था ।

पश्चिम-विजय

देउपारा प्रशस्ति से ही ज्ञात होता है कि उसने अपनी जलसेना (नौसेना)

१—देउपारा प्रशस्ति, श्लोक २०

२—वही, श्लोक २१

द्वारा गंगा के मार्ग का अनुसरण करते हुए पश्चिमी प्रान्तों की भी विजय की तथा शंकर-निवास (कैलास) में गंगा के स्रोत तक चला गया—

पाश्चात्यचक्रजयकेलिषु यस्य याव—

द्वगंगाप्रवाहमनुधावति नौविताने ।

भर्गस्य मौलिसरिदम्भसि भस्मपंक—

लग्नोज्जितेव तरिरिन्दुकला चकास्ति ॥

इससे यह विदित होता है कि उसके राज्य के पश्चिम में स्थित गहड़वाल राज्य पर भी उसने आक्रमण किया । बल्लालसेन के नैहटी दान-पत्र से ज्ञात होता है कि विजयसेन ने अपनी शक्ति से साहसांक को भी मात दे दिया था । डा० त्रिपाठी के मतानुसार साहसांक गहड़वाल शासक चन्द्रदेव की उपाधि थी । इससे भी सिद्ध होता है कि गहड़वाल शासक चन्द्रदेव और विजयसेन में संघर्ष हुआ था ।

इस प्रकार विजयसेन ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर अपने वंश की कीर्ति बढ़ाई । उसने अरिराज-वृषभ-शंकर की उपाधि धारण की थी । डा० गांगुली भी कहते हैं—

“Vijayasena thus established a powerful kingdom in Bengal and made his influence felt in the neighbouring countries.”¹

विजयसेन उदार और प्रबुद्ध शासक था । कला और विद्या का उन्नायक तथा परम शिव भक्त था । उसने देउपारा (जिला राजशाही) में प्रद्युम्नेश्वर का मंदिर बनवाया था । उसकी सभा में कवि लोग रहते थे और देउपारा प्रशस्ति का लेखक कवि उमापतिधर भी उसका राजकवि था । ऐसा भी विचार है कि कवि श्री हर्ष कनौज में आने के पहले विजयसेन की ही सभा में रहता था ।

बल्लालसेन

विजयसेन के दीर्घकालीन शासन (१०६४ ई०-११५८ ई०) के बाद उसका पुत्र बल्लालसेन राजा हुआ । वह प्रसिद्ध विद्वान और समाज सुधारक था जिसने बंगाल में कुलीनता का प्रचार किया । यह प्रचार ब्राह्मणों, वैद्यों और कायस्थों में हुआ । वह तान्त्रिक धर्म का भी उन्नायक था और उसने बहुत से ब्राह्मणों को धर्म प्रचार के लिए मगध, भूटान, चिटगाँव, अराकान, उड़ीसा

और नैपाल भेजा । ऐसा माना जाता है कि उसने 'दानसागर' और 'अद्भुत सागर' नामक दो ग्रन्थ भी रचे ।

गहडवाल शासक गोविन्दचन्द्र के अभियानों में भी बल्लालसेन ने अपने पैतृक राज्य को सुरक्षित रखा ।

लक्ष्मणसेन

बल्लालसेन के बाद उसका पुत्र लक्ष्मणसेन अथवा रायलखमनिया (जैसा कि मुस्लिम ऐतिहासिकों ने कहा है) सेन वंश का अन्तिम महान राजा था । वह अपने पूर्वजों की भाँति प्रतापी और प्रबन्ध-पटु शासक था । राजशेखर सूरि के प्रबन्धकोश (पृ० ८८-८९) में 'लक्ष्मणसेनमन्त्री कुमारदेव प्रबन्ध' में पूर्व देश में लक्षणावती (लखनौटी) पर शासन करने वाले लक्ष्मणसेन को प्रतापी और न्यायी राजा कहा गया है जिसकी अपार सेना और विशाल राज्य था ।^१ उसका योग्य मंत्री कुमारदेव था जिसने अपनी प्रज्ञा से जयचन्द्र की सेनाओं को बिना युद्ध किए ही वापस करवा दिया था ।^२ इस वृत्त से ज्ञात होता है कि गहडवाल और सेन वंश में संघर्ष होते रहे । राजशेखर के इस प्रबन्ध से भी ज्ञात होता है कि जब जयचन्द्र ने लक्ष्मणसेन की राजधानी पर आक्रमण किया तो उसने शत्रु से युद्ध न कर अपने आप को दुर्ग में बन्द कर सुरक्षित रखा इससे इसकी कायरता का परिचय मिलता है ।

संभव है कि अपने राज्यकाल के प्रारम्भ में उसने पड़ोसी राज्यों—कामरूप और कर्लिङ्ग—पर आक्रमण किया हो और वहाँ उसे विजय भी मिली हो, परन्तु काशी और प्रयाग में विजय कर विजय-स्तम्भ को स्थापित करना सर्वथा निराधार है ।^३

सेन-पराभव और तुरुष्क आक्रमण

मुस्लिम इतिहासकारों के मतानुसार मुहम्मद-इब्न-बख्तियार खिलजी ११९७ ई० में बिहार प्रदेश के बौद्ध-भिक्षुओं, विहारों और मन्दिरों का विनाश करता हुआ सेन राज्य में प्रविष्ट हुआ । केवल कुछ घुड़सवारों के साथ अपने आपको घोड़ों का व्यापारी बताता हुआ राजमहल में घुस गया । वहाँ राजा लक्ष्मणसेन भयभीत होकर पीछे की खिड़की से भाग गया । यहीं से हिन्दू सत्ता

१—प्रबन्धकोश, पृ० ८८ : पूर्वस्यां लक्षणावती पूः । तत्र लक्ष्मणसेनो नाम प्रतापी न्यायी नृपः । तस्य.....विपुलं राज्यं सैन्यम् ।

२—वही, पृ० ८८-८९

३—डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २७३

का अन्त और इस्लामी शासन की स्थापना का प्रारम्भ हुआ । 'गीतगोविन्द' का प्रख्यात कवि जयदेव लक्ष्मणसेन की सभा का पंडित था ।

इतने विद्वान होते हुए भी सेन शासकों ने सीमान्त रक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया । गुप्तचर व्यवस्था भी उचित ढंग पर संगठित न थी । राष्ट्र-प्रहरी और प्रतिहार (द्वारपाल) भी कितने दुर्बल थे और ये सब चिन्ह शासन की शिथिलता तथा राजनीति की उपेक्षा के परिचायक हैं । इन्हीं दोषों से सेन वंश धराशायी हुआ और इसके साथ ही हिन्दू शासन का भी सूर्यास्त हो गया । राष्ट्र दस्यु-ग्रस्त हो गया ।

गुजरात का चालुक्य (सोलंकी) वंश

गुजरात में चालुक्यों के उदय के समय राजनैतिक दशा

भारतीय इतिहास में चालुक्यों का अति महत्व है। उत्तर और दक्षिण भारत के विभिन्न प्रान्तों को चालुक्यों ने अपनी शक्ति, शासन और कला-कृतियों से मुद्रांकित कर दिया था। जिस समय हर्षवर्धन उत्तरी भारत में राज्य कर रहा था, उसका दक्षिण भारत में प्रतिद्वंदी पुलकेशिन द्वितीय था। वह चालुक्य सम्राट था। इस प्रकार दक्षिण भारत में चालुक्यों (बादामी के चालुक्य) का प्रभुत्व काल महत्वपूर्ण युग था। परन्तु आठवीं शताब्दी के मध्य में उनके स्थान पर राष्ट्रकूटों का प्रभुत्व बढ़ा। बादामी के चालुक्यों के अतिरिक्त बेंगी के चालुक्य और लाट के चालुक्य वंश भी स्वतंत्र चालुक्य वंश की शाखाएँ थीं। राष्ट्रकूटों के पतनोन्मुख होने पर ही कल्याणी के चालुक्यों का उत्थान हुआ। इनके अधिकार क्षेत्र में कुन्तल देश सम्मिलित था जिसका उल्लेख प्रायः उत्तर के राजाओं की दिग्विजय वर्णन में मिलता है। परमार शासक मुंज का संघर्ष और दुःखान्त इसी चालुक्य राज्य में गोदावरी के दक्षिण हुआ। आगे भी परमारों और इन चालुक्य-राजाओं के साथ संघर्ष होता रहा।

प्रारम्भिक चालुक्य वंश (बादामी के चालुक्य) का अन्तिम सम्राट कीर्तिवर्मन् द्वितीय था। उसके उत्तराधिकारियों में से ही एक राजपुत्र, जयसिंह भाग कर गुजरात में अन्हिलवाड चला गया जहाँ उसके पुत्र मूलराज ने सौर वंश की राजकन्या से विवाह कर वहाँ का पहला चालुक्य सम्राट बन बैठा। मूलराज के उत्तराधिकारी वहाँ अत्यन्त वैभव के साथ ईसा की बारहवीं शताब्दी तक राज्य करते रहे। डा० ए० के० मंजूमदार के अनुसार राष्ट्रकूटों, प्रतिहारों और पालों के परस्पर संघर्ष में राष्ट्र-शक्ति इतनी क्षीण पड़ गयी थी कि जिस शक्ति ने ईसा की सातवीं शताब्दी में बढ़ते हुए इस्लाम के प्रसार को रोका था, वही शक्ति इस क्षेत्र में महमूद गजनवी के आक्रमण को न रोक सकी। यही राजनैतिक दुरवस्था चालुक्यों के उत्थान में भी सहायक सिद्ध हुई।^१

जब ९४१ ई० में मूलराज सिंहासन पर बैठा पालों की शक्ति इतनी न बची थी कि वे अपने साम्राज्य को संगठित करते; राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों का संघर्ष भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया, जब इन्द्र तृतीय ने कनौज को घेर कर उत्तरी भारत रौंद डाला। प्रतिहारों की शक्ति पर यह वज्रपात ही था। आगे चल कर वे अपने सामन्त-चन्देलों के हाथ के खिलौने-मातृ रह गये और अन्त में चन्देल शासक ने ही अन्तिम प्रतिहार शासक को मरवा दिया। इसी प्रकार शाकम्भरी के चौहान भी जो पहले प्रतिहारों के सामन्त थे, स्वतंत्र हो गये। मालवा में परमार का अभ्युदय हो चुका था। सीयक ने राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट पर आक्रमण किया था। पश्चिमी चालुक्यों (तैलप वंशीय) का उत्कर्ष ही राष्ट्रकूटों का भी अन्त ही था। मूलराज और उसके उत्तराधिकारियों को भी इन शक्तियों के साथ संघर्ष करना पड़ा।^१

मूलराज प्रथम

(लगभग ९४१ ई०-९९६ ई०)

बहुत से ऐसे वंश या वंश-शाखाएँ हैं जो अपने आपको चालुक्य, चुलिक या चौलुक्य कहती हैं। यह कहना कठिन है कि वातापी के चालुक्यों, वेंगी के चालुक्यों और कल्याणी के चालुक्यों का गुजरात के चालुक्यों से क्या सम्बन्ध था। वातापी, वेंगी और कल्याणी के चालुक्य अपने आपको हारिति-पुत्र और मान्य गोत्र से सम्बन्धित बताते हैं। परन्तु गुजरात के चालुक्य ऐसा नहीं मानते हैं। गुजराती इतिहास-ग्रन्थों से मालूम होता है कि चापोटक (या चावड) शासक सामन्तसिंह के समय कनौज के कल्याण-कटक के शासक भुवनादित्य के तीन पुत्र थे—राजि, बिज और दंडक। वे तीनों अपने घर सोमनाथ की तीर्थयात्रा को भिक्षु वेष में चले। उन्होंने सामन्तसिंह की सेना के घोड़ों की परेड देख कर उसकी आलोचना की। इसी बात पर सामन्तसिंह ने प्रसन्न होकर राजि के साथ अपनी बहन लीलादेवी का विवाह कर दिया। जब लीलादेवी के गर्भ में बालक था, तभी उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद जिस बालक का मूल नक्षत्र में जन्म हुआ उसे ही मूलराज का नाम दिया गया। मूलराज एक योग्य और जनप्रिय शासक हुआ जिसने अपने चाचा को मार कर गुजरात की गद्दी हड़प ली।

१—रे, डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ९३३-३४

ए० के० मजूमदार, चालुक्याज ऑफ गुजरात, पृ० १-४

इस कथा में कुछ सत्य अवश्य है। ईसा की नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पतनोन्मुख प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के स्थान पर उसने सारस्वत मंडल पर अधिकार कर (निजभुजोपाजित सारस्वतमण्डल) स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की (रे, डा० हि० ना० इ०, पृ० ६३७)। इस विजय के बाद भी मूलराज चुप होकर न बैठा रहा और उसने अपने अधिकार को बढ़ाने का प्रयत्न किया। इसी राज्य-विस्तार की महत्वाकांक्षा के कारण उसे अपने पड़ोसी राज्यों से संघर्ष करना पड़ा। ये शत्रु शाकम्भरी-सपादलक्ष के राजा और लाट के राजा प्रमुख थे। लाट का राजा तैलप का सेना नायक बारप्प था।

शाकम्भरी नरेश—शाकम्भरी का शत्रु राजा विग्रहराज था। मेरुतुंग का कथन है कि बारप्प और शाकम्भरी के शासक ने एक ही साथ मूलराज पर आक्रमण किया। नयचन्द्र के हम्मीर महाकाव्य से ज्ञात होता है कि चाहमान नरेश विग्रहराज ने गुजरात के मूलराज का बध कर उसके देश को जीता।^१ परन्तु प्रबन्ध चिन्तामणि से ज्ञात होता है कि चाहमान नरेश मूलराज की वीरता और नीतिज्ञता से प्रभावित होकर वापस चला गया। डा० रे के अनुसार मूलराज ने पराजित होकर विग्रहराज से सन्धि कर ली थी।^२

लाट-विजय—चाहमान विजेता के वापस चले जाने से मूलराज को अवसर मिल गया कि उसने लाट पर आक्रमण कर दिया। बारप्प पराजित हुआ। द्रयाश्रय काव्य से ज्ञात होता है कि मूलराज और उसके पुत्र चामुण्ड ने अपने राज्य की दक्षिणी सीमा साभ्रमती नदी को पार कर लाट पर आक्रमण किया और बारप्प को पराजित कर मार डाला। अभिलेखों से भी सिद्ध होता है मूलराज ने लाट देश को जीता था। संभवतः कलचुरि नरेश लक्ष्मणराज ने सोमनाथ जाते समय मूलराज को पराजित किया था। कच्छ पर भी उसका अधिकार था। सौराष्ट्र के आभीर शासक ग्रहरिपु को पराजित किया।

तुर्क-म्लेच्छों के साथ भी उसका संघर्ष हुआ। वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने सिन्धु देश के राजा को पराजित किया। संभवतः वह मंसूरा का मुस्लिम शासक था।

मूलराज के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने ६७४ से ६६५ वर्ष तक २१

१—हम्मीर महाकाव्य, २. ६ :

अप्युग्रवीरजतवीर वीर-संसेव्यमानक्रमपद्मयुग्मं ।

श्रीमूलराजं समरे निहत्य यो गुर्जरं जर्जरतामनैषीत् ॥

२—डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ९३९

वर्ष का राज्य किया। मेरुतुंग के अनुसार मूलराज ने ५५ वर्ष तक (वि० सं० ९९३-१०५३ वि० सं०) राज्य किया। वह न केवल एक विजेता ही था, वरन् एक कुशल शासक भी था। उसकी मृत्यु के बाद २५ वर्ष के इतिहास पर गुजराती इतिहास के ग्रन्थों से ही प्रकाश पड़ता है।

चामुण्डराज

प्रबन्ध चिन्तामणि से ज्ञात होता है कि वि० सं० १०५ में मूलराज के बाद उसका पुत्र चामुण्डराज राजा हुआ। पिता के राज्यकाल में भी उसने युद्धों और शासन-कार्य में भी भाग लिया था। अतः गद्दी पर बैठने के समय उसकी आयु अधिक हो चुकी थी। जब वह अपने पाप को धोने काशी जा रहा था, तो रास्ते में मालव नरेश ने उसे तंग किया था। वापस आने पर उसने अपने पुत्र को मालव-राज को दंड देने के लिये कहा। स्वयं राज्य छोड़ कर चला गया।

वल्लभराज

उसने लगभग १३ वर्ष तक राज्य किया और वि० सं० १०६५ में वल्लभराज राजा हुआ। उसने मालव-राजनगर धारा पर आक्रमण किया; किन्तु मार्ग में ही रोग से पीड़ित होकर मर गया। उसने 'राज-मदन-शंकर और जगज्जम्पन (संसार को हिलाने वाला) की उपाधियाँ धारण कीं। उसने केवल ५ मास और २६ दिनों तक शासन किया।

दुर्लभराज

वह वि० सं० १०६५ में राजा हुआ। उसने ११ वर्ष तक राज्य किया। दुर्लभराज ने अपनी बहन का विवाह मरुदेश के राजा महेन्द्र से किया और स्वयं उसने महेन्द्र की बहन दुर्लभ देवी को स्वयंवर में वरण किया। परन्तु निराश राजाओं ने दुर्लभराज पर आक्रमण किया। अन्त में वि० सं० १०७७ में उसने अपने भाई के पुत्र भीम को सिंहासन पर बिठाया।

भीम प्रथम

उसके राज्यकाल के कई अभिलेख मिलते हैं जिनसे १०३९ ई० से १०६२ ई० तक उसके शासन-काल का ज्ञान होता है। वह उदार शिव भक्त था। साहित्यिक साक्ष्यों—हिन्दू और मुस्लिम इतिहासकारों—से ज्ञात होता है कि भीमदेव प्रथम ने ४२ वर्ष तक राज्य किया। अतः डा० रे के अनुसार (डा० हि० ना० ई० २, पृ० ९५०) उसका राज्यकाल लगभग १०२२-६४ ई० तक था। उसके राज्यकाल में महमूद गजनवी का हमला हुआ था।

महमूद गजनवी का आक्रमण

राजसिंहासन पर आने के कुछ ही समय बाद १०२५ ई० में महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार महमूद चालुक्यों की राजधानी अन्हिलपाटन में निर्विरोध रूप से घुसा। भीम कन्थकोट को अपने परिवार के साथ भाग गया। हिन्दू सेना ने मोढेरा के पास गजनवी सेना को रोकने का प्रयत्न किया परन्तु वह उसे रोकने में सफल न हुई। महमूद गजनवी सोमनाथ तक लूट-मार करता हुआ बढ़ गया। सोमनाथ (सोमेश्वर) का प्रसिद्ध मंदिर भी ध्वस्त किया गया। परन्तु इस आक्रमण का गुजरात के इतिहास पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा।

भीम और भोज

प्रबन्ध चिन्तामणि से परमार भोज और कलचुरि शासक लक्ष्मीकर्ण के साथ भीम के सम्बन्धों का ज्ञान होता है। पहले भीम और भोज में मित्रता थी। किन्तु आगे चलकर भोज की आक्रामक नीति के कारण सम्बन्ध बिगड़ गये। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भोज ने गुजरात पर आक्रमण किया था। जब भीम सिन्ध पर आक्रमण करने गया तभी भोज ने अन्हिलपाटन पर आक्रमण किया और जयपत्र प्राप्त किया। भीम ने भी अपनी सेना को धारा पर आक्रमण करने के लिये भेजा। इसमें उसे विशेष लाभ न हुआ। उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि भोज ने भीम को पराजित किया था।

भीम और कर्ण (कलचुरि) संघर्ष—द्वयाश्रय काव्य से सिद्ध होता है कि भीम और कर्ण में संघर्ष हुआ। जब पुण्ड्र देश (उत्तरी बंगाल) और आन्ध्र देश के राजा भीम को भेंटें भेजते थे और भीम की कीर्ति मगध देश तक पहुँच गयी थी, किसी ने भीम से कहा कि पृथ्वी पर केवल सिधु-राज और चेदि नरेश ही उसकी कीर्ति को नहीं मानते हैं। संभवतः कलचुरि-पराभव का एक कारण भीम भी था।

सिन्ध विजय—यह सुनकर भीम ने पंचनद पार कर सिन्ध के राजा को पराजित किया। इस प्रकार मूलराज और चामुण्डराज की नीति का अनुसरण करते हुए भीम ने सिन्ध पर आक्रमण किया था।

आबू विजय—१०३१ ई० के कुछ पहले उसने परमार शासक धन्धुक से आबू छीन लिया। १०६२ ई० में आबू पर्वत पर उसका लेख प्राप्त हुआ है जो आबू पर उसके अधिकार को सूचित करता है।

मारवाड़—भीम ने भिनमाल पर भी अधिकार जमाया जहाँ परमार वंशीय कृष्णराज राज्य कर रहा था। उसने कृष्णराज को बन्दी बना लिया।

वह दक्षिणी मारवाड़ पर अपना अधिकार जमाने में सफल न हुआ। नडोल के चाहमान अहिल और उसका पुत्र अणहिल उसकी दक्षिण-मारवाड़ विजय में रोड़ा थे। अणहिल के पुत्र बालप्रसाद ने भीम को विवश कर दिया कि वह कृष्णराज को बन्धन से छोड़ दे।

भीम के तीन पुत्र थे—

मूलराज—जो भीम के जीवनकाल में ही मर गया, और

क्षेमराज—जिसका जन्म हीनकुलजा माँ से हुआ था, गद्दी पर न बैठा, तथा तपस्या करने चला गया।

कर्ण।

इसलिये भीम ने कर्ण को ही लगभग १०६४ ई० में अपनी गद्दी पर बिठा कर स्वयं तप करने चला गया और

कर्ण

(लगभग १०६४ ई०-१०९४ ई०)

उसने १०६४ ई० से १०६४ ई० तक लगभग २९ वर्ष राज्य किया और त्रैलोक्यमल्ल की उपाधि ग्रहण की। प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार कर्ण ने आशापल्ली के आशा नामक भिल्ल को पराजित किया। आशापल्ली में ही उसने एक देवी का मन्दिर बनवाया। कुमारपाल के ससय के चितौड़गढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने मालवा की विजय की थी। हम्मीर महाकाव्य से ज्ञात होता है कि उसे चाहमान दुस्सल ने मार डाला था।^१ चाचिगदेव के सुन्ध गिरि अभिलेख (वि० सं० १३१९) से ज्ञात होता है कि नाड्डूल के चाहमान पृथ्वीपाल ने भी उसे पराजित किया था।

बिल्हन कृत कर्ण सुन्दरी नामक नाटक से ज्ञात होता है कि कर्ण के सेनापति वीरसिंह ने सिन्ध नदी को पार कर गज्जणनगरी (गजनी) को जीता था। यह गजनवियों की पराजय थी। डा० मजूमदार (ए० के०) कहते हैं कि कर्ण ने सिन्ध को जीता था।^२ शायद उन्होंने नाटक स्वयं नहीं पढ़ा इसलिये यह गलती की। नाटक में बताया गया है कि चालुक्य सेनाएं गज्जणनगर जीतने गयी थीं (गर्जननगरं जेतुं गतस्य रुच्चिकस्य सकाशात्प्रधान वीरसिंहो

१—हम्मीर महाकाव्य, २. ३१ :

श्री कर्णदेवं समरे विधाय तद्राज्यलक्ष्मीं परिणीतवान् ॥

२—चा० गु०, पृ० ६०

आगच्छति) ।^१ गजनवी शासक और चालुक्यों की सेनाओं में सिन्धु नदी के तट पर युद्ध हुआ था—

गर्जनाधिपतिबलस्यास्मद्बलम् सिन्धो रोधसि मिलितम्....। अनन्तरं महति समरसंमर्दे....।^२

इस महायुद्ध^३ में सेनापति रुचिक ने इतना पराक्रम दिखाया था कि देवता भी चकित हो गये (तत्कृतं कर्म रुचिकेन येन विस्मिताः सुराः) और अन्त में गर्जनाधिपति (गजनी के शासक) की पराजय हुई । (कृत्वागर्जनकाधिराजमधुना) ।^४ इसी विजय के उपलक्ष्य में ही, संभवतः विजयोत्सव मनाने के लिये, काश्मीरी कवि बिल्हण ने इस नाटक की रचना एक ही दिन में की थी । इस नाटक में उल्लिखित इस विजय को यों ही नाटक बिना पढ़े ही, अनैतिहासिक नहीं कह सकते । महमूद गजनवी के बाद पंजाब में गजनवियों की सत्ता इस समय दुर्बल हो गयी थी । अतः इस युद्ध पर संदेह करना ठीक नहीं है ।

जयसिंह सिद्धराज

कर्ण के बाद मयणल्लदेवी से उत्पन्न उसका पुत्र जयसिंह सिद्धराज लगभग वि० सं० ११५० (१०६४ ई०) में गद्दी पर बैठा । उसके राज्यकाल के कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनसे उसके राज्य काल की लगभग ११२७ ई० से ११४३ ई० तक की तिथियाँ प्राप्त होती हैं । मेरुतुंग के प्रबन्ध चिन्तामणि से ज्ञात होता है कि उसने ४६ वर्ष तक (वि० सं० ११५०-११६६) राज्य किया । मेरुतुंग के अन्य ग्रन्थ थेरावली में भी यह समय दिया गया है । आइने अकबरी और मिरातए अहमदी के अनुसार उसका शासन काल ५० वर्ष का था । वह थोड़ी उमर में ही सिंहासन पर बैठा और राजकार्य उसकी माँ करती थी । अतः उसके सिंहासन पर बैठने के समय कुछ उपद्रव हुए थे ।

जयसिंह एक महान् रणदक्ष शासक था जिसने कच्छ, काठियावाड़, गुजरात, मध्यप्रदेश और राजस्थान के कोटा, बंसवारा, खालियर, जोधपुर, जैपुर और धरंगढ़ प्रान्तों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया जैसा कि उसके अभिलेखों के प्राप्ति स्थानों से सूचित होता है । जिसके लिये मूलराज, भीम और कर्ण संघर्ष करते हुए असफल रहे थे, वही जयसिंह सिद्धराज को सुलभ

१—कर्णसुन्दरी, अंक ४, पृ० ५३

२—वही, पृ० ५४

३—वही, ४/१७-२१

४—वही, ४/२२

हुआ । उसने एक सशक्त और संगठित साम्राज्य की स्थापना की । उसका युग-साहित्य, धर्म और कला से अभिमंडित था । उसका इतिहास उसके सभा पंडित हेमचन्द्र द्वारा लिखित द्वयाश्रय महाकाव्य और सिद्ध-हेम से ज्ञात होता है । अन्य जैन प्रबन्धों से भी उसके इतिहास पर प्रकाश पड़ता है । इनके अतिरिक्त अभिलेखों से भी उसके राज्य काल का हाल मालुम होता है ।

सौराष्ट्र-विजय—राज्यकाल के प्रारम्भ में ही उसका संघर्ष सौराष्ट्र के आभीरों से हुआ । मेरुतुंग के अनुसार नवघन आभीर ने चालुक्यों पर आक्रमण कर चालुक्य सेनाओं को पराजित किया । जयसिंह स्वयं उसके विरुद्ध सेना लेकर बढ़ा और युद्ध में नवघन को मार डाला । सौराष्ट्र पर अधिकार कर दण्डाधिपति सज्जन को वहाँ अपना अधिकारी नियुक्त किया । उसके दोहद अभिलेख से भी सौराष्ट्र विजय सिद्ध होती है ।

मालव—मेरुतुंग के अनुसार जब जयसिंह सोमेश्वर की तीर्थयात्रा पर गया था, यशोवर्मन ने गुजरात पर आक्रमण कर इसे ध्वस्त कर दिया । चालुक्य मंत्री से उसने अपने पैर धुलाकर राज्य का दान करवाया था । जब सिद्धराज तीर्थयात्रा से वापस लौटा, उसने क्रुद्ध होकर १२ वर्षीय कठिन युद्ध छेड़कर मालवा की राजधानी धारा को ध्वस्त कर दिया और यशोवर्मन को बन्दी बनाकर अपनी राजधानी पट्टन ले आया । द्वयाश्रय काव्य से भी ज्ञात होता है कि उसने यशोवर्मन को बन्दी बनाया और सम्पूर्ण अवन्ति देश पर अधिकार किया । कुमारपालचरित से भी ज्ञात होता है कि उसने धारा को ध्वस्त कर नरवर्मन को बन्दी बनाया । वसन्त विलास से भी धारा-विजय सिद्ध होती है । अभिलेखों से भी उसकी मालव-विजय सिद्ध होती है । जयसिंह की 'अवन्तिनाथ' उपाधि भी यही सिद्ध करती है । तलवाड़ा लेख से विदित होता है कि जयसिंह ने नरवर्मन का मान-मर्दन किया था । दोहद लेख से मालुम होता है कि उसने मालवा के शासक को बन्दी बनाया था । कुमारपाल की वडनगर प्रशस्ति में भी कहा गया है कि जयसिंह ने मालवराज को बन्दी बनाया था । मालवा में नरवर्मन और यशोवर्मन, दोनों ही, जयसिंह सिद्धराज के समसामयिक शासक थे । इस प्रकार परमारों से मालवा चालुक्यों के हाथों में चला गया ।

चन्देल-कलचुरि-चालुक्य—मालवा और दक्षिणी राजपूताना पर चालुक्यों का अधिकार हो जाने से स्वाभाविक था कि जयसिंह सिद्धराज का चन्देलों और कलचुरियों से संघर्ष हो । कुमारपालचरित से मालुम होता है कि जयसिंह ने महोबक के राजा मदनवर्मन को पराजित किया । कीर्तिकौमुदी के अनुसार जयसिंह धारा से कालिंजर गया । परन्तु चन्देलों से युद्ध में उसे कोई विशेष

लाभ न हुआ। मदनवर्मन के कालंजर शिलालेख में मदनवर्मन की गुर्जर-नरेश पर विजय का उल्लेख है। तलवाड़ा अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने परमर्द्धि को पराजित किया था। डा० रे के अनुसार यह परमर्द्धि चन्देल न होकर कल्याणी का विक्रमादित्य षष्ठ था। उसे भी परमर्द्धि कहते थे। प्रबन्ध चिंतामणि से ज्ञात होता है कि डाहल के राजा (कलचुरि) ने जयसिंह को एक सन्धिपत्र लिखा और काशिराज जयचन्द्र से भी उसके राजनैतिक सम्बन्ध थे। डाहल का शासक, संभवतः, कलचुरि नरेश यशकर्ण था। परन्तु मेरुतुंग ने गोविन्दचन्द्र के स्थान पर जयचन्द्र का नाम देने में भूल की है।

सिन्धुराज विजय—दोहद अभिलेख से विदित होता है कि जयसिंह सिद्धराज ने सिन्धुराज तथा उत्तर के अन्य राजाओं को पराजित किया था। संभवतः यह सिन्धुराज मंसूरा का मुस्लिम शासक था।

बर्बरक—११३८ ई० के उज्जैन लेख के अनुसार सिद्धराज को बर्बरक-जिष्णु कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि उसने बर्बरक को पराजित किया था। हेमचन्द्र के अनुसार बर्बरक एक राक्षस था जो सरस्वती-तट पर रहने वाले ऋषियों के आश्रमों को लूटता रहता था। सिद्धराज ने बर्बरक का दमन कर उसे अपना सामन्त बना दिया। पश्चिमी समुद्र तट के निकटस्थ बर्बरीक (बरबरिकम्) का यह यवन शासक ही रहा होगा।

साम्राज्य विस्तार—इन विविध युद्धों और विजयों से उसका प्रभाव और प्रभुत्व बढ़ गया। चालुक्य साम्राज्य की भी प्रतिष्ठा बनी। उसने सम्पूर्ण काठियावाड़ पर अपना अधिकार जमाया। दक्षिण राजस्थान में भी उसका प्रभाव जमा। शाकम्भरी के चाहमानों को पराजित कर कुछ काल के लिये साँभर पर भी उसका अधिकार स्थापित हो गया। परमारों की राजधानी धारा और उज्जैन उसके राज्य में ही सम्मिलित थे। सिद्धराज के अभिलेखों से भी दक्षिण राजस्थान, काठियावाड़, कच्छ और मालवा पर आधिपत्य सिद्ध होता है।

जयसिंह सिद्धराज एक महान निर्माता और साहित्य का उन्नायक था, उसकी उदारता से प्रोत्साहित जैन साधुओं की कृतियाँ भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण हैं। हेमचन्द्र ने सिद्ध-हेमचन्द्र नामक व्याकरण के ग्रन्थ में उसकी कीर्ति अमर कर दी। सिद्धपुर का रुद्र-महाकाल का मन्दिर और पट्टन का सहस्रालिंग तडाग उस पर शैव प्रभाव के साक्षी हैं। जैनधर्म, जैन साहित्य और जैन-विद्वानों को भी उसका उदार आश्रय प्राप्त था। इन शान्ति और शक्ति की सफलताओं में भी पुत्र न होने का अभाव उसके हृदय में महाशूल था।

इसी विचार से कि उसका कोई पुत्र न था, उसका अन्तिम जीवन दुःखमय था । उसकी मृत्यु के ३०० वर्ष बाद उसके देश के एक कवि ने लिखा था—

महालयो महायात्रा महास्थानं महासरः ।
यत्कृतं सिद्धराजेन क्रियते तन्न केनचित् ॥

कुमारपाल

लगभग ११४३ ई० में सिद्धराज की अचानक ही मृत्यु हो गयी । ऊपर कहा गया है कि पुत्र न होने से वह चिन्तित रहता था । दूर के सम्बन्धी कुमारपाल को वह राज्य सौंपना नहीं चाहता था ।

जयसिंह-कुमारपाल सम्बन्ध—मेरुतुङ्ग के अनुसार कुमारपाल हीनकुलज था जिससे जयसिंह उसे अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाना चाहता था । इसलिये उसने मन्त्री उदयनदेव के पुत्र बाहड को गोद ले लिया । जयसिंह के जीवनकाल के अन्तिम समय में राजसभा दो दलों में विभक्त हो गयी । कुमारपालचरित से ज्ञात होता है कि जयसिंह ने कुमारपाल के पिता त्रिभुवनपाल को मार कर कुमारपाल को राज्य से निकाल दिया । परन्तु जयसिंह की मृत्यु होते ही कुमारपाल ने कृष्णदेव (कान्हदेव) की सहायता से गद्दी पर अधिकार कर लिया । बाहड भाग गया और कुमारपाल ने अपने विरोधियों को कुचल कर अपनी शक्ति का परिचय दिया । इस समय कुमारपाल की अवस्था अधिक (५० वर्ष) हो चुकी थी; परन्तु वह एक प्रतापी और पराक्रमी शासक था । डा० मजूमदार कहते हैं—

“To a large section of his countrymen, particularly the Jains, Kumarpala remains the greatest king that ever sat on the throne of Gujarat.”

सभी भारतीय शासकों में कुमारपाल ही एक ऐसा महान शासक है जिसके जीवन और इतिहास पर बहुसंख्यक ग्रन्थ लिखे गये । उसके राज्यकाल के अभिलेख भी कई प्राप्त होते हैं ।

मंगोल शिलालेख (जूनागढ़, वि० सं० १२०२=११४५ ई०)—यह कुमारपाल की प्रशंसा करता है । इस लेख से ज्ञात होता है कि गुहिल सरदार चालुक्यों की सेना में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे ।

दोहर शिलालेख (वि० सं० १२०२=११४५ ई०)—यह जयसिंह के शिला लेख के अन्त में प्राप्त होता है ।

किरदु लेख (मारवाड़)—यह कुमारपाल के सामन्त परमार सोमेश्वर का लेख है ।

चित्तौड़गढ़ शिलालेख प्रथम (उदयपुर, राजस्थान ११५० ई०)—इसमें चालुक्य वंश की प्रशंसा की गयी है । शाकम्भरी राज्य के विरुद्ध अभियान में चला हुआ कुमारपाल चित्तौड़ आया था ।

चित्तौड़गढ़ के द्वितीय शिलालेख में मूलराज से कुमारपाल तक चालुक्य वंशावली दी गयी है ।

वडनगर प्रशस्ति (गुजरात)—इसमें चालुक्यों की मूल वंशोत्पत्ति और कुमारपाल तक वंशावली दी गयी है ।

किरदु शिलास्तम्भ लेख (११५३ ई०) से राजाधिराज कुमारपाल विजयी को शंकर का भक्त बताया गया है ।

पाली लेख (जोधपुर, वि० सं० १२०६=११५२ ई०)

रतनपुर शिला लेख (जोधपुर)

भतुंड शिलास्तम्भ लेख (जोधपुर, वि० सं० १२१०=११५४ ई०)

नडोलदानपत्रलेख (देशुरी प्रान्त, जोधपुर) वि० सं० १२१३=११५६ ई०)

बाली अभिलेख (जोधपुर, वि० सं० १२१६=११५९ ई०)

किरदु अभिलेख (नं० ३, वि० सं० १२१८=११६१ ई०)

उदयपुर शिला लेख (ग्वालियर, वि० सं० १२२०=११६३ ई०) इसमें कुमारपाल को शाकम्भरी और अवन्ति का विजेता कहा गया है ।

जलोरा शिला लेख (जोधपुर, वि० सं० १२२१=११६४ ई०)

उदयपुर शिलास्तम्भ लेख—२ (वि० सं० १२२२=११६५ ई०)

भावबृहस्पति की वेरावल प्रशस्ति (दक्षिण काठियावाड़, वलभी संवत् ८५०=११६६ ई०) इसमें कुमारपाल को 'माहेश्वर-नृपाग्रणी' कहा गया है ।

जूनागढ़ शिलालेख (वलभी संवत् ८५०=११६६ ई०)

नदलई शिलालेख (वि० सं० १२२८=११७१ ई०)

इन अभिलेखों में उसके राज्य-काल के २६ वर्षों (११४५-११६१) का कार्य-विवरण मिलता है । प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार कुमारपाल ने वि० सं० ११६६-१२३० तक ३१ वर्ष राज्य किया । थेरावली के अनुसार उसने वि० सं० ११९९ से १२२६ (११४२-११७२ ई०) तक ३० वर्ष राज्य किया और यही सत्य भी है ।^१

कुमारपाल की दिग्विजय अपने पूर्वजों की भाँति कुमारपाल एक महान विजेता था। उसकी दिग्विजय का वर्णन जयसिंह सूरी लिखित कुमारपाल चरित से ज्ञात होता है। इसके चौथे सर्ग में कुमारपाल के विजयाभियानों का वर्णन मिलता है। विजय यात्रा पर चलकर सबसे पहले वह जाबालिपुर (वर्तमान जलोर) पहुँचा। यहाँ के नायक ने उसका स्वागत किया। फिर वह आगे बढ़ा और उसने सपादलक्ष देश पर आक्रमण किया। अर्णोराज ने उसका स्वागत किया। पुनः वह कुरुमण्डल की ओर बढ़ा और मन्दाकिनी (गंगा) के तट पर रुका। फिर वह चित्रकूट होता हुआ मालवा पहुँचा। अवन्तिनाथ को उसने बन्दी बनाया। फिर वह नर्मदा के किनारे होता हुआ आभीर विषय पहुँचा। यहाँ विजय प्राप्त करने के बाद छोटे-छोटे राजाओं को जीतते हुए उसने कच्छ, पंचनद और मूलस्थान (मुलतान) विजय की। इस प्रकार शक देश से जालन्धर और मरुस्थल होता हुआ अपनी राजधानी पहुँचा इस प्रकार कुमारपाल की दिग्विजय समाप्ति हुई—

आगंगम् ऐन्द्रीं आविन्ध्यं याम्यां आ सिन्धु पश्चिमाम् आ तुरुष्कम् च
कोवेरी चालुक्यः साध्वयिष्यति, अर्थात् पूर्व में गंगा तक, दक्षिण में विन्ध्य तक,
पश्चिम में सिन्धु नदी तक और उत्तर में तुरुष्क राज्य तक चालुक्य सम्राट ने
विजय की।

कुमारपाल और अर्णोराज—आगे चलकर जयसिंह ने कुमारपाल और शाकम्भरी नरेश अर्णोराज के युद्ध का वर्णन विस्तार के साथ किया है। उसके अनुसार इस युद्ध का कारण कुमारपाल की बहन देवलदेवी के साथ अर्णोराज का दुर्व्यवहार था। वह चाहमान राज्य को छोड़कर अपने भाई (कुमारपाल) के पास चली आई थी। इसीलिये कुमारपाल ने अर्णोराज पर चढ़ाई कर उसे पराजित कर दिया। द्रयाश्रय के अनुसार आन्न (अर्णोराज) ने कुमारपाल पर उसे दुर्बल और नया राजा समझ कर झमला कर दिया था। परन्तु युद्ध में अर्णोराज पराजित और घायल हुआ। उसने स्वयं अपनी पुत्री जल्हणा का विवाह कुमारपाल के साथ कर दिया।

बाहड ने भामकर अर्णोराज को गुजरात पर आक्रमण करने के लिये उकसाया और अर्णोराज ने उज्जैन के राजा बल्लाल और अन्य राजाओं से भी सहायता लेकर कुमारपाल पर उत्तर और पूर्व की ओर से आक्रमण कर दिया। चालुक्य सम्राट संकट की स्थिति में फँसा था। किन्तु अपनी वीरता और उत्साह से उसने शत्रुओं को पराजित कर दिया। बाहड पकड़ कर बन्दी बना लिया गया और अर्णोराज बाण से घायल हुआ। अर्णोराज ने सन्धि कर अपनी

पुत्री का विवाह कुमारपाल से कर दिया । कुमारपाल ने अपने सेनानायकों—विजय और कृष्ण—को बल्लाल के विरुद्ध लड़ने भेजा था ।

आबू के परमार और मालवा—कुमारपाल ने आबू पर्वत के परमार शासक विक्रमसिंह पर आक्रमण किया; क्योंकि उसने चाहमान-युद्ध में कुमारपाल का विरोध किया था । कुमारपाल ने उसको सिंहासन से हटाकर यशोधवल को बैठाया । कुमारपाल ने यशोधवल के साथ बल्लाल पर आक्रमण किया, जहाँ उसकी सेनाएँ पहले से ही युद्ध कर रही थीं । बल्लाल की युद्ध में मृत्यु हो गयी । सम्पूर्ण मालवा को उसने अपने राज्य में मिला लिया । इस प्रकार भिलसा तक मालवा प्रदेश में उसका प्रभुत्व जम गया ।

सौराष्ट्र विद्रोह—सौराष्ट्र के शासक सुम्बर ने कुमारपाल के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । चालुक्य मंत्री उदयन ने उसे दबाने के लिये युद्ध किया जिसमें उसकी मृत्यु हो गयी । कुमारपाल ने दूसरी सेना भेज कर विद्रोह को दबा दिया ।

सुन्धा लेख से विदित होता है कि इस युद्ध में नडोल के चाहमान शासक आशाराज के पुत्र आह्लादन ने उसकी विशेष सहायता की थी । इसलिये उसे कुछ प्रान्त पुरस्कार रूप में दिये गये ।

भिनमाल के परमार शासक सोमेश्वर ने भी उसकी आधीनता मान ली ।

कुमारपाल ने नडोल के राज्यपाल को पराजित कर उसके राज्य को अपने दंडनायक वैजल्ल को दे दिया ।

११५० ई० में कुमारपाल ने अर्णोराज पर पुनः आक्रमण कर दिया, क्योंकि जयसिंह चालुक्य की पुत्री के साथ जो उसकी रानी थी, अर्णोराज ने बुरा व्यवहार किया । कुमारपाल ने उसे पराजित किया ।

कुमारपाल ने विशाल सेना के साथ अपने मंत्री अम्बड को कोंकण के मल्लिकार्जुन पर आक्रमण करने भेजा । मल्लिकार्जुन मारा गया और उसका राज्य गुजरात के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया । इस युद्ध में अर्णोराज के पुत्र सोमेश्वर और परमार धारा वर्ष ने भी कुमारपाल की सहायता की थी । इस प्रकार कुमारपाल ने निस्सन्देह एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की ।

कुमारपाल का धर्म—हेमचन्द्र के प्रभाव में आकर कुमारपाल ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया । अभिलेखों में भी उसके धार्मिक परिवर्तन का उल्लेख मिलता है । उसने पशु हिंसा बन्द कर दी थी । उसके राज्य काल में कला की भी विशेष उन्नति हुई । स्कन्द पुराण में भी एक कुमारपाल नाम के राजा का

उल्लेख मिलता है जिसकी राजधानी मोढेरक (मोढेरा) थी। वह जैन धर्म का प्रबल प्रचारक था। उमने हिंसामय यज्ञों की निन्दा कर जैन धर्म के अहिंसा-सिद्धांत का प्रचार किया। यहाँ इस वर्णन में केवल इतना दोष है कि कुमारपाल को कान्यकुब्ज के सम्राट आम का दामाद बतलाया गया है।^१

जैन ग्रंथों से भी ज्ञात होता है कि अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में कुमारपाल ब्राह्मण धर्म को छोड़ कर हेमचन्द्र के प्रभाव में जैन धर्म को मानने लगा। जयसिंह सूरी ने कुमारपाल चरित (सर्ग ५-१०) में कुमारपाल के इस प्रकार परिवर्तित धार्मिक जीवन का वर्णन करते हैं। परन्तु वह शिव का भी उपासक था; सोमेश्वर (शिव) की उपासना करता था और सोमनाथ के मन्दिर का पुनरुद्धार किया था। वेरवल अभिलेख में उसे 'माहेश्वर-नृपाग्रणीः' कहा गया है। उसके अभिलेखों के प्रारम्भ में 'ओं नमः शिवाय' पाते हैं।

कुमारपाल चरित के अनुसार कुमारपाल ने हेमचन्द्र से अपने उत्तराधिकारी के विषय में बातचीत की थी और अपने पुत्र अजयपाल को उत्तराधिकारी चुना। किन्तु कुमारपाल प्रबन्ध से ज्ञात होता है कि कुमारपाल अपना राज्य अपने नाती (दौहित्र) प्रतापमल्ल को देना चाहता था। इस कारण अजयपाल ने विद्रोह कर दिया और कुमारपाल को भी विष दे दिया। परन्तु अजयपाल उसके भाई का पुत्र था।

अजयपाल

ऊपर के विवरणों से स्पष्ट है कि कुमारपाल के बाद उत्तराधिकार-युद्ध हुआ और ब्राह्मणों की सहायता से अजयपाल सम्राट बना। अतः जैनों की ब्राह्मण-विरोधी नीति को त्याग दिया गया। इससे राजसभा में जैनों का प्रभाव कम हुआ। जन लेखकों ने भी उसके राज्य-काल की घटनाओं या उसकी उपलब्धियों का वर्णन नहीं किया है। सुकृतसंकीर्तन नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि सपादलक्ष के शासक ने अजयपाल को भेंट भेजी थी। भीम द्वितीय के कादी दानपत्र लेख से भी सिद्ध होता है कि सपादलक्ष का शासक अजयपाल का करद सामन्त था। अजयपाल को 'करदीकृत-सपादलक्ष-क्षमापाल' की उपाधि दी गयी है।

अजयपाल ने राजस्थान के गुहिलों के साथ युद्ध किया था।

अजयपाल ने लगभग ३ वर्ष तक ही शासन किया और जैन विरोधी नीतियों के कारण मार डाला गया। फिर भी इस हत्या में सन्देह है। वह

११७५ ई० में मर गया। अजयपाल ने कुमारपाल के राज्य को सुरक्षित रखा। चालुक्यों का सैन्य बल कम न था। उसकी सेना ने उसके नाबालिग लड़के के समय मुहम्मद गोरी को पराजित किया। उसका शासन भी व्यवस्थित था।

मूलराज द्वितीय

(लगभग ११७५-११७८ ई०)

वह अल्पवयस्कता के कारण ही बाल-मूलराज कहलाता था। उसकी माता नायिकादेवी संरक्षिका थी और उसने ही ११७८ ई० में मुहम्मद गोरी को बुरी तरह युद्ध में पराजित किया। यह अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य था जिसका वर्णन उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में मिलना है—

‘प्रभूत दुर्जय गर्जनकाधिराज’ अथवा ‘म्लेच्छ-तमो-निचयच्छन्न मही-वल्ल-प्रद्योतन वालार्क’

सभी इतिहासकार मूलराज (द्वितीय) को म्लेच्छ तुरुष्क-नृप का विजेता बताते हैं।

मुहम्मद गोरी के आक्रमण और उसकी पराजय के बाद ही मूलराज (द्वितीय) की मृत्यु (११७८ ई०) हो गयी।

भीम द्वितीय

मूलराज द्वितीय के बाद उसका भाई भीम द्वितीय सिंहासन पर बैठा। वह भी अल्पवयस्क था इसलिए चारों ओरसे आक्रमण होने लगे और सिद्धराज तथा कुमारपाल का बनाया साम्राज्य टूटने लगा। तुरुष्कों के भी अभियान होते रहे। ११८७ ई० में कुतुबुद्दीन ने गुजरात पर आक्रमण कर राजधानी को खूब लूटा। उसके वापस चले जाने के बाद भीम फिर अपना राज्य चलाने लगा। परन्तु हिन्दू-शक्ति का सूर्यास्त हो चुका था।

भारतीय इतिहास में गुजरात के चालुक्यों का युग साहित्य, शिक्षा, कला और धर्म के इतिहास में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। आर्थिक समृद्धि और सुशासन से उदार शासकों के संरक्षण में संस्कृति की सर्वांगीण उन्नति हुई। वस्तुपाल-तेजपाल प्रबन्ध और हम्मिरमदमर्दन से ज्ञात होता है कि कौटिलीय नीति का महत्व था। मंत्री और राजा म्लेच्छों से मेदिनी को सुरक्षित रखना चाहते थे। परन्तु परस्पर युद्ध और धार्मिक संकीर्णता कम न थी। इसीलिये स्वयं इस वंश का पतन और इसके साथ ही देश का भी पराभव हुआ।

चाहमान वंश

वंशोत्पत्ति—प्रतिहारों, चन्देलों, परमारों और चालुक्यों के इतिहास से स्पष्ट है कि विदेशी विध्वंसक आक्रमणों से धरा और धर्म की रक्षा के लिये रक्षकों, दिव्य पुरुषों की आवश्यकता थी। राजस्थानी अनुश्रुति के अनुसार परिहार, (प्रतिहारों) पंवार (परमार) और चालुक्यों तथा चौहानों का जन्म अग्निकुण्ड से हुआ। पृथ्वीराजरासो से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा के यज्ञ स्थान (पुष्कर) को असुरों (तुकों) ने अपवित्र कर दिया। ब्रह्मा ने असुरों को नष्ट करने के लिये सोचा कि ऐसा उपाय होना चाहिये जिससे सम्पूर्ण राक्षसों का संहार हो। यह सोच कर उन्होंने ऐसा शूर उत्पन्न करना चाहा जो लड़कर और उछलकर दुष्ट शत्रुओं का रणस्थल में नाश करे—‘निर्मो सु सूर संग्राम भर’, अरि अलघि खंडै सु खल।^१ यह सोचकर देवताओं की भलाई के लिये यज्ञ कुण्ड को प्रज्वलित किया और कमलासन (ब्रह्मा) ने यज्ञ आरंभ किया। स्तुति के बाद मंत्रोच्चारण कर ब्रह्मा ने कमंडल से हाथ में जल लिया और यज्ञ कराने वालों ने उस स्थान पर आहुति देकर ‘दुष्टों को भगा दो’, ‘दुष्टों को भगा दो’, इस प्रकार आवाज दी तब उससे अनल चाहवान उत्पन्न हुआ, जो चार हाथ वाला चारों हाथों में तलवारें लिये हुए प्रकट हुआ—

अनलकुण्ड किय अनल, सज्जि उपगार सार सुर,

कमलासन आसनह, मंडि जग्योपवीत जुरि।

चतुरानन स्तुति सद्, मंत्र उच्चार सार किय,

सुकरि कमण्डल वारि, जजित आह्वान थान दिय,

जाजन्नि पानि श्रव अहुति जजि, भजि सु दुष्ट आह्वान करि,

उपज्यो अनल चहुवान तब, चव सु बाहु असि बाह धरि ॥^२

इस प्रकार उस अग्निकुण्ड से रक्त वर्ण के मुँह वाला प्रचंड सेनापति के रूप में चहुआन प्रकट हुआ।^३ उस वीर धनुर्धर चहुआन ने ब्रह्मा के यज्ञ की रक्षा की और उसी वंश में प्रतापी पृथ्वीराज का जन्म हुआ।^४

१—पृथ्वीराज रासो, आदि कथा, ३०-३१

२—वही, ३२

३—वही, ३३

४—वही, ३५

पृथ्वीराज विजय से भी ज्ञात होता है कि पुष्कर मातंग-भय (तुरुष्क भय) से पीड़ित था । म्लेच्छों ने पवित्र यज्ञ-स्थलों को नष्ट-भ्रष्ट कर अपवित्र कर दिया था ।^१ इस प्रकार वहां म्लेच्छ-उपद्रव (उप्लवं म्लेच्छ कृतं) था ।^२ इसलिये ब्रह्मा द्वारा असुर-बध के लिये प्रेरित पुरुष (विष्णु) का अवतार हुआ ।^३ वही पुरुष चाहमान के नाम से प्रसिद्ध हुआ । विष्णु-बल से युक्त वह पुरुष हाथ में धनुष, मान, और नय से विभूषित होकर चाहमान कहलाया—

करेण चापस्य हरेर्मनीषा
बलेन मानस्य नयेन मन्त्रिभिः
स चाहमानोयमिति प्रथां ययौ ॥^४

उसका और इसी प्रकार इस मान-धन-संपन्न वंश का इतिहास में एक ही कार्य था कि उपद्रव को शान्त करे—

उप्लवस्तद् द्रुतमेव वार्यताम्^५

अर्थात् वह म्लेच्छोपद्रव का शीघ्र ही अन्त करे ।

अतः स्पष्ट है कि पृथ्वीराज विजय जो लगभग ११९१ ई० में लिखा गया था और पृथ्वीराज रासो के अनुसार पुरुषावतार चाहमान ही असुर-विनाश के लिये अवतरित हुआ था जिससे ही अन्य वंशों की भाँति इस वंश का भी इतिहास में चाहमान वंश नाम प्रसिद्ध हो गया (तदाख्यया जायत चाहमानवंशस्त्रिलोकीविहितप्रशंसः) ।^६ उस समय चाहमान ने ही साम्राज्य प्राप्त कर यश प्राप्त किया ।^७ अभिलेखों में प्राची दिशाधिपति (अग्नि) के नेत्रों से चाहमान का जन्म हुआ था ।^८

चाहमान वंश की विभिन्न शाखाएँ थीं—

लाट के चाहमान, धवलपुरी के चाहमान, परताबगढ़ के चाहमान, शाकम्भरी के चाहमान, रणस्थम्भपुर के चाहमान, नड्डूल के चाहमान,

१—पृथ्वीराज विजय, सर्ग १, पृ० २४

२—वही, पृ० ४०, २. ८

३—वही, पृ० ५४, २. ४४

४—वही, पृ० ५४, २. ४५

५—वही, पृ० ५५, २. ४८

६—हम्मीर विजय, १. २५ (१)

७—वही, १. १७-१९

८—अ० चौ० डा०, पृ० ३, नोट १

जावालिपुर के चाहमान और सत्यपुर के चाहमान^१—थीं ।

अभिलेखों के अनुसार भृगुकच्छ (भड़ोच) के चौहानों^२ का उल्लेख गुर्जर प्रतिहारों के सामन्त रूप में हुआ है । हंसोट दानपत्र से ज्ञात होता होता है कि नागावलोक (नागभट प्रथम) के समय इस शाखा का प्रधान भर्तृवड्ड द्वितीय उसका सामन्त ही था ।

शाकम्भरी-सपादलक्ष के चाहमान

इनकी एक शाखा शाकम्भरी प्रदेश में शासन करती थी । सयम्भर (सांभर) प्रदेश में सवालाख (सपादलक्ष) गांव सम्मिलित थे ।^३ इसीलिये इसे बाद में सपादलक्ष भी कहने लगे ।^४ इनको जांगलदेश से भी सम्बन्धित बताया गया है ।^५ डा० शर्मा के अनुसार इनका मूलस्थान जांगल देश ही था जहाँ इस मरुभूमि के उपयुक्त पीलु, करीर और शमी आदि वृक्ष पाये जाते थे ।^६ स्कन्द पुराण में इसे ही मरुजांगल या जांगल देश कहते थे ।^७ मरुभूमि की कंटकाकीर्ण रंगभूमि ही उनके कठिन कर्मठ व्यक्तित्व को बनाने में सहायक थी ।

वासुदेव—इस वंश शाखा का प्रारम्भिक शासक वासुदेव विदेशी असुरों का विनाश करने के लिए वासुदेव कृष्ण का ही अवतार था । वह पराक्रमी और विजेता शासक था (हम्मीर विजय, १.२७-३१)

पराक्रमाक्रांतजगत्क्रमेणाभवन्तूपो दीक्षित वासुदेवः ।

शकासुरान् जेतुमिहावतीर्णः स्वयं धरायामिव वासुदेवः ॥^८

युद्ध में जयश्री उसके हाथ (शक्ति) में ही विराजमान थी—

रणाजिरे यस्य करे विरेजे व्याक्तानुरागेव भृश जयश्रीः ॥^९

पृथ्वीराज विजय में भी (सर्ग ४) उसकी प्रशंसा की गयी है । सयम्भर देश की गरिमा का संस्थापक वासुदेव ही था । यहाँ की अधिष्ठात्री शाकम्भरी देवी थी ।

१—डा० हि० ना० इ०, २, पृ० १०५५

२—अ० चौ० डा०, पृ० १४-१८

३—स्कन्द १. ६. १३६ : सयम्भरे तथा देशे लक्षः प्रोक्तः सपादकः ।

४—अवस्थी, स्टडीज इन स्कन्द पुराण, पार्ट वन, पृ० ३९, ५३

५—शर्मा, अ० चौ० डा०, पृ० १०

६—वही, पृ० ११

७—स्ट० स्क०, पृ० ८८

८—हम्मीर विजय, १.२७

९—वही, १.२६

वासुदेव के वंश में ही सामन्तराज का जन्म हुआ। विजौलिया अभिलेख में उसका ही नाम पहला नाम है। वह वत्सगोत्र का विप्र था जिसका जन्म अहिछन्नपुर में हुआ था। उसे ईसा की ७वीं शताब्दी का शासक माना गया है (डा० हि० ना० इ०, २, पृ० १०६२)। सामन्त (अनन्त) से लेकर दुर्लभराज प्रथम तक जितने राजा हुए (नरदेव, जयराज, विग्रहराज प्रथम, चन्द्रराज, गोपेन्द्रराज) वे इतिहास-प्रसिद्ध नहीं हैं। उनकी प्रशंसा मात्र की गयी है। वे नवोदित वंश को तत्कालीन इतिहास में प्रसिद्ध करने के लिये वीरकार्य कर रहे थे। दुर्लभराज प्रतिहार शासक वत्सराज का सामन्त था। विजौलिया अभिलेख में दुर्लभराज के बाद गूवक प्रथम का नाम मिलता है। उसे गोविन्दराज का ही अपर नाम माना गया है। गूवक प्रथम नागभट्ट द्वितीय का सामन्त था।

गोविन्दराज के बाद उसका पुत्र चन्द्रराज द्वितीय और शासक हुआ। चन्द्रराज द्वितीय के बाद उसका पुत्र गूवक द्वितीय था जिसने अपनी बहन का विवाह कनौज के सम्राट, संभवतः भोज प्रथम, से किया।

गूवक द्वितीय के बाद उसका पुत्र चन्दन सिंहासन पर बैठा। उसने तोमर नरेश खट्टन को युद्ध में मार डाला।

चन्दन के बाद उसका पुत्र और उत्तराधिकारी वाक्पति राज प्रथम था। वह महानविजेता और शिव भक्त भी था। उसके बाद उसका पुत्र सिंहराज राजा हुआ। हर्ष अभिलेख में उसे महाराजाधिराज कहा गया है। इस प्रकार इस वंश का वह पहला राजा था जिसे महाराजाधिराज की उपाधि दी गई है। उसने तोमर-नायक को पराजित किया था। उसने बहुत से राजकुमारों को बन्दी भी बनाया था जिनको स्वतन्त्र कराने रघुकुल-चक्रवर्ती सम्राट स्वयं गये थे। रघुकुल-सम्राट प्रतिहार सम्राट या तो महेन्द्रपाल द्वितीय स्वयं था अथवा उसका कोई उत्तराधिकारी था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि अब चाहमान वंश ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी। प्रतिहार सम्राट का अपने एक सामन्त के घर आना सिद्ध करता है कि इस समय चाहमानों की शक्ति बढ़ी हुई थी और प्रतिहारों की शक्ति अवनत दशा में थी।

विग्रहराज द्वितीय—सिंहराज के बाद उसका पुत्र विग्रहराज द्वितीय राजा हुआ। उसके इतिहास पर हर्ष शिला लेख से महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। पृथ्वीराजविजय से ज्ञात होता है कि उसने नर्मदा तक विजय प्राप्त की थी। उसने गुर्जर (गुजरात) के मूलराज (चालुक्य) को भी पराजित किया था जो कन्यादुर्ग में भागकर जा छिपा था। मेरुतुंग के प्रबन्ध चिन्तामणि से भी

चाहमानों और चालुक्यों के इस संघर्ष का समर्थन होता है। इस युद्ध में उसने मूलराज को मार डाला (हम्मीर महाकाव्य, २.६)।

दुर्लभराज द्वितीय—विग्रहराज के बाद उसका भाई दुर्लभराज शासक हुआ जिसके मंत्री का नाम माधव था। उसने नडोल के चाहमान शासक महेन्द्र को पराजित किया। कांसरिया अभिलेख में इसे दुर्लघ्यमेरु कहा गया है। इसी अभिलेख में बताया गया है कि उसने असोसित्तन या रसोसित्तन मण्डल की विजय की।

गोविन्दराज तृतीय—दुर्लभराज द्वितीय के बाद उसका पुत्र गोविन्दराज तृतीय शासक हुआ। प्रबन्धकोश के अनुसार उसे महमूद गजनवी को पराजित करनेवाला कहा गया है (महमूद सुरत्ताण जेता)। इसकी पुष्टि फ़रिश्ता के कथन से भी होती है। फ़रिश्ता बताता है कि महमूद गजनवी को सिन्ध के मार्ग से लौटना पड़ा, क्योंकि मारवाड़ से होकर जाने वाले मार्ग को अजमेर के शासक ने अपनी सेनाओं से रोक रखा था। अजमेर का शासक शाकम्भरी का ही चाहमान शासक था (अ० चा० डा०, पृ० ३४)।

वाक्पतिराज द्वितीय—गोविन्द तृतीय के बाद उसका पुत्र वाक्पतिराज द्वितीय शासक हुआ। उसने मेवाड़ के शासक अम्बा प्रसाद को मार डाला। वाक्पतिराज द्वितीय के बाद उसका भाई वीर्यराम राजा हुआ। वह मालवानरेश भोज द्वारा युद्ध में मार डाला गया। इस विजय के बाद ही मालवानरेश ने शाकम्भरी पर कुछ समय के लिये अधिकार कर लिया। वीर्यराम के बाद उसका भाई चामुण्डराज राजा हुआ जो वीर शासक था। उसने शाकम्भरी पर पुनः अधिकार जमाया।

विजौलिया अभिलेख में चामुण्डराज और उसके पुत्र दुर्लभराज के बीच सिंह का उल्लेख मिलता है। यह (सिंह) दुर्लभराज (दूसल) का बड़ा भाई रहा होगा।

दुर्लभराज तृतीय—पृथ्वीराज विजय के अनुसार दुर्लभराज मातंगों (म्लेच्छ गजनवियों) के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। इस समय राजस्थान में मुस्लिम आक्रमणकारी उपद्रव कर रहे थे।

विग्रहराज तृतीय—दुर्लभराज तृतीय के बाद उसका भाई विग्रहराज तृतीय (बीसल या बीसल) राजा हुआ। बीसलदेवरासो के अनुसार उसकी रानी मालवा की राजपुत्री थी। पृथ्वीराजविजय के अनुसार विग्रहराज तृतीय ने मालवा के शासक उदयादित्य को सहायता दी जिससे उसने गुजरात के चालुक्यशासक कर्ण को पराजित किया।

पृथ्वीराज प्रथम—विग्रहराज तृतीय के बाद उसका पुत्र पृथ्वीराज प्रथम शासक हुआ। सम्भवतः इस समय चाहमानों और चालुक्यों में संघर्ष हुआ था। उसके बाद उसका पुत्र **अजयराज** (अजयदेव-सल्हण) राजा हुआ। उसने मालवा के शासक नरवर्मन को पराजित किया। पृथ्वीराजविजय के अनुसार उसने गर्जन-मातंग (गर्जन = गजनी के मातंग = म्लेच्छों) को पराजित किया। उसने गजनवी आक्रमणकारियों को पीछे हटाया होगा, जिन्होंने नागौर पर आक्रमण किया था (अ० चौ० डा०, पृ० ४०)।

उसने अजयमेरु (अजमेर) नामक दुर्ग की स्थापना करायी (पृथ्वीराज विजय, सर्ग ५-१९५)। उसने चाँदी और ताँवे के सिक्के चलाये थे। वह शिव-भक्त था। उसने अपने पुत्र अर्णोराज को सिंहासन पर बिठाकर राज्य त्याग दिया तथा पुष्करारण्य में तपस्या के लिए चला गया।

अर्णोराज

(लगभग ११३३ ई०-११५२ ई०)

अर्णोराजोथ सादाशिवमनिशमनुध्याय रूपं प्रसन्ना—

दस्मादत्रैव जन्मन्यतुलबलमिव प्राप्तपंचाननत्वम्।

सर्वोर्वीपुण्डरीकप्रकटविघटनोन्मत्त मातङ्गराज—

लासायासावतार व्यवसितमकरोत् पुष्करक्षेत्रमेकम्॥

सम्पूर्ण पृथ्वीरूपी कमल को नष्ट करने के लिये म्लेच्छ रूपी मत्त मातंग हाथी को नष्ट करने के लिए शिव की कृपा से अवतरित अपार बल से युक्त अर्णोराज ने सिंह रूप को धारण किया (पृथ्वीराज विजय, सर्ग ५, १९३)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अजयराज और सोमल्लदेवी का पुत्र अर्णोराज (= अनलदेव, आनलदेव, अन्न या आनाक) इस वंश का प्रतापी शासक था। वह वि० सं० ११६० (= ११३३ ई०) के कुछ पहले राजसिंहासन पर आया। उसके राज्यकाल की निम्नलिखित उपलब्धियाँ थीं—

१—तुरुष्क-मातंग संहार

२—मालव नरेश नरवर्मन की पराजय

३—विजय-अभियान

तुरुष्क-संहार—पृथ्वीराज विजय से ज्ञात होता है कि वह मातंगों को नष्ट करने के लिये ही अवतरित हुआ था। उसके पिता अजयराज के समय से ही म्लेच्छ तुरुष्कों—लाहौर के गजनवियों—के साथ संघर्ष चल रहा था। उसके राज्यकाल के प्रारम्भ में ही ये आक्रमणकारी अजमेर के निकट तक पहुँच गये। नगर के बाहर ही युद्धभूमि में इन तुरुष्कों को बुरी तरह पराजित

किया गया। बहुत से मरुभूमि के युद्ध क्षेत्र में ही मारे गये और बहुत से प्यासे ही मर गये। कुछ थकान और पीड़ा से तबस्त होकर गिरे और कुछ बालू के अंधड़ से बालू में ही गड़ गये। इस प्रकार तुरुष्क यात्रा को अर्णोराज ने रोका था। विजय में उसने तौरुष्क-तुरंगों को भी प्राप्त किया था।^१ इसी स्थान को पवित्र करने के लिये अर्णो सागर (झील) बनवाया गया जिसमें पुष्करारण्य में बहने वाली चन्द्रनदी का जल भरा गया।^२ अन्त में महान् राज्य महोत्सव मनाया गया।

मालव-विजय—विजौलिलि अभिलेख (श्लोक १७) में उसके द्वारा निर्वाण-नारायण (अर्थात्) मालवा नरेश नरवर्मन् को पराजित करने का उल्लेख है। उसके सैनिकों ने मालव सेना के हाथियों को पकड़ लिया।

सिन्धु-सरस्वती अभियान—अर्णोराज ने सिन्धु-सरस्वती क्षेत्रों पर आक्रमण किया (मन्ये समान्त्रान्त-मरु-पिपासुः ससार सिन्धुञ्च सरस्वतीञ्च)।^३ इससे सिद्ध होता है कि उसने पूर्वी पंजाब के कुछ भाग पर अधिकार कर उदीच्यराट की उपाधि धारण की।^४

उसने हरितानक देश (हरियाना) पर भी आक्रमण किया, जो यमुना के किनारे स्थित था। यहाँ तोमर वंशीय शासक ढिल्लिका (दिल्ली) में राज्य कर रहे थे। अर्णोराज ने उसे पराजित किया।

विजौलिया अभिलेख (श्लोक १७) से ज्ञात होता है कि अर्णोराज ने वारण (बुलन्दशहर) को भी जीता था।

चाहमान-चालुक्य संघर्ष—गुजरात के चालुक्य वंशीय महान् सम्राट जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल चाहमान शासक अर्णोराज के समकालीन शासक थे। द्रयाश्रय महाकाव्य से विदित होता है कि अर्णोराज को जयसिंह सिद्धराज की प्रभुता माननी पड़ी थी। परन्तु विजयी सिद्धराज ने अर्णोराज के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। इस प्रकार उसने विग्रह और वैर को मैत्री में बदल दिया। परन्तु कुमारपाल के राज्यकाल में फिर संघर्ष छिड़ गया। अर्णोराज ने अपने सहायकों के साथ कुमारपाल पर आक्रमण कर दिया। कुमारपाल ने इसे विफल कर दिया। कुमारपाल ने अर्णोराज को अपनी

१—पृथ्वीराज विजय, सर्ग ६, पृ० १८८-१९२

२—वही, पृ० १९४-१९५

३—अ० चौ० डा०, पृ० ४५ नोट १३

४—वही, पृ० ४५

रानी (कुमारपाल की बहन) के कहने से उसके प्रति किये गये दुर्व्यवहार के लिये दंड दिया। पराजय के बाद अर्णोराज अधिक समय तक जीवित न रहा। उसे उसके ही ज्येष्ठ पुत्र जगदेव ने मार डाला।

अर्णोराज शैव था। किन्तु अन्य धर्मों के प्रति उदार था। उसने पुष्कर में वराह का मंदिर बनवाया था। भागवत-आचार्य देवबोध उसकी राज सभा का सुरतन था। उसने विजयी-वादी श्वेताम्बर आचार्य (जैन) धर्मघोष सूरी को जयपत्र दिया था। वह एक महान विजेता था जिसने अपने राज्य में मालवा, हरियाना और अन्य भू-भागों को जीत कर मिलाया। डा० शर्मा कहते हैं—

Despite the defeat at the hands of Kumarapala, Arnoraja deserves to be regarded as one of the great rulers of his dynasty—”

विग्रहराज चतुर्थ (बीसलदेव)

(११५३ ई०-११६४ ई०)

पितृघातक जगदेव अधिक समय तक राज्य न कर सका। उसके छोटे भाई विग्रहराज ने उसका बध कर दिया। विग्रहराज-बीसलदेव इस वंश का महाप्रतापी सम्राट था जिसने चालुक्यों द्वारा अर्णोराज के अन्तिम समय में चाहमान राज्य पर किये गये आघातों और उनसे पहुँची क्षति को शीघ्र ही पूरा किया। वह रणदक्ष विजेता ही न था, एक कुशल कवि भी था। रणदक्षता और प्रज्ञा के सहयोग से वह मुंज और भोज ऐसे महान सम्राटों की कोटि में आता है।^१ उसके राज्यकाल के निम्नांकित प्रसिद्ध अभिलेख हैं—

अजमेर शिलालेख १—यह ‘अढ़ाई दीन का झोपड़ा’ नाम की मसजिद में लिखा हुआ मिला है। इसमें महाकवि-सोमदेव द्वारा विग्रहराज पर लिखे गये ललित विग्रहराज नामक नाटक के कुछ अंश मिलते हैं। इसमें तुरुष्कों के विरुद्ध उसके अभियानों का भी उल्लेख है।

अजमेर शिलालेख २ (वि० सं० १२१०=११५३ ई०)—इसमें शाक-म्भरी नरेश विग्रहराज द्वारा लिखे गये हरकेल नाटक के अंशों को उत्कीर्ण पाते हैं। इसमें गौरी-शंकर की प्रशंसा मिलती है।

लोहारी शिला स्तम्भ लेख (वि० सं० १२११=११५५ ई०)—इससे पाशुपत (शैव) धर्म पर प्रकाश पड़ता है।

दिल्ली शिवालिक स्तम्भ लेख (वि० सं० १२२० = ११६४ ई०) — दिल्ली में फीरोजशाह द्वारा स्थापित अशोक के स्तम्भ पर यह लेख खुदा हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि शाकम्भरी नरेश विग्रहराज-बीसलदेव ने हिमालय से लेकर विन्ध्य पर्वत तक प्रदेशों की विजय की थी।

इन अभिलेखों से उसके राज्यकाल, लगभग ११५३-११६४ ई०, का ज्ञान होता है। अन्तिम अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि ११६४ ई० तक चाहमान साम्राज्य हिमालय की तराई से लेकर विन्ध्य तक फैल गया था। उसने म्लेच्छों अर्थात् तुरुष्कों को भगाकर आर्यावर्त को पवित्र कर दिया।

चालुक्य-युद्ध—सिंहासन पर आने के कुछ ही समय बाद विग्रहराज चतुर्थ ने चालुक्यों से बदला लिया। उसने कुमारपाल के चित्तौड़ में नियुक्त गवर्नर को पराजित किया।

नड्डूल (नडोल) पर आक्रमण कर उसे ध्वस्त कर दिया।

उसने भडानक देश को भी जीता। काव्यमीमांसा (पृ० ५१/६) के अनुसार भडानक देश की स्थिति मरु और टक्क (पंजाब) के निकट ही थी। स्कन्द पुराण (१.२.३९.१५६) के अनुसार भयानक, भयाणक या भडानक देश में एक लाख गांव सम्मिलित थे। इससे इसका महत्व सिद्ध होता है। डा० शर्मा ने इसकी पहचान अहीरवाटी से की है। संभवतः इसमें गुड़गाँव, अलवर और हिसार प्रान्त के भिवानी तथा हिसार सम्मिलित थे।

दिल्ली और हांसी को भी उसने जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार चाहमानों ने तोमर राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। दिल्ली पर अधिकार हो जाने से ही चाहमानों पर भारत-रक्षा का भार आ पड़ा। उनकी स्वतन्त्रता आर्यावर्त की स्वतन्त्रता थी। मध्यदेश के द्वार की रक्षा करना उनका कर्तव्य हो गया। चाहमान नरेश इस कर्तव्य का पालन करने में तत्पर थे और विग्रहराज चतुर्थ ने इस कर्तव्य का पालन भली भाँति किया। तुरुष्क-म्लेच्छों के संहार से उसने आर्यावर्त को सत्य ही आर्य देश (पवित्र देश) बना दिया।

(तुरुष्क नायक) हम्मीर ने उस पर आक्रमण कर विग्रहराज चतुर्थ को उसका स्वामित्व मानने के लिये कहा। विग्रहराज इस कार्य को अपमान समझता था। युद्ध में उसने हम्मीर को पराजित किया। संभवतः पराजित मुस्लिम नायक गजनवी अमीर खुसरो शाह था। विग्रहराज चतुर्थ ने कई प्रान्तों को स्वतन्त्र करा लिया। केवल पंजाब गजनवियों के अधिकार में बना रहा।

विग्रहराज चतुर्थ ने कई पर्वतीय दुर्गों पर भी अधिकार कर लिया। मालव-शासक भी उसके प्रभुत्व को मानता था। इस प्रकार सत्य ही है कि आर्यावर्त-हिमवद-विन्ध्यान्तरालं भुवः—में उसने अपने प्रभुत्व से सुरक्षा और सुव्यवस्था स्थापित कर दी थी, जो तुर्कों के आक्रमणों से खतरे में थी।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि वह एक कवि भी था। पृथ्वीराज विजय के अनुसार वह अपने जीवन काल में 'कविबान्धव' कहलाता था। उसके सभा-पण्डित सोमदेव ने ललित विग्रहराज नामक नाटक लिखा जो एक प्रमुख ऐतिहासिक नाटक है। इस समय यह खंडित अवस्था में उपलब्ध है। उसने कई नगरों, भवनों और मन्दिरों का निर्माण कराया। अस्तु यह एक सत्य ही है कि वह महान् था।

"Vigraharaja's greatness is an undisputed fact, for besides being a first class general and a mighty conqueror he was a patron of literature, a good poet himself, and a builder with imagination and vision."—Dr. Dashrath Sharma

आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपिकृतवान् म्लेच्छविच्छेदनाभि-
देवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलक्षोणिपालः ।

विग्रहराज चतुर्थ के उत्तराधिकारी

विग्रहराज चतुर्थ के बाद उसका पुत्र अपरगांगेय (या अमरगांगेय) शासक हुआ। परन्तु उसका शासन अल्पकालीन ही था। उसे उसके भाई पृथ्वीराज ने मार डाला।

उसके बाद ही पृथ्वीभट्ट या पृथ्वीराज द्वितीय (११६७-११७० ई०) राजा हुआ। इसे तुरुष्कों के साथ युद्ध करना पड़ा। उनके आक्रमणों को रोकने के लिये उसने हांसी में अपना गवर्नर नियुक्त किया। वि० सं० १२२६ (=११७० ई०) के पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी। इसलिये उसके मंत्रियों ने उसके चाचा, अणोर्राज के पुत्र, सोमेश्वर को जो इस समय गुजरात में था बुलाकर राज्य सिंहासन पर बिठलाया।

सोमेश्वर (११७० ई०-११७७ ई०)—वह चालुक्य सम्राट् जयसिंह की पुत्री काञ्चनदेवी और अणोर्राज का पुत्र था। पिता की मृत्यु के बाद उसने अपना समय नाना के यहाँ गुजरात में बिताया। सिद्धराज की मृत्यु के

बाद कुमारपाल ने भी चाहमान राजपुत्र के साथ उचित व्यवहार किया। कुमारपाल के कोंकण युद्ध में सोमेश्वर ने कोंकण-नरेश का बध कर दिया था। जब वह गुजरात में ही था तब ही उसका विवाह कलचुरि राजपुत्री के साथ हो गया था। इसका नाम कर्पूरदेवी था जिनसे उसके दो पुत्र—पृथ्वीराज और हरिराज—हुए। पृथ्वीभट (पृथ्वीराज द्वितीय) की मृत्यु के बाद मन्त्रियों ने गुजरात से उसे बुलाकर सिंहासन पर बिठलाया। इस समय वह परिपक्व अवस्था में था। वह रणदक्षता का भी परिचय कुमारपाल के दरबार में ही दे चुका था। उसके समय के कई महत्वपूर्ण अभिलेख मिलते हैं—

बिजौलिया शिला लेख (वि० सं० १२२६=११७० ई०) मेवाड़ में उदयपुर के निकटस्थ बिजौलिया गाँव से मिला है। इसमें सामन्त से सोमेश्वर तक चाहमान वंशावली दी गयी है। यह जैन अभिलेख है।

धोद शिला लेख १-२—मेवाड़ में जहाजपुर के निकट धोद गाँव से दो लेख वि० सं० १२२८ (=११७१ ई०) और वि० सं० १२२९ (=११७२ ई०) प्राप्त हुए हैं।

रेवासा शिला लेख (जयपुर प्रान्त में शेखावटी के निकट, वि० सं० १२३०=११७४ ई०) और **अन्वलदा शिला लेख** (वि० सं० १२३४=११७७ ई०)। इन अभिलेखों से उसके राज्यकाल, लगभग ११६६-११७७ ई०, का ज्ञान होता है। उसके उत्तराधिकारी का अभिलेख वि० सं० १२३६ (=लगभग ११८० ई०) में मिलता है। अतः सोमेश्वर का राज्य इस समय (११८० ई०) के पहले ही समाप्त हो गया होगा। सोमेश्वर के सिक्कों पर श्री सोमेश्वर देव उल्लिखित पाते हैं। उसकी मृत्यु के समय पृथ्वीराज तृतीय की आयु कम थी। अतः उसकी रानी ने ही इस समय शासन कार्य चलाया और चाहमान राज्य की उत्पत्ति हुई। उसके शासन कार्य में वीर-मंत्री कदम्बवास का भी प्रमुख हाथ था। भुवनैकमल्ल नामक एक अन्य मंत्री भी कार्य करता था। कदम्बवास और भुवनैकमल्ल को क्रमशः हनुमान और गरुड़ बताया गया है। ये दोनों ही क्रमशः राम और लक्ष्मण के समान पृथ्वीराज (तृतीय) और हरिराज के सहायक थे।

सोमेश्वर को चालुक्यों के साथ भी युद्ध करना पड़ा। भीम द्वितीय के पाटन अभिलेख (वि० सं० १२५६=११६६ ई०) से ज्ञात होता है कि अजयपाल ने सपादलक्ष के शासक को पराजित किया था। यही बात कीर्ति कौमुदी से भी ज्ञात होती है। लगभग ११७७ ई० के आस-पास पृथ्वीराज तृतीय राजा हुआ।

पृथ्वीराज तृतीय और उनका युग

जै जै हरी रूपयं

सोमेश्वर के पूर्व जन्म की तपस्या के फलस्वरूप पृथ्वीराज तृतीय का जन्म अत्यन्त शुभ समय में हुआ जो जगत विजयी सम्राट था—

सोमेश्वर महाबाहो, तस्यापूर्वं तपो गुणं ।

तेन पुण्य जगज्जेता गर्भान्ते पृथुराड्यम् ॥^१

जन्म-ग्रहों को देखकर उसके अपूर्व चरित्र का आभास मिल रहा था ।^२ यही महापुरुषों की महनीयता है । वह विक्रम के समान ही राजा हुआ (विक्रमराज सरीस भौं)^३ । उसमें निस्सन्देह महापुरुष के ३२ लक्षण थे । उसने बाल्य काल की शिक्षा से महापुरुष के महागुणों-प्रज्ञा और पराक्रम—को बढ़ा लिया । वह उदार गो-ब्राह्मण पूजक और विद्वान् शासक था । वह राजा पृथ्वीराज अनल चाहुआन के समान ही था जिसकी तलवार सामन्तों के युद्धभार को ढोने वाली और हमीर (मीर=तुरुष्क) को विचलित करने वाली थी, सोमेश्वर-पुत्र ऐसा ही शत्रु-नाशक था—

राजं जा अजमेर केलि कलयं त्रितानिलं संभरी ।

दुद्धारा भर भार मीर वहनौ, दहनौ दुरंगो अरी ॥

सो सोमेश्वर नंद (नंद) दंद गहिला, वहिलावनं वासनं ।^४

परन्तु ऐसा भी विदित ही था कि म्लेच्छों के सौभाग्य से उस धर्मपालक पृथ्वीराज के व्रत (सत) में कमी आजायगी और वह विलास-रत हो जायगा—

तिहि जय वत्त प्रमान, सुनहि दिठ तुच्छ सु अंतं ।

वर म्लेच्छनि सत घटइ, धम्म-पारस रस रंतं ॥^५

इस प्रकार भारतेश्वर पृथ्वीराज तृतीय के चढ़ाव-उतार की यही भूमिका है जिस पर भयानक म्लेच्छराज्य की स्थापना हुई ।

पृथ्वीराज विजय में भी इस अवतारी पुरुष का वर्णन कवि जयानक द्वारा किया गया है । वह भी पृथ्वीराज तृतीय का सखा था जिसने इस ग्रन्थ को

१—पृथ्वीराज रासो, आदिकथा, ५१

२—वही, ५२-५३

३—वही, ५४

४—दिल्ली किल्ली कथा, १

५—वही, २५

११९२ ई० के बाद ही लिखा था। उस कवि ने चाहमान-सम्राट को रामावतार माना जिसका जन्म राक्षसों के बध के लिये हुआ था। पृथ्वी में विशेष कर, पुष्कर के आस-पास म्लेच्छ-भय था। उन्होंने तीर्थ की पवित्रता नष्ट भ्रष्ट कर दी थी। ये म्लेच्छ गो-भक्षी गोरी थे।

लगभग ११७९ ई० से ११८८ ई० तक के उसके अभिलेख भी प्राप्त होते हैं। उसके सिक्के भी प्राप्त हुए हैं।

नागार्जुन विद्रोह—पृथ्वीराज तृतीय के प्रारम्भिक राज्यकाल में ही विग्रहराज चतुर्थ के पुत्र नागार्जुन ने विद्रोह कर दिया। पृथ्वीराज द्वितीय ने विग्रहराज चतुर्थ के एक पुत्र अपरगांण्य का बध कर दिया था। किन्तु नागार्जुन बचकर निकल गया था। पृथ्वीराज को कम उमर का समझकर उसने विद्रोह कर दिया तथा गुडपुर पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज तृतीय ने एक विशाल सेना लेकर गुडपुर को घेर लिया। भयभीत होकर नागार्जुन भाग गया।

भडानक-विजय—पृथ्वीराज तृतीय ने भडानक देश को भी जीता था। यह विजय वि० सं० १२२९ (=११७२ ई०) के पहले ही हुई होगी।

दिग्विजय—खरतरगच्छपट्टावली से ज्ञात होता है कि वि० सं० १२२९ (=११७२ ई०) में पृथ्वीराज (तृतीय) दिग्विजय के लिये चल चुका था। संभवतः वह जेजकभुक्ति की ओर जा रहा था।

जेजक-भुक्ति विजय—भविष्यपुराण और पृथ्वीराज रासो से चाहमान शासक पृथ्वीराज तथा चन्देल शासक परमर्दि के बीच वैर तथा युद्ध का वर्णन मिलता है। महीराज (पृथ्वीराज) ने महावती (महोबा) पर आक्रमण किया और यह युद्ध कीर्तिसागर के निकट हुआ था।

पृथ्वीराज के मदनपुर अभिलेख से विदित होता है कि उसका चन्देलों के साथ वैर था और इसी कारण पृथ्वीराज ने चन्देल राज्य पर आक्रमण किया तथा बेतवा पार के बहुत से प्रान्तों पर अधिकार भी कर लिया। चन्देलों और गहडवालों में मित्रता थी।

चालुक्य संघर्ष—चाहमान पृथ्वीराज और चालुक्य भीम द्वितीय में भी शत्रुता थी। खरतरगच्छपट्टावली से भी ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज का गुजरात-नरेश से युद्ध हुआ था। संभवतः इसी युद्ध में पृथ्वीराज ने आबू के गवर्नर धारावर्ष पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में उसे सफलता न मिली। पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज और चालुक्यों के बीच संघर्ष का विशेष वर्णन मिलता है।

जयचन्द और पृथ्वीराज—ऊपर गहडवाल वंश के इतिहास में बता चुके हैं कि जयचन्द्र और पृथ्वीराज तृतीय में वैर था। इसमें संयोगिता स्वयम्बर ने तो मानो आग पर घी ही छोड़ दिया। डा० रे ने इसे केवल 'रोमान्स' कह कर टाल दिया तथा डा० त्रिपाठी और रोमानियोगी ने भी उनका अनुगमन किया। परन्तु डा० शर्मा इसे ऐतिहासिक घटना मानते हैं। यह सत्य ही है कि पृथ्वीराज विजय में वर्णित पृथ्वीराज के तिलोत्तमा की कथा द्वी संयोगिता कथा का रूपान्तर है (राष्ट्रकवि मैथिलीशरण अभिनन्दन ग्रन्थ, १६५६, पृ० ६५७)।

तुरुष्क संघर्ष—उत्तरी पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्रों में तुरुष्क-म्लेच्छों का प्राबल्य था। पंजाब के अधिकांश भाग पर गाजनक राजा का अधिकार था। गजनीय सत्ता के स्थान पर गौर शासकों का बल और अधिकार बढ़ा। ११७५ ई० में मोहम्मद गोरी ने सुल्तान पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। ११७८ ई० में उसने गुजरात के चालुक्यों पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज चाहता था कि वह चालुक्यों के साथ मिलकर तुरुष्कों को भगा दे। परन्तु उसके मंत्री कदम्बवास ने उसे रोकते हुए कहा कि वह मोहम्मद गोरी के साथ में युद्ध में न फंसे। यह उसके लाभ में ही होगा कि, चालुक्य और गोरी, जो उसके शत्रु थे, लड़कर थक जायें। इससे सिद्ध होता है कि चालुक्यों और चाहमानों में वैर था। इस परस्पर शत्रुता के कारण ही संकीर्ण बुद्धि से राष्ट्र-शत्रु गोरी और चालुक्यों (जो चाहमानों से सम्बन्धित थे) भेद नहीं किया। परन्तु इसी समय जब म्लेच्छ-विनाश का व्रती पृथ्वीराज रुका खड़ा था, उसे एक दूत ने बताया कि चालुक्यों ने गोरी को पराजित कर दिया था। पृथ्वीराज ने उस दूत को पुरस्कार देकर बिदा कर दिया।

तराइन का प्रथम युद्ध—इसके बाद सुल्ताने गाजी मुहम्मद गोरी ने चुने हुए तुर्क सिपाहियों की घुड़सवार सेना लेकर भटिन्डा तथा सरहिन्द पर आक्रमण किया। पिथौरा राय (पृथ्वीराज) भी अपनी सेना लेकर बढ़ा। दोनों सेनाएं तराइन के मैदान में भिड़ीं। 'सुल्तानेगाजी, अपने जमाने के हैदर और दूसरे हस्तम ने गोविन्दराय को मुँह पर घायल कर दिया। गोविन्दराय ने भी अपने भाले की मार से सुल्तान को इतनी बुरी तरह घायल कर दिया कि उसके सिपाही उसे युद्ध भूमि से बचाकर भाग गये।

"Defeat befell the army of Islam so that it was irretrievably routed, and the Sultan was nearly falling from his horse."

—Dr. Ray.

पराजित और पीड़ित मुस्लिम सेना वापस गजनी भाग गयी।

पृथ्वीराज ने सरहिन्द के दुर्ग पर अधिकार कर लिया ।

तराइन का द्वितीय युद्ध—पृथ्वीराज तृतीय से पराजित होकर मुहम्मद गोरी को बहुत ही मानसिक क्लेश और ग्लानि हुई । वह बदला लेने के लिये तैयारी में जुटा था । इधर पृथ्वीराज संयोगिता की विलास लीला में विस्मृत पड़ा बेखबर और बेहोश था । ११६२ ई० में पहले युद्ध के कुछ ही समय बाद मुहम्मद गोरी एक विशाल सेना लेकर आ धमका । पहले युद्ध के बाद इतनी जल्दी ही उसके दूसरे आक्रमण में अवश्य ही कुछ राष्ट्र-विरोधी तत्वों का हाथ था । पृथ्वीराज रासो बताता है कि तुर्क दूत सूफी-साधू का भेष बनाकर और 'बदलि बानी तुरकानी' दिल्ली आया था जहाँ धर्मायन कायस्थ ने उसका और देश का भेद दिया ।^१ इसके बाद ही शाहाबुद्दीन गोरी ने बहुत तेजी से चढ़ाई कर दी ।^२ दिल्ली भर में कोलाहल मच गया—

बढ़ि अवाज दिल्ली सहर, चढ़यो साहि सुलितान ।^३

‘राजा विलासी हैं सोच कर प्रजा और सामंतशत्रु की चढ़ाई से चिन्तित थे । राजगुरु ने पृथ्वीराज के महल पर जा कर प्रजा के साथ पुकार की—

गौरी रत्तो तुअ धरणि तू गौरी रस रत्त ।^४

“आपकी भूमि में (भूमि भी राजा की पत्नी होती है) शाहाबुद्दीन गोरी अनुरक्त है और आप इधर गौरी (संयोगिता) से अनुरक्त हैं । गुरु ने पृथ्वीराज का प्रबोध करते हुआ लिखा था—भूमि जाय नरिंद ।^५ राजन् ! अब भूमि आप से बिदा होती है । शीघ्र ही पृथ्वीराज शृंगार से वीर रस में बदल गया । उसने क्रोध में अपना धनुष और तरकस उठा लिया ।

मुस्लिम इतिहास मिनहाज बतलाता है कि सुल्तान ने अपनी सेना का मध्य भाग (मुख्य भाग) और हाथी, आदि भारी सामान-खेमा तम्बू इत्यादि कई मील पीछे छोड़कर घुड़सवार और पैदल सेना लेकर आगे बढ़ा । इस सेना को भी उसने चार भागों में विभक्त कर दिया जिससे कि वे राजपूत सेना के साथ चार जगह भिड़ सकें और दायें, बायें, सामने और पीछे की ओर १०००० धनुर्धर—घुड़सवार युद्ध कर सकें । वह इस प्रकार सेना को व्यूह-रूप स्थित कर आगे बढ़ा । युद्ध करते करते जब राजपूत सेना थक गयी तब सुरक्षित तुर्की

१—पृथ्वीराज रासो, अन्तिम युद्ध ११-२

२—वही, १३

३—वही, १४

४—वही, २६

५—वही, ४४

सेना ने आक्रमण कर राजपूत सेना को पराजित कर दिया। राय पिथौरा हांथी से उतर कर घोड़े पर चढ़ा और युद्ध भूमि से सरस्वती नदी के निकट भाग गया। गोविन्द राय मारा गया। अजमेर, और हरियाना प्रदेश पर सुल्तान का अधिकार हो गया। मलिक कुतुबुद्दीन ऐबक को वहां का गवर्नर बनाकर सुल्तान वापस चला गया।

समसामयिक इतिहासकार हसन निजामी इस युद्ध का वर्णन कुछ दूसरे ढंग से देता है। उसका कहना है कि लाहोर पहुँचने पर मोहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को एक पत्र लिखा कि वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर मुहम्मद गोरी के प्रभुत्व को मान ले। चौहान नरेश ने क्रोध में इसका समुचित उत्तर भेज दिया और बहुत से राजाओं की मिली हुई सेना, जिसमें ३ लाख घुड़सवार थे, लेकर चौहान वीर आगे बढ़ा। चौहान नृप ने सुल्तान के पास सन्देश भेजा कि “अब भी बेहतर है कि तुम अपने देश को वापस चले जाओ और हम तुम्हारा पीछा नहीं करेंगे।” सुल्तान ने उसे धोखा देने के लिये लिखा कि “प्रभो ! मैं अपने भाई की आज्ञा से मजबूर हूँ कि यहां आकर मैं कष्ट और पीड़ा भोगता हूँ। मुझे कुछ समय दीजिये कि मैं किसी योग्य दूत द्वारा उसको आपकी शक्ति का परिचय दूँ और उससे इस सन्धि की आज्ञा ले लूँ कि सरहिन्द, पंजाब और मुल्तान पर हमारा अधिकार रहेगा और शेष भागों पर आपका अधिकार होगा।” इसके बाद ही सुल्तान ने उसी रात में ही पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया। सुबह जब राजपूत जंगल (शीचादि के लिये) जा रहे थे मोहम्मद गोरी सेना लेकर कूद पड़ा। यद्यपि राजपूतों पर यह आक्रमण एकबारगी और बेखबरी में हुआ था, फिर भी, निजामी बताता है कि, राजपूत सेना शीघ्र ही मुस्लिम सेना का सामना करने खड़ी हो गयी। यही बात फरिश्ता भी बताता है। डा० रे का विचार है कि इस वृत्तान्त में कुछ सत्यता है। मोहम्मद गोरी ने सन्धि की बात चीत के दौरान में एकाएक आक्रमण कर दिया।

इस युद्ध में राजपूत पराजय से शाकम्भरी के चाहमानों का प्रभुत्व ही समाप्त हो गया। यहीं से प्राचीन भारत का भी अन्त होता है और इसके आगे का इतिहास के ‘प्राचीन भारतीय गौरव और मर्यादा’ के अवशेषों—समाज, साहित्य और कला तथा धर्म—की रक्षा के लिये संघर्ष और स्वातन्त्र्य का इतिहास रहता है। राजपूत पराभव ही हिन्दुओं का भी पराभव था।

१—शान्तिपर्व, १००.१४; शूर भागे हुए योद्धाओं पर प्रहार नहीं करता है।

अतः भागे हुए का पीछा नहीं करना चाहिये।

“पैशाचः कुतुकोद्दीनः देहलीराज्यमास्थितः और “देवतीर्थविनाशकाः म्लेच्छ-भूपाः” शासन करने लगे। विद्या और विद्वान जो कुछ ले जा सकते थे वह साहित्य था और ग्रन्थों को लेकर नैमिषारण्य आदि जंगलों तथा हिमालय की उन्त्यकाओं और सुदूर द्वीपान्तर में भाग गये।

पृथ्वीराज का अन्त

पृथ्वीराज का अन्त कैसे हुआ, विवादास्पद है। ऐसा माना जाता है कि वह युद्ध से भागा और सरस्वती के निकट पकड़ा गया। उसे फिर गद्दी पर बिठलाया गया और म्लेच्छ विरोधी प्रवृत्ति के कारण मार डाला गया। परन्तु क्षत्रिय-प्रवर पृथ्वीराज म्लेच्छ की आधीनता स्वीकार करने से मरने को श्रेयस्कर समझता था। न वह पकड़ा गया और न वह पुनः गद्दी पर ही बैठा। वह भागा और भागा म्लेच्छ के हाथों से मृत्यु पाने से। उसने राष्ट्र के लिये अपनी रक्षा की। वह तपस्वी हो गया। पराजित शूर के लिये यही वृत्ति बची थी (पराजये च शूराणां वृत्ति रेका तपोवनं)। पृथ्वीराज तृतीय को कोला राय (DHNI, pp. 1087-8) कहा गया है। राय कोला पिथौरा हार कर भाग गया (तबकते नासिरी, Elliot & Dowson, II, pp. 295-7) और मारा गया। देवी भागवत पुराण से ज्ञात होता है कि सुरथ नामक राजा पर पर्वतीय म्लेच्छों ने कोला को नष्ट करने (कोलाविध्वंसिनः) और पृथ्वी को हथियाने (पृथ्वीग्रहणतत्पराः) आक्रमण किया। इस घोर युद्ध में म्लेच्छ सेना संख्या में कम होते हुए भी अधिक सेना वाले राजा की सेना से जीत गयी (देवीभागवत, ५.३२.५-१०)। राजा भगनाश होकर अपने किले में लौट आया और सोचने लगा कि दुर्ग में रह कर काल की प्रतीक्षा की जाय या फिर युद्ध किया जाय। उसने सोचा कि मंत्री शत्रु के वश में हैं और सेना के प्रधान भी शत्रु पक्ष में आश्रित हैं। ऐसा न हो कि वे पकड़ कर मुझे शत्रु को सौंप दें। वे पापी विश्वास करने योग्य नहीं हैं। ऐसा सोचकर अकेला ही वह थोड़े पर चढ़कर तपोवन चला गया (देवीभागवत, ५.३२.११-१९)। वहाँ भी यही सोचता था कि म्लेच्छों ने मेरा राज्य हर लिया है (देवीभागवत, ५.३२.४१)। उसे यहाँ भी राज्य-चिन्ता थी। म्लेच्छ तुर्क ही थे और कोला राजा सुरथ ही राय कोला पिथौरा था। डा० हजरा (स्टडीज इन उप पुराणाज, द्वितीय, पृ० ३००) ने इस म्लेच्छ युद्ध पर ध्यान ही नहीं दिया। उनका ही यह विचार है कि म्लेच्छ मुस्लिम ही थे। (St. Up. II, p. 343)।

ताजिक-तुरुष्क-संधर्ष

जब तक यहाँ कलि केलि रूपी बेलि है बढ़ती नहीं ।
तब तक हमारा कुछ विदेशी जाति कर सकती नहीं ॥
जयचन्द सम जब देशद्रोही लोग हो जायें कभी ।
राष्ट्र विघटन बल-पराभव म्लेच्छ भर जायें तभी ॥

अरब से इस्लाम ने जन्म लेकर चारों ओर फैलने का प्रयास किया और शीघ्र ही मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका और दक्षिण योरोप में छा गया। हजरत मोहम्मद साहब के जन्म के बाद १०० वर्ष के अन्दर इस्लामी सेनाएँ दुनिया भर में नये जोश के साथ छा गयीं। भारत भी अरब के निकट स्थित था। दोनों देशों में पहले से ही व्यापारिक सम्बन्ध थे। 'आर्व' (अरब का घोड़ा) प्रसिद्ध ही था (अमरकोश, पूना, पृ० ७३)।

भारत और अरब के प्राचीन सम्बन्ध

विश्व-इतिहास में अरब का विशेष महत्व रहा है। शताब्दियों तक वह पूर्व और पश्चिम के बीच एक कड़ी रहा है। भारतीय विचार और व्यापार का प्रसार मिस्र, ईराक, स्याम और योरोप तक रहा है। इस्लाम के उदय होने के पूर्व ये दोनों देश एक व्यापार के साझेदार थे। इस्लाम के उदय होने के बाद भी ये सम्बन्ध बने रहे। किन्तु मुस्लिम सेनाओं ने अपनी विध्वंसक और विधर्मी नीति से आक्रमण किया और इन आक्रमणों के पीछे भी भारत की अतुल सम्पत्ति को लूटने की इच्छा इन गरीब ताजिक और तुर्कों के मन में बैठ गयी थी। इससे भारतीयों के हृदय पर ठेस लगी। अरब विजेताओं ने कुछ सहिष्णुता बर्ती। परन्तु भारत का राष्ट्रीय चिन्तक चौक पड़ा।

मुलेमान ताजिर, अबूजैद हसन सैराफी, बिलाजुरी, याकूबी, मसूदी एवं इदरीसी आदि के अनुसार व्यापारी लाल सागर, हिन्द सागर और ईरान की खाड़ी के मुख्य व्यापारिक केन्द्रों और बन्दरगाहों द्वारा भारत आते थे। उन्होंने विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं—अलोव (एक फल), अम्बरे हिन्द, तबशीर, काफूर (कपूर), इलायची, लौंग, जायफल, कबाब चीनी, दार चीनी,

जावित्री, बड़ी इलायची, नारियल, तूतिया, कालीमिर्च, हड़, संदल और सागौन की लकड़ी—का उल्लेख किया है जो भारत से वहाँ जाती थीं ।

अरबी पुराने नाविक और सामुद्रिक थे । खलीफा उमर के समय अरबी पूर्ण रूप से इस्लाम धर्म मान चुके थे और उन्होंने राज्य प्रसार एवं धर्म प्रचार के लिये सारे संसार के जल और स्लल मार्गों से विजय-यात्रा की । उपजाऊ और समृद्ध भारत भूमि की ओर भी वे आकृष्ट हुए ।

देवल—यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था । अरब नाविकों और भूगोल-वेत्ताओं ने इसका वर्णन बड़े आदर से किया है । यह व्यापार का बड़ा केन्द्र था ।

सिन्ध सागर भी उतना पवित्र था जितना कि गंगा सागर संगम । यहाँ ही देवल ऋषि का आश्रम भी था । देवल-आश्रम ही देवल नगर के नाम से प्रसिद्ध हो गया । जब देवल पर अरब आक्रमण हुआ और आक्रमणकारियों ने वहाँ विध्वंस-कार्य तथा धर्म-परिवर्तन किया, तो देवल ऋषि ने अलार्म-बेल बजायी जिसे हम देवल-स्मृति में स्पष्टतः आज भी सुन सकते हैं—

सिन्धुतीरे सुखासीनं देवलं मुनिसत्तमम् ।

समेत्य मुनयः सर्वे इदं वचनमब्रुवन् ॥

समुद्र तट पर बैठे हुए देवल ऋषि से अन्य मुनियों ने पूछा “भगवन् ! म्लेच्छों द्वारा बलपूर्वक अपहरण किये गये लोगों की शुद्धि किस प्रकार हो ? सिन्धु, सोवीर, सौराष्ट्र, कोंकण और पश्चिमी भारत में म्लेच्छदस्युओं का प्राबल्य था (देवल स्मृति, श्लोक १६)

अरबों के भारत पर आक्रमण

खलीफा उमर के समय में थाना पर (६३६ ई०) में आक्रमण हुआ । परन्तु उनको सफलता न मिली । उसके बाद देवल और भड़ोच के बन्दरगाह पर हमले हुए । किन्तु यहाँ भी उनको सफलता न मिली । जब हजरत उसमान खलीफा हुए तो उन्होंने ईराक के गवर्नर से कहा कि वह भारत में किसी को भेज कर वहाँ की राजनैतिक दशा का पता लगाये । उसने हकीम बिन जुबला अब्दी के नेतृत्व में एक छोटी सेना भेजी । उसने खलीफा उसमान को वापस आकर बताया—“वहाँ पानी कम, फल और भी कम । यदि सेना कम हो तो नष्ट हो जाय और यदि अधिक हो तो भूखों मर जायें । यह सुनकर उसमान ने किसी को भी भारत पर आक्रमण करने की आज्ञा नहीं दी ।” ६६० ई० में हजरत अली के समय में हारिस बिन अब्दी ने आप की आज्ञा से भारत पर

आक्रमण किया और सफल हुए। परन्तु दो वर्ष बाद फिर हारिस की हार हुई और वह लड़ाई में काम आये। ६६४ ई० में हजरत अमीर माविया के समय महलब बिन अबी सुफरा ने काबुल और मुलतान के बीच स्थित नगरों पर आक्रमण किया। किन्तु उन्हें सफलता न मिली। इसी तरह भारतीयों और अरब वालों में बहुत दिन तक संघर्ष चलता रहे। उन्होंने मक्रान (बिलोचिस्तान) पर विजय प्राप्त की। किन्तु यह विजय भी स्थायी न रह सकी तथा अरबों और देश रक्षकों के बीच युद्ध चलते रहे। अन्त में आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही हरीय ने मक्रान विजय कर ली जिससे अरबों के लिये सिन्ध का मार्ग खुल गया। ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि अरबों को भारतीय मार्ग पर अधिकार करने में काफी संघर्ष करना पड़ा।

कासिम का पुत्र मुहम्मद मक्रान में आकर कुछ समय तक रहा। फिर वह विशाल सेना लेकर देबल पर पर चढ़ आया। वह ही पहला मुस्लिम विजेता था जिसने सिन्ध को जीत कर अरबों का आधिपत्य स्थापित किया।^१ सिन्ध विजय के बारे में श्री यस० यम० जाफर कहते हैं—

“The Arabs were the first Muslim conquerors of India;... Even in Sind their rule did not endure long and they left no lasting legacy behind except that a large part of the population of that place became Muslim in faith.”^२

प्रायः सभी विद्वान यह मानते हैं कि अरब द्वारा सिन्ध विजय का कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि हूणों के आक्रमण के बाद लगभग २०० वर्ष तक कोई विशेष आक्रमण नहीं हुआ। ऊपर के विवरणों से स्पष्ट है कि प्रभाकरवर्धन तथा राज्यवर्धन ने हूणों से युद्ध किया और हर्ष के समय से ही (६३६ ई०) मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। हर्ष की कहाँ, कब और कैसे मृत्यु हुई इतिहास को ठीक-ठीक पता नहीं है। जब से मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ हुए सिन्ध-विजय तक वे होते रहे। परन्तु देश के रक्षकों की रक्षा-शक्ति के कारण वे सफल न हो सके। हर्ष के पहले ही गुप्त युग के ध्वस्त हो जाने से कलि-कीचड़ में धरती समा गयी थी। क्षीणता (कमजोरी) का कारण कलह था जिसका कारण था धार्मिक मतभेद और

१—फुतूहल बुल्दान बिलाजुरी

इलियट-डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, पृ० ११३-१२२

१—Medieval India, Vol. II, (Peshawar city 1940), p. 1

जातिवाद। शूद्रों और ब्राह्मणों का कलह ही बौद्ध-ब्राह्मण कलह था और यह रोग पुराना था जो हर्ष के समय ही उभर चुका था। छिद्र-प्रहारी राक्षसों ने राष्ट्र की दुर्बलताओं से लाभ उठाकर आक्रमण किया और सिन्ध पर अधिकारी प्रभु बन गये। परन्तु राष्ट्र वैद्यों ने रोग को पहचान कर देश रक्षकों को सावधान किया। पुराण सिन्ध में बसे हुए अरबों से परिचित थे और वह यवन देश हो गया जहाँ नास्तिक सैन्धव यवन-म्लेच्छ बसे हुए थे।

कुछ विद्वान मानते हैं कि अरबों ने सिन्ध विजय के बाद आगे अपने राज्य को बढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया। यह भूल है। अभिलेखों से हमें प्राप्त होता है कि ताजिका (अरबों) ने सिन्ध, कच्छ, सोराष्ट्र, चावोटक मौर्य, गुर्जर, आदि देशों को जीतकर सम्पूर्ण दक्षिणपथ जीतना चाहते थे।^१ यह अरब आक्रमण ७३६-३६ ई० में हुआ था और इसके पहले ही ताजिकों (अरब-सैनिकों) ने ऊपर उल्लिखित देशों को रौंद डाला था। बिलादुरी ही बतलाता है कि अरब गवर्नर जुनैद के समय अरब सेना ने मरमड, मण्डल, दहनज और बरुस को जीता था। जुनैद ने ही उजैन, मालवा और बहरीमड को जीतने के लिये सेनायें भेजी थीं। उसने बैलमान और जुर्ज को भी जीता था।^२

मरमड तो मरु मंडल (मारवाड़) ही है। मण्डल की पहचान मुश्किल है। इसे मध्यदेश में भी स्थित बताया गया है और इसकी पहचान नर्मदा के किनारे स्थित मण्डल देश से भी की गयी है जहाँ हैहय राज्य करते थे।^३ चेदि और मण्डल एक ही थे। चम्बल की घाटी में प्रविष्ट म्लेच्छों^४ की स्थिति से सिद्ध होता है कि अरब सेनाएं मरुमण्डल, मालवा और उज्जैन होती हुई यहां तक घुस आयी होंगी। बैलमान तो भिनमाल या श्रीमाल ही है और जुर्ज गुर्जर देश का परिचायक है। इस प्रकार भारतीय साक्ष्य-अभिलेखों-और मुस्लिम इतिहासकारों के विवरणों-से स्पष्ट है कि पश्चिम भारत और मध्य देश में भी मुस्लिम आक्रमण हो रहे थे। ऊपर बताया गया है कि कनौज के यशोवर्मन् और ललितादित्य मुक्तापीड ने इस बाढ़ को रोकने की कोशिशें की थीं। परन्तु

१—का० इ० भाग ४ पृ० १४०, पंक्ति २३-२४ : तरलतरतारतरवारि-
दारितोदितमधवकच्छेलसौराष्ट्रचावोटकमौर्यगुर्जरादिराजनिःशेषदाक्षिणात्य-
क्षितिजिगीष दक्षिणपथप्रवेशाभिलाषिणि।

२—ईलियट-डॉसन हिस्ट्री आफ इण्डिया, १, पृ० १२६

३—वही, पृ० ३९१

यशोवर्मन की मृत्यु के बाद कनौज तक रास्ता खुला था। अतः अरबों की बाढ़ रोकने के लिये बांध की आवश्यकता थी।

गुहिलौत वंश

हे मेवाड़ प्रदेश धरा पर। बप्पा रावल सांगा से नर कुंजर ॥

"The foremost and the most renowned among the new royal families.....in consequence of their valorous resistance to the Mahomedan onslaughts on inner India were undoubtedly the Guhilots of Mewar."¹

श्री सी० वी० वैद्य के अनुसार पराजयों और प्रपीड़न के बावजूद मेवाड़ के गुहिलौतों ने विदेशी आक्रमणकारियों का घोर विरोध किया। उनकी वंश-गरिमा इसी ताजिक-तुर्क-विरोधी कार्य में है।² इस वंश ने इतिहास को बप्पा रावल, खुमान, समरसी, भीम, हमीर, सांगा, प्रताप आदि नर-रत्नों से सजाया चित्तकोट (चित्तौड़) का दुर्ग ही विरोध का पुण्य प्रतीक बन गया—

महि चित्तकोट सुमंडनी दुर्गायु आसुर दंडनी।

नव खंडयं खल चक्र तिन चढ़ि खंडयं ॥³

बप्प—गुहिलों या गुहिल पुत्रों का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकार में है। एक गुहा में उत्पन्न वीर-पुत्र गुहिल को ईडर के आभीरों ने अपना नेता चुना। किन्तु उन्होंने ही इस वंश के आठवें राजपुत्र नागादित्य को मार डाला। उस समय नागादित्य का पुत्र बप्प केवल ३ वर्ष का था। बप्प की सुरक्षा नागिन्द्र गिरि (उदयपुर के निकट नागदा) में हुई। यहीं एकलिंग (शिव) के प्रसाद से वह अजेय वीर बना। उसने चित्तौड़ के मोरि (मौर्य) राजा के यहां नौकरी करली। बप्प ने 'गजनी' के बर्बर आक्रमणकारी को पीछे खदेड़ा और मोरि राजा को हटा कर गद्दी पर स्वयं अधिकार कर लिया। मेवाड़ में यही गुहिल वंश की प्रतिष्ठा थी।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पुलकेशिन अवनिजनाश्रय के नवसारी लेख में ताजिकों द्वारा ७३६ ई० में मौर्य राज्य की विजय का उल्लेख मिलता है। राजस्थानी अनुश्रुति पर आधारित गजनी का आक्रमण वस्तुतः अरबों या ताजिकों का ही आक्रमण था जिसे बप्प ने विफल कर दिया।

१—C. V. Vaidya, HMHI., vol. II, p. 70

२—वही, पृ० ७०-७१

३—मानकृत राजविलास, १.१०५—१०६

चित्तौड़-मेवाड़ की ओर अरबों के प्रसार को रोकने के कारण ही बप्प का नाम इतिहास में अमर हो गया ।

बप्प का उत्तराधिकारी खुमान भी इस रक्षण कार्य को करता रहा । खुमानरासो से ज्ञात होता है कि खुम्माण ने भी मुस्लिम आक्रमणकारी 'महमूद खुरासान पत' को पराजित किया था । रायबहादुर गौरीचन्द हीराचन्द ओझा के अनुसार यह खुम्माण द्वितीय (लगभग ८१०-३० ई०) था न कि खुम्माण प्रथम । लगभग ८०० ई०-८५० ई० तक गुहिल प्रतिहारों के सामन्त थे । अतः स्पष्ट है कि गुर्जरों के रक्षण-कार्य में भी गुहिल उनके सहायक थे ।

गुर्जर प्रतिहार—अरबों के आक्रमणों से जुर्ज (गुर्जर देश), मालव और उज्जैन की रक्षा के लिये ही उज्जैन में हिरण्यगर्भ यज्ञ किया गया था जहाँ क्षत्रिय-राजपुत्रों की सभा में ही गुर्जर नरेश को प्रतिहार नियुक्त किया गया था । ऊपर हम बता चुके हैं कि नागभट प्रथम से लेकर महेन्द्रपाल और महीपाल तक प्रतिहार नरेश मध्यदेश की पश्चिमी सीमाओं की रक्षा करते रहे और ईसा की १०वीं शताब्दी के अन्त तक इन विदेशी आक्रमणों का कोई विशेष प्रभाव न पड़ा । इस प्रतिरोध की भावना को मेधातिथि के उद्गारों में पढ़ सकते हैं—

शत्रुषु भृषदण्डता विधीयते । परराष्ट्राणि पुनः पीडयेन्न तत्र विधना-
द्युपेक्षणीयं । राष्ट्रीयोपरोधो वा तथा कुर्वतः प्रताप उपजायते । प्रतापतश्च
शत्रवो नमन्ति-आर्यावर्तन्ते तत्र पुनः पुनः उद्भवन्ति । आक्रम्य अपि न चिरं
तत्र म्लेच्छाः स्थातारो भवन्ति ।

स्कन्दपुराण में भोज प्रथम को दिया गया राजनीति का उपदेश कहता है कि शत्रुओं को नष्ट कर देना चाहिये और उनके साथ मृदुता न दिखाये । प्रतिहारों की उग्र नीति के कारण ही भारत में अरब विजय का कोई महत्वपूर्ण परिणाम न निकला ।

गजनी राज्य और शाही राजवंश में संघर्ष

किन्तु प्रतिहारों के दुर्बल होते ही उनके सामन्त सबल होकर स्वतन्त्र होने लगे और इन नये राजवंशो-चन्देलों, परमारों, चाहमानों और चालुक्यों-में परस्पर अवदानार्थ (शौर्य प्रदर्शन के लिये) युद्ध होने लगे । इसके दूसरी ओर उत्तरापथ (उत्तरी पश्चिमी भारत और पर्वतीय प्रदेशों) में म्लेच्छ छा गये थे । वहाँ रहने वाली जातियों-लम्पाक, दरद, खस, बर्बर आदि-ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया ।

अरबों को काबुल में सफलता नहीं मिली थी। नवीं शताब्दी में काबुल नदी की घाटी में ब्राह्मण मंत्री कल्लर ने तुर्की शाही वंश के अन्तिम राजा लगतोरमान को मारकर नये वंश की स्थापना की। यही हिन्दू शाहीवंश था। इनकी राजधानी ओहिन्द थी। नवोदित गजनी-शक्ति का इसी वंश के साथ संघर्ष पीढ़ियों तक चलता रहा और अन्त में काबुल-घाटी और पंजाब शाहियों के हाथ से निकलकर गजनीय सुलतानों के अधिकार में चला गया। जाफर साहब कहते हैं—

“After a period of about two centuries that elapsed after the Arab occupation of Sind, India presented a scene of confusion,showing no signs of national unity.....It was on this India that the avalanche of Turkish invasions from the North-West broke and eventually changed the course of her history (S. M. Jaffar, Medieval India, vol. II, p. 1).

परन्तु ऊपर के अध्यायों में वर्णित राजपूत राजवंशों के इतिहास से स्पष्ट है कि तुर्की तूफान को भारत में घुसने और पैर जमाने में कितने अधिक समय तक संघर्ष करना पड़ा।

८७२ ई० में खुरासान और अफगानिस्तान में नई स्वतन्त्र मुस्लिम सत्ता का जन्म हुआ। इस वंश के शासक अहमद का एक तुर्की दास अलप्तगीन था। आगे चलकर वह खुरासान का गवर्नर बन गया। पुनः काबुल राज्य का एक भाग भी उसके अधिकार में आ गया। उसने अपनी स्वतन्त्र सत्ता जमायी। उसकी मृत्यु के बाद क्रमशः बिलक्तगीन और पिरित्तिगीन शासक हुए। पिरित्तिगीन के समय में ही हिन्दू और मुस्लिम सेनाओं में गजनी के निकट संघर्ष छिड़ा। काबुल के शाह के नेतृत्व में जो हिन्दू गजनी पर अधिकार करने के लिये बढ़ रहे थे उन्हें पीछे हटना पड़ा।

लमगन युद्ध

(प्रथम शाही-गजनी युद्ध)

जयपाल—सुबुक्तगीन ने विजयों द्वारा एक सशक्त राज्य बनाया जिसके पूर्व की ओर प्रसार से यह राज्य शाही राजा जयपाल के राज्य की सीमाओं से टकराने लगा। जयपाल ने सीमान्त पर्वतीय जातियों को सीमा की सुरक्षा सौंपी। परन्तु सशक्त गजनवी राज्य की स्थिति शाही राज्य के लिये बहुत बड़ा खतरा था। उसके सामने दो ही रास्ते थे—वह बढ़ती हुई गजनवी शक्ति के प्रसार को रोके या उसके प्रभुत्व को माने। उसने पहला रास्ता ही

ठीक समझा। सैनिक तैयारी के बाद मुस्लिम राज्य पर उसने आक्रामण कर दिया। यह हिन्दू शक्ति और गजनवियों के बीच पहला युद्ध था जो लमगन के निकट हुआ। परन्तु हिन्दुओं के दुर्भाग्य से बर्फोली आँधी और तूफान ने उनकी जीत को हार में बदल दिया। जयपाल भौचक्का सा खड़ा यह दैवी प्रकोप देख रहा था और उसने सन्धि करना ही ठीक समझा। सन्धि के अनुसार दंड देकर अपने राज्य को वापस आया। जयपाल ने मुस्लिम शासक को कर देना स्वीकार किया और उसके राज्य से भी कुछ दुर्ग निकल गये। उसने अपने राज्य में वापस आकर सन्धि तोड़ दी।

द्वितीय युद्ध—इसलिये गजनी का सुलतान जयपाल के विरुद्ध एक विशाल सेना लेकर उसके राज्य पर चढ़ आया। इस युद्ध में जयपाल की सहायता में अन्य हिन्दू राजा भी सम्मिलित थे।

यह युद्ध सिन्ध नदी के किनारे हुआ और इस युद्ध में भी हिन्दुओं की पराजय हुई। इस युद्ध से भारतीय सीमान्त-द्वार की अर्गला (सांकल) ही टूट गयी।

महमूद गजनवी—सुबुक्तगीन के बाद उसके पुत्र महमूद गजनवी ने भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना की भूमिका तैयार की और पंजाब में उसने गजनवी-राज्य जमाया। पिता की भाँति ही महमूद गजनवी ने भी उग्र विस्तारवादी नीति अपनायी। उसने भारत पर १७ बार आक्रमण किये।

सीमान्त नगरों पर विजय पाने के बाद उसने १००१ ई० में पेशावर पर आक्रमण किया। जयपाल की फिर पराजय ही हुई। महमूद ने उसे बन्दी बना लिया और बहुत धन लेकर महमूद ने उसे छोड़ा पराजय के बाद उसने अपने पुत्र आनन्दपाल को गद्दी पर बिठा कर अग्नि प्रवेश द्वारा अपना शरीर छोड़ दिया।

आनन्दपाल और महमूद गजनवी—जयपाल की भाँति आनन्दपाल वीर और चतुर सम्राट था जिसने मुल्तान के मुस्लिम शासक दाऊद के साथ मिल कर गजनवी सेना का रास्ता रोक दिया था। उसने हिन्दू राजाओं से सहायता माँगी तथा राजपूत राजवंशों ने भी उसकी सहायता की। उज्जैन, ग्वालियर, कालंजर, कनौज और दिल्ली आदि के राजाओं ने संघ बना कर आनन्दपाल की सहायता की। मिली हुई संघ सेना आनन्दपाल के पुत्र तिलोचनपाल के नेतृत्व में पेशावर की ओर बढ़ी। इस सेना में पहाड़ी जाति खखरों ने भी भाग लिया। इस विशाल सेना और संघ-शक्ति का प्रभाव महमूद पर भी पड़ा। वह ४० दिनों तक बिना हमला किये अपने कैम्प में पड़ा रहा। उसने

अपने कैम्प के चारों ओर सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध, खादियाँ आदि बनाकर किया, यह चाहता था कि शत्रु सेना उस पर आक्रमण करे और हुआ भी यही । खोखरों ने उस पर इतना भीषण आक्रमण किया कि वह पीछे जाने की सोच रहा था । इसी समय आनन्दपाल का हाथी बिगड़ कर भागा । लोगों ने समझा कि उनका नायक ही भाग रहा है । हिन्दू सेना में भगदड़ मच गई । विजय पराजय में बदल गयी । लूटमार कर महमूद गजनी वापस चला गया । इस पराजय से भारतीयों की सामरिक दुर्बलता का शत्रुओं को पता चल गया और भारत-भूमि के अन्दर घुसने के मार्ग सरल हो गये । परन्तु दुर्बलताओं और दोषों के बावजूद भारतीय राजपूत इस भय से परिचित थे । थानेश्वर के राजा ने दिल्ली के राजा को पत्र लिखा कि “महमूद हिन्दुस्तान से मूर्ति पूजा मिटा देना चाहता है । दिल्ली के राजा ने अन्य हिन्दू राजाओं के यहाँ दूत भेजे; क्योंकि वह महमूद को रोकना चाहता था । दूतों द्वारा उसने सन्देश भेजा कि महमूद बिना बात के ही विशाल सेना लेकर थानेश्वर की ओर इसे नष्ट करने के लिये बढ़ रहा है । अगर इस गरजते हुए प्रवाह को बाँध से न रोका गया तो शीघ्र ही हिन्दुस्तान भंग हो जायगा और हर राज्य चाहे छोटा हो या बड़ा पूर्ण रूप से नष्ट हो जायगा । इसलिये उचित यही है कि हम सब लोगों की सेनायें थानेश्वर की सेना से मिलकर इस आने वाली आपत्ति को रोकें ।”^१ इससे आपत्ति के समय हिन्दुओं में विदेशी शत्रु के विरुद्ध मिलने की राष्ट्रीय भावना थी और मिले भी ।^२ जाफर साहब भी मानते हैं—

“Hindus had sunk their differences and pooled their resources for national defence.”^३

त्रिलोचनपाल—आनन्दपाल की मृत्यु के बाद महमूद ने १०१३ ई० में उसके पुत्र त्रिलोचनपाल पर आक्रमण कर दिया । त्रिलोचनपाल का पुत्र भीमपाल एक दर्रे में अपनी सेना द्वारा उसको रोके रहा । जब सामन्तों की सेनायें आ गयीं तो युद्ध हुआ । इसमें संगठित शाही सेना बहुत वीरता से लड़ी, परन्तु अन्त में उसकी पराजय हुई । त्रिलोचनपाल ने फिर सेना इकट्ठी कर महमूद से युद्ध किया । किन्तु इस बार भी वह सफल न हो सका । १०१९ ई० में महमूद ने शाही राज्य पर अधिकार कर लिया । पुनः १०२१

१—ईलियट ऐण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्द २, पृ० ३५३-३५४

२—पडिये, अवस्थी, इण्डियन नेशनलिज्म, वाल्यूम वन, अध्याय ६

३—Medieval India II, p. 60

ई० में चन्देल विद्याधर के साथ त्रिलोचनपाल ने महमूद का विरोध किया। इस बार भी उसकी पराजय हुई।

इस प्रकार शाही राजाओं ने लगभग २०० वर्ष तक खैबर दर्रे की रक्षा करते हुए तुर्कों-तरतारों को भारत में आने से रोका। अल्बरूनी ने शाही वंश की प्रशंसा में लिखा है कि “अब हिन्दू शाही वंश समाप्त हो चुका है; और उसका कोई अवशेष नहीं बचा। किन्तु हमें मानना ही पड़ेगा कि वे अपने गौरव और मर्यादा से नीचे नहीं गिरे। सदैव सही और अच्छा ही काम किया। वे उत्तम विचार और कार्य के शासक थे।.....आनन्दपाल मुसलमानों का घोर विरोधी था।”^१ कल्हण ने त्रिलोचनपाल के पराक्रम, पौरुष और बुद्धि-बल की प्रशंसा की है। स्वयं ‘हम्मीर’ भी त्रिलोचनपाल के अमानुषी शौर्य से बहुत ही सशक्त था। इस प्रकार शाहि-श्री की समाप्ति हुई और देश में तुरुष्कों का अवतार हो गया।^२

मध्यदेश और तुरुष्क आक्रमण

प्रतिहारों के पतन के बाद मध्य देश अरक्षित हो गया। कनौज के क्षुद्र राजा को चन्देल राजा विद्याधर ने मरवा दिया था। अतः मध्य देश की रक्षा का भार चन्देलों पर आ पड़ा था। महमूद गजनवी ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को ध्वस्त कर दिया। चन्देल कालंजर की ही रक्षा करते रहे। वे कनौज पर अधिकार न कर सके। गंगा-घाटी (गंग मंडल) या अन्तर्वेदी के काफी भाग पर कलचुरियों का अधिकार हो गया। परन्तु जब देश में विदेशियों का राज्य जम गया था, तब भी ये लोग आपस में मिल न सके और कलचुरि तथा चन्देल आपस में लड़ते रहे। यद्यपि चन्देल सम्राट यशोवर्मन्, धंग, गण्ड, विद्याधर और कीर्तिवर्मन् दुर्जय ‘हम्मीर’ के साथ संघर्ष करते रहे। उन्होंने हिन्दू राजसंघ में भी सक्रिय भाग लिया। परन्तु आपसी बैर को न भुला सके। इसी प्रकार कलचुरि शासक भी मुस्लिम-विरोधी होते हुए भी आपस की शत्रुता को न भुला सके। चन्देलों और कलचुरियों के समान परमार भी ‘पर’ (=शत्रुओं) को नष्ट करने के लिये ही प्रकट हुए थे, परन्तु विदेशियों के साथ युद्ध करते हुए भी अपने स्वदेश-बन्धु राजपूत राजवंशों—चन्देलों, कलचुरियों, चालुक्यों और चाहमानों—के साथ मेल करना न सीख सके। इसी प्रकार अन्तर्वेदी के रक्षक गहड़वाल न सेनों के साथ ही मेल कर पाये और न चाहमानों

१—सचाऊ, अलबरूनी इण्डिया, भाग २, पृ० १३, १४

२—राजतरंगिणी, पृ. ६४-७४

के साथ ही दोस्ती । प्रत्युत बैर इतना बढ़ गया कि उस बैर ने ही चाहमानों और गहड़वालों की स्वतन्त्रता का अन्त कर हिन्दुओं को भी पराधीन बना दिया । दृष्टांतों और निदर्शन कथाओं द्वारा इन राजपूत राजाओं को एकता का पाठ पढ़ाया गया । परन्तु प्रज्ञाशून्य पराक्रम ने राष्ट्र-भंग कर दिया ।

राजपूत इतिहास पर लिखने वालों ने कुछ राष्ट्रीय प्रतीकों की ओर ध्यान नहीं दिया । ऊपर संकेत किया गया है कि परमार दान-पत्र लेखों में हम नागारि गरुड़ को नाग-ग्रहण करते हुए देखते हैं । डा० गांगुली ने भी इस पर ध्यान नहीं दिया । पृथ्वीराज तृतीय के मंत्री भुवनैकमल्ल को गरुड़ बताते हुए कहा गया है कि नागों को नष्ट करने के कारण भुवनैकमल्ल गरुड़ ही था (पृथ्वीराज विजय, द. ८८) । डा० पाठक का विचार है कि नाग एक जाति थी या सांप थे ।^१ परन्तु यहाँ नाग शब्द और रूप (परमार-दानपत्र) म्लेच्छ-मातंग का परिचायक है जिसे व्यालहस्ति भी कहा गया है । 'नाग' शब्द का म्लेच्छ के लिये प्रयोग करते हुए गरुड़ पुराण एकता पर जोर देते हुए कहता है कि बहुत से दुर्बल लोग भी मिलकर एक हो जायें तो उनका संघ तोड़ना कठिन है जैसे घास को बट कर (मिला कर) रस्सी बनती है और उस रस्सी से 'नाग' (हाथी) भी बँधता है ।^२ कथा सरित्सागर का लेखक सोमदेव भी पुरानी (महाभारत की) कहानी—मार्जारमूषकोपख्यान (बिल्ली-चूहे की कथा)—का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब बहुत शत्रुओं से घिरे हुए पशु-पक्षी भी अपनी रक्षा कर लेते हैं फिर मनुष्यों की क्या बात ।^३ कथा-सरित्सागर तो निदर्शन कथा द्वारा यह बताता है कि जैसे "गिधी गाय गोलैंधे खाय, घाय-घाय महुआ तर जाय, (जैसे महुआ के फल को खाने की आदी गाय दौड़ कर महुआ वृक्ष के नीचे जाती है), वैसे ही "यह गजेन्द्र (गजराज=हाथियों का राजा, गज देश का राजा या गजन्वी सुलतान) यहाँ आनन्द पाकर बार-बार आयगा और हमको नष्ट कर डालेगा । इसीलिये इस

१—ऐन्सेन्ट हिस्टोरियन्स ऑफ इण्डिया, पृ० १३३

विष्णु के वरदान से गरुड़ तो नागों का भक्षण करता है ।

२—गरुड़ पुराण, १. ११४. ६६,

दृष्टव्य, अवस्थी, गरुड़ पुराण एक अध्ययन, पृ० ३

३—कथासरित्सागर, ६. ७. १३० :

एवं बहुभ्यः शत्रुभ्यः प्रज्ञयात्माभिरक्षितः ।

मूषकेन तिरश्चापि कि पुनर्मानुषेषु यत् ।

विषय में कोई उपाय सोचो—

लब्धास्वादो गजेन्द्रोऽयं पुनः पुनरिहैष्यति ।

निःशेषयिष्यत्स्मांश्च तदुपायोऽत्र चिन्त्यताम् ॥^१

यही बात थानेश्वर—दिल्ली के राजा ने अन्य हिन्दू राजाओं से गजनवी आक्रमण को रोकने के लिये कहा था। इस प्रकार स्पष्ट है कि तुर्कों के आक्रमणों को रोकने के लिये राजाओं और चिन्तकों का विचार था और उसे कार्यान्वित करने के लिये उन्होंने संध भी बनाये। किन्तु ये संध भी सफलता प्राप्त न कर सके। इसका मूल कारण संध के नेता का आदेश भक्ति के साथ न माना गया। परस्पर वैर को न भुलाकर आपस में लड़ते रहे।

चन्देल मंत्री कृष्ण मिश्र ने प्रबोधचन्द्रोदय में स्पष्ट मार्मिक शब्दों में 'अपील की—

समानान्वयजातानां परस्परविरोधिनां परैः प्रत्यभिभूतानां प्रसूते संगतिः श्रियः ।

अर्थात् एक ही वंश (स्वायंभुव मनु की सतानें—क्षत्रिय राजपूत) में उत्पन्न, परन्तु आपस में विरोध करने वाले जब दूसरे शत्रुओं से पराभूत हों तो उनका संध ही राजश्री को बचा सकता है। धार्मिक संकीर्णता के कलह भी बैर उत्पन्न करते थे, जैसा कि ऊपर देख चुके हैं। ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म के अतिरिक्त इनमें भी अलग-अलग बहुत से सम्प्रदाय थे। प्रबोधचन्द्रोदय में यही बताया गया है कि वैष्णव धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म की त्रिवेणी भक्ति की एक धारा अभीष्ट थी। इसके पहले शंकराचार्य ने ही धार्मिक एकता की प्रतिष्ठा की थी। परन्तु रोग ग्रस्त राष्ट्र के लिये औषधियाँ बेकार साबित हुईं, क्योंकि कुपथ्य होता रहा और इसी लिये हिन्दू शक्ति का पराभव हुआ।

तुर्कों की विजय और राजपूत-पराभव के कारण

“कथं म्लेच्छसमाकीर्णो देशोऽयं द्विजसत्तम ।

एतदाचक्ष्व मां ब्रह्मन् मार्कण्डेय महामते ॥”

भारतीय इतिहास में तुर्क विजय एक महत्वपूर्ण घटना है। डा० आर० सी० मजूमदार इस समस्या पर विचार करते हुए लिखते हैं—

“The astounding rapidity of the Turkish conquest constitutes an important problem for the students of Indian

history.It is natural that men should seek to solve the mystery and find out the real causes that lay behind the great political catastrophe that overwhelmed India. History would appear to be meaningless if facts of such outstanding importance cannot be viewed in their true perspective against a proper background.”^१

इस समस्या पर विभिन्न इतिहासकारों ने विचार कर कारणों को खोजने की कोशिश की है—

डा० आर० सी० मजूमदार—जाति-भेद और भारतीयों का बाहरी देशों से सम्पर्क का न होना हिन्दुओं की पराजय का प्रमुख कारण था। जातिभेद के कारण सभी वर्ण युद्ध में भाग न ले सके। बाहर से भारत का सम्पर्क न होने से भारतीय कूपमंडूक हो गये। इस विषय में अल्बेरूनी कहता है कि भारतीय लोग भारत को हर बात में सर्वश्रेष्ठ देश मानते थे। यह उनकी संकीर्णता ही थी। इसीलिये वे अपने राजनैतिक जीवन में विशेष कर रण-नीति में समयानुकूल परिवर्तन न कर सके।

क्षत्रियों में छात्रधर्म के कारण वीरता के झूठे आदर्श भर गये थे। इससे उनमें आपसी युद्ध होते रहे और इसी कारण वे राष्ट्रीय हित को ध्यान में न रख सके। इसी कारण जब राष्ट्र घोर संकट में फंसा था वे परस्पर युद्धों में अपनी शक्ति को नष्ट कर रहे थे। ऐसे ही संकट काल में राष्ट्र की अपार धन राशि मंदिरों के निर्माण में व्यर्थ ही नष्ट की जा रही थी और इन मंदिरों की सम्पत्ति ही विदेशी आक्रमणकारी का आकर्षण था। इसने भी राष्ट्र भंग में सहायता की।^२

रमेशचन्द्र दत्त—लगभग ५० वर्ष पूर्व इस समस्या का विवेचन रमेश-चन्द्रदत्त ने प्रारम्भ किया था। वह (अ हिस्ट्री आफ़ सिविलाइजेशन ऑफ़ ऐन्शेन्ट इण्डिया, कलकत्ता, १८९० ई०, खंड ५, अध्याय १५) अल्बेरूनी के विचारों को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि हिन्दुओं में संकीर्णता और घमंड था। उन्होंने विदेशों की यात्रा करने में उपेक्षा दिखाई। इसके बाद ही तुर्क विजय के पूर्व उत्तरी भारत की सामाजिक, राजनैतिक, और धार्मिक दशा के दोषों को बताते हुए कहते हैं कि उस पतन के अन्तिम युग में देश बहुत से छोटे-छोटे राज्यों में बंटा था जो आपस में लड़ रहे थे। पुरोहितों का प्रभाव बढ़ा हुआ

१—स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ० १२५

२—वही, पृ० १२६-१२८; ऐन्शेन्ट इण्डिया, अध्याय २१

था और सामान्य लोगों की हीन दशा थी ।.....रमेशचन्द्र दत्त के अनुसार भारतवर्ष मध्यकालीन योरप की भांति ही था । इसमें भी अन्तर यह था कि योरप का सामन्तवर्ग जनता से घुला-मिला था और वर्ण व्यवस्था के अनुसार भारतीय सामन्त जनता से सम्पर्क नहीं रखते थे । इसीलिये क्षत्रिय साधारण जन सम्पर्क से अलग रह कर विदेशियों के विरुद्ध हार गये ।

के० यम० पैनिकर—डा० पैनिकर ने अपनी पुस्तक (अ सर्वे ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री, १९४७) में इण्डिया ऑन दि ईव ऑफ़ मुस्लिम कान्टेक्ट' (अध्याय १२) में बताया है—

१—महमूद गजनवी के आक्रमण के पहले भारतवर्ष ५०० वर्ष तक विदेशी आक्रमणों से बचा रहा और इसीलिये भारत का विदेशों से सम्पर्क नहीं रहा ।

२—लोगों में राष्ट्रीयता और देश प्रेम न था ।

३—उनमें अपनी बड़ाई का बहुत बड़ा दंभ था । इससे उनमें परमाश्रय और राष्ट्र-कल्याण की भावना का अन्त हो गया ।

४—वाममार्ग और देवदासी प्रथा से धर्म और धार्मिक मठ भी दूषित हो गये ।

५—सामाजिक, और आर्थिक विषमताएं;

६—घ्रष्ट शासन;

७—आर्थिक समृद्धि तथा;

८—देश-भक्ति और राष्ट्रीय एकता का अभाव ।

डा० आशीवादी लाल श्रीवास्तव—डा० श्रीवास्तव ने (सल्तनत ऑफ़ देहली—१६५३) के 'अवर कन्ट्री ऑन दि ईव ऑफ़ अरब इनवेज़न आफ़ सिन्ध' नामक अध्याय में बताया है कि मुख्य दोष राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति का अभाव था । पुनः अध्याय ३ (इण्डिया ऑन दि ईव ऑफ़ महमूद गज़नीज़ इनवेज़न) में बताया है—

१—उत्तरी भारत में पालों और प्रतिहारों के पतन से भारतीय राजा दुर्बल हो गये थे ।

२—दक्षिण भारत में चालुक्यों और चोलों में संघर्ष हो रहे थे ।

३—सिन्ध में अरब विजय के बाद भारत ३०० वर्ष तक विदेशी आक्रमण से बचा रहा । इससे भारतीय युद्ध के नये तरीकों से परिचित न हो सके ।

४—राष्ट्रीयता से रहित भारतीयों में आत्म-श्लाघा की भावना का होना महान दोष था । भारतीयों में राष्ट्रीय एकता और देश प्रेम न था ।

५—संभ्यता की अवनति भी पतन का कारण था ।

६—वर्ण-व्यवस्था की कठोरता, जाति-भेद, देव-दासी प्रथा तथा चारित्रिक पतन भी राष्ट्र को गिराने में सहायक सिद्ध हुए ।

७—आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ समाज में आर्थिक विषमता भी एक राष्ट्रीय दोष था ।

८—राष्ट्रीय एकता और योग्य नेतृत्व का अभाव ही पराजय का मुख्य कारण था ।

९—नेताओं और जनता में सहयोग न था ।

१०—गजनी और गोर के सुलतानों द्वारा आकस्मिक आक्रमण की नीति ने हिन्दू राजाओं को भयभीत कर दिया ।

११—तुर्कों का धार्मिक और सामरिक जोश जबरदस्त था ।

१२—भारतीय गुप्तचर व्यवस्था शिथिल और अयोग्य थी ।

१३—तुर्कों द्वारा घोड़ा, धनुष और बाण का विशेष प्रयोग किया गया, जबकि राजपूतों में हाथी और बछी-भाला-तलवार का विशेष प्रयोग किया गया ।

१४—राजपूतों में सक्रिय और सफल संघ-शक्ति का अभाव था ।

१५—जनता की उदासीनता और लोगों में राष्ट्रीयता का अभाव था ।

डा० यू० यन० घोषाल

(स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐन्ड कल्चर, पृ० ५०५-५०७)

राजनैतिक कारण—यह विचार कि तुर्कों की विजय के पूर्व भारतवर्ष छोटे-छोटे राज्यों में बटा था और यह युग राजनैतिक पतन की चरम सीमा पर था ऐतिहासिक अतिरंजना है । यह सत्य है कि इस समय मौर्य साम्राज्य की भाँति एक विशाल साम्राज्य न था । किन्तु एक साम्राज्य की भावना और आदर्श विद्यमान था । प्रमुख सम्राट सार्वभौम सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न करते थे । राजाओं में, प्रायः, अधिकांश युद्ध इसी उद्देश्य से होते थे । अपनी सभी राजनैतिक और सामरिक दुर्बलताओं के बावजूद राजपूतों में तुर्कों को पराजित करने की शक्ति थी । ११७८ ई० में गुजरात की रानी ने और ११६१ ई० में स्वयं पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को पराजित किया था । उस युग में जनता का राष्ट्र-रक्षा में भाग लेना नयी चीज थी । फिर भी दीर्घकालीन विदेशी शक्ति का विरोध जन-शक्ति का परिचायक है । गजनिवियों के पतनोन्मुख होने पर उनके राज्यों पर आक्रमण हुए थे और उनकी पराजय भी हुई थी ।

वास्तविक राजनैतिक दुर्बलता सामन्तप्रथा थी जो सदैव केन्द्रीय शक्ति के लिये एक भय था। अवसर पाते ही सामन्त स्वतन्त्र होने की ताक में रहते थे।

सैनिक कारण—योग्य सैनिक नेताओं की कमी थी जो देश-काल की परिस्थितियों के अनुरूप अपने सैनिक विधान और युद्ध-कला को बदल लेते। विदेशी आक्रमणकारी की सेनायें एक ही सेनानायक के आधीन थीं, जब कि भारतीय सेनाएँ विभिन्न राजाओं के ही आधीन थीं। इसीलिये यह सत्य है कि राजपूत बहुनायकत्व के कारण पराजित हुए।

जागरूकता—और सावधानी का अभाव ही पराजय का मुख्य कारण था।

सामाजिक कठोरता—ने ही भारतीय समाज को नष्ट होने से बचाया।

डॉ० दशरथ शर्मा—(अ० चौ० डा०, अध्याय २७)—चाहूमान वंश के इतिहास को पढ़कर यह कोई नहीं कह सकता है कि चौहानों के पतन में उत्साह या शौर्य की कमी भी कोई कारण था। मुस्लिम और हिन्दू इतिहास-कार एक मत से चौहानों के पराक्रम के साक्षी हैं। वे युद्ध से भागना या आत्मनिवेदन करना बेइज्जती समझते थे। उनको युद्ध में लड़ते हुए मर जाने के बराबर अन्य कोई बड़ा लाभ न था। यह भी नहीं माना जा सकता कि चौहानों में नेतृत्व-शक्ति की कमी थी। डॉ० शर्मा के अनुसार जाति-प्रथा पतन का प्रमुख कारण था। सम्पत्ति, शान्ति और विलासिता भी पतन के कारण थे। डॉ० शर्मा सत्य ही कहते हैं—

United we stand, divided we fall.

डा० यच० सी० रे

(डा० हि० ना० इ०, भाग २ अध्याय १९)

उत्तरी भारत के राजवंशों के इतिहास का विवेचन करने के बाद डॉ० रे का विचार है कि प्रतिहारों ने अरब विजेताओं के बढ़ते हुए तूफान को रोका था और वह तूफान फेना बन कर राजस्थान की बालू में समा गया। वस्तुतः प्रतिहार साम्राज्य के पतन के बाद ही ईसा की १०वीं शताब्दी में तुर्कों के आने से मुस्लिम विजय का प्रारम्भ होता है। कनौज का पतन हुआ और चारों ओर से इसके प्रभुत्व पर हमले शुरू हो गये। डॉ० रे इस प्रचलित पुराने विचार को नहीं मानते हैं कि हिन्दू खतरे को देखकर न तो मिलकर लड़े और न ही उन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्य के समान कोई शासक ही उत्पन्न किया।

उन्होंने इस सम्पूर्ण इतिहास को निम्नांकित युगों में विभक्त किया है—

१—प्रथम युग—(लगभग ई० १५ ई०-ई० ६६६ ई० तक) गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के पतन से लेकर महमूद गजनवी के राज्यारोहण तक इस युग में

प्रतिहारों की शक्ति क्षीण हुई और प्रतिहार साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्त स्वतन्त्र हो गये। सन्धि काल में सुदृढ़ केन्द्रीय सत्ता के पतन के बाद उसके स्थान पर दूसरी शक्ति की स्थापना होने तक संघर्ष होते ही हैं और वे इस समय भी प्रारम्भ हो गये। परमार मुंज और चन्देल धंग ने केन्द्रीय सत्ता, कान्यकुब्ज, पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। इसके पूर्व कि धंग गंगा-घाटी में अपना अधिकार स्थापित कर पाते, उत्तरीपश्चिम भारत पर गजनवियों ने अधिकार कर गंगा-घाटी पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। पंजाब और अफगानिस्तान के शाही सम्राट वीर और कुशल योद्धा थे, परन्तु घोर विरोध के बावजूद भी वे ६६७ ई० में अफगानिस्तान और पंजाब से भगा दिये गये।

२—द्वितीय युग (९९८-१०३० ई० तक)—यह युग महमूद गजनवी का ही युग था। इस समय परमार भोज और चन्देल विद्याधर अति प्रतापी शासक थे जिनके व्यक्तित्व ने मुस्लिम इतिहासकारों को भी प्रभावित किया था। इस बात के प्रमाण हैं कि चन्देलों ने महेन्द्रपाल प्रथम के दुर्बल उत्तराधिकारियों के हाथ से प्रभुत्व छीन कर साम्राज्य स्थापित करने का वीर-कार्य किया। यदि भाग्य उनका साथ देता तो वे उत्तरी भारत में पुनः एक-छत्र सार्वभौम सत्ता स्थापित करने में सफल होते। परन्तु ऐसा न हो सका। उनको तुर्क जाति के एक सर्वश्रेष्ठ एवं रण-दक्ष नायक का सामना करना पड़ा। महमूद गजनवी ने ही पंजाब पर अधिकार स्थापित कर लिया। ३० वर्ष तक वह उत्तरीभारत को लूटता रहा। परमार भोज ने आर्यावर्त रक्षा में तुर्कों से कोई विशेष युद्ध नहीं किया और विद्याधर युद्ध करते हुए भी कुछ कर न सका।

३—तृतीय युग (लगभग १०३०-११७९ ई० तक)—इस युग में महमूद गजनवी की मृत्यु के बाद गंगा-घाटी में तुर्कों के आक्रमणों में शिथिलता आ गयी। यद्यपि बनारस तक यामिनी वंशजों के आक्रमण होते रहे, फिर भी यह गजनवियों की शक्ति-हीनता का युग था, जब कलचुरियों, परमारों और चालुक्यों ने उनको पराजित भी किया। इसी युग में गहड़वालियों का भी उदय हुआ जिन्होंने मध्य-देश को तुर्कों से बचाया और हम्मीर-तुरुष्क को पराजित किया। चन्द्रदेव और गोविन्द चन्द्र ऐसे ही प्रतापी राजा थे। ११७८ ई० में ही चालुक्य रानी ने युद्ध-भूमि में मुहम्मद गोरी को भी पराजित किया था।

४—चतुर्थ युग (लगभग ११७८ ई०-११९२ ई०)—यह पृथ्वीराज-युग ही था। उसने तुर्कों को नष्ट करने का व्रत लिया था। वह चालुक्यों को मुहम्मद गोरी के विरुद्ध सहायता देने के लिये भी तैयार था और चालुक्यों

की विजय पर उसे प्रसन्नता भी हुई। सत्य ही पृथ्वीराज विजय में उसे भारतेश्वर कहा गया है। भारत की रक्षा का भार उस पर ही थी। देश का तत्कालीन राजपूत-समाज ही ऐसा था। उसे उस कन्या का हाथ पकड़ना ही पड़ा जिसने उसका वरण किया और इस भूल की कीमत भी उसे अपने प्राणों और पराभव से चुकानी पड़ी। मोहम्मद गोरी की विजय में छल, धोखा और धूर्तता थी। राजपूत वीर और वचन का पक्का था। वह भी उसकी भूल ही थी। डॉ० रे के अनुसार भारतीय जलवायु, जाति-प्रथा, अहिंसा-धर्म और झूठा शौर्य प्रदर्शन आदिको हिन्दू पतन का कारण नहीं माना जा सकता है। परन्तु लूटने की प्रवृत्ति और धार्मिक उत्साह तथा रण-दक्षता ही तुर्कों की विजय का मुख्य कारण था। भारतीय कम वीर न थे परन्तु उनमें महमूद गजनवी या मुहम्मद गोरी के समान (चतुर) वीर पैदा न हुआ।

डॉ० राजबली पांडेय—डॉ० पांडेय के अनुसार सामंतवाद से “शासन की एकरूपता, संतुलन और आंतरिक संघटन ढीला हो गया। सेना छोटे-छोटे झुंडों में गूँट गयी। उसकी न तो एक प्रकार और संघटित रूप से शिक्षा हो पाती थी और न एक नेतृत्व में वह आवश्यकता पड़ने पर लड़ सकती थी। यदि किसी प्रादेशिक राजा ने कई सामंतों की सेनाओं को किसी विदेशी आक्रमणकारी का सामना करने के लिये इकट्ठा भी कर लिया तो भी उसको सैनिक सफलता नहीं मिलती थी। पहले तो सैनिक नेतृत्व का ही झगड़ा तय नहीं हो पाता था कि बाहरी सेना चढ़ आती थी। दूसरे यदि कोई नेता चुन भी लिया गया तो सेनाएँ कई स्थानों से आने और समान शिक्षण न पाने से भानमती का कुनबा बन जाती थी। उनका संयुक्त स्वरूप सैनिक भीड़ का सा हो जाता था न कि सुशिक्षित और सुसंघटित सेना का। यही कारण है कि मध्ययुग की बहुसंख्यक भारतीय सेनायें आक्रमणकारियों की छोटी किंतु संघटित सेनाओं के सामने परास्त हो जाती थीं। इस युग के कई सैनिक संघों की विफलता का यह मुख्य कारण था। काबुल और पंजाब के शाही राजाओं राज्यपाल और अनंगपाल के सैनिक संघ इसी कारण पराजित हुए। पृथ्वीराज चौहान का विशाल सैनिक संघ इसी कारण टूट गया। जयचंद्र गहड़वाल की सामंती सेना इतनी बड़ी थी कि स्कंधावारों से रणभूमि तक उसकी पंक्ति नहीं टूटती थी, किंतु वह मुहम्मद गोरी की सैनिक प्रगति के सामने बिलकुल रुक न सकी। सामंतवाद से क्षुद्र राजनैतिक संघर्षों और सैनिकता की प्रवृत्ति बढ़ गयी।”

डॉ० पांडेय के अनुसार “स्थानीयता और व्यक्तिवादिता से जनता की

दृष्टि से देश की इकाई और समष्टि ओझल हो गयी। देशभक्ति की भावना लुप्त होने लगी।”^१

डॉ० बुधप्रकाश के अनुसार “आठवीं सदी के शुरू में मुसलमानों ने सिन्ध को जीता और तब से वे बाकी देश पर निरन्तर दबाव डालते रहे किन्तु जनता का मुकाबला इतना सख्त था कि तेरहवीं सदी से पहले वे दिल्ली में पैर नहीं रख सके।..... भारतीय जनता ने ५०० वर्षों तक उनसे डट कर लोहा लिया।”^२ यह एक ऐतिहासिक सत्य है।

डॉ० बिमल कान्ति मजूमदार^३—मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद उत्तरी-पश्चिमी सीमाएं अरक्षित हो गयीं। उधर से सुदृढ़ और सक्रिय गतिमान् अश्वारोहियों की विदेशी सेनाएं आती रहीं। न इनको रोकने का ही कोई प्रयत्न हुआ और न सेना का ही सुधार हुआ। सामरिक-कला में ह्रास हुआ। इसीलिये हिन्दू राज्यों का प्रतिरोध भी दुर्बल था।

डा० रामवृक्ष सिंह—डा० सिंह कहते हैं कि चाहमानों की तुर्कों द्वारा पराजय इस कारण नहीं हुई थी कि तुर्क अधिक वीर और पराक्रमी थे और उनकी विजय इस कारण से हुई कि उनके शस्त्रास्त्र अधिक कारगर और घातक थे। चाहमानों ने तुर्कों को ११९१ ई० में पराजित किया था। फिर भी मुहम्मद गोरी ने ११६२ ई० में एक वर्ष के अन्दर ही फिर आक्रमण कर दिया। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि इस एक वर्ष के अन्दर अवश्य ही कोई ऐसा कार्य हुआ था जिसने सुलतान को आक्रमण करने की प्रेरणा दी। डा० सिंह के अनुसार एकता की कमी और मिलकर उग्रता से शत्रु का विरोध न करना ही राजपूतों की पराजय का मुख्य कारण था। जयचन्द्र और पृथ्वीराज का वैर भी प्रमुख कारण था जिससे राजपूतों का पराभव हुआ। राजपूतों में दूरदर्शिता और प्रज्ञा की कमी तथा समर-नीति का अभाव भी उनके पतन का कारण था (हिस्ट्री ऑफ चाहमानाज, पृ० २३१-२३२)।

पूर्वमध्य कालीन साहित्य और अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजपूतों की पराजय के निम्नलिखित कारण थे—

नारी चरित्र और कामराग—पृथ्वीराज तृतीय के समकालीन-सखा ने उसके पतन में तिलोत्तमा के प्रति उसकी आसक्ति को दोषी ठहराया है। वह

१—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, द्वितीय अध्याय

२—भारतीय इतिहास परिषद, १९६६, अध्यक्षीय भाषण, पृ० ६.

३—दि मिलिटरी सिस्टम इन ऐन्ग्लो इण्डिया, अध्याय १०, “ब्रेकडाउन ऑफ हिन्दू मिलिटरी सिस्टम”

कहता है—

क्व ललाम तिलोत्तमा दिवः, प्रभुता च क्व मनुष्यमंडले,
पृथ्वीराज विजय, १२. ३२

यह सत्य है कि नारी-चरित्र राष्ट्रशक्ति के पतन में सहायक था। पहले भी क्षत्रियों में युद्ध—रामायण और महाभारत—में क्रमशः सीता और द्रौपदी के कारण हुए। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कारण मुख्य थे—

काश्मीर में कुशासन और राजाओं का अत्याचार (राजतरंगिणी, १. ८८, २७४) तथा दुर्नीति प्रचलित थी।

परस्पर युद्ध और कलह, मंत्रियों की दुर्नीति और धोखा तथा मन्त्र-शून्य-शौर्य प्रमुख रोग थे।

उपर्युक्त दोष काश्मीर के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में पाये जाते थे। वहाँ महलों में दुर्नीति, उत्तराधिकार युद्ध और दुराचार फैला था। काश्मीर के निकट बसी हुई जातियों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर मुहम्मद गोरी की सेना में भाग लिया। स्कन्दपुराण के अनुसार पराक्रमी लुम्पाधिप (लम्पाक या लमगन के आस-पास क्षेत्र का राजा) इन्हीं म्लेच्छ जातियों के साथ भारत में राज्याधिकारी हो गया—

देशे म्लेच्छगणाकीर्णं बभूव जगतीपतिः।

लुम्पाधिप इति ख्यातो महेन्द्र समविक्रमः॥

स्कन्द पु०, ५. २. ४१. २

यह महेन्द्र के समान विक्रमी लुम्पाधिप ही मोहम्मद गोरी था जिसे मुस्लिम इतिहासकार 'हैदर' और दूसरा रूस्तम बताते हैं। उसकी सेना में तुषार (तोखारी=तुर्क), बर्बर (या दरद), पल्लव और श्वगण (सागडीनीयन) सम्मिलित थे।^१ स्कन्द पुराण से ज्ञात होता है कि उस समय भी चिन्तक देश में म्लेच्छ राज्य की स्थापना के कारण ढूँढ़ना और जानना चाहते थे। उन्होंने भी विचार किया—

कथं म्लेच्छसमाकीर्णं देशोज्यं द्विजसत्तम।

एतदाचक्ष्व मां ब्रह्मन् मार्कण्डेय महामते॥

१—स्कन्दपुराण, ५. २. ४१६ :

ततः प्रस्थितो राजा म्लेच्छैः सार्द्धं सहस्रशः।

तुषारैः बर्बरैः (दरदैः) लुपैः पल्लवैः श्वगणैस्तथा॥

इसका उत्तर अन्यत्र स्कन्दपुराण ही स्पष्ट देता है—

एकभक्ति का अभाव

क्षत्रियाश्चापि भूपालमेकं कृत्वा सुभक्तितः ।

तदादेशात् प्रभुंजंति महीं न धर्मेण नित्यशः ॥

क्षत्रिय राजपुत्र देश के एक सम्राट को बनाकर धर्मपूर्वक उसकी आज्ञा पालन करते हुए ही पृथ्वी का भोग कर सकते हैं और तभी देश में सुख-शांति (सत् युग भी) संभव है । परन्तु राजपूत राजा ऐसा न कर सके ।

आक्रामक नीति का अभाव—इसके अतिरिक्त अधिकांशतः राजपूतों ने सुरक्षात्मक युद्ध किये । स्कन्दपुराण स्पष्ट कहता है कि जो क्षत्रिय अपनी पूरी सैनिक तैयारी के बाद शत्रु-भूमि पर आक्रमण करता है उसी क्षत्रिय की विजय होती है और उसी का राज्य बढ़ता है—

संनह्य प्रथमं य याति शत्रुभूमिषु ।

स क्षत्रियो विजयते तस्य राज्यं च वर्धते ॥

क्षात्र धर्म—क्षत्रियों का मुख्य कर्तव्य लड़ना था । इसीलिये वे निरन्तर युद्धों में लगे रहे । ये युद्ध अधिकांशतः शौर्य प्रदर्शन (अवदानार्थ) के लिये होते थे— तत्र अन्योन्यं महीपाला युयुधुर्वसुधातले ।

सर्वे नृपतयस्तत्र-परस्पर विरोधिनः ॥

स्वधर्म निरतश्चैव युद्धातिथ्य प्रियः सदा ।

क्षात्रधर्म समाश्रित्य भोगान्भुङ्क्ते स कामतः ॥

इस शुष्क-कलह (अनर्घराघव, ३, १७६) से राष्ट्र-शक्ति क्षीण हो गयी ।

सामन्त पद्धति—सामन्त अपने सम्राटों के प्रति स्वामिभक्त न थे । वे इस अवसर की ताक में रहते थे कि जब केन्द्रीय सत्ता कमजोर पड़े और कब वे अपने को स्वतन्त्र कर लें । युद्ध के बिना कभी-कभी वे कर भी न देते थे । अतः इस कारण भी राजा और उसके सामन्तों के साथ युद्ध करना पड़ता था । हर नये राजा को सामन्तों का दमन करना पड़ता था ।

राजसूय आदि यज्ञ—ऐसे समय में भी जयचन्द्र ऐसे मूर्ख शासक थे जो मंत्रियों की बात न मानकर राजसूय यज्ञ करना चाहते थे—

राजसूय कृतेऽस्माकं सदा बुद्धिः प्रवर्तते ।

निषेधयन्ति मां सर्वे मन्त्रिणः सुहृदस्तथा ॥

इस प्रकार की यज्ञों—राजसूय, अश्वमेध—में भी युद्ध करना पड़ता था ।

पशु बुद्धि—विभूति-विलासिता के साथ बहु विवाह राजपूतों का एक व्यसन ही हो गया था और इसके लिये स्वयंवर में जिस राजा को राजपूती

नहीं वरण करती थी उसके विरुद्ध अन्य दुराचारी शासक पशु बुद्धि से मूढ़ होकर लड़ते थे और अपनी शक्ति का ह्रास करते थे। संयोगिता स्वयंवर के समय पृथ्वीराज के अधिकांश वीर जयचन्द्र की सेना से लड़ाई में काम आये। पृथ्वीराज ने ही स्वयं अपने योग्य मंत्री कदम्बवास का वध पशुबुद्धि से ही प्रेरित होकर किया था। इसलिए जब पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी के साथ द्वितीय युद्ध किया, उसके वीर साथी मर चुके थे। वह स्वयं विलासिता में डूबा था जिसका प्रभाव अन्य साथियों पर भी पड़ा।

संकीर्ण दृष्टिकोण—देश में बहुत से राज्य थे जो आपस में लड़ रहे थे। इस बहु-राज्य-व्यवस्था से संकीर्णता बढ़ी और इसी कारण वे सिन्ध, मालवा और काश्मीर आदि को भुलाकर संपूर्ण भारत के हित का ध्यान न कर सके। इस राजनैतिक संकीर्णता के साथ-साथ धार्मिक संकीर्णता भी बढ़ती गयी—

धर्मस्य पंथो गहनः संकीर्णो बहुशासनैः

सिन्ध में ब्राह्मण-बौद्ध विरोध, प्रतिहार-चालुक्य राज्यों में ब्राह्मण-जैन विरोध और दक्षिण में वैष्णव-शैव विरोध इसके उदाहरण हैं।^१

ग्रहण-मोक्ष नीति—राजपूतों ने इस नीति के कारण शत्रु का पूर्ण रूप से विनाश नहीं किया और उसके प्रति उदारता दिखाते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने शत्रुओं ने इनको पददलित कर दिया।

उदासीनता और आलस्य—हमारा राष्ट्रीय दोष प्रमाद बहुत बड़ा रोग है जो हमको खोखला करता रहा है। पृथ्वीराज तृतीय मुहम्मद गोरी के साथ सन्धि कर उसके प्रति उदासीन हो गया। वह बेखबर और बेहोश था जब मुहम्मद गोरी ने आक्रमण कर पृथ्वीराज को पराजित कर हिन्दू-स्वातन्त्र्य का अन्त कर दिया। गरुड पुराण का लेखक उज्जैनी में यह दुःखान्त नाटक देख रहा था। उसने ठीक ही कहा कि बैरी के साथ सन्धि कर जो व्यक्ति विश्वस्त होकर सोता है, वह पेड़ की डाल पर सोता हुआ गिर कर ही जागता है—

वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति ।

स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतिबुध्यते ॥^२

१—अवस्थी, जर्नल यू० पी० हिस्टारिकल सोसाइटी, जि० ९, पार्ट दो, १६६१ देखिये, पृ० ५५-६६ “स्कन्दपुराण ऑन दि कोलैप्स ऑफ हिन्दू पावर-इट्स काज्जेज।

वही, जिल्द १०, भाग १, १६६२—गरुड पुराण ऑन दि टर्किश कान्क्वेस्ट ऑफ इण्डिया, पृ० १३६-४२।

२—गरुड पुराण, १. ११४, ४८; रामायण, किष्किन्धा कांड ३८. २०-२१; महाभारत, आदिपर्व १३६. ७५।

पृथ्वीराज तृतीय की यही दुर्दशा हुई। उसने शत्रु की उपेक्षा की और नीति कहती है कि शत्रु को छोड़ना नहीं चाहिये। बची हुई थोड़ी सी आग भी जला देती है—

नोपेक्षितव्यो दुर्बुद्धिः शत्रुरल्पोप्यवज्ञया ।

वह्निरल्पोप्यसंग्राह्यः कुरुते भस्मसाज्जगत् ॥

गरुड, १. ११४. ७२

धन्य हैं वे जो राष्ट्र-भंग नहीं देखते हैं—

हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ।

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देश भंगं कुलक्षयम् ॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-कलह—क्षत्रिय राजपूत वीर थे। किंतु उनकी क्षात्री-चर्या में राजमद का दोष समा गया था। इससे वे ब्राह्मणों का उतना सम्मान न करते थे जितना कि हर्ष या उसके पहले था। हर्ष ने ही ब्राह्मणों को निर्वासित कर दिया था। इसीलिये इस युग में ही ब्राह्मणों और क्षत्रियों में संघर्ष प्रारंभ हो गया। ब्राह्मणों का नेता शंशाक ब्राह्मण था और क्षत्रियों तथा बौद्ध धर्म का उन्नायक हर्ष था। इसीलिये विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इसे क्षीण युग कहा गया है। इस दोष से क्षत्रता कलंकित हो गयी। ब्राह्मण भी भाट, चारण और बन्दी रूप में राजाओं की स्तुतियाँ करने लगे।

तौरुष्किक सेना—तुर्क सेना और तुर्कों की वीरता ही राजपूतों की पराजय का प्रमुख कारण था। उनकी सेना में घोड़े अधिक होते थे (तुरुष्क-सेनेवबहुलगन्धर्वा, कुट्टनीमतं, १०)। अश्वारोही, तुर्क वीर और दाढ़ी वाले रणभूमि से भागने वाले न थे—

वायव्यां च तुरुष्काश्च इमश्रुपूर्णाः गवाशिनः ।

अश्वपृष्ठसमारूढाः प्रयुद्धेष्वनिवर्तिनः ॥

पद्म पु०, ५. ४४. ७४

अध्याय १५

राजपूत और उनका जीवन दर्शन

तेभ्यो नमश्च भद्रं च ये शरीराणि जुह्वते ।

भारत के राष्ट्रीय जीवन में राजपूत शब्द एक परम्परा में परिणित हो गया है। जहाँ इस जाति ने बस कर उद्वस-भूमि और बालुकार्णव में अपनी चेतना और चरित्र से तथा राग और रक्त से ही अपना इतिहास रचा उसे राज-स्थान कहते हैं। मध्ययुग में यहाँ जौहर की चितायें जलीं और जिन रमणियों ने अग्नि की भयावह लपटों का प्रेम से आलिंगन किया वहाँ पुरुष-प्रवीरों ने सिद्ध-वेष में (केसरिया बाना) में शत्रु को यही सिखाया कि सिंह-व्रत क्या है।

राजपूतों के उदय के बारे में अनेक अटकलें लगाई गई हैं और यह अनर्गल प्रलाप ही आज इतिहास बन गया है। इस युग के इतिहास लेखकों और चिन्तकों ने तत्कालीन सामाजिक-चेतना और राष्ट्रीय क्रान्ति के उठते तूफान का उद्घोष नहीं सुना। न तो इन इतिहास लेखकों ने मूल ग्रन्थों का आँख और अकल से मूल्यांकन ही किया और न नये राष्ट्रीय प्रतीकों (गज-शार्दूल, नाग-गरुड़, दैत्य-देव, सुर-असुर आदि) और साहित्यिक-प्रवृत्तियों का ही अनुशीलन किया। यही कलि-काल था। कलि ही म्लेच्छ मातंग था।

पराभव और परायत्त-सत्ता के अभिशापों ने यहाँ चिन्तक मुनि को चौंका दिया। वह देश में उत्पन्न नयी परिस्थितियों और शक्तियों का अध्ययन करने लगा। राष्ट्र चिन्तकों ने देश में चारों ओर कलह का वातावरण पाया और देश के द्वार पर विध्वंसक अग्नि (ताजिकानल) की उठती लपटों को भी देखा। देश द्वार के उस पार इन निस्पृह राष्ट्र-सेवकों व भगवद्भक्तों ने दुनिया को आततायी के आघातों से गिरता, लड़खड़ाता और विकृत देखा। वही भावी भयावह चित्र भारत के भविष्य के विषय में भी उनके निर्मल मन पर खिंच गया और स्वयं जब उनके भी आश्रमों तथा तीर्थों में यह म्लेच्छ-आतंक होने लगा तो वे समाधि छोड़कर जन-जीवन को वैद्यों की भाँति स्वस्थ करने निकल पड़े। रोग-मुक्त होकर ही कोई व्यक्ति स्वस्थ होता है। अस्तु उन्होंने राष्ट्र-शरीर के रोगों का निदान कर पथ्योपचार का विधान बनाया जिसे घर-घर चिल्ला-चिल्ला कर मधुर और सरस परन्तु मर्म स्पर्शी वाणी में सुनाते

रहे। अंग्रेजी के ग्रन्थों को ही पढ़ कर बननेवाले इतिहास कार के कानों में यह राष्ट्र-वाणी नहीं पहुँच सकी। यौधेय स्वतन्त्रता, सौहार्द और समता के आदर्शों पर चलकर भूमि और पशुओं तथा सामरिक शक्ति की पूजा करते थे। उनके आदर्श जीवन से ही प्रभावित होकर सभी क्षत्रियों ने उन्हें 'वीर' की उपाधि दी थी। यही राजपूती आन बन गयी।

जब से लिखित इतिहास मिलता है तबसे आज तक इस देश में संघर्ष का इतिहास मिलता है। ऋग्वेद में, जो कि मानव जाति का सबसे पुराना ग्रन्थ है, वृत्र आदि को आततायी राक्षसों के रूप में उल्लिखित पाते हैं। यही कालान्तर में देवासुर संग्राम बन गया जिसका वर्णन रामायण, महाभारत और पुराणों में मिलता है। स्कन्द पुराण में अन्तर्वेदी में होने वाले देवासुर-संग्राम में महेन्द्र ने 'मुक्तकच्छशिखानां दैत्यानां कदन' (बध) किया। ये मुक्तकच्छ शिखा वाले दैत्य तुरुष्क ही थे जिन्हें गंगा की घाटी में मारा गया था।

परन्तु इन प्राचीन इतिहास के मूल ग्रन्थों का सम्यक विवेचन आज का बहुधंधी और व्यवसायी विद्वान अंधगजन्धाय से ही कर रहा है। अतः राजपूत-राजसिद्धांत, और उनकी सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना पर विचार करना आवश्यक होगा क्योंकि इसी प्रक्रिया पर ही राजपूतों का उदय, उत्कर्ष और पराभव भी आधारित है।

राजपूतों की उत्पत्ति

पुरुष सूक्त में क्षत्रिय की तुलना पुरुष की भुजाओं से की गयी है। सम्पूर्ण विश्व का ही रक्षक राजन्ध था। रामायण का 'समर्थ' राम राघव राक्षसों से गो-ब्राह्मण और धर्म तथा मर्यादा का रक्षक था। रामायण और महाभारत, स्मृतियों और पुराणों में इसी 'रक्षक' को क्षत्रिय कहा गया है। क्षत्रिय राजकुमार को ही 'राजपुत्र' (महात्मा राजपुत्रोऽयं)^१ कहा गया है। युद्ध करना ही उसका 'स्वधर्म' या स्वकर्म भी था।^२ किसी भी कारण से—लोभ, काम अथवा द्रोह से—उसे स्वधर्म का परित्याग करना उचित न था।^३ उसको यह भी बताया गया था कि सदा न तो किसी की जय होती है और न किसी की पराजय ही—

नैव नित्यं जयस्तात नैव नित्यं पराजयः।^४

१—शान्तिपर्व, १०६.१३

२—वही, १०६.१५

३—वही, १०६.१७

४—वही, १०६.१८ (१)

गीता में भी कृष्ण ने अर्जुन को यही बताया है। क्षत्रिय का यह योगी-स्वरूप उसके ब्रह्म तेज का ही परिचायक है क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मण से ही उत्पन्न हुआ (ब्रह्मतः छत्रम्)^१ है। यह ब्रह्मतेजोमय क्षत्रिय ही ब्रह्म-क्षत्र कहलाया। “सातवीं और आठवीं शती में भारतवर्ष में जीवन के दो मुख्य क्षेत्रों में क्रांति हुई। धार्मिक क्षेत्र में कुमारिल और शंकर ने जो आंदोलन चलाया उससे ह्यासोन्मुख बौद्ध धर्म वैदिक परंपरा में पूर्णतः आत्मसात कर लिया गया और प्राचीन धार्मिक संप्रदायों के स्थान में पुनरुत्थान मूलक किंतु नवसंस्कृत हिंदू धर्म का उदय हुआ। मध्ययुगीन धार्मिक जीवन की यह एक बहुत बड़ी संक्रान्ति थी। राजनीतिक क्षेत्र में हूणों और अरबों के आक्रमण से भारत को बहुत बड़ा मानसिक धक्का लगा। कुमारिल और शंकर की धार्मिक प्रेरणा से राजनीतिक जीवन भी प्रभावित हुआ। राजवंशों में ब्रह्म-क्षत्र की एक नई परंपरा चल पड़ी। प्राचीन भारतीय राजवंशों के अवशेषों में एक बार पुनः नया प्राण आ गया। उन्होंने राजस्थान, मध्य भारत, मध्य प्रदेश, विध्य प्रदेश आदि प्रांतों में अपने देश और धर्म की रक्षा के लिये शैव धर्म को अपनाया और सतत युद्ध द्वारा विदेशी सत्ता के विरोध का प्रण किया। कुषण साम्राज्य को नष्ट करने और भारतीय राष्ट्र के पुनरुत्थान का व्रत इसी प्रकार तीसरी शती में नागभारशिवों ने लिया था। प्राचीन क्षत्रियों के नव जागरण का काव्यमय वर्णन चंद के पृथ्वीराज रासों में.....मिलता है।”^२

आठवीं शताब्दी से लेकर १२वीं शताब्दी तक के साहित्य में भी क्षत्रियों का परम् कर्तव्य आर्त-परित्राण (दुखी जन की रक्षा) और पृथ्वीपालन करना ही बताया गया है।^३ उसी क्षत्रिय को हम इस युग में वीर वेष में तलवार लिये हुए (वीरचर्योचिता वेषसंवृत्तिं आकृष्टखड्गं) पाते हैं।^४ इन्हीं क्षत्रियों को राजपुत्र (राजपुत्रा)^५ कहा गया है। पृथ्वीराज रासो में सोमेश्वर-पुत्र पृथ्वीराज को क्षात्र-धर्म का पालन करने वाला अद्वितीय पुरुष कहा गया है।^६

१—शान्ति पर्व, ५६.२४; दृष्टव्य मनुस्मृति ७.२.१४

२—डा० राजबली पांडेय, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ४२-४३

३—उदयसुन्दरी कथा, पृ० ७५

४—वही, पृ० ७५

५—कथा सरित्सागर, नं. ४. १६

६—पृथ्वीराज रासो, नाहरराय कथा, १२

यहाँ युद्ध-भूमि से न भागने वाले राजपूत-शूर को ही क्षत्रिय कहा गया है—

भगगौं न भूमि रजपूत हों, करौं नाम जिमि अचल ध्रुव ।^१

ते नहिं गनियै सूर, धर्म तिन छत्रिन नाहीं ।^२

ये सभी देश सेवा के लिये थे—

जे छत्री हय गय सुभट, सेवें सब हम देस ।^३

परन्तु ऐसा विदित होता है कि सभी शुद्ध क्षत्रिय नहीं थे। इसीलिये “कुल सुद्ध”^४ की खोज की जाती थी। एक कन्या ने पृथ्वीराज को भी संदेश कहा—

जो खित्री कुल सुद्ध, वरनि वर रक्खहु प्रानह ।^५

शुद्ध क्षत्रिय वही था जो खड्ग द्वारा युद्ध भूमि में कट जाने से मुक्ति पाता था (रजपूत मुक्ति खिति खग-खिरि)^६। शत्रु के समक्ष युद्ध-भूमि से भयभीत होकर भागने वाला शुद्ध क्षत्रिय न था। वह क्षुद्र क्षत्रिय ही वृषलत्व (शूद्रत्व) को प्राप्त करता था ।^७ इस युग को ही ध्यान में रखकर असुरों के उत्पात से राष्ट्र को बचाने वाले शुद्ध क्षत्रिय की आवश्यकता थी। पृथ्वी चिल्ला कर कह रही थी कि “क्या संसार में कोई ऐसा साहसिक है जिसका छत्रीपन शुद्ध शौर्य पर आधारित हो और जिसके आभरण कृपा और कृपाण हों तथा जो हमको मृत्यु के भय से बचाये”—

यः कोऽपि वा साहसिकोऽस्ति लोके

यष्यास्ति वा क्षात्रियतावदाता ।

कृपाकृपाणाभरणोऽस्ति यो वा

स पातु मां मृत्युभयादमुष्मात् ॥

पृथ्वीराज विजय ६. ११०

इसलिये देश असुरों-तुरुष्कों के आक्रमणों से त्राहि-त्राहि कर रहा था। उस समय ऐसे शुद्ध क्षत्रिय की आवश्यकता थी जो पृथ्वी के करुण-क्रन्दन को

१—पृथ्वीराजरासो, नाहरराय कथा, ५७

२—वही, ५८

३—वही, ७०

४—वही, पद्मावती समय, १६

५—वही, २३

६—वही, भोलाराय समय ४८

७—महाभारत, आश्वमेधिक पर्व, २६. १४-१६

मुनकर उसकी रक्षा करता । इसकी परख ही यज्ञ थी और अग्नि ही साक्षी थी । पर-चक्र-भय से बचाने के लिये शुद्ध और खरे क्षत्रिय की आवश्यकता थी । प्रतिहार, परमार, चन्देल, चौहान, चालुक्य और गहड़वाल ऐसे ही शुद्ध क्षत्रिय थे जिन्होंने क्षात्र धर्म का अनुसरण कर यथाशक्ति राष्ट्र रक्षा की ।

प्रमादवश चाहे कोई इन्हें हूण, शक, गुर्जर आदि विदेशी ही क्यों न माने, परन्तु जिन्हें हम राजपूत कहते हैं वे क्षत्रिय ही थे । विदेशी भी आये और उन्होंने यहाँ राज्य स्थापित किया; परन्तु वे हिन्दू समाज में मिलकर विदेशीपन को भूल गये तथा भारतीय बनकर भारतीय समाज में विलीन हो गये । केवल मुस्लिम आक्रमणकारी ही अपने आपको भारतीय समाज से अलग रख सके ।

राजपूत शब्द का अधिकांश प्रयोग इस देश में मुसलमानों के आने के बाद ही प्रारम्भ हुआ । गुप्तचक्रांग ने यहाँ के राजाओं को क्षत्रिय ही बताया है । उसने राजपूत शब्द का प्रयोग नहीं किया । अकबर भी राजपूतों के चरित्र पर मुग्ध था । प्रेम ममत्व से होता है । विदेशों से आने वाले लोग और उनकी स्त्रियाँ मर्यादा की रक्षा और देश की रक्षा के लिये, यहाँ आते ही, प्राण न देते । देश-स्वातन्त्र्य से शरीर की आहुति देने वाला राजपूत पूर्ण रूप से भारतीय था । उसके विदेशी होने की बात निर्मूल और निराधार है । विदेशी को गाय और ब्राह्मण, वेद और धर्म की रक्षा करने से क्या प्रयोजन था । इनका रक्षक ही क्षत्रिय राजपूत था ।

अग्निकुल—पृथ्वीराज रासो से ज्ञात होता है कि “जब पृथ्वी राक्षसों और म्लेच्छों से त्रस्त थी तब वसिष्ठ ने अर्बुद पर्वत पर अपने यज्ञकुंड से चार योद्धाओं को उत्पन्न किया—परमार, चालुक्य, परिहार और चाहुमान । इन्हीं से चार राजवंशों की स्थापना हुई जो अग्निकुलीय कहलाये । यह कथा बहुत पीछे प्रचलित हुई । कई ऐतिहासिकों ने इस कथा की विचित्र व्याख्या की । टाड ने इस उत्पत्ति कथा को स्वीकार कर यह मत प्रतिपादित किया कि ये नव जागृत राजपूत विदेशी आक्रमणकारियों के वंशज थे जो यज्ञ द्वारा शुद्ध होकर हिन्दू समाज में संमिलित हुए । पीछे स्मिथ तथा बहुत से भारतीय ऐतिहासिकों ने इसे पकड़ लिया । एक तो यह कथा बारहवीं शती की है और दूसरे उपर्युक्त सभी राजवंश अपने उत्कीर्ण लेखों में अपनी उत्पत्ति प्राचीन सूर्य अथवा चंद्रवंश से मानते हैं । यह संभव है कि विदेशी आक्रमणकारियों के वंशजों में से राजकुलीय या अभिजात अंश प्राचीन क्षत्रियों के साथ मिल गया हो । परन्तु अधिकांश और मुख्य राजपूत राजवंश प्राचीन क्षत्रियों के वंशज

थे, इसमें संदेह नहीं।^१ विदेशी 'सीथियन' मूलोत्पत्ति पर विचार करने के बाद डा० आर० बी० सिंह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है—

“Thus, although every case has its own merits and demerits, yet in respect of the theory of the Scythian origin of the Rajputs, the facts are overwhelmingly against it. In fact it cannot hold good in so far as it is not based on undisputed facts.”^२

राजपूत जीवन-दर्शन

न हि शौर्यात् परं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

शूरः सर्वं पालयति सर्वं शूरे प्रतिष्ठितम् ॥ शान्तिपर्व ६६.१८

जिस राजपूत शौर्य और बलिदान ने कर्नल टाड से मनीषी को मुग्ध कर दिया वह एक अद्भुत दर्शन था। वह ही राजपूत फ़िलासफी थी। आधुनिक इतिहासकारों का विचार है कि पूर्वमध्य युग के राजपूतों के समक्ष कोई ऐसा आदर्श नहीं था जो साहस, शक्ति और धैर्य के साथ ही साथ उनकी आधार शिला होती। यह भ्रम और अज्ञता है। यह सत्य है कि राजपूतों में भी दोष थे और उनकी गलतियों का देश पर बहुत बुरा असर पड़ा; परन्तु वे सैकड़ों वर्ष तक राष्ट्र रक्षण को अपना कर्म मानकर उस धर्म का पालन करते हुए रण-भूमि में मृत्यु का आलिङ्गन करते रहे और क्षत्राणी-वीरांगनाएं आग की लपटों का आलिङ्गन करती रहीं। उनके जीवन में अवश्य ही एक दिव्य-दर्शन था जिस की प्रेरणा से मौत को अमृत-पद मानते रहे। उसका कर्तव्य था—

शस्त्रेणाजीवनं राज्ञो भूतानाञ्चाभिरक्षणम् ॥

गरुड, १.२०५.१२

विदेशी सत्ता की स्थापना और उसके आतंकों से प्रजा पीड़ित थी। ऐसे युग में प्राणि-रक्षण और देश-भंग को बचाना कष्ट कार्य था (गरुड १.११५.२)। गीता दर्शन की उत्पत्ति युद्धभूमि में हुई थी जब अर्जुन अपने हथियारों को फेंक कर युद्ध से पराङ्मुख हो गये थे। भगवान ने संसार और संसार के निर्माता विराट पुरुष के स्वरूप को दिखाते हुए मनुष्य के मर्त्य रूप

१—डा० राजबली पांडेय, हि० सा० बृ० इ०, प्रथम भाग, पृ० ४५

२—J. U. P. H. S., Vol. X, Pts. I-II, 1962, p. 110.

को दिखाया और पुनः उसे लड़ने के लिये तैयार कर दिया—

यौघिष्ठिरी दौर्योधनी कुरुक्षेत्रं ययौ चमूः ।
भीष्म द्रौणादिकान् दृष्ट्वा नायुध्यतगुरुनिति ॥
पार्थ ह्यवाच भगवान्नशोच्या भीष्ममुख्यकाः ।
शरीणाणि विनाशीनि न शरीरी विनश्यति ॥
अयमात्मा परं ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि विद्धि तम् ।
सिद्ध्यसिद्धयोः समो योगी राजधर्मं प्रपालय ॥
कृष्णोक्तोऽथार्जुनोऽयुध्यद्रथस्थोवाचशब्दवान् ॥

अग्नि पुराण १४.१—४

अस्तु, गीता-दर्शन ने स्पष्टतः क्षत्रियों को संकट काल में राजधर्मपालन करने की प्रेरणा दी । इस रणविद्या से ही सुख की प्राप्ति और दुखकी निवृत्ति होती है (श्रीमद्गीता, १।२) । पूर्व मध्यकाल में शक्ति होते हुए भी पराभूत राजपूतों को इसी उत्तम राजविद्या ने जीने का सहारा और संघर्ष करने का बल दिया—

तेषां दैव्याप्तनोदार्थं सम्यग्दृष्टिक्रमाय च ।
ततोऽस्मदादिभिः प्रोक्ता महत्यो ज्ञान दृष्टयः ॥
अध्यात्मविद्या तेनेयं पूर्वं राजसु वर्णिता ।
तदनुप्रसूता लोके राजविद्येत्युदाहृता ॥
राजविद्या राजगुह्यमध्यात्मज्ञानमुत्तमम् ।
ज्ञात्वा राघव राजानः परा निर्दुःखतां गताः ॥

योगवसिष्ठ, २.११.१६-१८

योगवसिष्ठ ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी का ग्रन्थ है जिसका काश्मीरी प्रणेता देख रहा था, पास ही खड़ा हुआ, कि काश्मीर के शाही राजा गजनिवियों के साथ संघर्ष कर रहे थे । राजा जैपाल ने अपने प्राणों को चिता में जला कर त्याग दिया था । उस युग में प्राण त्याग भी एक धर्म बन गया था । अस्तु, स्पष्ट है कि राजधर्म और अध्यात्मज्ञान से राजाओं की दुःख से निवृत्ति हुई । यतः—

राज्यानि संपदः स्फाराभोगो मोक्षश्च शाश्वतः ।
विचारकल्पवृक्षस्य फलान्येतानि राघव ।
कार्यं संकटं संदेहं राजा जानाति राघव ।
निष्फलं सफलं वादि विचारेणैव नान्यथा ॥

योगवसिष्ठ २.१४०३८—३९

गरुण पुराण के नीतिसार सम्बन्धी अध्यायों में दुःख और चिन्ता-ग्रस्त राजाओं को प्रबल प्रबोध और प्रोत्साहन दिया गया है। प्रथमतः आवश्यक था चित्त को स्थिर करना—

पन्थान इव विप्रेन्द्र सर्वं साधारणः श्रियः ।

चित्तायत्तं धातुवश्यं शरीरं चित्तं नष्टे धातवोर्यान्ति नाशम् ।

तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीय स्वस्थे चित्ते धातवः संभवन्ति ॥

गरुड़, १.११४.७४-७५

राष्ट्र की वृद्धि ओंकार से और राजा की वृद्धि योग से होती है (गरुड़ १।१११।१५)। अतः शास्त्र-बुद्धि से राजा मनस्ताप को मिटाकर समबुद्धि (योग) का आश्रय लेकर ही राज्य की रक्षा और वृद्धि करें—

अन्धो ही राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः ।

अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति ॥

यस्य पुत्राश्च भृत्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिताः ।

इन्द्रियाणि तस्य राज्यं चिरं न हि ॥

वही, १.१११.१९-२०

मनस्तापं न कुर्वीत् आपदं प्राप्य पार्थिवः ।

समबुद्धिः प्रसन्नात्मा सुखदुःखे समो भवेत् ॥

धीराः कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिनः ।

प्रविश्य वदनं राहोः किं नोदेति पुनः शशी ॥

ध्रुवधृक् शरीरसुखं लालित मानवेषु माखेदयेद्धनकृशं हि शरीरमेव ।

सद्धारका ह्यधन पाण्डुमुताः श्रुताहि दुःखं विहाय पुनरेव सुखं प्रपन्ना ॥

वही, १.१११.२३-२५

यही अध्यात्म दर्शन था जिसने क्षत्रिय वीरों को स्वधर्म और स्वदेश रक्षा से विरत न किया प्रसिद्ध उक्ति है—

“निश्चेष्ट होकर बैठ रहना यह महादुष्कार्य है ।

शत्रु पराभव करने में राजपूत निश्चेष्ट होकर हार कर भी हार कर बैठ न रहा । वह देश-वेदी पर आत्मोत्सर्ग करता रहा । सच्चा शूर वही था—

आपत्सु मित्रं जानीयात् रणे शूरं रहः शुचिम् ।

गरुड़ १।१०९।८

आपत्तिकाल में भाई को ही भाई छोड़कर शत्रु से जा मिले । तो भी चिन्ता क्या—

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः ॥

गरुड़, १।११४।१

शूर की भी परीक्षा रणों में ही होती है। अच्छा घोड़ा चाबुक की मार सह नहीं सकता; सिंह गज-गर्जना भी नहीं सहता और शत्रु के घोर शब्द को नहीं सहता है; वह विभवहीन होकर भी नीच और दुष्ट की सेवा नहीं करना चाहता और सत्य ही सिंह घास न खाकर हाथियों का ताजा रक्त ही पीता है (गरुड, १।१११।१७-१८)। यही शूर-दर्शन या क्षात्र-व्रत, खड्ग-व्रत या राजपूत फिलासफी थी जिसने बप्पा रावल, प्रथ्वीराज चौहान, राणा हम्मीर, सांगा, राणा प्रताप, राणा राजसिंह आदि को अमर बना दिया।

प्रश्न है कि शूर से किस प्रकार के सिपाही का बोध होता है और कौन स्वर्ग का अधिकारी है—

भगवच्छूर शब्देन कीदृशः प्रोच्यते भटः ।

स्वर्गलंकरणं कः स्यात् को वा डिम्भाहवे भवेत् ॥

योगवसिष्ठ, ३।३१।२३

परिपाल्यस्वदेशैक पालने यः स्थितः सदा ।

राजामृतास्तदर्थं ये ते वीरा वीरलोकिनः ॥

वही, ३।३१।२६

इससे अधिक उत्कृष्ट और उदात्त राष्ट्रीय भावना का पता इतिहास में नहीं मिलता है कि राजपूत सदा ही इसी वीर-गति और परिपाल्य-स्वदेशैक-पालन के यज्ञ में रक्त से आहुति देता रहा। उसने देश की आवाज़ पर अपने को उत्सर्ग कर दिया और माँ को छोड़कर कायरता से भाग जाना राजपूत-शौर्य या क्षत्रिय-दर्शन नहीं था—

क्षत्रियः सन्न देशं स्वं त्यक्ष्यामि कलीबवद्भयात् ।

धीरा भवाम्ब कः शक्तो वराको मां प्रबाधितुम् ॥

कथा सरित सागर, ७।४।६४

यहीं पर नीति, दर्शन और देश-प्रेम की भावुकता में संघर्ष उत्पन्न होता है। देश-प्रेम और मातृ-भूमि-भक्ति का सिद्धान्त है—

दुस्त्यजा जन्मभूमिः (हर्ष चरित, प्रथम उच्छ्वास पृ० १७)

सत्य ही आपद्ग्रस्त राष्ट्र को निस्सहाय छोड़कर अन्यत्र चला जाना महादुष्कर्म है। जननी-भक्ति को छोड़ना अत्यन्त दुष्कर है (दुस्त्यजश्चानुरागो)¹ परन्तु नीतिकार कहता है कि अपनी रक्षा सदैव करनी चाहिए (आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि)।² सम्भवतः इसी विचार से प्रभावित होकर राजपूत भी

१—भागवत पुराण, १०।२६।१३

२—गरुड पुराण, १।१०९।१

आत्मनिवेदन करते रहे । परन्तु अपनी रक्षा देश छोड़कर भी करनी आवश्यक थी—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थं ग्रामस्यार्थं कुलं त्यजेत् ।

ग्रामं जनपदस्यार्थं आत्मार्थं पृथिवीं त्यजेत् ॥ गरुड़, १।१०।१२

अतः स्पष्ट है कि दार्शनिक पृष्ठभूमि में ही मध्यकालीन चेतना और वैचारिक क्रान्ति का दर्शन होता है जिसका उद्देश्य पारतन्त्र्य-पराभव के बाद स्वातन्त्र्य सुख ही था—

रागद्वेषादियुक्तानां न सुखं कुत्रचित् क्वचिद्द्विज ।

विचार्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्त निवृत्तिः ॥

गरुड़, १।११।१५,

सर्वं परवशं दुःखं सर्वात्मवशं सुखम् ।

सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्तते ॥

वही, १.११३.६०-६१

सुख-दुख तो आते जाते रहते हैं । यही राजपूत की भी धारणा थी और यही उसका जीवन-दर्शन था । क्षत्राणी माँ भी अपने पराजित पुत्र को युद्ध में जाकर शत्रुओं को नष्ट करने या अपने प्राणों का वहीं उत्सर्ग करने का आदेश देती रही (महाभारत, उद्योग पर्व, १३३. ७-२१) । वह सिंह वाँ और सिंह के समान ही उसको रहना भी था ।

संक्षिप्त आधार-ग्रंथ सूची

अ० मौलिकग्रन्थ

१—महाकाव्य

रामायण

महाभारत

२—पुराण

अग्निपुराण

गरुड़ पुराण

नारद पुराण

पद्म पुराण

ब्रह्माण्ड पुराण

भविष्य पुराण

भागवत

मत्स्य

मारकण्डेय

वराह

वायु

विष्णु

स्कन्द

विष्णुधर्मोत्तर

नीलमत पुराण

३—स्मृति

देवल

मनु और इस पर मेधातिथिभाष्य

याज्ञवल्क्य

४—निबन्ध

लक्ष्मीधर—कृत्यकल्पतरु

५—साहित्य संस्कृत ग्रन्थ

बाण—हर्षचरित

सोढढल—उदयसुन्दरी कथा

अभिनन्द—रामचरित

दण्डी—दशकुमार चरित

प्रबन्धकोश

बप्पभट्टिचरित

प्रभावक चरित

वाक्पतिराज—गौडवाहो

जैनहरिवंश

आदि पुराण

भवभूति—महावीर चरित

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प

क्षेमेन्द्र—कथा सरित्सागर

राजशेखर—काव्यमीमांसा

बालरामायण

बाल भारत

वत्सराज—रूपकषट्कं

कृष्णमिश्र—प्रबोध चन्द्रोदय

बिल्हण—कर्ण सुन्दरी

पद्मगुप्त—नवसाहसांक चरित

हर्ष—नैषध

माध—शिशुपालवध

जयानक—पृथ्वीराज विजय

नयचन्द्रसूरी—हम्मीरमहाकाव्य

कल्हण—राजतरंगिणी

६—हिन्दी ग्रन्थ

चन्द—पृथ्वीराज रासो (उदयपुर)

मानकवि—राजबिलास

(ना० प्र० सभा वाराणसी)

आ० सामान्य आधुनिक ग्रन्थ

- अग्रवाल, डा० कृ०च० : पृथ्वीराज रासो के पात्रों की ऐतिहासिकता
लखनऊ, सं० २०२५ वि०
- अग्रवाल, डा० वासुदेव शरण : मत्स्य पुराण ए स्टडी, वाराणसी
- " " : हर्ष चरित एक अध्ययन
- अल्टेकर, डा० अ०स० : राष्ट्रकूटाज् ऐन्ड दियर टाइम्स,
ओ०बी०ए० पूना १९६७
- अवस्थी, अवधबिहारी लाल : प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप
- " " : इंडियन नेशनलिज्म भाग १
- " " : राजपूत पालिटी
- " " : गरुड़ पुराण एक अध्ययन
- " " : स्टडीज् इन स्कन्द पुराण पार्ट १
- ईलियट ऐण्ड डाउसन : हिस्ट्री आफ् इंडिया ऐज् टोल्ड बाई इट्स ओन
हिस्टोरियन्स—किदावमहल, इलाहाबाद
- ओझा, गौरीचन्द हीराचन्द : राजपूताना का इतिहास, अजमेर १९३६
- " " : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, हिन्दुस्तानी
अकाडमी इलाहाबाद
- गांगुली, डा० डी०सी० : परमार राजवंश का इतिहास, लखनऊ
- घोषाल, डा० यू०एन० : स्टडीज् इन इंडियन हिस्ट्री ऐन्ड कल्चर,
कलकत्ता (ओ०ला०), १९५७
- घटर्जी, गोरी शंकर : हर्षवर्धन, इलाहाबाद १९३८
- जाफ़र, एस०एम० : मेडिवल इंडिया, भाग २, पेशावर सिटी १९४०
- दाड, जे० : एनल्स ऐन्ड एन्टीकिटीज् आफ् राजस्थान, भाग २,
लन्दन १९५७
- त्रिपाठी, डा० आर०यस० : हिस्ट्री आफ् कनौज, देहली, १९५६
- " " : प्राचीन भारत का इतिहास
- " " : हिस्ट्री आफ् ऐन्शेन्ट इण्डिया, बनारस १९४२
- दीक्षित, डा० आर०के० : चन्देलाज् ऐन्ड दियर टाइम्स
- नियोगी, डा० रोमा : हिस्ट्री आफ् दि गृहडवाल डाइनेस्टी
- पाठक, डा० बी०यस० : ऐन्शेन्ट हिस्टोरियन्स आफ् इण्डिया,
एशिया प्र०, १९६६
- पांडेय, डा० अयोध्या प्रसाद : चन्देल कालीन बुन्देलखंड का इतिहास,
हि०सा०स० प्रयाग १९६८
- पांडेय, डा० राजबली : प्राचीन भारत, वाराणसी १९६८
- " " : हिस्टारिकल ऐण्ड लिटरेरी इन्सक्रिप्शन्स,
वाराणसी १९६२
- पुरी, डा० बेंजनाथ : हिस्ट्री आफ् दि गुर्जर प्रतिहारराज्,
हिन्द किताब, बाम्बे १९५७

बनर्जी, डा० अनिल चन्द्र	: लेक्चर्स आन राजपूत हिस्ट्री, कलकत्ता १९६२
बसाक, डा० आर०जी०	: हिस्ट्री आफ् नार्द ईस्टर्न इण्डिया, कलकत्ता १९३४
बोस, डा० यन०यस०	: हिस्ट्री आफ् दि चन्देलाज् आफ् जेजाक भुक्ति कलकत्ता १९५६
बुध प्रकाश डा०	: इंडिया ऐण्ड दि वर्ल्ड
" "	: स्टडीज् इन इंडियन हिस्ट्री ऐण्ड सिविलाइजेशन
मजूमदार, डा० आर०सी०	: ऐन्शेन्ट इण्डिया, बनारस १९५२
मजूमदार ऐण्ड पुस्तकर	: क्लासिकल एज, भा०वि०भा० बम्बई १९५४
" "	: एज आफ् इम्पीरियल कनीज, बम्बई १९५५
" "	: स्ट्रगल फार इम्पायर, बम्बई १९५७
मित्र डा० यस०के०	: अली रूलर्स आफ् खजुराहो, कलकत्ता १९५८
मिश्रबन्धु	: भारतवर्ष का इतिहास
मिश्र केशवचन्द्र	: चन्देलवंश और उनका राजत्व काल, वाराणसी
मीराशी, डा० वासुदेव विष्णु	: कलचुरि नरेश और उनका काल, भोपाल सं० २०२२
" "	: कार्पस इन्सक्रिप्शनम इंडिकेरम, भाग ४, उत्कलमंड १९५५
मुकुर्जी, डा० राधाकुमुद	: हर्ष, आक्सफर्ड, १९२६
रे, डा०एच.सी.	: डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ् नार्दर्न इंडिया भाग १, कलकत्ता १९३१, भाग २, कलकत्ता १९३६
मुंशी, के.एम.	: रलोरी दैट वाज गुर्जर देश, भाग २, भा०वि०भा० बाम्बे, १९५५
विजयतुंग, जे०	: खजुराहो, देहली १९६०
वेद्य, सी०बी०	: हिस्ट्री आफ् मेडिवल हिन्दू इंडिया, जिल्द १—३ पूना, १९२४, १९३३
व्यास, लक्ष्मीशंकर	: चौलुक्य कुमारपाल, वाराणसी
स्मित, बी०ए०	: अली हिस्ट्री आफ् इण्डिया, आक्सफोर्ड १९२४
शर्मा, डा० दशरथ	: अली चौहान डाइनेस्टीज, देहली १९५९
शर्मा, आर०एस०	: इण्डियन फ्यूडलिज्म, कलकत्ता १९६५
सचाउ, डा० एडवर्ड सी०	: अल्बेरूनीज इंडिया, भाग २, देहली १९६४
सिनहा, डा० बी०पी०	: दि डिक्लाइन् आफ् दि किंगडम आफ् मगध, देहली १९५४
सिंह, डा० आर०बी०	: हिस्ट्री आफ् दि चौहानाज, वाराणसी
हेग, सर वूल्जे	: कैन्नज हिस्ट्री आफ् इण्डिया, जिल्द ३